बीएईसी– 102
(BAEC – 102)

भारतीय अर्थव्यवस्था
(Indian Economy)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी – 263139
फोन नं. 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946–264232, ई–मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम समिति

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे,
निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 मधुबाला,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
इंदिरा गॉधी मुक्त विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

प्रो0 एम0 के0 धडोलिया,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

प्रो0 आर0 सी0 मिश्र
निदेशक वाणिज्य एवं प्रबन्ध विद्याशाखा,
विशेष आमंत्रित सदस्य
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रो0 एस0 पी0 तिवारी,
आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग,
डॉ0 आर0 एम0 एल0 अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद उ0 प्र0

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं संपादन

डॉ0 अमितेन्द्र सिंह
अर्थशास्त्र विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डॉ. सजीव भारद्वाज एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महिला पी. जी. कॉलेज, सिरसागंज फिरोजबाद, उ. प्र.	**1,2,3,4**
डॉ0 अमितेन्द्र सिंह अर्थशास्त्र विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**5,6,7,8**
डॉ. मंजुला उपाध्याय असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, ए. पी. सेन महाविद्यालय, लखनऊ, उ. प्र.	**9,10,11, 12, 13,14,15**
डॉ. अनुपमा तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राधे हरि राजकीय पी. जी. कॉलेज, काशीपुर, उत्तराखण्ड	**16,17,18,19**
डॉ. राजेश पाल असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ. प्र.	**20,21,22,23**

संस्करणः 2017
आई.एस.बी.एन.: 978-93-84813-39-0
प्रतिलिप्याधिकार (कॉपीराइट): @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशकः कुल सचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल – 263139
email: studies@uou.ac.in
मुद्रकः
इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

भारतीय अर्थव्यवस्था
(Indian Economy)

बीएईसी – 102
(BAEC – 102)

विषय–सूची

खण्ड– 1. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना **(Structure of Indian Economy)**	पृष्ठ संख्या
इकाई– 1. भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं (Characteristics of Indian Economy)	1–13
इकाई– 2. राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था (National Income and Indian Economy)	14–27
इकाई– 3. जनसंख्या, मानवीय संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था (Population, Human Resources and Indian Economy)	28–45
इकाई– 4. अधो–संरचना, प्राकृतिक संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था (Infrastructure, Natural Resources and Indian Economy)	46–59
खण्ड– 2. भारत में आर्थिक विकास की समस्याएँ (Problems of Economic Development in India)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई– 5. गरीबी (Poverty)	60–77
इकाई– 6. बेरोजगारी (Unemployment)	78–95
इकाई– 7. आर्थिक असमानता (Economic Inequality)	96–114
इकाई– 8. मुद्रा स्फीति एवं खाद्य सुरक्षा (Inflation and Food Security)	115–136
खण्ड– 3. आर्थिक नियोजन (Economic Planning)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई– 9. आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता एवं योजना निर्माण प्रक्रिया (Relevance of Economic Planning and Process of Planning)	137–153
इकाई– 10. आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ (ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना तक) (Achievements of Economic Planning (Till the Eleventh Five Year Plan))	154–172
इकाई– 11. केन्द्र–राज्य सम्बन्ध (Center-State Relation)	173–192
इकाई– 12. योजना का वित्तीयन (Financing of Planning)	193–209

खण्ड– 4. कृषि और भारतीय अर्थव्यवस्था (Agriculture and Indian Economy)	पृष्ठ संख्या
इकाई– 13. भारत में कृषि की प्रकृति, महत्व एवं नवीन व्यूह रचना (Nature, Importance and new structure of Agriculture in India)	210–228
इकाई– 14. भारत में कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता की प्रवृत्तियां (Trends of Production and Productivity of Agriculture in India)	229–248
इकाई– 15. कृषि साख एवं कृषि विपणन (Agricultural Credit and Agricultural Marketing)	249–268
खण्ड– 5. औद्योगिक संरचना, वित्तीय एवं मुद्रा बाजार और लोक वित्त संरचना (Industrial Structure, Finance and Money Market and Structure of Public Finance)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई– 16. औद्योगिक नीति एवं उदारीकरण (Industrial Policy and Liberalization)	269–284
इकाई– 17. औद्योगिक सरंचना एवं उपलब्धियाँ (Industrial Structure and Achievements)	285–303
इकाई– 18. लघु उद्योग (Small Scale Industry)	304–319
इकाई– 19. भारतीय वित्तीय एवं मुद्रा बाजार और लोक वित्त संरचना (Indian Finance and Money Market and Structure of Public Finance)	320–345
खण्ड– 6. भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था (Globalization and Indian Economy)	**पृष्ठ संख्या**
इकाई– 20. भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि (Globalization and Indian Agriculture)	346–363
इकाई– 21. विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन (Foreign Trade and Balance of Payment)	364–386
इकाई– 22. उदारीकरण के दौर सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector during Liberalization)	387–405
इकाई– 23. विश्व व्यापार संगठन एवं भारत (World Trade Organization and India)	406–424

इकाई-1 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

इकाई की संरचना

1.2 प्रस्तावना
1.3 उद्देश्य
1.3 परिचय: भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना व उसकी प्रमुख मदें
1.3.1 भारत का भौगोलिक वातावरण
1.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं
1.4.1 परम्परागत विशेषताएं
1.4.2 नवीन विशेषताएं: एक विकासशील अर्थव्यवस्था के रूप में
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मकप्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह पहली इकाई है। भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की एक प्रमुख अर्थव्यवस्था है। इसका स्वरूप अत्यन्त व्यापक है तथा इसकी विविध विशेषताएं है। प्रस्तुत इकाई में भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित इन बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना, स्वरूप, विशेषताओं एवं महत्व को समझ सकेंगें तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का समग्र विश्लेषण कर सकेंगें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना को जान सकेंगें।
- विश्व की अर्थव्यवस्थाओं का वर्गीकरण एवं उनकी व्याख्या कर सकेंगें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताओं को जान सकेंगें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताओं को बता सकेंगें।

1.3 परिचय: भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना व उसकी प्रमुख मदें

भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार का सातवां तथा जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश है। इसका कुल क्षेत्रफल 32.87 लाख वर्ग किलोमीटर है जो विश्व की कुल भूमि का 2.4 प्रतिशत है। भारत की भू-सीमा 15200 किलोमीटर व तटीय सीमा 7517.6 किलोमीटर है। यह तीन ओर से समुद्री सीमाओं से तथा एक ओर से हिमालय की पर्वत-श्रेणियों से घिरा हुआ है, इस कारण भारत को उप-महाद्वीप कहा जाता है। वर्ष 2011 की जनगणना के आधार पर भारत की कुल जनसंख्या 121 करोड़ है, जो सम्पूर्ण विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत है। भारत में पुरुषों का प्रतिशत 51.54 प्रतिशत तथा महिलाओं का प्रतिशत 48.46 है। लिंगानुपात की दृष्टि से देखा जाय तो 1000 पुरुषों के सापेक्ष महिलाओं की संख्या 940 है। देश में साक्षरता 74.04 प्रतिशत है। वर्तमान में भारत में जनसंख्या का घनत्व 382 है जो 2001 में 325 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था

इस देश में अनेक प्रकार की भूमि, खनिज पदार्थ, जलवायु, वनस्पतियां, कृषि उत्पादन तथा पर्याप्त मात्रा में जल संसाधनों की उपलब्धता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना मुख्यतः पांच मदों में वर्गीकृत की जा सकती है, जिनका विवरण इस प्रकार है:

1.3.1 भौगोलिक वातावरण:

भारत उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है तथा इसकी आकृति चतुष्कोणीय है। यह विषुवत् रेखा के उत्तर में 8.4’ से 37.6’ उत्तरी अक्षांश और 68.7’ से 97.25 के पूर्वी देशान्तर के बीच फैला हुआ है। भारत की प्राकृतिक सीमाएं उत्तर में हिमालय पर्वत, दक्षिण-पश्चिम में अरब सागर और दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण में हिन्द महासागर है। भारत की सीमाएं उत्तर-पूर्व में चीन से, पूर्व में बांग्लादेश व म्यांमार से तथा पश्चिम में पाकिस्तान से मिलती हैं। जलवायु की दृष्टि से यद्यपि भारत की जलवायु सम-शीतोष्ण है तथा अनेक विषमताएं भी हैं, यथा- चेरापूंजी नामक स्थान पर विश्व की सर्वाधिक वर्षा (1145 सेण्टीमीटर से भी अधिक) होती है, तो पश्चिमी राजस्थान तथा कच्छ में न्यूनतम 50 सेण्टीमीटर से कम वर्षा होती है। जलवायु में भिन्नता के कारण भारत में अनेक प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं जिनकी उर्वरा शक्ति भी भिन्न-भिन्न है। साथ ही, यहां की जलवायु तथा मिट्टी में सभी प्रकार की फसलें पैदा करने की क्षमता है।

1.4 भारतीय अर्थव्यवस्था की विशेषताएं

भारत एक विकासोन्मुख राष्ट्र है अतः इसकी मूल विशेषताओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है: परम्परागत विशेषताएं तथा नवीन विशेषताएं।

1.4.1 भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताएं

ये वे विशेषताएं हैं जो भारत को एक अल्प-विकसित राष्ट्र के रूप में विरासत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय प्राप्त हुईं। प्रमुख परम्परागत विशेषताएं इस प्रकार हैं:

कृषि की प्रधानता-भारत एक कृषि प्रधान देश है यहां की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। वर्ष 1951 में भारत की कार्यकारी जनसंख्या का 69.5 प्रतिशत भाग कृषि में लगा हुआ था, जो वर्ष 2001 में घटकर 64 प्रतिशत रह गया। यह भाग अधिक अधिक होने के कारण भारत को अल्प-विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाता है। यद्यपि वर्तमान में सकल घरेलू उत्पाद में काफी वृद्धि हुई है, तथापि उसमें कृषि का प्रतिशत कम हुआ है। भारत के निर्यात व्यापार में कृषि का योगदान घटकर

13.3 प्रतिशत रह गया है। अभी भी अन्य क्षेत्रों की तुलना में कृषि पर अत्यधिक लोग कार्यरत हैं और भारत में कृषि रोजगार का मुख्य साधन है।

प्रति व्यक्ति निम्न आय-विश्व विकास रिपोर्ट, 2010 के अनुसार वर्ष 2008 में भारत की प्रति व्यक्ति आय केवल 1070 डालर है। यह अमेरिका की प्रतिव्यक्ति आय (47580 डालर) की तुलना में लगभग 44 वां भाग है। वर्तमान समय में यद्यपि भारत निरपेक्ष रूप से विश्व की 12 वीं बड़ी अर्थव्यवस्था होते हुए भी प्रति व्यक्ति आय के मामले में काफी पिछड़ा हुआ है। भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने में बाधक है। भारत में प्रति व्यक्ति आय कम होने से देश में निर्धनता का साम्राज्य है। आज भी, भारत की 25 प्रतिशत से अधिक आबादी गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था-भारत ग्रामों का देश है। आज भारत में 6.05 लाख गांव व लगभग 4000 छोटे व बड़े शहर हैं। 2001 की जनगणनानुसार भारत की कुल जनसंख्या का 74.3 प्रतिभाग भाग ग्रामों में निवास करता है अर्थात् भारत में 4 व्यक्तियों में से 3 गांव में निवास करते हैं। इस प्रकार ग्रामीण जनसंख्या का यह प्रतिशत विकसित देशों की तुलना में बहुत अधिक है, जो भारत को एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के रूप में स्थापित करती है। इसके विपरीत विकसित देशों में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत भारत की तुलना में काफी अधिक है।

औद्योगिक पिछड़ापन-अल्प विकसित देशों में उद्योगों की संख्या बहुत कम होती है। उद्योगों की संख्या कम होने बहुत थोड़े लोगों को रोजगार मिल पाता है और इस क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान भी कम होता है। उद्योगों के अभाव में आर्थिक विकास की आधारभूत पृष्ठभूमि तैयार किया जाना सम्भव नहीं होता। भारत में 12 प्रतिशत कार्यकारी जनसंख्या उद्योगों में लगी हुई है और सकल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र का योगदान मात्र 25 प्रतिशत है। भारत में शीघ्र लाभ देने वाले उद्योगों में ही विनियोग किया जाता है। इससे अर्थव्यवस्था में उद्यमियों को कार्य करने के लिए उचित एवं अनुकूल वातावरण नहीं मिल पाता। पूंजी का अभाव तथा निम्न जीवन स्तर आदि कारकों से औद्योगिक विकास बाधित होता है।

जनसंख्या का भारत- अल्प विकसित देशों में जनसंख्या वृद्धिदर 2 से 4 प्रतिशत वार्षिक है। इस समस्या से अधिकांश विकासशील एवं अर्द्धविकसित देश ग्रसित हैं। 2011 की जनगणनानुसार भारत में जनसंख्या 121 करोड़ है। दस वर्षों में भारत की जनसंख्या की वृद्धि दर 17.64 प्रतिशत रही। देश में, जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते दबाव के कारण यहां उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम विदोहन के बावजूद प्रति व्यक्ति आय पर्याप्त मात्रा में नहीं बढ़ सकी है।

पूंजी का अभाव-भारतीय अर्थव्यवस्था के अल्पविकास का एक अन्य मूल कारण पूंजी का अभाव है जो दो रूपों में प्रकट होती है- प्रथम, प्रति व्यक्ति उपलब्ध पूंजी की निम्न मात्रा; और द्वितीय, पूंजी-निर्माण की प्रचलित निम्न दर। अधिकतर अल्प विकसित देशों में व्यापक गरीबी के कारण पूंजी निर्माण की दर बहुत कम है । भारत में प्रति व्यक्ति आय अत्यधिक कम होने के कारण यहां पूंजी-निर्माण एवं विनियोग की दर अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है । वास्तव में पूंजी निर्माण आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण तत्व है । जापान में पूंजी निर्माण की दर 33 प्रतिशत है, जबकि भारत में यह 24.0 प्रतिशत । भारत में पूंजी की मांग अधिक है, जबकि उपलब्धता कम। ऐसी स्थिति में प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन, भूमि की उत्पादकता बढ़ाने, श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने हेतु प्रशिक्षण व्यवस्था आदि कार्यों के लिए पूंजी उपलब्ध नहीं हो पाती। अतः आर्थिक विकास एवं प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है । बैंजामिन हिंगिस के अनुसार ''पूंजी का संचय आर्थिक विकास के लिए बहुत आवश्यक है । अर्थव्यवस्था चाहे अमेरिका की तरह पूंजीवादी हो अथवा चीन की तरह साम्यवादी; आर्थिक विकास बिना पूंजी-संचय के सम्भव हो ही नहीं सकती ।''

बेरोजगारी-भारत जनसंख्या-बहुल अल्प विकसित देश है । मानव श्रम की उपलब्धता उत्पादक कार्यों की तुलना में अधिक है । ऐसी स्थिति में समस्त जनसंख्या को लाभकारी रोजगार उपलब्ध करा पाना अत्यन्त कठिन कार्य है । वर्तमान समय में, भारत में, अनुमानतः 5 करोड़ व्यक्ति बेरोजगार हैं । प्रतिवर्ष 62 लाख बेरोजगार व्यक्तियों की वृद्धि हो जाती है । भारत में जो व्यक्ति रोजगार से जुड़े हैं, उनकी स्थिति भी अच्छी नहीं है । इनमें से कुछ ऐसे लोग भी है जिन्हें नियमित रोजगार नहीं प्राप्त होता, अर्थात् जो कार्य कर रहे हैं, उनके लिए पूरे समय के लिए काम नहीं है । ऐसी स्थिति को अर्द्ध रोजगार कहा जाता है । भारत में कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता है । यहां कृषि क्षेत्र में भारी प्रच्छन्न बेरोजगारी होती है । इसका कारण यह है कि जब आर्थिक विकास की गति धीमी होती है और जनसंख्या तेजी से बढ़ती है तो रोजगार के अवसर उतने नहीं बढ़ते, जितनी कि मांग होती है । इस स्थिति में कृषि क्षेत्र में जनसंख्या का दबाव बढ़ जाता है और छोटी-छोटी जोतों पर जरूरत से अधिक लोग काम करते हैं । इससे कुल उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती। अर्थशास्त्री इस स्थिति को प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी कहते हैं ।

प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता-भारत की प्रकृति बहुत उदार है । इसने भारत को प्राकृतिक साधन प्रचुर मात्रा में प्रदान किये हैं । यहां सदा बहने वाली नदियां हैं । सोना, चांदी, कोयला, लोहा, उर्वरक तथा मैगनीज आदि खनिज पदार्थों का अथाह भण्डार है, वन सम्पत्ति विशाल है, शक्ति के साधनों का बाहुल्य है । यहां की मिट्टी उपजाऊ है तथा जलवायु बहुत सुहावनी है, परन्तु भारत का दुर्भाग्य है कि इन प्राकृतिक साधनों का समुचित विदोहन नहीं हो सका है । इससे सम्पन्नता होते हुए भी

दरिद्रता दूर किया जाना सम्भव नहीं हो सका है। इससे भी भारत को अल्प विकसित राष्ट्र की श्रेणी में रखा जा सकता है।

निर्वल और आर्थिक संगठन-भारतीय अर्थव्यवस्था का आर्थिक संगठन निर्बल है। यहां बचत की सुविधाएं कम हैं, बैंकिंग सुविधाओं का विकास कम हुआ है, ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी साहूकारों तथा महाजनों का बोलवाला है, जनता को विनियोग क्षेत्रों की पूरी जानकारी नहीं है, औद्योगिक वित्त का अभाव है। इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए जिन संस्थाओं की आवश्यकता है, उनका यहां अभाव है।

आर्थिक विषमता-अन्य अल्प विकसित देशों के समान ही भारत में भी आय एवं धन (सम्पत्ति) के वितरण में असमानता पायी जाती है। विकसित देशों में जहां कराधान की प्रगामी प्रणाली, सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था, शिक्षा व प्रशिक्षण और रोजगार में समान अवसरों के कारण आर्थिक असमानताएं कम हुई हैं, वहां अल्प विकसित देशों में इस दिशा में उतना काम नहीं हुआ है। कृषि क्षेत्र में थोड़े से लोगों के पास भूमि के केन्द्रीकरण और उद्योगों तथा व्यापार पर कुछ ही लोगों के नियन्त्रण और शेष लोगों को अपने श्रम पर निर्भरता के कारण अल्प-विकसित देशों में आय की असमानताएं अधिक हैं। भारत में 50 प्रतिशत व्यक्तियों को कुल आय का केवल 21.2 प्रतिशत भाग ही प्राप्त होता है। भारत के सभी राज्यों में प्रति व्यक्ति आय समान नहीं है। आर्थिक सर्वेक्षण 2010 के अनुसार प्रति व्यक्ति आय गोवा की सबसे अधिक है, जबकि सबसे कम बिहार की रही है। भारत में आर्थिक विषमता निरन्तर बढ़ती जा रही है। हालांकि इसे दूर करने हेतु आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के लिए विभिन्न योजनाएं एवं सुविधाएं चलाई जा रही हैं।

आर्थिक निर्भरता-एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अल्प-विकसित देश बहुत समय तक औपनिवेशिक शोषण के शिकार रहे हैं। इनका औपनिवेशिक शोषण करने वाले पूंजीवादी देशों ने इन पर विदेशी व्यापार का ऐसा ढांचा थोपा जिससे ये देश प्राथमिक कृषि वस्तुओं के उत्पादक व निर्यातक बनकर रह गये और औद्योगिक वस्तुओं की मांग को पूराकरने के लिए इन पूंजीवादी देशों पर निर्भर हो गये। स्वतन्त्रता के बाद भी काफी समय तक आर्थिक निर्भरता की यह स्थिति चलती रही। यही कारण है कि भारत चाय और पटसन के निर्यात पर निर्भर बना रहा। पिछले वर्षों से आर्थिक आयोजन प्रक्रिया के कारण अनेक अल्प-विकसित देशों के उत्पादन और व्यापार ढांचे में विविधीकरण हुआ है तथा औद्योगिक वस्तुओं के लिए विकसित देशों पर आर्थिक निर्भरता कम हुई है।

रूढ़िवादिता-अल्प विकसित देशों में सामाजिक ढांचे में रूढ़िवादिता अभी भी बनी हुई है। सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों में भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। इन रूढ़ियों का देश की

अर्थव्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। भारत में लोग बाल-विवाह, मृतक भोज, विवाह के समय दावतें तथा आभूषण निर्माण जैसे अनुत्पादक कार्यों के लिए कर्ज लेकर भी अपव्यय करते हैं। कुछ देशों में कृषि वित्त प्रदान करने के लिए विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना नहीं की गयी है और महाजनों की जकड़ पहले की तरह बनी हुई है। इसका परिणाम यह है कि आर्थिक ढांचा पहले जैसा ही बना हुआ है और यह जड़ता विकास में बाधा बन गयी है।

निर्धनता-भारत में अधिकांश जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रही है। राष्ट्र के अधिकांश भाग गरीबी से ग्रसित हैं। लकड़ावाल फॉर्मूला के अन्तर्गत भारत में सभी संघीय प्रदेशों व राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न निर्धरता रेखाएं निर्धारित की गयी हैं। 1999-2000 में गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वालों की संख्या 26.10 प्रतिशत थी जबकि 2004-05 में य 21.80 प्रतिशत हो गयी। भारत में सर्वाधिक गरीब जनसंख्या वाला राज्य उड़ीसा है, जहां 46.4 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवनवयापन कर रही है। इसके विपरीत जम्मू-कश्मीर में केवल 5.4 प्रतिशत लोग गरीबी-रेखा के नीचे जीवनयापन करते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि गरीबी का अनुपात कम हुआ है, किन्तु कुल गरीबों की संख्या में कमी होना अभी शेष है।

परिवहन व संचार साधनों का अभाव-भारत परिवहन व संचार-साधनों की दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ देश है। आज भी कच्ची सड़कों की संख्या बहुत अधिक है। ग्रामों की एक बड़ी संख्या अभी भी सड़कों से नहीं जुड़ सकी है। इसी प्रकार देश के संचार-साधनों का पर्याप्त विकास हुआ है, किन्तु फिर भी विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है।

कुशल श्रम व तकनीकी ज्ञान का अभाव-भारत में गत वर्षों में वैज्ञानिक एवं प्राविधिक क्षेत्रों में प्रगति होने पर भी तकनीकी ज्ञान का अभाव है और श्रमिकों की कुशलता का स्तर बहुत नीचा है। यहां पर प्रति हैक्टेयर उपज व प्रति श्रमिक उपज दोनों का स्तर अन्य देशों की तुलना में बहुत नीचा है। अतः कृषि व उद्योग दोनों क्षेत्र पिछड़े हुए हैं।

1.4.2 भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताएं: एक विकासशील अर्थव्यवस्था

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास हेतु नियोजन को अपनाया गया है। इसके अन्तर्गत 1951 से पंचवर्षीय योजनाएं लागू की गयी हैं। इन योजनाओं के क्रियान्वयन से ही अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रों में विकास की गति में तीव्रता आई है। भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए आर्थिक परिवर्तनों के आधार पर इसे एक विकासशील अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है। स्वतन्त्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था को जो विशेषताएं विरासत में प्राप्त हुई थीं उनमें विकास की प्रक्रिया व प्रयासों के कारण कुछ नवीन विशेषताएं भी जुड़ गयीं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीन विशेषताएं वे हैं जो भारत ने स्वतन्त्रता के पश्चात् अपने प्रयासों से अर्जित की हैं। इस आधार पर भारत को विकासशील राष्ट्र की संज्ञा प्रदान की जाती है। प्रमुख नवीन विशेषताएं इस प्रकार हैं:

नियोजित अर्थव्यवस्था- 1 अप्रैल, 1951 से भारतीय अर्थव्यवस्था नियोजित अर्थव्यवस्था के रूप में कार्यशील है। 1951 से अब तक 10 पंचवर्षीय योजनाएं एवं 6 वार्षिक योजनाएं पूरी हो चुकी हैं तथा 11वीं पंचवर्षीय (2007 से 2012) के अनुसार आर्थिक विकास की प्रक्रिया चल रही है। भारत में आर्थिक आयोजन के अन्तर्गत सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए लक्ष्य निर्धारित किये जाते हैं और अर्थव्यवस्था के विभिन्न उत्पादक क्षेत्रों के लिए साधनों को आवण्टित किया जाता है। 1990 के दशक में उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने से आर्थिक आयोजन का एकमात्र उद्देश्य आर्थिक संवृद्धि है। जिस देश की अर्थव्यवस्था में लगभग 200 वर्ष तक औपनिवेशिक शोषण के कारण कोई खास विकास न हुआ हो, और वहां की अर्थव्यवस्था संसार में विकास की दृष्टि से बहुत पीछे रह गयी हो, वहां आर्थिक संवृद्धि पर जोर देना बहुत आवश्यक है, जो कि आर्थिक नियोजन से ही सम्भव है।

प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि-देश को आजादी प्राप्त होने के बाद से भारतीय जन सामान्य की प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर वृद्धि हो रही है। 1950-51 से 2004-05 तक 54 वर्षों की अवधि में प्रति व्यक्ति आय में 2.25 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हुई है। 1993-94 की कीमतों के आधार पर 2004-05 में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 12416 रुपये थी। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आय में निरन्तर वृद्धि होने से भारत विकासशील देशों की श्रेणी में सम्मिलित होने का अधिकारी है। देश के सभी 28 राज्यों व 7 केन्द्रशासित राज्यों में सर्वाधिक प्रति व्यक्ति आय चण्डीगढ़ में है।

सार्वजनिक क्षेत्र-भारत में योजनाओं के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र में उद्योगों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई है। वर्ष 1951 में सार्वजनिक क्षेत्र में मात्र 5 इकाइयां थीं और इनमें केवल 29 करोड़ रुपये की पूंजी लगी थी। इसकी तुलना में 2004-05 में सार्वजनिक क्षेत्र में 227 औद्योगिक इकाइयों में 357849 करोड़ रुपये की पूंजी का निवेश था। इसके अतिरिक्त सरकार के विभिन्न विभागीय उपक्रमों में भी पूंजी का भारी निवेश है। राज्य सरकारों के उद्यमों में भी काफी पूंजी का निवेश हुआ है। बैंक तथा दूसरे वित्तीय संस्थानों में भारी निवेश है। आर्थिक आयोजन की अवधि में कुल निवेश का लगभग 44 प्रतिशत निवेश सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाता है और शेष निजी क्षेत्र में। आज सार्वजनिक क्षेत्र में इस्पात, सीमेण्ट, रसायन, इंजीनियरिंग, कोयला व अन्य उद्योग स्थापित हैं। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित वित्तीय संस्थाओं ने निवेश के लिए बचतों या साधनों को एकत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संक्षेप में, आज भारत के आर्थिक ढांचे में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है।

बचत एवं पूंजी निर्माण की दरों में वृद्धि-भारत में गत दशकों में सकल घरेलू बचत दर में पर्याप्त वृद्धि हुई है । यह आर्थिक विकास की दिशा में महत्वपूर्ण उपलब्धि है । देश में घरेलू बचतों का उपयोग आर्थिक विकास-कार्यों में भली-भांति हो रहा है । वर्ष 1950-51 में सकल घरेलू बचत-दर 10.4 प्रतिशत थी, जो वर्ष 1997-98 में बढ़कर 26.3 प्रतिशत हो गयी थी। वर्ष 2008-09 में सकल घरेलू बचत-दर (जीडीपी) का प्रतिशत 32.5 आकलित किया गया। इसी प्रकार पूंजीनिर्माण की दर जो वर्ष 1950-51 में 10.2 प्रतिशत थी, वर्ष 2008-09 में बढ़कर 35.6 प्रतिशत हो गयी ।

समाजवादी व्यवस्था की ओर - आर्थिक विषमता को कम करने का बराबर प्रयत्न किया जा रहा है । इसी को ध्यान में रखकर जमींदारी प्रथा की समाप्ति, कृषकों को उनकी भूमि के अधिकार दिलाना, भूतपूर्व देशी रियासतों के राजाओं को मिलने वाला प्रिविपर्स समाप्त करना, सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक उपक्रम स्थापित करना, बैंकों का राष्ट्रीयकरण करना, कृषि जोतों की उच्चतम व निम्नतम सीमा निर्धारित करना, खाद्यान्नों का राजकीय व्यापार करना, सहकारी आन्दोलन का विकास करना, कृषकों को ऋणमुक्त घोषित करना आदि। इस प्रकार सरकार नियोजन के माध्यम से समाजवादी व्यवस्था की ओर अग्रसर है ।

बैंकिंग सेवाओं का विकास-आजादी के बाद से देश के बैंकिंग और वित्तीय ढांचे में अनेक प्रगतिशील परिवर्तन हुए हैं । इस अवधि में मुद्रा और पूंजी बाजार के संगठन में सुधार हुआ है, बैंकिंग सेवाओं का विस्तार हुआ है और आधुनिक बैंक छोटे कस्बों और गांवों तक पहुंच गये हैं । सबसे पहले 1949 में रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया तथा इसका नाम स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया कर दिया गया। इसके साथ अन्य 8 बैंकों (जो वर्तमान में 7 हैं) को इसके सहायक बैंक के रूप में बदल दिया गया, जिन्हें स्टेट बैंक समूह के बैंक कहा जाता है । देश के ऐसे 14 बड़े व्यावसायिक बैंकों का 19 जुलाई, 1969 को राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। इससे इनकी साख और शाखा विस्तार नीतियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। बैंकों ने कृषि, लघु उद्योग और प्राथमिकता वाले क्षे**त्रांओ** को बड़ी मात्रा में साख देना आरम्भ किया। 1980 में 6 और बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया। 1975 से भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक खोले गये। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक मुख्य रूप से छोटे और सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों, छोटे कारीगरों और समाज के कमजोर वर्गों की साख सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करते हैं । आज लगभग 60 प्रतिशत बैंक शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में हैं । औद्योगिक वित्त प्रदान करने के लिए, औद्योगिक वित्त निगम, औद्योगिक विकास बैंक आदि संस्थाएं स्थापित की गयी हैं ।

आधारभूत उद्योगों का विकास- आजादी के समय भारत का औद्योगिक ढांचा सामान्य रूप से अल्प-विकसित तो था ही, उसका पिछड़ापन पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन के क्षेत्र में बहुत था। आजादी के बाद से औद्योगिक विकास का स्वरूप राज्य की नीतियों द्वारा निर्धारित होता रहा है । भारत में आर्थिक आयोजन प्रक्रिया आरम्भ होने के बाद पूंजीगत वस्तुएं उत्पादित करने वाले उद्योगों

पर काफी जोर दिया गया था, क्योंकि आयोजकों का विचार था कि बिना इसके अर्थव्यवस्था का समग्र रूप से विकास आसान नहीं होगा। अतः अनेक आधारभूत उद्योग स्थापित किये गये हैं जो पूंजीगत उपकरण तथा कच्चे माल का उत्पादन करते हैं। इससे देश के औद्योगिक ढांचे में मजबूती आई है । आयोजन काल में जो आधारभूत उद्योग व्यापक स्तर पर विकसित हुए हैं, उनमें उल्लेखनीय हैं- लोहा और इस्पात, भारी इंजीनियरिंग, रसायन, उर्वरक, मशीनी औजार, रेल-इंजन, बिजली के भारी उपकरण, एल्यूमिनियम तथा पैट्रोलियम आदि।

कृषि को प्रोत्साहन- योजनाकाल से ही भारत में कृषि को विशेष प्रोत्साहन दिया गया था। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र के लिए उत्तरोत्तर व्यय में वृद्धि का प्रावधान किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप कृषि के क्षेत्र में खाद्यान्न उत्पादन 5.13 करोड़ टन था, जबकि 2009-10 में देश में खाद्यान्न उत्पादन में 218.20 मिलियन टन का अनुमान किया गया। इसके अतिरिक्त भारत में अब वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन को भी पर्याप्त महत्व प्रदान किया जा रहा है। कृषि को विकास की दिशा प्रदान करने के लिए हरितक्रान्ति एवं श्वेतक्रान्ति को बहुत समर्थन मिला है, जिसके अन्तर्गत कृषकों ने आधुनिक यन्त्रों का प्रयोग, उन्नत बीज एवं खाद का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों एवं विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत निर्धन एवं पिछड़ा हुआ देश नहीं है, वरन् नियोजित अर्थव्यवस्था के अपनाए जाने के फलस्वरूप उन्नति की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहा है। आर्थिक नियोजन के 6 दशकों में भारत ने कृषि, व्यापार, उद्योग आदि क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है । शिक्षा, परिवहन संचार के क्षेत्र में वृद्धि एवं विस्तार ने देश को विकासशील देशों की पंक्ति में खड़ा कर दिया है।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से संसार का सातवां तथा जनसंख्या की दृष्टि से चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश है । भारत अच्छे भौगोलिक वातावरण, प्राकृतिक संसाधनों, यथा- भूमि तथा मिट्टियां; वन संसाधन, जल संसाधन, खनिज संसाधन, शक्ति के संसाधनों, मानव संसाधन, कृषि व सिंचाई, उद्योग एवं परिवहन आदि के लिए तथा उसकी बेहतर उत्पादन क्षमता के कारण एक धनी देश माना जाता है, किन्तु भारत की कुछ पारम्परिक विशेषताएं ऐसी हैं जिनके कारण भारत धनी होते हुए भी निर्धन कहा जाता है। अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी, गरीबी, कृषि पर निर्भरता, प्रति व्यक्ति निम्न आय, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, औद्योगिक पिछड़ापन, पूंजी का अभाव, तथा रूढ़िवादिता ऐसी प्रमुख विशेषताएं हैं जो भारत को धनी होते हुए भी निर्धन बनाए हुए हैं।

भारत एक विकासशील देश है, क्योंकि यह एक प्रगतिशील राष्ट्र है जो तेजी से विकास के पथ पर अग्रसर है। आर्थिक नियोजन, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, बचत एवं पूंजी निर्माण में तेजी, बैंकिंग सेवाओं का विस्तार आदि ऐसी विशेषताएं हैं जो भारत को एक विकासशील राष्ट्र की श्रेणी में खड़ा करती हैं। जिस तेजी से भारत विकास के पथ पर बढ़ रहा है, यदि वही गति निरन्तर जारी रहे तो वह दिन दूर नहीं जबकि भारत एक विकसित राष्ट्र के रूप में जाना जाएगा।

अभ्यास प्रश्न:

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

अ. भारत की कुल भूमि का क्षेत्रफल .... लाख किलोमीटर है।

ब. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या .... करोड़ है।

स. भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या पर घनत्व .... व्यक्ति है।

द. भारत में पुरुष एवं महिलाओं का अनुपात- 1000 पुरुष:............... महिलाएं है।

2. बहुविकल्पीय प्रश्न:

अ. शक्ति के संसाधन के रूप में निम्न की गणना नहीं की जाती है:

1. परमाणु 2. कोयला
3. लोहा एवं इस्पात 4. पैट्रोलियम

ब. भारत में सिंचाई का साधन नहीं है:

1. तालाब 2. नल
3. कुंए 4. नहरें

स. भारत, विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है:

1. चौथी 2. बारहवीं
3. आठवीं 4. तीसरी

द. भारत की कार्यकारी जनसंख्या उद्योगों में लगी है:

1. 10 प्रतिशत 2. 12 प्रतिशत
3. 8 प्रतिशत 4. 6 प्रतिशत

य. भारत में नियोजन प्रारम्भ हुआ:

1. 1951 से 2. 1947 से
3. 1950 से 4. 1948 से

3. लघु उत्तरीय प्रश्न:

अ. भारत के प्राकृतिक संसाधन विशाल हैं, कैसे ?

ब. विकासशील अर्थव्यवस्था की विशेषताएं बताओ।

स. भारत के निवासी निर्धन हैं, कैसे ?

द. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना बताइये।

1.6 शब्दावली

वर्ग किलोमीटर- 1 किलोमीटर लम्बा तथा 1 किलोमीटर चौड़ाई वाला वर्गाकार क्षेत्र।

जनसंख्या का घनत्व- इसका तात्पर्य है कि 1 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों की संख्या।

सम-शीतोष्ण- शीतकाल तथा ग्रीष्मकाल का समान रूप में पाया जाना।

अर्द्धविकसित एवं विकासशील- ऐसे देश जहां नागरिकों को भोजन, कपड़े तथा आवास सीमित मात्रा में ही मिल पाते हों। जहां बेरोजगारी तथा अशिक्षा अधिक पायी जाती है तथा जीवन-स्तर नीचा होता है। ऐसे देशों को अर्द्ध विकसित या विकासशील की संज्ञा दी जाती है।

घरेलू उत्पाद- देश के अन्दर होने वाला समस्त अन्तिम वस्तुओं का कुल उत्पादन।

आर्थिक विषमता- आर्थिक रूप से अन्तर होना, गरीबी तथा अमीरी के बीच खाई होना।

नियोजित अर्थव्यवस्था-जिस देश में योजनाबद्ध तरीके से कार्य किया जाय।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति:

अ. 32.87 ब. 121 स. 382 द. 940

2. बहुविकल्पीय प्रश्न:

अ. लोहा एवं इस्पात ब. नल स. बारहवीं

द. 12 प्रतिशत य. 1951 से

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.

3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
4. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

1.9 उपयोगी ग्रन्थ

- Dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy : Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
- Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
- Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992); Economics : Private and Public Choice, 6th Ed.

1.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था की परम्परागत विशेषताओं को निरूपित कीजिए।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था की कौन-कौन सी नवीन विशेषताएं हैं? उनका संक्षिप्त परिचय भी दीजिए।
3. भारत की सम्पन्नता में विपन्नता का मिश्रण है। इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से आप क्या समझते हैं? उसकी प्रमुख मदों का संक्षेप में परिचय दीजिए।

इकाई-2 राष्ट्रीय आय और भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 राष्ट्रीय आय की अवधारणा
2.4 राष्ट्रीय आय के अनुमान, आकलन की विधि तथा सीमाएं
2.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां
2.6 प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय एवं भारतीय अर्थव्यवस्था
2.7 राष्ट्रीय उत्पाद का उद्योगवार सृजन
2.8 सारांश
2.9 शब्दावली
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से क्या तात्पर्य है? इसकी विभिन्न विशेषताएं क्या हैं ?

राष्ट्रीय आय किसी भी देश के विकास की प्रमुख माप होती है । राष्ट्रीय आय पर विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने भिन्न मत प्रकट किये हैं । प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रीय आय, इसकी विभिन्न अवधारणाओं, इसकी गणना एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाओं, इसकी गणना विधियों आदि के साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था से इसके सम्बन्ध को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- राष्ट्रीय आय का आशय एवं महत्व को जान सकेंगें।
- भारत की राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति आय का वर्णन कर सकेंगें।
- भारत की राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियों का वर्णन कर सकेंगें।
- भारत की राष्ट्रीय आय की धीमी प्रगति के कारणों को जान सकेंगें।
- आर्थिक सुधारों के दौंर में राष्ट्रीय आय के सम्बन्ध में सरकारी नीति को बता सकेंगें।

2.3 राष्ट्रीय आय की अवधारणा

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय उसकी आर्थिक स्थिति का सबसे महत्वपूर्ण सूचक है। एक देश के राष्ट्रीय विकास को राष्ट्रीय आय के माध्यम से ही मापा जाता है। राष्ट्रीय आय के लिए 'राष्ट्रीय लाभांश' एवं 'राष्ट्रीय उत्पाद' शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। सरल शब्दों में किसी देश में एक

वर्ष में जिन वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन किया जाता है; उनका कुल मूल्य ही उस देश की राष्ट्रीय आय है।

भारत में राष्ट्रीय आय का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जाता है: प्राचीन दृष्टिकोण, तथा आधुनिक दृष्टिकोण। राष्ट्रीय आय के प्राचीन एवं आधुनिक- दोनों दृष्टिकोंणों को क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

राष्ट्रीय आय: प्राचीन दृष्टिकोण:

प्राचीन दृष्टिकोण में प्रो० मार्शल, प्रो० पीगू तथा प्रो० फिशर के विचारों को सम्मिलित किया जाता है। जहां प्रो० मार्शल एवं प्रो० पीगू ने राष्ट्रीय आय को उत्पादन के आधार पर परिभाषित किया है, वहीं प्रो० फिशर ने उपभोग के आधार पर। इनकी परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं:

प्रो० मार्शल के अनुसार- ''किसी देश के श्रम और पूंजी अपने प्राकृतिक साधनों पर कार्य करके प्रतिवर्ष भौतिक एवं अभौतिक तथा समस्त प्रकार की सेवाओं का एक निश्चित विशुद्ध योग उत्पन्न करते हैं। यही उस देश की वास्तविक विशुद्ध वार्षिक आय या राष्ट्रीय लाभांश होता है।''

पीगू के विचार से, ''राष्ट्रीय लाभांश किसी देश या समाज की भौतिक आय का वह भाग है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित है, जिसे मुद्रा के रूप में मापा जा सकता है।''

मार्शल तथा पीगू की परिभाषाएं उत्पादन पर आधारित हैं।

प्रो० फिशर का मानना है, ''राष्ट्रीय लाभांश या आय केवल उन्हीं सेवाओं द्वारा निरूपित होती है, जो अन्तिम उपभोक्ता को अपने भौतिक वातावरण से अथवा अपने मानवीय वातावरण से प्राप्त हुई है। इस प्रकार एक पियानो अथवा ओवरकोट जो कि मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है, इस वर्ष की आय का भाग नहीं नहीं है, वरन् वह पूंजी में वृद्धि है। केवल वही सेवाएं जिनके प्रयोग से इस वर्ष मुझे सेवाएं मिलेंगी, आय कहलाएगी।''

इस प्रकार मार्शल तथा पीगू ने राष्ट्रीय लाभांशा में केवल उन्हीं वस्तुओं तथा सेवाओं को सम्मिलित किया है जिनका प्रतिवर्ष उत्पादन किया जाता है, किन्तु फिशर ने केवल उन वस्तुओं व सेवाओं को राष्ट्रीय लाभांश में स्थान दिया है जिनका प्रतिवर्ष उपभोग किया जाता है। उपर्युक्त परिभाषाएं सैद्धान्तिक रूप से गलत नहीं कही जा सकतीं, किन्तु व्यावहारिक रूप से उक्त परिभाषाओं में संकुचित अर्थ का आभास होता है। अतः इन परिभाषाओं को पूर्ण नहीं माना जा सकता।

राष्ट्रीय आयः आधुनिक दृष्टिकोणः

आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा राष्ट्रीय आय की अनेक परिभाषाएं प्रस्तुत की गयी है जिनमें से मुख्यतः प्रो॰ साइमन कुजनेट्स, प्रो॰ कोलिन क्लार्क, तथा भारतीय राष्ट्रीय आय समिति की परिभाषाओं को महत्वपूर्ण माना जाता है। इनकी परिभाषाएं इस प्रकार हैं:

प्रसिद्ध विकासवादी अर्थशास्त्री एवं नोबल पुरस्कार विजेता **प्रो॰ साइमन कुजनेट्स** के अनुसार, ''राष्ट्रीय आय वस्तुओं एवं सेवाओं की उत्पादन प्रणाली के माध्यम से उपभोक्ताओं के हाथ में पहुंचती है।''

प्रो॰ कोलिन क्लार्क के शब्दों में, ''किसी समय विशेष में राष्ट्रीय आय उन वस्तुओं एवं सेवाओं के मौद्रिक मूल्य द्वारा व्यक्त की जाती है जो समय विशेष में उपभोग के लिए उपलब्ध होती है। इसमें शुद्ध पूंजी-वृद्धि का जोड़ना व शुद्ध कमी को घटाना आवश्यक होता है।''

भारतीय राष्ट्रीय आय समिति के अनुसार, ''राष्ट्रीय आय के अनुमान के लिए किसी अवधि-विशेष में उत्पन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा को दोहरी गणना किये बिना मापा जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं में मुख्यतः तीन बिन्दुओं को समाहित किया गया है- 1. राष्ट्रीय आय से आशय किसी देश की विशुद्ध आय से है। 2. राष्ट्रीय आय की माप किसी निश्चित अवधि अर्थात् एक वर्ष के लिए की जाती है। 3. राष्ट्रीय आय के अन्तर्गत वे सभी प्रकार की वस्तुएं एवं सेवाएं सम्मिलित की जाती हैं जिनका विनिमय मूल्य होता है, किन्तु यह अति आवश्यक है कि प्रत्येक वस्तु एवं सेवा के मूल्य की गणना केवल एक ही बार की जाए।

अतः सरलतम रूप में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय आय एक देश के निवासियों द्वारा अर्जित साधन आय को बताती है। यह घरेलू साधन आय एवं विदेशों से अर्जित शुद्ध साधन आय का योग होती है।

राष्ट्रीय आय = घरेलू साधन आय + विदेशों से अर्जित शुद्ध साधन आय

2.4 राष्ट्रीय आय के अनुमान, आकलन की विधि तथा सीमाएं

राष्ट्रीय आय के अनुमान-स्वतन्त्रता से पहले भारत की राष्ट्रीय आय का अनुमान लगाने के लिए सरकार ने कोई विशेष प्रयास नहीं किया। परन्तु राष्ट्रीय आय समिति (1948-49) द्वारा प्रकाशित रिपोर्टों के बाद से राष्ट्रीय आय के आकलन का कार्य केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन को सौंप दिया गया है। यह संगठन अब प्रत्येक वर्ष राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी जिसे श्वेत पत्र भी कहा जाता है,

प्रकाशित करता है। इस श्वेत पत्र में राष्ट्रीय आय के विभिन्न पहलुओं के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत की जाती है।

राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी अथवा श्वेत-पत्र के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है, जैसे- 1. प्राथमिक क्षेत्र (कृषि, वानिकी, मछली पालन, व खनन); 2. द्वितीयक क्षेत्र (विनिर्माण, निर्माण, बिजली, गैस और जल आपूर्ति); 3. परिवहन, संचार और व्यापार (परिवहन, भण्डारण और संचार, रेलवे, तथा अन्य परिवहन); 4. वित्त और वास्तविक सम्पदा (बैंकिंग तथा बीमा, वास्तविक सम्पदा, भवनों का स्वामित्व तथा व्यावसायिक सेवाएं); 5. सामुदायिक व निजी सेवाएं (सार्वजनिक प्रशासन और सुरक्षा तथा अन्य सेवाएं); 6. विदेशी क्षेत्र। इनमें से अन्तिम विदेशी क्षेत्र को छोड़कर सभी क्षेत्रों में उत्पादित कुल उत्पादन को जोड़ने से साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) प्राप्त होता है। इसमें अन्य देशों से प्राप्त निवल साधन आय को जोड़ने से साधन लागत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है।

राष्ट्रीय आय-आकलन की विधि-भारत में राष्ट्रीय आय का अनुमान एक विधि से लगा पाना सम्भव नहीं है। कृषि, पशुधन, वानिकी, मछली पालन तथा खनन के लिए आय का अनुमान उत्पाद विधि से लगाया जाता है। इस विधि में पहले उत्पादन के कुल मूल्य तथा अन्य सहायक गतिविधियों के कुल मूल्य का अनुमान लगाया जाता है और फिर उसमें से आगतों के मूल्य (जिसमें कच्चा माल और सेवाओं का मूल्य शामिल है) तथा उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग होने वाली स्थिर परिसम्पत्ति के पूंजी उपभोग के मूल्य को घटा दिया जाता है। क्योंकि सिंचाई से होने वाली आय का अनुमान इस विधि से नहीं लगाया जा सकता, इसलिए सिंचाई सेवाओं से जनित कुल साधन आय का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार प्राथमिक क्षेत्र में जनित राष्ट्रीय आय (जो कि सकल राष्ट्रीय आय का लगभग 22 प्रतिशत है) का अनुमान उत्पाद विधि से लगाया जाता है। जहां तक द्वितीयक क्षेत्र का सम्बन्ध है, सकल घरेलू उत्पाद का अनुमान उत्पाद विधि द्वारा केवल विनिर्माण उद्योगों के लिए लगाया जाता है। निर्माण गतिविधियों में उत्पाद के मूल्य का अनुमान पक्के निर्माण और कच्चे निर्माण- दोनों के लिए अलग-अलग लगाया जाता है। जहां तक कच्चे निर्माण का सम्बन्ध है इसमें वर्धित मूल्य का अनुमान व्यय विधि द्वारा लगाया जाता है और इस उद्देश्य के लिए सेंपिल सर्वेक्षणों तथा बजट दस्तावेजों का सहारा लिया जाता है। पक्के निर्माण के लिए 'वस्तु प्रवाह विधि' का प्रयोग किया जाता है। अन्य क्षेत्रों में वर्धित मूल्य का अनुमान लगाने के लिए 'आय वितरण विधि' का प्रयोग किया जाता है। इस उद्देश्य के लिए कर्मचारियों को मजदूरी व वेतन इत्यादि के रूप में दी गयी आय तथा प्रचालन अधिशेष (ऑपरेटिंग सरप्लस) के रूप में प्रदान की गई समग्र साधन आय का अनुमान लगाया जाता है (प्रचालन अधिशेष में ब्याज, किराया, लाभ या लाभांश शामिल रहते हैं)।

हालांकि राष्ट्रीय आय के अनुमान में प्रयोग होने वाले आंकड़ों में समय के साथ सुधार हुआ है, फिर भी, इसे संतोषजनक नहीं माना जा सकता। कृषि उत्पादन के आंकड़े प्राप्त करने के लिए मुख्य फसलों के उत्पादन व बोए गये क्षेत्र के आंकड़ों का प्रयोग किया जाता है और यह आंकड़े राज्य सरकार एजेंसियों के 'फसल अनुमान सर्वेक्षणों' पर आधारित होते हैं। कृषि उत्पादनों का मूल्य ज्ञात करने के लिए फसलवार औसत थोक कीमतों को लिया जाता है। पशुधन से सम्बन्धित आंकड़ों की जानकारी पांच वर्षों के अन्तराल के बाद प्रकाशित होने वाले इंडियन लाइवस्टॉक सेंससेज में उपलब्ध होती है। वनों के उत्पादन के लिए आंकड़ों का मुख्य स्रोत फॉरेस्ट्री इन इण्डिया है जो भारत सरकार का कृषि मंत्रालय हर वर्ष प्रकाशित करता है। खनिज उत्पादन के आंकड़े इण्डियन ब्यूरो ऑफ माइंस के प्रकाशनों से प्राप्त किये जाते हैं। इन मुख्य स्रोतों के अतिरिक्त, आंकड़ों के अन्य स्रोत भी हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक क्षेत्र में राष्ट्रीय आय का आकलन करने हेतु देश में काफी विश्वसनीय जानकारी उपलब्ध है। पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र (registered manufacturing sector)में उत्पादन का अनुमान उद्योगों के वार्षिक सर्वेक्षणों में उपलब्ध है। गैर-पंजीकृत विनिर्माण क्षेत्र (unregistered manufacturing sector)के लिए जिसमें लघु पैमाने के उद्योग तथा कुटीर उद्योग शामिल हैं, राष्ट्रीय सेंपिल सर्वेक्षण में उपलब्ध जानकारी का प्रयोग किया जाता है। इन सर्वेक्षणों से लघु उद्योगों के लिए पूंजी निवेश, उत्पादन, आगत व वर्धित मूल्य के आंकड़े प्राप्त होते हैं। अन्य क्षेत्रों के लिए विभिन्न सरकारी प्रकाशनों, विभागीय रिकार्डों, बजट दस्तावेजों तथा वित्तीय संस्थाओं (जैसे- रिजर्व बैंक) के प्रकाशनों में उपलब्ध जानकारी का प्रयोग किया जाता है।

सीमाएं-राष्ट्रीय आय समिति के अनुसार, 'राष्ट्रीय आय अनुमान देश की आर्थिक क्रिया तथा देश की अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों की क्रिया का शाब्दिक वर्णन करने के बजाय परिमाणात्मक मापदण्ड निर्मित करता है।' इस प्रकार राष्ट्रीय आय का आकलन करते समय लाखों आर्थिक मात्राओं का योग करना पड़ता है। इस उद्देश्य के लिए किसी समाज की परम्परा और पद्धति पर आधारित कुछ मूलभूत निर्णयों और सामाजिक कसौटियों को ध्यान में रखना पड़ता है।

राष्ट्रीय आय के आकलन की कुछ सीमाएं हैं, जैसे- 1. अमुद्रीकृत क्षेत्र का उत्पाद, 2. छोटे उत्पादकों या घेरलू उद्योगों की आय के सम्बन्ध में सामग्री उपलब्ध न होना, 3. आर्थिक कार्य-पद्धति में विभिन्नता का अभाव, 4. गैर-कानूनी आय, 5. आय-वितरण सम्बन्धी आंकड़ों का अभाव, तथा 6. विश्वसनीय आंकड़ों का अभाव।

1. **अमुद्रीकृत क्षेत्र का उत्पाद**-राष्ट्रीय उत्पाद मापते समय साधारणतया यह मान लिया जाता है कि उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का मुद्रा से विनिमय होता है। भारत जैसे

विकासशील देश में जहां 'निर्वाह खेती' की जाती है; उपज का काफी भाग विक्रय के लिए बाजार में नहीं आ पाता। इस भाग को या तो उत्पादक उपभोग के लिए रख लेते हैं या अन्य वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय में उसे दूसरे उत्पादकों को दे देते हैं। कृषि उत्पाद के इस अंश की उपेक्षा कर देने पर राष्ट्रीय उत्पाद में काफी कमी हो जाएगी। तात्पर्य यह कि भारत के सम्बन्ध में एक विशेष कठिनाई अमुद्रीकृत क्षेत्र के उत्पादन का अभ्यारोपित मूल्य तय करके उसे मुद्रीकृत क्षेत्र के मूल्य में जोड़ना है।

2. **छोटे उत्पादकों या घरेलू उद्योगों की आय के सम्बन्ध में सामग्री उपलब्ध न होना**-भारत में एक सीमा यह है कि यहां बहुत बड़ी संख्या में उत्पादक परिवार स्तर पर उत्पादन करते हैं या बहुत छोटे पैमाने पर घरेलू उद्योग चलाते हैं। इन छोटे उत्पादकों में से अधिकांश इतने अशिक्षित होते हैं कि वे या तो लेखा रखना जानते ही नहीं यया नियमित लेखा रखने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं करते।
3. **आर्थिक कार्य-पद्धति में विभिन्नता का अभाव**-भारत में उद्योगों के अनुसार राष्ट्रीय आय के आंकड़े संकलित करने की रीति प्रचलित है। इस प्रकार यह आवश्यक है कि उत्पादकों को विभिन्न व्यवसाय-वर्गों में रखा जाय। उदाहरण के लिए, एक कृषि श्रमिक वर्ष का कुछ समय खेती में, कुछ उद्योग में और कुछ तांगा चलाने में लगा सकता है। ऐसी स्थिति में उसकी आय को विभिन्न व्यवसायों में बांटना कठिन होगा।
4. **गैर-कानूनी आय**-भारत में काले धन के बारे में किये गये अध्ययनों से पता चला है कि अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण भाग छिपी हुई या काली-अर्थव्यवस्था के रूप में कार्य करता है और इसमें उत्पन्न होने वाली आय रिपोर्ट नहीं की जाती। हाल ही में सार्वजनिक वित्त एवं नीति के संस्थान के अनुसार काली आय 18 से 21 प्रतिशत है। समय के साथ-साथ काली-अर्थव्यवस्था का आकार भी बढ़ता जा रहा है, और इस कारण त्रुटि की मात्रा भी बढ़ गयी है।
5. **आय-वितरण सम्बन्धी आंकड़ों का अभाव**-राष्ट्रीय लेखा सांख्यिकी में परिवारों या व्यक्तियों के आय-वितरण सम्बन्धी आंकड़े एकत्र नहीं किये जाते। इस उद्देश्य से, पारिवारिक आय या अन्य सम्बन्धित चरों के बारे में पूछताछ करने की अपेक्षा, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संस्था ने उपभोक्ता-व्यय के आंकड़ों का प्रयोग किया है। इन सर्वेक्षणों के नमूने का आकार छोटा होने के कारण आलोचना भी हुई है और प्रत्यक्ष पूछताछ के आधार पर पाया गया कि प्रायोगिक सर्वेक्षणों के आंकड़े प्रत्यक्ष जांच के आंकड़ों से 30-40 प्रतिशत कम थे। परन्तु आय-वितरण सम्बन्धी आंकड़ों को एकत्र करने की सख्त आवश्यकता है ताकि विकास-प्रक्रिया के निम्न आय परिवारों पर प्रसार-प्रभाव का उचित रूप में विश्लेषित किया जा सके।

6. **विश्वसनीय आंकड़ों का अभाव**-फसलों के अधीन क्षेत्रफल के आंकड़े अब देश के 80 प्रतिशत क्षेत्रफल के लिए उपलब्ध हैं जबकि 1948-49 में केवल 47 प्रतिशत क्षेत्र के लिए उपलब्ध थे। फसल-अधीन क्षेत्र के आंकड़ों में गिरावट आयी है और ऐसा विशेषकर तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और बिहार में हुआ है । इसके अतिरिक्त सेवा क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य क्षेत्र, सफाई-सेवाओं आदि में मूल्यवृद्धि के बारे में बहुत अधिक अल्पानुमान लगाया जाता है जिसको ठीक करना आवश्यक है । अध्यापकों, डाक्टरों, वकीलों, चार्टर्ड अकाउंटेंटों द्वारा अपनी आय या कमाई व्यक्त ही नहीं की जाती। अतः स्पष्ट है कि आयोजन के 6 दशकों के बाद भी आंकड़े रिपोर्ट करने की तकनीक ऐसी नहीं बन सकी है जिससे थोड़े समय के अन्तर के बाद आंकड़े प्राप्त किये जा सकें। इस दृष्टि से भारत में सांख्यिकी अल्पविकसित स्थिति में है।

2.5 भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां

केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन ने 1999-2000 की कीमतों पर 1950-51 2006-07 तक के लिए राष्ट्रीय आय के आंकड़े उपलब्ध कराए थे। इस संगठन द्वारा तैयार की गयी इस अंकमाला के अनुसार, भारत की राष्ट्रीय आय (साधन लागत पर निवल राष्ट्रीय उत्पाद) 1950-51 में (1999-2000 की कीमतों पर) 204924 करोड़ रुपये थी। तब से 56 वर्षों में इनमें 4.6 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई और यह 2006-07 में 2530494 करोड़ रुपये हो गयी। योजना काल में अर्थव्यवस्था इस निष्पत्ति की तुलना में पूर्व स्वतन्त्रता काल से करने पर यह निष्पत्ति सन्तोषजनक लगती है । परन्तु यदि इस निष्पत्ति की तुलना योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों के साथ की जाय तो यह निष्पत्ति सन्तोषजनक नहीं लगती। गत दो दशकों में भारत की राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर 6.1 प्रतिशत प्रति वर्ष रही है । परन्तु अन्य राष्ट्रों की तुलना में यह बहुत कम है । चीन और दक्षिण कोरिया में पिछले दो दशकों में राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर 8.0 प्रतिशत प्रति वर्ष से अधिक रही है । विकसित पूंजीवादी देशों में से जापान में वृद्धि सर्वाधिक रही है और 1960 व 1970 के दशक में प्रति वर्ष 8 प्रतिशत या उससे भी अधिक रही है । चूंकि भारत कई दशकों तक औपनिवेशिक शोषण का शिकार रहा है इसलिए उससे इतनी अधिक संवृद्धि दरों को प्राप्त करने की आशा नहीं थी, परन्तु फिर भी, यह चिन्ता का विषय है कि भारत की राष्ट्रीय आय में वृद्धि कई अन्य अल्प विकसित देशों, जैसे दक्षिणी कोरिया, थाईलैण्ड, मलेशिया और चीन से भी बहुत कम रही है।

2.6 प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय एवं भारतीय अर्थव्यवस्था

राष्ट्रीय आय में वृद्धि की अपेक्षा प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में वृद्धि आर्थिक विकास का बेहतर सूचक है। भारत की प्रति व्यक्ति आय (चालू कीमतों पर) 1950-51 में 255 रुपये थी। यह 1960-61 में 359 रुपये, 1980-81 में 1784 रुपये तथा 2006-07 में 29642 रुपये हो गयी। चूंकि ये आंकड़े चालू कीमतों पर हैं इसलिए विभिन्न समयावधियों में तुलना के लिए इनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन ने आयोजन काल के सभी वर्षो के लिए तुलनीय आंकड़े एक श्रृंखला में प्रस्तुत किये हैं। इस श्रृंखला के अनुसार 1950-51 में भारत की प्रति व्यक्ति आय (1999-2000) की कीमतों पर) 5708 रुपये थी जो बढ़कर 1990-91 में 11535 रुपये तथा 2006-07 में 22553 रुपये हो गयी। इस प्रकार 56 वर्षों की अवधि में प्रति व्यक्ति आय में 2.4 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई। निश्चय ही, इस वृद्धि को कोई खास वृद्धि नहीं माना जा सकता। योजना आयोग ने पहली व दूसरी योजना में यह आशा व्यक्त की थी कि भारत की वास्तविक प्रति व्यक्ति आय 1970-71 तक दुगुनी हो जाएगी (ज्यादा से ज्यादा 1977 तक तो यह लक्ष्य अवश्य ही प्राप्त कर लिया जाएगा)। परन्तु इस लक्ष्य की तुलना में निष्पादन अत्यन्त निराशाजनक रहा। 1950-51 से 2006-07 की पूरी अवधि में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर न केवल बहुत कम थी, अपितु अनिश्चित व अनियमित भी रही। जहां कुछ वर्षो से प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई, वहां कुछ अन्य वर्षों में वह या तो स्थिर रही या उसमें गिरावट आई। गत 3 दशकों में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की दर काफी अधिक रही है। इस अवधि में वृद्धि की दर 3.8 प्रतिशत प्रति वर्ष रही, जबकि आयोजन काल के आरम्भ के तीन दशकों में यह 1.4 प्रतिशत वार्षिक थी। विकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय भारत की तुलना में लगभग 45 गुनी है। अल्प विकसित देशों, जैसे दक्षिण कोरिया, चीन, थाइलैण्ड और मलेशिया में भी बहुत से देश ऐसे हैं जिनकी निष्पत्ति भारत की तुलना में बहुत अच्छी है।

2.7 राष्ट्रीय उत्पाद का उद्योगवार सृजन

देश में विभिन्न क्षेत्रों (प्राथमिक क्षेत्र, द्वितीयक क्षेत्र तथा तृतीयक क्षेत्र) में राष्ट्रीय उत्पाद के कितने अंश का सृजन होता है, यह विकास के दृष्टिकोण से तथा आर्थिक संरचना को जानने के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्राथमिक क्षेत्र-भारत में सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र कृषि का है जो कि प्राथमिक क्षेत्र की श्रेणी में आता है। 20वीं शताब्दी के प्रथम दशक में निवल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 75 प्रतिशत था जो कम होते-होते स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय लगभग 60 प्रतिशत रह गया। उसके बाद प्राथमिक क्षेत्र (जिसमें सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा कृषि का है) का निवल घरेलू उत्पाद में हिस्सा कम हुआ है। 1960-61 में

यह 56.6 प्रतिशत था जो कम होते-होते 2006-07 में 21.3 प्रतिशत रह गया। प्राथमिक क्षेत्र में कृषि के अलावा वानिकी, लकड़ी काटना, मछली पालन और खनन आते हैं। जहां मछली पालन का निवल घरेलू उत्पाद में भाग लगभग 1.0 प्रतिशत रहा है, वहां वानिकी और लकड़ी काटने का भाग 1.2 प्रतिशत के आसपास रहा है। जहां तक खनन के भाग का प्रश्न है, यह 1960-61 में 0.9 प्रतिशत था जो 2006-07 में बढ़कर 1.8 प्रतिशत हो गया। कहने का तात्पर्य यह कि आजादी के उपरान्त प्राथमिक क्षेत्र के निवल घरेलू उत्पाद में वृद्धि हुई है।

द्वितीयक क्षेत्र-इस क्षेत्र के अन्तर्गत विनिर्माण, निर्माण, बिजली, गैस और जल की आपूर्ति शामिल की जाती है। विनिर्माण क्षेत्र में पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र तथा अपंजीकृत लघु एवं कुटीर उद्योग आते हैं। इनमें से पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र में तो काफी प्रगति हुई है, परन्तु लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्रगति अपेक्षाकृत धीमी रही है। पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र में निवल घरेलू उत्पाद में इसका हिस्सा 1960-61 में 6.9 प्रतिशत था जो 1991-92 में बढ़कर 12.0 प्रतिशत हो गया। परन्तु 1990 के दशक में पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र के हिस्से में कमी आई और 2006-07 में निवल घरेलू उत्पाद में इसका हिस्सा कम होकर 8.6 प्रतिशत रह गया। यद्यपि स्वतन्त्र रूप में देखने पर देश की अर्थव्यवस्था में पंजीकृत संगठित औद्योगिक क्षेत्र की प्रगति संतोषजनक लगती है, तथापि लक्ष्यों की तुलना में यह काफी कम है। लघु एवं कुटीर उद्योगों के सापेक्षिक हिस्से में कमी आई है, परन्तु निरपेक्ष उत्पादन बढ़ा है। ऐसा लघु व कुटीर उद्योगों की अपर्याप्त संवृद्धि के कारण हुआ है। 1960-61 में इन उद्योगों का निवल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 5.1 प्रतिशत था जो 1970-71 तक स्थिर रहा। 1970 से 1980 के दशकों में लघु व कुटीर उद्योगों पर ज्यादा ध्यान दिया गया, क्योंकि उनमें रोजगार सृजन की अधिक क्षमता थी। परन्तु उदारीकरण की अवधि में इन उद्योगों के विकास को झटका लगा और निवल उत्पाद में इनका हिस्सा जो 1991-92 में 7.7 प्रतिशत तक पहुंच चुका था, 2006-07 में कम होकर मात्र 4.5 प्रतिशत रह गया।

तृतीयक क्षेत्र-स्वतन्त्रता के बाद के काल में निवल घरेलू उत्पाद में व्यापार तथा परिवहन का हिस्सा पहले तीन दशकों में 13.5 प्रतिशत से 16.5 प्रतिशत के बीच था। पिछले तीन दशकों में निवल घरेलू उत्पाद में इस क्षेत्र के हिस्से में वृद्धि हुई है। यह हिस्सा 1981-82 में 16.5 प्रतिशत था जो 2006-07 में बढ़कर 28.0 प्रतिशत हो गया। गत तीन दशकों में यद्यपि इस क्षेत्र में शामिल सभी वर्गों का हिस्सा बढ़ा है तथापि रेलवे व अन्य साधनों से परिवहन तथा भण्डारण की तुलना में व्यापार, होटल एवं रेस्त्रां में वृद्धि अपेक्षाकृत अधिक रही है। व्यापार का निवल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 1960-91 में 9.7 प्रतिशत था जो 2006-07 में 16.9 प्रतिशत हो गया था। देश के विकास के साथ-साथ बैंकिंग व बीमा का विकास भी अनिवार्य है। इसलिए यह कोई आश्चर्य नहीं कि निवल उत्पाद में इन गतिविधियों का हिस्सा 1960-61 में 1.3 प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में 7.3 प्रतिशत हो

गया। पिछले 6 दशकों में सेवाक्षेत्र का निवल राष्ट्रीय उत्पाद में हिस्सा 9.0 प्रतिशत से 14.7 प्रतिशत के बीच रहा है। इसमें सार्वजनिक प्रशासन, प्रतिरक्षा तथा अन्य सेवाएं शामिल हैं। पिछले 35 वर्षों में अन्य सेवाओं का हिस्सा 4.4 प्रतिशत से 8.8 प्रतिशत के बीच रहा है। सार्वजनिक प्रशासन और प्रतिरक्षा के हिस्से में वृद्धि हुई है। यह 1960-61 में 3.2 प्रतिशत था जो 2006-07 में बढ़कर 5.5 प्रतिशत हो गया था।

1951 से 2007 के बीच के लगभग साढ़े पांच दशकों में भारतीय अर्थव्यवस्था में हुए संरचनात्मक परिवर्तनों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इस अवधि में प्राथमिक क्षेत्र तथा उसके प्रमुख अवयव (कृषि) का महत्व कम हुआ है तथा द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्रों का महत्व बढ़ा है। आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में यह प्रगतिशील परिवर्तन है।

अभ्यास प्रश्न

बहु विकल्पीय प्रश्न-

1. इनमें से क्या प्राथमिक क्षेत्र से सम्बन्धित नहीं है:

क. वानिकी ख. मछली पालन

ग. कृषि घ. बैंकिंग

2. प्रति व्यक्ति आय सबसे अधिक है:

क. चीन की ख. भारत की

ग. अमेरिका की घ. मलेशिया की

3. ''राष्ट्रीय आय किसी समाज की वह वास्तविक आय है जिसमें विदेशों से प्राप्त आय भी शामिल होती है।'' इस विचार के प्रतिपादक हैं:

क. प्रो॰ मार्शल ख. पीगू

ग. फिशर घ. प्रो॰ साइमन कुजनेट्स

4. सकल घरेलू उत्पाद को कहा जाता है:

क. डीजीपी ख. एनएनपी

ग. जीएनपी घ. जीडीपी

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. आजादी के बाद कृषि एवं उद्योग में से किस क्षेत्र में अधिक प्रगति हुई है ?
2. कृषि कार्य करने वाले को क्या कहा जाता है ?

3. बैंकिंग किस क्षेत्र से सम्बन्धित है ?
4. संचार सेवाओं में किस कार्य की गणना की जाती है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. राष्ट्रीय आय की कोई एक परिभाषा लिखिए।
2. तृतीयक क्षेत्र में सम्मिलित किये जाने वाले उप-क्षेत्रों के नाम दर्शाइए।
3. प्रति व्यक्ति आय और राष्ट्रीय आय में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिए।
4. राष्ट्रीय आय का आकलन करने हेतु कौनसी विधियों को प्रयोग में लाया जाता है ?

2.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि एक राष्ट्र का एक वर्ष का कुल वास्तविक उत्पादन, चाहे वह वस्तुओं के रूप में हुआ हो अथवा सेवाओं के रूप में; उस राष्ट्र की राष्ट्रीय आय होती है। राष्ट्रीय आय को निर्धारित करने में दो तत्वों की भूमिका मुख्य रूप से स्वीकार की जाती है- 1. कुल राष्ट्रीय उत्पादन, और 2. शुद्ध या निबल राष्ट्रीय उत्पादन। भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय वृद्धि के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में पर्याप्त वृद्धि हुई है, किन्तु इस वृद्धि से भारतीय अर्थव्यवस्था के स्वरूप में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं आया है। राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान निरन्तर कम होते जाने के बाद देश की अर्थव्यवस्था में आज भी कृषि को प्रमुखता प्राप्त है। उद्योगों, खदानों व द्वितीय क्षेत्र के अन्य हिस्सों का स्थान आज भी कृषि के बाद ही आता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय आय में द्वितीय एवं तृतीय क्षेत्र के योगदान को और अधिक बढ़ाने के लिए इन क्षेत्रों में अधिक पूंजी का निवेश किया जाय, ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध सभी क्षेत्रों का विकास सन्तुलित रूप से हो सके और देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में पर्याप्त प्रगति कर सके।

2.9 शब्दावली

1. **प्राथमिक क्षेत्र-**भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रथम वरीयता प्राप्त क्षेत्र को प्राथमिक क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत 1. कृषि, 2. वानिकी, 3. मछली पालन, तथा 4. खनन को सम्मिलित किया जाता है।
2. **द्वितीयक क्षेत्र-**भारतीय अर्थव्यवस्था में द्वितीय प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र को द्वितीयक क्षेत्र की संज्ञा दी जाती है। इस क्षेत्र में 5. विनिर्माण (पंजीकृत, व अपंजीकृत), 6. निर्माण, 7. बिजली, गैस तथा जल आपूर्ति को रखा जाता है।

3. **तृतीयक क्षेत्र**-उपरोक्त दो क्षेत्रों (प्राथमिक तथा द्वितीयक) के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को तृतीयक क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल किया जाता है, यथा- 8. परिवहन, भण्डारण और संचार; 9. व्यापार, होटल और रेस्टोरेंट; 10. बैंकिंग तथा बीमा; 11. वास्तविक सम्पदा, भवनों का स्वामित्व तथा व्यावसायिक सेवाएं; 12. सार्वजनिक प्रशासन और सुरक्षा; 13. अन्य सेवाएं; तथा 14. विदेशी क्षेत्र।
4. **निबल राष्ट्रीय उत्पाद**-इसे शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद भी कहा जाता है । जब सकल राष्ट्रीय उत्पाद में घिसावट को घटा दिया जाता है, तब शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद प्राप्त होता है । बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद = बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद - घिसावट।
5. **केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन**-राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित लेखा-जोखा तैयार करने वाला एक संगठन जिसकी स्थापना 1949 में की गयी। यह केन्द्र सरकार के अधीन कार्य करने वाली सांख्यिकीय इकाई है ।
6. **निष्पादन**-प्रस्तुत या प्रकट करने की क्रिया।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

बहु विकल्पीय प्रश्न-

1. बैंकिंग; 2. अमेरिका ; 3. पीगू; 4. जीडीपी

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-

1. उद्योग; 2. किसान; 3. तृतीयक क्षेत्र; 4. टेलीफोन, डाक आदि

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
4. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

2.12 उपयोगी ग्रन्थ:

- Dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy : Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
- Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
- Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992); Economics : Private and Public Choice, 6th Ed.

2.13 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय से आप क्या समझते हैं? इसका आकलन कैसे किया जाय ?
2. राष्ट्रीय उत्पाद के विषय में आप क्या जानते हैं? इसके उद्योगवार सृजन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
3. राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए आप क्या सुझाव देना चाहेंगे ?

इकाई-3 जनसंख्या, मानवीय संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 जनसंख्या एवं मानवीय संसाधन: अर्थ
3.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में मानवीय संसाधन का महत्व
3.5 भारत में जनांकिकीय प्रवृत्तियां:
  3.5.1 जनसंख्या संवृद्धि की दर
  3.5.2 जन्म-दर एवं मृत्यु-दर
3.6 जनसंख्या की संरचना:
  3.6.1 जनसंख्या घनत्व,
  3.6.2 ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या
  3.6.3 लिंगानुपात,
  3.6.4 जनसंख्या का व्यावसायिक वर्गीकरण
  3.6.5 साक्षरता प्रतिशत
  3.6.6 विश्व के सापेक्ष भारतीय जनसंख्या - अनुपात
3.7 जनसंख्या वृद्धि के कारण
3.8 तीव्र जनसंख्या वृद्धि के भारतीय अर्थव्यवस्था पर दुष्प्रभाव
3.9 जनसंख्या को नियन्त्रित करने हेतु सरकारी नीति, 2000
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह तीसरी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि राष्ट्रीय आय क्या है ? इसकी गणना कैसे की जाती है ? एवं, भारतीय अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय का क्या महत्व है ?

देश में मानवीय संसाधन अर्थात् उपलब्ध जनसंख्या उस देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आर्थिक विकास का प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों, उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। प्रस्तुत इकाई में भारत की जनसंख्या की प्रवृत्तियों, प्रमुख लक्षणों, जनाधिक्य की समस्या/उपाय तथा जनसंख्या का आर्थिक विकास से सम्बन्ध, राष्ट्रीय जनसंख्या नीति आदि बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारत में जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्तियों, इसकी समस्याओं, भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में जनसंख्या के महत्व को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगें।

3.2 उद्देश्य:

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप निम्न जानकारियां प्राप्त कर सकेंगें-

- जनसंख्या एवं मानवीय संसाधन के आशय का आशय समझ सकेंगें।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में मानवीय संसाधनों का महत्व जान सकेंगें।
- भारत में जनांकिकीय प्रवृत्तियों के बारे में परिचित हो सकेंगें।
- जनसंख्या घनत्व, लिंगानुपात, ग्रामीण व शहरी जनसंख्या की स्थिति, साक्षरता की स्थिति- जैसे तथ्यों को समझ सकेंगें।
- जनसंख्या वृद्धि के कारणों तथा उसके विभिन्न प्रभावों को जान सकेंगें, तथा इसे नियन्त्रित करने हेतु सरकारी नीति का अवलोकन करने में समर्थ हो सकेंगें।

3.3 जनसंख्या एवं मानवीय संसाधन: अर्थ

सामान्यतः जनसंख्या शब्द का निर्माण- 'जन' तथा 'संख्या'- इन दो शब्दों के मेल से हुआ है। जन शब्द का अर्थ होता है मनुष्य, लोग अथवा व्यक्ति, जबकि संख्या का अर्थ है गणना अथवा गिनती करना। इस आधार पर जनसंख्या का अर्थ हुआ व्यक्ति अथवा लोगों की गिनती का योग। एक देश

की जनसंख्या का आशय है उस देश में निवास करने वाले लोगों (जिसमें सभी आयु के स्त्री व पुरुष सम्मिलित होते हैं) का कुल योग।

विशेष अर्थ में जनसंख्या किसी भी क्षेत्र-विशेष में बसे लोगों की कुल संख्या, अर्थात् किसी क्षेत्रीय इकाई में निवास करने वाले समस्त निवासियों को सूचित करती है। इसमें केवल जीवित प्राणी ही शामिल किये जाते हैं।

मानवीय संसाधन शब्द मानव एवं संसाधन के योग से निर्मित हुआ है, जिसका अर्थ होता है मानवीय सम्पत्ति। 'मानव संसाधन' का तात्पर्य देश विशेष की जनसंख्या, उसकी शिक्षा, कुशलता, दूरदर्शिता एवं उत्पादन से है। अर्थात् मानवीय संसाधन की गणना करते समय न केवल वहां रहने वालों की संख्या वरन् उनके गुणों पर भी विचार करना होता है। मानवीय संसाधन का विकास उस प्रक्रिया को सूचित करता है जिसमें समाज के व्यक्तियों के ज्ञान, कौशल एवं उत्पादकता में वृद्धि हुआ करती है। सरल शब्दों में मानवीय संसाधन, मानवीय पूंजी का ऐसा संचय है जिसको अर्थव्यवस्था का विकास करने में प्रभावी रूप से विनियोग किया जा सकता है।

बाह्य दृष्टि से देखने पर जनसंख्या और मानव संसाधन दो भिन्न-भिन्न शब्द-युग्म प्रतीत होते हैं। परन्तु वास्तव में ये दोनों एक-दूसरे के अत्यधिक निकट हैं। एक तथ्य यह भी है कि जनसंख्या के अभाव में मानव संसाधन की कल्पना सार्थक नहीं हो सकती, जबकि मानवीय संसाधन के अभाव में जनसंख्या का अस्तित्व सम्भव है। क्योंकि जनसंख्या का अर्थ सीमित है, जबकि मानवीय संसाधन का अर्थ तुलनात्मक दृष्टि से अधिक व्यापक। उदाहरण के लिए, एक जंगली और असभ्य द्वीप पर निवास करने वाले लोगों में जनसंख्या शब्द पूर्णतः सार्थक हो सकता है, किन्तु मानवीय संसाधन उस समुदाय से बहुत दूर हो; ऐसा भी सम्भव है। मानवीय संसाधन में जहां शिक्षा, कार्यकौशल, दूरदर्शिता एवं उत्पादकता जैसे पक्षों का होना अनिवार्य है, वहीं जनसंख्या के लिए इन बिन्दुओं का होना अनिवार्य नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जनसंख्या और मानवीय संसाधन एक-दूसरे के निकट होते हुए भी पर्याप्त भिन्नता रखते हैं।

पर्याप्त तकनीकी भिन्नता होते हुए भी, व्यावहारिक रूप में जनसंख्या तथा मानवीय संसाधन को एक ही रूप में देखा जाता है।

3.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में मानवीय संसाधन का महत्व

प्रत्येक देश के आर्थिक विकास में मानवीय संसाधनों या जनसंख्या का विशेष महत्व है। इतिहास के विभिन्न कालों में जन्मी विश्व की सभ्यताओं के निर्माण और पतन का श्रेय मानव को ही जाता है।

मनुष्य विश्व के इतिहास का रचयिता है। विध्वंस और निर्माण मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही मानव की प्रवृत्ति रही है।

इसी प्रकार आधुनिक काल में मानवीय संसाधन किसी देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री **डा० वी०के०आर०वी० राव** का इस सन्दर्भ में कथन है कि ''मनुष्य न केवल उत्पादन का एक प्रमुख साधन है, बल्कि साध्य भी है।'' आर्थिक विकास और मानवीय संसाधन परस्पर एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। उन्हें प्रायः एक-दूसरे का पूरक माना जाता रहा है। आर्थिक विकास का उद्देश्य मनुष्य के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना होता है और आर्थिक विकास स्वयं मनुष्य के प्रयासों का प्रतिफल है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक देश का आर्थिक विकास एक बहुत बड़ी सीमा तक देश में उपलब्ध प्राकृतिक साधनों और पूंजी की मात्रा पर तो निर्भर करता ही है, किन्तु मानवीय संसाधन वह शक्ति है जो इन भौतिक साधनों को गति प्रदान करती है। नित नये आविष्कार, आकाश को स्पर्श करते ऊंचे-ऊंचे भवन, विशाल उद्योगों की स्थापना, सागर पर विजय, नदियों के तेज प्रवाह को नियन्त्रित करने वाले ऊंचे-ऊंचे और विशालकाय बांध और पृथ्वी के गर्भ से निरन्तर निकाली जा रही खनिज सम्पदा मनुष्य के ही साहस और प्रयत्नों का परिणाम है। इसीलिए जैरेमी बैन्थम ने मानवीय श्रम को धन का वास्तविक स्रोत तथा आर्थर लुईस ने विकास को मानवीय प्रयास का परिणाम स्वीकार किया है। आधुनिक युग के कुछ प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों और चिन्तकों ने भी मानवीय संसाधनों की महत्ता को स्वीकार किया है। इन अर्थशास्त्रियों का मत है कि मानवीय संसाधन प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में कुछ अर्थशास्त्रियों के मतों का विवेचन करना उचित होगा।

आर्थिक विकास में मानवीय संसाधन के महत्व का सर्वप्रथम विवेचन एडम स्मिथ युग के अर्थशास्त्रियों ने ही किया था। स्वयं **एडम स्मिथ** ने लिखा था कि ''प्रत्येक राष्ट्र का मानवीय श्रम वह कोष है जो जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता है एवं अन्य सुविधाओं को जुटाता है।'' इस कथन का तात्पर्य यही है कि केवल मनुष्य ही अपने परिश्रम से देश व समाज की आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है और भविष्य के लिए साधन जुटा सकता है।

फ्रेडरिक हरबिसन और चार्ल्स ए. मेयर ने भी मानवीय संसाधनों के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा है कि ''पूंजी, प्राकृतिक संसाधन, विदेशी सहायता और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार सामान्यतः आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं लेकिन मानवीय शक्ति की कोई भी बराबरी नहीं कर सकता।''

इस प्रकार उपर्युक्त विद्वानों के मतों का विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था को विकसित करने में प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में मानवीय संसाधनों का महत्व

अधिक है। जो देश अपने यहां उपलब्ध सम्पूर्ण मानवीय संसाधनों का जिस ढंग से उपयोग कर सकेगा, वह देश उतना ही अधिक आर्थिक विकास की ओर सफलता से उन्मुख हो सकेगा।

जनसंख्या के सन्दर्भ में अधिकांश विद्वानों का मत है कि प्रत्येक देश की जनसंख्या उस देश की बहुमूल्य सम्पत्ति होती है। विद्वानों का तर्क है कि प्रत्येक देश का विकास उस देश के मानवीय संसाधन के पर्याप्त उपयोग द्वारा किया जा सकता है, किन्तु यदि देश की विशाल जनसंख्या का समुचित उपयोग नहीं किया गया तो यह जनसंख्या देश के लिए एक समस्या बन जाती है, जिसका समाधान खोज पाना अत्यधिक कठिन होता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि देश विशेष के लिए उसकी जनसंख्या एक उपयोगी साधन है किन्तु इसका समुचित उपयोग करने हेतु सशक्त मानवीय संसाधनों का विकास भी उतना ही आवश्यक व महत्वपूर्ण है।

3.5 भारत में जनांकिकीय प्रवृत्तियां

जनसंख्या की दृष्टि से संसार में भारत का स्थान चीन के बाद दूसरा है। भारत का भू-क्षेत्र संसार के भू-क्षेत्र का लगभग 2.4 प्रतिशत है लेकिन यहां रहने वाली जनसंख्या समस्त विश्व की जनसंख्या की 17.5 प्रतिशत है। भारत की जनसंख्या प्रवृत्तियों को उसकी संवृद्धि दर, तथा जन्म और मृत्युदर के रूप में देखा जा सकता है, यथा-

3.5.1 जनसंख्या संवृद्धि की दर:

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मृत्युदर में तेज गिरावट आई है (विशेषकर अकालों पर नियन्त्रण के कारण तथा चिकित्सा सुविधाओं में सुधार के कारण)। मृत्यु दर में होने वाली गिरावट 1950 के दशक में किये गये अनुमानों की तुलना में अधिक रही है। योजना आयोग तथा जनगणना कमिश्नर ने अनुमान लगाया था कि 1951-61 के दशक में वही प्रवृत्ति रहेगी जो 1941-51 के दशक में थी। इसलिए जब 1951-61 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की वास्तविक दर 1.96 प्रतिशत दर्ज की गयी तो आयोजक आश्चर्यचकित रह गये। इससे सरकार को गम्भीर चिन्ता हुई। 1961-71 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 2.2 प्रतिशत रही जो पिछले दशक की तुलना में और भी अधिक थी।

1981 की जनगणना में यह बात कही गयी कि 1970 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर लगभग वही रही जो 1960 के दशक में थी। 1991 की जनगणना में भी यह पता लगा कि 1980 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 2.14 प्रतिशत थी। इस प्रकार सरकार की आशा कि परिवार नियोजन कार्यक्रम के परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि की दर में तेज गिरावट होगी; गलत सिद्ध हुई। 1996-

2016 के लिए रजिस्ट्रार जनरल के जनसंख्या प्रक्षेपण में यह अनुमान लगाया गया था कि 1990 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर गिरकर 1.84 प्रतिशत रह जाएगी, परन्तु ये प्रक्षेपण भी गलत सिद्ध हुए। 2001 की जनगणना से स्पष्ट हो गया था कि 1990 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की दर 1.93 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। इसलिए भारत अभी भी जनांकिकी परिवर्तन की दूसरी अवस्था से गुजर रहा है। इसलिए जनसंख्या विस्फोट की स्थिति बनी हुई है। यह देश के अल्पविकास का कारण भी है और परिणाम भी।

2011 की जनगणना में भारत की जनसंख्या में वृद्धि-दर में 1.64 प्रतिशत वार्षिक है, जिसे आगामी दशकों में जनसंख्या वृद्धि की दृष्टि से एक सन्तोषजनक परिणाम माना जा सकता है।

3.5.2 जन्म-दर एवं मृत्यु-दर:

जनसंख्या में वृद्धि की दर विशेषकर जन्म-दर और मृत्यु-दर पर निर्भर होती है। 1950 से 2006 तक 56 वर्षों में जहां जन्म दर में 41.1 प्रतिशत कमी हुई है, वहां मृत्यु दर एक-तिहाई से भी कम रह गयी है। फलतः भारत में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति पैदा हो गयी है। 1901 से 1921 तक 20 वर्षों में जनसंख्या लगभग स्थिर रही, क्योंकि जन्म और मृत्यु की दरें लगभग बराबर थीं। लेकिन जैसे ही स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की दशाओं में सुधार हुआ और मलेरिया, प्लेग, इन्फ्लुएंजा, हैजा, डायरिया आदि रोगों के असर में कमी हुई तो मृत्यु दर में स्थाई रूप से कमी हो गयी। पिछले सात दशकों में बाल रोगों में कमी हुई। जहां 1916-20 में बाल मृत्यु दर प्रति हजार 218 थी, वहां 2005 में यह घटकर 58 प्रति हजार रह गयी। निमोनिया, डायरिया, चेचक तथा छूत के अन्य रोगों पर नियन्त्रण से बाल मृत्यु दर नीचे आनी स्वाभाविक थी। भारत में स्त्रियों की प्रजनन आयु में भी मृत्यु दर बहुत अधिक थी। अस्पतालों की कमी और गरीबी के कारण प्रसूताओं की ठीक देखभाल न हो सकने के कारण मृत्यु दर अधिक होना स्वाभाविक था। निश्चय ही स्थिति इस समय पूरी तरह सन्तोषजनक नहीं है। लेकिन उसमें सुधार अवश्य हुआ है। इस प्रकार पिछले 56 वर्षों में चिकित्सा सम्बन्धी व्यवस्था में जो भी सुधार हुआ है, उसका परिणाम यह है कि 2005-06 में मृत्युदर 7.5 प्रति हजार थी।

1950 से 2006 तक 56 वर्षों में जन्म दर में केवल 4.1 प्रतिशत की कमी हुई है। जन्म दर को नियन्त्रित कर पाना कठिन होता है। दीर्घकाल तक परिवार नियोजन कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए बहुत कोशिशें करने पर ही इस दिशा में कुछ सफलता मिल पाती है। गुरप ऑन पॉपुलेशन प्रोजैक्शन के अनुसार, वर्ष 2026 तक जनसंख्या वृद्धि की दर 0.9 हो जाने की आशा है और तब इस वर्ष जनसंख्या अनुमानतः 140 करोड़ होगी।

3.6 जनसंख्या की संरचना

जनसंख्या की संरचना अनेक बातों पर निर्भर करती है; जैसे- जनसंख्या का घनत्व, ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या, लिंगानुपात, साक्षरता प्रतिशत, तथा व्यावसायिक स्थिति आदि। इन बिन्दुओं को क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.6.1 जनसंख्या घनत्व:

किसी भी देश के क्षेत्रफल तथा उसकी जनसंख्या के पारस्परिक अनुपात को जनसंख्या का घनत्व कहा जाता है। घनत्व निकालने का सूत्र इस प्रकार है:

$$\text{जनसंख्या घनत्व} = \frac{\text{कुल जनसंख्या}}{\text{कुल क्षेत्रफल}}$$

2001 की जनगणनानुसार भारत में जनसंख्या का घनत्व 324 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर था, जबकि 2011 में यह बढ़कर 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर हो गया है। अर्थात् 2001 से 2011 के बीच के एक दशक में भारत के जनसंख्या घनत्व में 18 प्रतिशत (58 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर) की वृद्धि दर्ज हुई है।

पिछले आंकड़ों पर दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होता है कि 1951 में भारत में जनसंख्या घनत्व 117 था। इस आधार पर 2011 में इसमें 265 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर की भयानक वृद्धि देखने को मिलती है।

जनसंख्या घनत्व को क्षेत्रीय आधार पर देखा जाय तो जम्मू-कश्मीर, सिक्किम, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश और अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह ऐसे क्षेत्र हैं जहां पर जनसंख्या घनत्व मात्र 100 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी कम है। इन क्षेत्रों को निम्नतम घनत्व वाले क्षेत्रों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसके विपरीत केरल, पश्चिम बंगाल, दिल्ली, चण्डीगढ़, पाण्डिचेरी, लक्षद्वीप, दमन और दीव जैसे क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व 689 से 9294 तक पाया जाता है। ये क्षेत्र सर्वाधिक घनत्व वाले क्षेत्रों की परिधि में रखने योग्य हैं। राजस्थान, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बिहार, पंजाब, हरियाणा, गोवा, असम, दादरा और नगर हवेली, त्रिपुरा, उड़ीसा, उत्तराखण्ड, तथा मध्य प्रदेश में जनसंख्या घनत्व मध्यम स्थिति में पाया जाता है। इन क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व 100 से 689 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर के मध्य पाया जाता है।

3.6.2 ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या:

भारत सही अर्थों में गांवों का देश है। सन् 1961 की जनगणना के अनुसार 82.1 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती थी। केवल 18.0 प्रतिशत जनसंख्या शहरों में निवास करती थी। जबकि 1921 में ग्रामीण जनसंख्या 88.8 प्रतिशत और नगरीय जनसंख्या 11.2 प्रतिशत थी, किन्तु उसके बाद की अवधि में देश की औद्योगिक उन्नति होने के कारण नगरीय जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सन् 1931 में शहरी जनसंख्या 12 प्रतिशत तथा सन् 1951 में 17.3 प्रतिशत थी। सन् 1961 में 566878 गांव तथा 2699 नगर और कस्बे थे।

सन् 1971 में ग्रामीण क्षेत्रों की कुल जनसंख्या 439 मिलियन (80.1 प्रतिशत) तथा शहरी क्षेत्रों की कुल जनसंख्या 109 मिलियन (19.9 प्रतिशत) हो गयी। 1981 में गांवों की कुल जनसंख्या 524 मिलियन (76.7 प्रतिशत) तथा शहरी कुल जनसंख्या 159 मिलियन (23.3 प्रतिशत) हो गयी। इसी प्रकार 1991 में ग्रामीण कुल जनसंख्या 629 मिनियन (74.3 प्रतिशत) तथा शहरी कुल जनसंख्या 218 मिलियन (25.7 प्रतिशत) तक पहुंच गयी। 2001 की जनगणना के अनुसार कुल ग्रामीण जनसंख्या 741 मिलियन (72.2 प्रतिशत) तथा शहरी कुल जनसंख्या 285 मिलियन (27.8 प्रतिशत) हो गयी।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या में आजादी के बाद निरन्तर दोनों ही क्षेत्रों में वृद्धि हुई है, परन्तु प्रतिशत में विरोधाभास की स्थिति प्रकट हुई है। आजादी के बाद से जहां ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या का प्रतिशत गिरा है, वहीं शहरी जनसंख्या के प्रतिशत में निरन्तर बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। शहरी जनसंख्या के प्रतिशत में वृद्धि का मूल कारण ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार अवसरों में कमी होना तथा शहरी क्षेत्रों में औद्योगिक विकास माना जा सकता है।

3.6.3 लिंगानुपात:

मानव समाज में स्त्री-पुरुष का समानुपात बहुत आवश्यक है। लिंग अनुपात का असन्तुलन समाज की जड़ें कमजोर करता है। समाज में स्त्री-पुरुष का समानुपात समाज को स्थायित्व प्रदान करता है तथा जीवन को मधुर बनाता है। सभी सभ्य समाज लिंगानुपात के गुणों को स्वीकार करते हैं, परन्तु इस विश्वास को व्यवहार में बहुत कम लाया जाता है। इसमें भारत भी अछूता नहीं है।

आजादी के बाद भारतीय जनसंख्या के इतिहास में यदि 1971-81 के दशक को छोड़ दिया जाय तो 1991 तक प्रति हजार पुरुषों में स्त्रियों का अनुपात निरन्तर गिरा है। जहां 1951 में 1000 पुरुषों के मध्य 946 स्त्रियां थीं, वहीं 1971 में यह अनुपात 930 रह गया जो कि काफी चिन्ता का विषय था। परन्तु 1981 में इस अनुपात में थोड़ी वृद्धि होकर 934 तक पहुंच गया। 1991 में स्त्रियों का अनुपात

पुनः गिरकर 927 रह गया। उसके बाद स्त्रियों के अनुपात में निरन्तर उठापटक जारी है। वर्ष 2001 में 1000 पुरुषों पर 933 स्त्रियां थीं किन्तु 2011 की जनगणना में यह अनुपात बढ़कर 940 हो गया। हालांकि वर्तमान में स्त्रियों के अनुपात में वृद्धि हुई है किन्तु अभी भी इस स्थिति को सन्तोषजनक नहीं माना जा सकता, क्योंकि प्रति 1000 पुरुषों में से अभी भी 60 पुरुषों को अविवाहित रहने के संकेत इन आंकड़ों से मिल रहे हैं जो कि भारत की सामाजिक स्थिति को संकट में डालने वाले हैं। ये वे स्थितियां हैं जिनसे बलात्कार, अपहरण, वेश्यावृत्ति जैसी अनेक बुराइयों में बढ़ोत्तरी होना स्वाभाविक है। अतः कहा जा सकता है कि भारत में स्त्री-पुरुष अनुपात काफी विषम स्थिति में है।

3.6.4 जनसंख्या का व्यावसायिक वर्गीकरण:

आर्थिक रूप से सक्रिय लोगों (15 से 59 वर्ष आयु) पर निर्भर आश्रितों (14 वर्ष से कम या 60 वर्ष से अधिक) की संख्या बहुत अधिक है। मैनपॉवर प्रोफाइल (1998) के अनुसार 1993-94 में भारत में 44.86 प्रतिशत लोग (15-59 वर्ष आयु वर्ग में) आर्थिक रूप से सक्रिय या कार्यरत थे और शेष 55.14 प्रतिशत आर्थिक रूप से निष्क्रिय थे। 1993-94 में 44.9 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में और 36.3 प्रतिशत लोग शहरी क्षेत्रों में श्रमशक्ति में लगे थे। लिंग के सन्दर्भ में 67.6 प्रतिशत पुरुष (15-59 आयु वर्ग के) और 32.4 प्रतिशत स्त्रियां उत्पादक कार्यो में लगे हुए थे। 15 से 59 वर्ष की आयु समूह में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में पुरुषों की क्रियाशीलता की दर क्रमशः 73.8 प्रतिशत और 26.2 प्रतिशत है, जबकि स्त्रियों में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में यह दर क्रमशः 14.9 प्रतिशत तथा 85.1 प्रतिशत है। 1993-94 में 64.6 प्रतिशत लोग प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) में, 14.2 प्रतिशत लोग द्वैतीयक क्षेत्र (निर्माण) में और 21.2 प्रतिशत लोग तृतीयक क्षेत्र (नौकरी) में लगे हुए हैं। पुरुषों में कार्य न करने वालों की सबसे बड़ी संख्या पूर्णकालिक छात्रों की है और स्त्रियों में घरेलू काम करने वाली स्त्रियों की। व्यावसायिक रचना की यह संरचना का प्रभाव सामाजिक स्तर पर पड़ता है, जो पुनः स्त्रियों की सामाजिक प्रस्थिति को प्रभावित करता है। श्रम शक्ति में शहरी भागीदारी दोनों (स्त्री-पुरुष) के लिए ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरों में काफी कम है। 0-14 वर्ष आयु समूह में विशेष रूप से क्रियाशीलता की दर दर्शाती है कि शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में ही बाल श्रम प्रथा स्त्री और पुरुष- दोनों में प्रचलित है। 1993-94 में ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों में यह दर 5-9 वर्ष आयु समूह में 1.1 प्रतिशत और 10-14 वर्ष आयु समूह में 13.8 प्रतिशत थी तथा स्त्रियों में 5-9 वर्ष आयु समूह में 1.4 प्रतिशत और 10-14 वर्ष आयु समूह में 14.1 प्रतिशत थी। शहरी क्षेत्रों में पुरुषों में 10-14 वर्ष आयु समूह में यह दर 0.5 प्रतिशत और स्त्रियों में 4.5 प्रतिशत पायी गयी।

2001 की जनगणनानुसार श्रमशक्ति का 57.3 प्रतिशत भाग प्राथमिक क्षेत्र (कृषि व सम्बद्ध व्यवसायों में 56.7 प्रतिशत तथा खनन में 0.6 प्रतिशत) में लगा हुआ था। भारत में कृषि सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। परन्तु यदि 2001 में कृषि में लगी श्रमशक्ति की तुलना 1971 के

आंकड़ों से की जाय तो ज्ञात होता है कि इस अवधि में कृषि के सापेक्षिक महत्व में गिरावट हुई है। 1971 में कृषि व सम्बद्ध व्यवसायों में कार्यकारी जनसंख्या का 72.1 प्रतिशत भाग लगा हुआ था जो 1991 में कम होकर 66.8 प्रतिशत तथा 2001 में इस क्षेत्र में श्रमशक्ति का 17.6 प्रतिशत भाग लगा हुआ था जबकि 1971 में 10.7 प्रतिशत। इस प्रकार 1971 से 2001 के बीच औद्योगिक क्षेत्र में संलग्न लोगों के अनुपात में कुछ वृद्धि अवश्य हुई है। भारत के तृतीयक क्षेत्र में श्रम शक्ति का चौथा भाग लगा हुआ है। 2001 की जनगणना के अनुसार तृतीयक क्षेत्र में श्रम शक्ति का 25.2 प्रतिशत भाग लगा हुआ था (इस क्षेत्र में व्यापार, वाणिज्य, परिवहन, संचार व अन्य सेवाओं को शामिल किया गया है)। इसे विपरीत 1971 में तृतीयक क्षेत्र में श्रमशक्ति का 16.7 प्रतिशत भाग लगा हुआ था। इससे संकेत मिलता है कि 1971 से 2001 के बीच तृतीयक क्षेत्र के आकार में सापेक्षिक रूप से विस्तार हुआ है, जबकि प्राथमिक क्षेत्र में कमी आई है।

3.6.5 साक्षरता प्रतिशत:

जनगणना के परिप्रेक्ष्य में उस व्यक्ति को साक्षर माना जाता है जो किसी भाषा को पढ़, लिख तथा समझ लेता हो। किसी राष्ट्र में साक्षरता की दर वहां की जनसंख्या की गुणवत्ता को दर्शाती है। 1971 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर 34.45 प्रतिशत थी। 1981 में यह दर बढ़कर 43.56 प्रतिशत, 1991 में 52.21 प्रतिशत हो गयी। विकसित देशों जैसे, इंग्लैण्ड, अमेरिका तथा फ्रांस की तुलना में भारत में साक्षरता प्रतिशत काफी कम रहा है, क्योंकि वहां साक्षरता का प्रतिशत 90 से 95 के मध्य है। यद्यपि भारत में साक्षरता का प्रतिशत तेजी से बढ़ रहा है, किन्तु इस प्रतिशत वृद्धि के विपरीत गुणात्मक रूप से शिक्षा के स्तर में भारी गिरावट भी आती जा रही है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता का प्रतिशत 52.1 प्रतिशत था जो बढ़कर 2001 में 64.83 प्रतिशत के स्तर तक पहुंच गया।

2001 में पुरुष साक्षरता का प्रतिशत 75.26 तथा स्त्री साक्षरता प्रतिशत 53.63 था। परन्तु इसमें पर्याप्त वृद्धि होकर 2011 के अनुसार पुरुष साक्षरता 82.14 प्रतिशत तथा स्त्री साक्षरता 65.46 प्रतिशत के स्तर तक पहुंच गयी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आजादी के बाद जनसंख्या के साक्षरता प्रतिशत में तेजी से विस्तार हुआ है। जहां 1951 में कुल साक्षरता दर 18.33 प्रतिशत था वहीं 2011 में कुल साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत हो गयी है। अर्थात् आजादी के बाद से अब तक साक्षरता का प्रतिशत ठीक तीन गुना अधिक हो गया है।

3.6.6 विश्व के सापेक्ष भारतीय जनसंख्या-अनुपात:

यह सर्वविदित है कि विश्व के सभी देशों में जनसंख्या में न्यूनाधिक वृद्धि होती जा रही है। परन्तु यह वृद्धि विकसित देशों की तुलना में अल्प विकसित अथवा विकासशील देशों में अधिक देखी जाती है, क्योंकि वहां मृत्युदर को नियन्त्रित करने के पर्याप्त साधनों का अभाव होता है तथा साक्षरता की दर नीची होना व जागरूकता का अभाव होना भी जनसंख्या वृद्धि में पर्याप्त भूमिका निभाते हैं।

2011 के जनसंख्या आंकड़ों के अनुसार, विश्व की सम्पूर्ण जनसंख्या में चीन (19.4 प्रतिशत) का स्थान सर्वोपरि है। दूसरा सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश भारत है इसकी जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का 17.5 प्रतिशत भाग है। इसके बाद अमेरिका की जनसंख्या कुल जनसंख्या का 4.5 प्रतिशत, इण्डोनेशिया की 3.4 प्रतिशत, ब्राजील की 2.8 प्रतिशत, पाकिस्तान की 2.7 प्रतिशत, बंग्लादेश की 2.4 प्रतिशत, नाइजीरिया की 2.2 प्रतिशत, रूसी संघ की 2.0 प्रतिशत तथा जापान की 1.9 प्रतिशत है। शेष 41.2 प्रतिशत जनसंख्या उपर्युक्त देशों के अतिरिक्त अन्य देशों की है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो वर्तमान में भारत की जनसंख्या (121 करोड़) अमेरिका, इण्डोनेशिया, ब्राजील, पाकिस्तान, बंग्लादेश और जापान की कुल जनसंख्या के बराबर है। केवल उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र की जनसंख्या सम्पूर्ण अमेरिका की जनसंख्या से अधिक है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारत एक विशाल जनसंख्या वाला तथा विश्व-जनसंख्या के क्षेत्र में द्वितीय सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश है। विश्व की कुल जनसंख्या में इसका हिस्सा 17.5 प्रतिशत है।

3.7 जनसंख्या वृद्धि के कारण:

1951 के बाद जनसंख्या वृद्धि की व्याख्या निम्न कारकों के आधार पर की जाती है:

1. उपचारात्मक व गर्भनिरोधक औषधियों के कारण मृत्युदर में कमी,
2. अकाल और महामारी पर नियन्त्रण,
3. युद्धों में कमी, तथा
4. जनसंख्या का बड़ा आधार।

जनसंख्या वृद्धि के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं:

जन्म एवं मृत्यु दर के बीच विस्तृत अन्तर-भारत में वार्षिक औसत जन्म दर जो 1950-51 में प्रति 1000 जनसंख्या पर 39.9 थी, 2005-06 में घटकर 23.5 प्रति 1000 व्यक्ति रह गयी। मृत्यु दर भी

1950-51 में प्रति 1000 व्यक्ति 27.4 थी 2005-06 में घटकर मात्र 7.5 प्रति 1000 व्यक्ति रह गयी। इसका अर्थ यह है कि जहां जन्म दर में मात्र 41.1 प्रतिशत की कमी हुई है, वहीं मृत्यु दर में 72.6 प्रतिशत की भारी कमी आई है। जिसके परिणामस्वरूप जनसंख्या के आकार में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

विवाह के समय कम आयु-हमारे देश में विवाह आम बात रही है। 1931 की जनगणना के अनुसार भारत में 72 प्रतिशत विवाह 15 वर्ष की आयु से पूर्व और 34 प्रतिशत 10 वर्ष की आयु से पूर्व सम्पन्न हो जाते थे। जब से स्त्री-पुरुष, दोनों में विवाह की औसत आयु में वृद्धि हुई है। यद्यपि अनुमान है कि विवाह की औसत आयु में वृद्धि हो रही है तथापि आज भी बड़ी संख्या में लड़कियों का विवाह ऐसी आयु में हो जाता है जब वे न तो सामाजिक रूप से या भावनात्मक रूप से या मनोवैज्ञानिक और आयु क्रम से ही विवाह के लिए तैयार होती हैं।

बाल मृत्यु दर का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्त्री की विवाह के समय आयु से है। 1995 में भारत में औसत बाल मृत्यु दर 1000 प्रति जीवित जन्म पर 74 थी- ग्रामीण क्षेत्रों में यह दर 80 तथा शहरी क्षेत्रों में यह दर 49 प्रति हजार थी। यदि विवाह के समय स्त्रियों की आयु के सन्दर्भ में उन्हें तीन समूहों में विभाजित करें (18 वर्ष से कम, 18-20 वर्ष, तथा 21 वर्ष से अधिक) तो ज्ञात होता है कि इन तीनों समूहों में ग्रामीण क्षेत्रों में बाल मृत्यु दर (1978) में क्रमशः 141, 112, 85 थी, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह दर क्रमशः 78, 66 और 46 थी। यदि हम जनन क्षमता दर को आयु समूहों से जोड़ें (प्रति स्त्री से जन्मे बच्चों की औसत संख्या) तो पता चलता है कि जैसे-जैसे आयु समूह अधिक होता है, प्रजनन दर कम होती जाती है। यदि जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण करना है तो स्त्रियों का विवाह (ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में) 21-23 या 23-25 आयु समूह में किया जाए न कि 15-18 या 18-21 वर्ष आयु समूह में।

अत्यधिक निरक्षरता-परिवार नियोजन का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्त्रियों की शिक्षा से है और स्त्री शिक्षा विवाह के समय आयु, स्त्रियों की प्रस्थिति, उनकी प्रजनन शक्ति, बाल मृत्यु दर आदि से प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है। एन.एस.एस. के द्वारा 1999 के आंकड़ों के अनुसार भारत में समूचा साक्षरता प्रतिशत 62 था, जबकि 1991 में 52.21 तथा 1981 में 43.56 प्रतिशत। 1991 में पुरुष साक्षरता प्रतिशत 64.13 था जबकि स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत 39.29 था। 1999 में, यह अनुमानतः क्रमशः 73 तथा 49 प्रतिशत था। शिक्षा व्यक्ति को उदार, विशाल हृदय, नये विचारों के लिए तत्पर तथा तर्कसंगत बनाती है। यदि स्त्री और पुरुष दोनों को ही शिक्षित किया जाता है तो वे सरलता से परिवार नियोजन के तर्क को समझ जायेंगे, लेकिन उनमें से कोई एक या दोनों ही अशिक्षित होंगे तो वे अत्यधिक रूढ़िवादी एवं विवेकहीन होंगे। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि केरल में जहां कुल साक्षरता दर 89.81 प्रतिशत और स्त्रियों की साक्षरता प्रतिशत दर 86.91 है वहां सबसे कम

जन्मदर (17.8 प्रति 1000), है जबकि राजस्थान में स्त्री साक्षरता दर 20.44 प्रतिशत के साथ देश में जन्म दर तीसरे स्थान पर सबसे ऊंची (34.6 प्रति 1000); सबसे ऊंची जन्म दर उत्तर प्रदेश में (36 प्रति 1000) है और उसके बाद मध्य प्रदेश (34.7 प्रति 1000) में है।

परिवार नियोजन के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण-धार्मिक दृष्टि से कट्टर एवं रूढ़िवादी लोग परिवार नियोजन के उपायों के उपयोग के विरुद्ध होते हैं। अधिकतर महिलाएं यह तर्क देती हैं कि वे ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध नहीं जा सकतीं। कुछ स्त्रियां यह तर्क देती हैं कि स्त्रियों के जीवन का उद्देश्य ही बच्चों को जन्म देना है। इस प्रकार का दृष्टिकोण वैसे तो न्यूनाधिक सभी धर्मों में देखने को मिल जाता है, किन्तु विशेष रूप से मुसलमान महिलाओं का दृष्टिकोंण अधिक रूढ़ एवं परम्परावादी है। जिसके फलस्वरूप परिवार नियोजन कार्यक्रम आंशिक रूप से ही अपना प्रभाव दिखा पाता है। अतः जनसंख्या में वृद्धि होती रहती है।

अतः स्पष्ट होता है कि जनसंख्या वृद्धि के लिए विभिन्न कारण उत्तरदायी हैं।

3.8 तीव्र जनसंख्या वृद्धि के भारतीय अर्थव्यवस्था पर दुष्प्रभाव

किसी भी देश में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि वहां विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्पन्न कर सकती है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय अर्थव्यवस्था पर तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणामों को निम्न बिन्दुओं में स्पष्ट किया जा सकता है:

निम्न प्रतिव्यक्ति आय:

भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय आय में जिस दर से वृद्धि हुई है, प्रति व्यक्ति आय में उस दर से वृद्धि सम्भव नहीं हो सकी है। इसका कारण है जनसंख्या का अति विस्तार।

आर्थिक विकास पर बुरा प्रभाव:

भारत में आर्थिक विकास के मार्ग में जनसंख्या का तेजी से बढ़ना आज सबसे बड़ी समस्या है। आर्थिक विकास पर जनसंख्या का बढ़ता भार अनेक रूपों में परिलक्षित हुआ है। इसके कारण कृषि जोतों का आकार घटता जा रहा है, भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है, बेरोजगारी व छुपी हुई बेरोजगारी की समस्या विकराल होती जा रही है, बचत व निवेश में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि नहीं हो पा रही है, परिवहन व संचार साधनों और ऊर्जा के स्रोतों पर लगातार दबाव बढ़ता जा रहा है। प्राकृतिक संसाधन तथा उत्पादन बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं के लिए कम पड़ रहे हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं जीवन की अन्य अनिवार्य आवश्यकताओं के पूरा न होने

से श्रम की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। इन सब कारणों से आर्थिक विकास की गति तीव्र नहीं हो पा रही है।

निम्न रहन-सहन स्तर:जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण उपभोग के लिए प्रति व्यक्ति कम वस्तुएं उपलब्ध हो पाती हैं और साथ ही रहन-सहन का स्तर भी घटता जाता है। भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण आवास, चिकित्सा, सफाई, पानी व बिजली, महंगाई, नगरों में गन्दी बस्तियों का निर्माण, नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है।

पूंजी निर्माण में कमी:जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने पर उपभोग व्यय बढ़ने तथा बचत कम हो जाने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। सरकार को भी सार्वजनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पहले की अपेक्षा अधिक सार्वजनिक व्यय करना पड़ रहा है। इसके फलस्वरूप व्यक्तिगत और सार्वजनिक बचत कम हो जाती है। इससे देश में पूंजी निर्माण की दर भी घटती है और आर्थिक विकास की गति मन्द पड़ जाती है।

इनके अतिरिक्त जनसंख्या की अति वृद्धि के कुछ अन्य दुष्प्रभाव भी दिखाई देते हैं- जैसे, अनुत्पादक उपभोक्ताओं का भार, बेरोजगारों की संख्या में बढ़ोत्तरी, खाद्य समस्या, तथा अनार्थिक जोतों की संख्या में वृद्धि आदि।

3.9 जनसंख्या को नियन्त्रित करने हेतु सरकारी नीति, 2000

15 फरबरी, 2000 को भारत सरकार ने राष्ट्रीय जनसंख्या नीति की घोषणा की थी। यह नीति परिवार नियोजन सेवाओं को लागू करने में जनता की इच्छा को मानते हुए निश्चित लक्ष्यों से मुक्त रखने के दृष्टिकोण पर आधारित है। इस जनसंख्या नीति के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं:

अ. गर्भ निरोधकों, स्वास्थ्य संरचना, स्वास्थ्यकर्मियों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना तथा आधारभूत पुनरुत्पादनीय एवं बाल स्वास्थ्य के बारे में समन्वित सेवा प्रदान करना।

ब. कुल प्रजनन दर को कम करके आगामी दशक में 2.1 की प्रतिस्थापन दर तक लाना।

स. स्थायी आर्थिक विकास, सामाजिक विकास और पर्यावरण की सुरक्षा की जरूरतों के अनुरूप स्तर पर वर्ष 2045 तक एक स्थिर जनसंख्या को हासिल करना।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1. निम्न में से जन्म दर का अर्थ है:
   (क) कुल जनसंख्या (ख) बिना जन्मे बच्चे
   (ग) प्रति 1000 जनसंख्या पर वर्ष में जन्मे बच्चों की संख्या
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. निम्न में से मृत्यु दर को सूचित करता है:
   (क) कुल मृतकों की संख्या (ख) कुल जनसंख्या में 1000 मृत्यु
   (ग) प्रति हजार जनसंख्या पर वर्ष में हुई कुल मृत्यु गणना
   (घ) इनमें से कोई नहीं।
3. भारत में वर्तमान में मानक विवाह आयु है:
   (क) 15-18 वर्ष (ख) 18-21 वर्ष
   (ग) 21-24 वर्ष (घ) 24-27 वर्ष
4. 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या है:
   (क) 212 करोड़ (ख) 1 अरब 25 करोड़
   (ग) 1 अरब 21 करोड़ (घ) 124 करोड़

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. 2011 के अनुसार जनसंख्या वृद्धि की दर क्या है ?
2. भारत में सीमित परिवार के लिए कार्य करने वाले कार्यक्रम का क्या नाम है ?
3. स्त्री और पुरुषों के अनुपात को क्या कहा जाता है ?
4. क्या विश्व की जनसंख्या में भारत की जनसंख्या सबसे अधिक है ?

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. मानवीय संसाधन से आप क्या समझते हैं ?
2. साक्षरता दर किसे कहा जाता है और वर्तमान में भारत की साक्षरता का स्तर क्या है ?
3. जन घनत्व को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिए, तथा 2001 एवं 2011 के जनघनत्व की स्थिति दर्शाइये।
4. भारत की जनसंख्या नीति, 2000 उद्देश्यों को प्रस्तुत कीजिए।

3.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि जनगणना प्रत्येक 10 वर्ष पश्चात् घटित होने वाली एक महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक घटना है। इसके अन्तर्गत एक दशक के दौरान भारत के मानवीय संसाधनों में हुई वृद्धि का प्रदर्शन किया जाता है। भारत में प्रथम जनगणना 1901 में आरम्भ हुई उसके बाद 2011 तक 12 बार जनगणना हो चुकी है- 5 बार आजादी से पूर्व तथा 7 बार आजादी के पश्चात्। प्रत्येक जनगणना द्वारा भारत के मानवीय संसाधनों की कुल जनसंख्या, जन्म तथा मृत्युदर, घनत्व, लिंगानुपात, शहरी-ग्रामीण जनसंख्या, आयु संरचना, जीवन-प्रत्याशा, साक्षरता अनुपात आदि के सम्बन्ध में सांख्यिकीय आंकड़े प्रस्तुत किये जाते हैं। इन्हें जनगणना की विशेषता भी कहा जाता है। भारत में 2001 की जनगणना 21वीं सदी की प्रथम जनगणना होने के कारण युगान्तर की प्रवृत्ति को दर्शाती है। वर्तमान में 2011 में हुई जनगणना 21 वीं सदी की दूसरी जनगणना है। इस जनगणना में भारत में निवास करने वाली 121 करोड़ की आबादी की जनांकिकी, संस्कृति, धार्मिक स्थिति तथा आर्थिक संरचना पर प्रकाश डाला गया है। 2011 की जनगणना के अनुसार हमारे देश में कुल जनसंख्या 121 करोड़ है जिसमें 62.37 करोड़ पुरुष तथा 58.65 करोड़ स्त्रियां सम्मिलित हैं। 2011 में जनसंख्या वृद्धि की दर 17.64 प्रतिशत है, जबकि 2001 में यह दर 21.24 प्रतिशत थी। गत दशक की तुलना में वर्तमान में जनसंख्या वृद्धि की दर में 3.90 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गयी है जो कि आजादी के बाद की सबसे बड़ी घटोत्तरी है। देश में उत्तर प्रदेश (19.9 करोड़), महाराष्ट्र (11.23 करोड़), बिहार (10.38 करोड़), और पश्चिम बंगाल (9.1 करोड़) सर्वाधिक जनसंख्या वाले राज्य हैं जबकि सिक्किम (607688), लक्षद्वीप (64429), और दमन-दीव (242911) न्यूनतम जनसंख्या वाले प्रान्त हैं। 2011 के अनुसार जनसंख्या घनत्व 382 है जो कि 2001 में 324 था। सर्वाधिक जनघनत्व दिल्ली व चण्डीगढ़ में है जबकि अरुणाचल प्रदेश, अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में न्यूनतम। 2011 के अनुसार 1000 पुरुषों के मध्य 940 स्त्रियां हैं जो कि 2001 में 933 थीं। साक्षरता दर 2011 में 74.04 प्रतिशत है जो कि 2001 में 64.83 प्रतिशत थी। विश्व जनसंख्या में भारत का हिस्सा 17.5 प्रतिशत है और दूसरा सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश है, जबकि पहले स्थान पर चीन है जिसका विश्व की कुल जनसंख्या में 19.4 प्रतिशत भाग है।

3.11 शब्दावली

1. **लिंगानुपात** = स्त्री और पुरुषों का अनुपात। 1000 पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या लिंगानुपात की श्रेणी में आती है।
2. **महामारी** = प्लेग, हैजा, चेचक जैसे संक्रामक रोग। ऐसे रोगों से व्यापक स्तर पर जनहानि होती थी अतः इसे महामारी नाम दिया गया। वर्तमान में चिकित्सकीय

प्रगति के कारण ऐसे संक्रामक रोगों नाममात्र को देखने को मिलते हैं परन्तु आजादी के आसपास इस प्रकार की बीमारियां बहुत देखी जाती थीं।

3. **परिवार नियोजन कार्यक्रम** = सीमित परिवार के लक्ष्य को लेकर कार्य करने वाले राष्ट्रीय कार्यक्रम का नाम। इसमें कम सन्तान उत्पन्न करने हेतु विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक व कृत्रिम उपायों के प्रयोग पर बल दिया जाता है, जैसे- स्त्री अथवा पुरुष नसबन्दी आदि।

3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहु विकल्पीय प्रश्न: 1. (ग); 2. (ग); 3. (ख); 4. (ग)

अति लघु उत्तरीय प्रश्न: 1. 17.64 प्रतिशत; 2. परिवार नियोजन (कल्याण) कार्यक्रम; 3. लिंगानुपात, 4. नहीं, दूसरे स्थान पर।

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
4. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

3.14 उपयोगी ग्रन्थ:

- Dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy : Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
- Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
- Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992); Economics : Private and Public Choice, 6th Ed.

3.15 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न:

1. भारत की जनसंख्या प्रवृत्तियों पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. भारत में जनसंख्या वृद्धि किन कारणों से इतनी तीव्र गति से बढ़ी है, स्पष्ट कीजिए।
3. तीव्र जनसंख्या वृद्धि के भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले कुप्रभावों पर प्रकाश डालिए।

4- जनसंख्या की संरचना को निरूपित करने वाले किन्हीं 3 बिन्दुओं को स्पष्ट कीजिए।

इकाई-4 अधोसंरचना, प्राकृतिक संसाधन और भारतीय अर्थव्यवस्था

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 अधो-संरचना तथा प्राकृतिक संसाधन का अर्थ

4.4 अधो-संरचना एवं प्राकृतिक संसाधनों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्व

4.5 अधो-संरचना के विभिन्न क्षेत्र एवं आजादी के बाद उनमें हुई प्रगति

4.6 विभिन्न प्राकृतिक संसाधन और आजादी के पश्चात् उनकी प्रगति:

4.6.1 भूमि एवं मिट्टियां

4.6.2 वन संसाधन

4.6.3 जल संसाधन

4.6.4 खनिज संसाधन

4.6.5 शक्ति के संसाधन

4.7 सारांश

4.8 शब्दावली

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.11 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह चौथी इकाई है, इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि भारतीय में जनसंख्या की क्या विशेषताएं हैं ? मानवीय संसाधन एवं आर्थिक विकास में क्या सम्बन्ध होता है ?

प्राकृतिक संसाधन एक देश के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संसाधनों पर मनुष्य अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्भर करता है। प्रस्तुत इकाई में विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इनके महत्व से सम्बन्धित बिन्दुओं का विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप विभिन्न प्राकृतिक संसाधनों की भारत में उपलब्धता, इनके उपयोग एवं भारतीय अर्थव्यवस्था में इसके महत्व को समझ सकेंगें तथा इसका विश्लेषण कर सकेंगें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- अधो संरचना तथा प्राकृतिक संसाधन का आशय को जान सकेंगें।
- अधो-संरचना तथा प्राकृतिक संसाधनों की भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमिका को बता सकेंगें।
- अधो-संरचना के विकास की स्थिति का वर्णन कर सकेंगें।
- प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन की जानकारी का वर्णन कर सकेंगें।

4.3 अधो-संरचना तथा प्राकृतिक संसाधन का अर्थ

अधो-संरचना को आधारिक संरचना, सामाजिक-उपरि पूंजी अथवा इन्फ्रास्ट्रक्चर भी कहा जा सकता है। अधो-संरचना में वे सुविधाएं सम्मिलित होती हैं जिन्हें पूंजीगत सम्पत्ति के रूप में जाना जाता है और जिन पर सम्पूर्ण समुदाय का अधिकार होता है। सम्पूर्ण समाज इन अधो-संरचना की सुविधाओं से लाभान्वित होता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की सुविधाओं, जैसे- परिवहन सेवा (सड़क, रेलवे, वायुयान, जलीय परिवहन) शैक्षिक सेवा (स्कूल), चिकित्सकीय सेवा (अस्पताल), तथा अन्य सेवाओं (विद्युत, बैंक, डाक-तार) आदि की गणना की जाती है।

प्राकृतिक संसाधनों का तात्पर्य उन उपहारों से है जो मानव को प्रकृति द्वारा (बिना कोई मूल्य चुकाए) प्रदान किये जाते हैं। इन उपहारों में भूमि, जल, वन, खनिज पदार्थ, सामुद्रिक वस्तुएं (जैसे, मछली आदि) जलवायु आदि विभिन्न प्रकार के तत्व सम्मिलित हैं। ये सभी तत्व प्राकृतिक संसाधनों की परिधि में आते हैं।

4.4 अधो-संरचना एवं प्राकृतिक संसाधनों का भारतीय अर्थव्यवस्था में महत्व

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था का विकास वहां पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता पर तो निर्भर करती ही है, साथ ही यह भी आवश्यक है कि उन प्राकृतिक संसाधनों का उपयुक्त रीति से विदोहन करके अधो-संरचनात्मक ढांचे का विस्तार करने में सहायक होते हैं। अर्थात् प्राकृतिक संसाधन अधो-संरचना का के लिए कच्ची सामग्री उपलब्ध कराते हैं और उनके उपयोग से अधो-संरचनात्मक ढांचे को गति प्रदान की जाती है। ये वे मूलभूत आधार हैं जिनके द्वारा एक देश की अर्थव्यवस्था विकसित होती है। भारत इसका अपवाद नहीं है। दूसरे शब्दों में, भारत में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं और उनका विदोहन करके अधो-संरचना को विकसित करने में सहायता मिली है। भारत की अर्थव्यवस्था को विश्व में 12वी सबसे विशाल अर्थव्यवस्था का रूप प्रदान करने में यहां के प्राकृतिक संसाधनों तथा अधो-संरचना की भूमिका सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

यदि कृषि और उद्योग को भारतीय अर्थव्यवस्था का शरीर माना जाय तो परिवहन, संचार, स्वास्थ्य, तथा अन्य सेवाएं उसकी धमनियां हैं, जो यहां के निवासियों की विकासपरक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण रही हैं।

उद्योगों के लिए कच्चे माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने में जहां परिवहन सेवाएं प्रमुख भूमिका निभाती हैं तो देशवासियों को स्वस्थ रखने, उन्हें शिक्षित बनाने तथा उनकी व्यावसायिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने में अस्पताल, शिक्षण संस्थान तथा बैंकों जैसी अधो-संरचरनात्मक इकाइयां उपयोगी सिद्ध होती हैं। आर्थिक विकास की इन समस्त प्रक्रियाएं उस समय धराशायी हो सकती हैं जब उपर्युक्त अधो-संरचनात्मक इकाइयों के लिए कच्चे माल के रूप में प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध न हों। अर्थात् जहां अधो-संरचना भारत की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है, वहीं प्राकृतिक संसाधन उससे कम उपयोगी नहीं माने जा सकते।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अधो-संरचना तथा प्राकृतिक संसाधन भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं, इनके अभाव में देश की अर्थव्यवस्था को खड़ा नहीं किया जा सकता।

4.5 अधो-संरचना के विभिन्न क्षेत्र एवं आजादी के बाद उनमें हुई प्रगति

अधो-संरचना के विभिन्न रूप हैं, यथा- परिवहन सेवा (सड़क, रेलवे, वायुयान, जलीय परिवहन); संचार सेवा (दूरभाष, डाक-तार व कम्प्यूटर), शिक्षण क्षेत्र (स्कूल), चिकित्सकीय सेवा (अस्पताल), तथा अन्य सेवाएं (विद्युत एवं बैंक)।

परिवहन सेवा:

परिवहन के मामले में, देश में, आजादी के बाद तेजी से विकास हुआ है। यहां सड़क, वायु, जल तथा रेल परिवहन का विस्तृत नेटवर्क है। 1950-51 में, भारत में रेलमार्ग की लम्बाई 53600 किलोमीटर थी जो अब 62800 किलोमीटर हो गयी है। सड़कों की लम्बाई 1950-51 में 4 लाख किलोमीटर थी जो बढ़कर अब 33 लाख किलोमीटर से भी अधिक हो गयी है। इसी प्रकार जहाजरानी की सेवा व परिवहन क्षमता में विस्तार हुआ है। वायुपरिवहन में उदारीकरण के फलस्वरूप निजी कम्पनियों का भी प्रवेश हो चुका है। अर्थात् परिवहन सेवाओं के क्षेत्र की स्थिति आजादी के समय की तुलना में आज काफी बेहतर स्थिति में है। इनका अलग-अलग विवेचन करते हैं। परिवहन की विभिन्न शाखाओं को अलग-अलग रूप में देखते हैं।

सड़क परिवहन:

भारत में सड़कों के जाल को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- राष्ट्रीय राजमार्ग, राज्य राजमार्ग व मुख्य जिला सड़कें। राष्ट्रीय राजमार्गों की कुल लम्बाई 66754 किलोमीटर है। यद्यपि यह कुल सड़क-जाल का केवल 2.0 प्रतिशत है, तथापि इनके माध्यम से 40 प्रतिशत यात्री आवागमन व माल ढुलाई का कार्य सम्पन्न होता है। दूसरे दर्जे पर राज्य राजमार्गों व मुख्य जिला सड़कों का स्थान है। राज्य राजमार्ग, राष्ट्रीय राजमार्गों, जिला मुख्यालयों, महत्वपूर्ण शहरों व कस्बों, पर्यटन केन्द्रों तथा छोटी बंदरगाहों को जोड़ने का काम करते हैं। इनकी लम्बाई लगभग 128000 किलोमीटर है। मुख्य जिला सड़कें जिला के अन्दर की सड़कें हैं जो उत्पादन केन्द्रों को बाजारों के साथ तथा ग्रामीण क्षेत्रों को जिला मुख्यालयों, राज्य राजमार्गों व राष्ट्रीय राजमार्गों के साथ जोड़ती हैं। दूसरे दर्जे की व्यवस्था कुल सड़क जाल का लगभग 12 प्रतिशत है तथा इनके माध्यम से लगभग 40 प्रतिशत यात्री आवागमन व माल ढुलाई का काम होता है। ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के बीच कड़ी का काम करने वाले राज्य राजमार्ग तथा मुख्य जिला सड़कें ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में और देश की औद्योगिक संवृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सड़क जाल की अन्तिम कड़ी ग्रामीण सड़कें हैं। ये सड़कें ग्रामीण परिवहन का एक मूल साधन हैं तथा ग्रामीण

विकास में मुख्य भूमिका निभाती हैं। ग्रामीण सड़कों का गरीबी-निवारण में विशेष योगदान है। भारत में सड़कों के विकास की दिशा में पहला आयोजित प्रयास 1943 में नागपुर के इंजीनियरों के माध्यम से किया गया था।

भारत में छठी पंचवर्षीय योजना में सड़क विकास पर 3887 करोड़ रुपये खर्च किये गये। इस योजना के अन्तर्गत 2687 किलोमीटर सड़कों को राष्ट्रीय राजमार्गों का दर्जा दिया गया, और अन्य 5.77 लाख किलोमीटर सड़कों का निर्माण करके 18000 गांवों को सड़कों द्वारा जोड़ा गया। सातवीं योजना में सड़क विकास पर 6335 करोड़ रुपये व्यय किये गये, तथा योजना के अन्तिम वर्ष 1989-90 में सड़कों की कुल लम्बाई 19.7 लाख किलोमीटर हो गयी, जो 1984-85 की अपेक्षा 17 प्रतिशत अधिक थी। आठवीं योजना में सड़क क्षेत्र के लिए 16095 करोड़ रुपये का व्यय किया गया। नवीं योजना में 1955 किलोमीटर दो पथों (डबल लेन) वाली तथा 797 किलोमीटर चार पथों (फोर लेन) वाली सड़कों का निर्माण किया गया। इसके अतिरिक्त 3511 किलोमीटर मजबूत डबल लेनस मार्गों, 30 बाईपास मार्ग तथा कुल 442 छोटे-बड़े पुल बनाए गये। दसवीं पंचवर्षीय योजना में सड़क क्षेत्र पर 42577.43 करोड़ रुपये का परिव्यय हुआ।

रेल परिवहन:

भारत में इस समय 63465 किलोमीटर लम्बी रेलवे लाइनें हैं। इसका एशिया के रेल परिवहन में प्रथम और विश्व में चौथा स्थान है। रेलवे इस समय भारत का सबसे बड़ा सार्वजनिक उद्यम है। देश में 12700 गाड़ियां, 7000 से अधिक स्टेशनों के बीच की दूरी तय करती हैं। इस उद्यम में 14.11 लाख व्यक्ति कार्यरत हैं। 2006-07 में रेलवे में 621.90 करोड़ यात्रियों को अपने गन्तव्य स्थानों तक पहुंचाया और 72.77 करोड़ टन माल ढोया गया।

1853 में भारत में पहली रेलवे लाइन बम्बई से थाना नामक स्थान तक चालू की गयी। इसके बाद रेलों के विकास में तेजी से विकास हुआ। 1950-51 में भारत में रेलवे लाइन 53596 किलोमीटर थी जो 2007-08 में बढ़कर 63465 हो गयी है। अब तक सम्पूर्ण रेलमार्गों के 28 प्रतिशत भाग का विद्युतीकरण किया जा चुका है।

वायु परिवहन:

वायु परिवहन यात्रा और माल ढुलाई का सबसे अधिक तेज साधन है, परन्तु ऊंची परिचालन लागत के कारण इसका व्यापारिक माल की ढुलाई में बहुत अधिक योगदान नहीं है। बहुत अधिक मूल्यवान और हल्की वस्तुओं तथा डाक के यातायात के लिए वायुपरिवहन का प्रयोग किया जाता है। पश्चिमी देशों में बड़ी-बड़ी औद्योगिक कम्पनियों के प्रतिनिधि और व्यापारी

व्यावसायिक दौरों के लिए वायु परिवहन का प्रयोग करते हैं। भारत में भी इस दृष्टि से वायु परिवहन की लोकप्रियता बढ़ रही है।

वायु परिवहन के विकास से न तो कृषि और औद्योगिक विकास के लिए बाहरी किफायतों के रूप में अनुकूल परिस्थितियां तैयार होती हैं और न ही यह इंजीनियरिंग उपकरणों के लिए इतनी अधिक मांग उत्पन्न करता है कि इससे उद्योगीकरण की प्रक्रिया में व्यापक रूप से सहायता मिल सके।

पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं में वायु परिवहन के विकास पर केवल 72 करोड़ रुपये व्यय किये गये थे। यह राशि इन दो योजनाओं पर किये जाने वाली कुल राशि का केवल 1.08 प्रतिशत थी। तीसरी योजना में 49 करोड़, चौथी योजना में 185 करोड़, पांचवीं योजना में 391.50 करोड़, छठी योजना में 957.32 करोड़, सातवीं योजना में 1948 करोड़, आठवीं योजना में 7096 करोड़, तथा नवीं योजना में 6599.51 करोड़ रुपये वायुयान परिवहन में हवाई अड्डों के निर्माण, वायुयान व हैलीकॉप्टर क्रय हेतु व्यय किया गया।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत वायु परिवहन का तेजी से विकास हुआ है। मात्र 2004 से 2007 की तीन वर्षीय अवधि में घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय यात्रियों की संख्या लगभग दो गुनी तथा माल ढुलाई में 45 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 2007-08 के अनुसार भारत में 14 अनुसूचित एयरलाइंस तथा 65 गैर-अनुसूचित कम्पनियां हवाई परिवहन सेवाएं उपलब्ध करा रही हैं, इनके क्रमशः 334 तथा 201 वायुयान हैं। वर्तमान में दिल्ली, मुम्बई, हैदराबाद तथा बंगलोर के हवाई अड्डों का निजी क्षेत्र की इकाइयों द्वारा आधुनिकीकरण किया गया है। इसके अलावा कोलकाता, चेन्नई तथा 35 गैर-मैट्रो व 13 अन्य हवाई अड्डों के आधुनिकीकरण पर भी काम जारी है।

जलीय परिवहन:

औपनिवेशिक शासनकाल में सामुद्रिक और तटीय परिवहन भारतीय कम्पनियों के हाथ में नहीं के बराबर था। विदेशी कम्पनियों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण भारत में स्वदेशी कम्पनियों की स्थापना के अधिकांश प्रयास असफल रहे थे। स्वतन्त्रता के बाद भारत में सरकारी प्रयास से सामुद्रिक और तटीय परिवहन का विकास हुआ है। 1951 में भारतीय जहाजों की क्षमता केवल 3.9 लाख टन थी। 31 दिसम्बर, 2005 को भारत के पास 707 जहाज थे जिनकी क्षमता 82.90 लाख टन थी। वर्तमान में भारत का विदेशी व्यापार मात्रा-अनुसार 95 प्रतिशत और मूल्य-अनुसार 70 प्रतिशत समुद्री मार्गों के माध्यम से किया जा रहा है।

पहली दो पंचवर्षीय योजनाओं में नौपरिवहन के विकास पर क्रमशः 19 व 53 करोड़ रुपये व्यय किये गये फलतः जहाजी कम्पनियों की क्षमता 9 लाख टन हो गयी थी। 9वीं योजना में सामुद्रिक जल परिवहन पर 3463 करोड़ रुपये व्यय किये गये जिसके परिणामस्वरूप नौपरिवहन क्षमता 69.10 लाख टन हो गयी।

भारत में आज 12 बड़े और लगभग 200 छोटे बन्दरगाह हैं। 31 मार्च, 2007 को भारत के मुख्य बन्दरगाहों की क्षमता 50.47 करोड़ टन माल चढ़ाने-उतारने की थी, इसके विपरीत 2006-07 में इन बन्दरगाहों से 46.38 करोड़ टन माल चढ़ाया-उतारा गया।

संचार सेवा (डाक-तार, दूरभाष, इण्टरनेट):

विचारों, भावनाओं, विश्वासों तथा विभिन्न प्रकार की आवश्यक वस्तुओं को एक-स्थान से दूसरे स्थान पर प्रेषित करने हेतु प्रयुक्त साधनों को संचार कहा जा सकता है। भारत में 1989 से पूर्व संचार के मुख्यतः दो माध्यम डाक-तार एवं दूरभाष थे। परन्तु 1989 में भारत में तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी के प्रयासों से कम्प्यूटर शिक्षा का शुभारम्भ हुआ, और यह भी संचार के साधनों में सम्मिलित हो गया।

वैसे संचार-सेवा एक ही है, परन्तु गति की दृष्टि से उनके रूप एवं विधि में परिवर्तन होता रहा है। जैसे- आजादी के पूर्व एक पत्र डाक के माध्यम से लगभग एक सप्ताह में अपने किसी सम्बन्धी अथवा व्यवसायी के पास पहुंच सकता था, और उसका उत्तर प्राप्त करने के लिए कई-कई दिन प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। परन्तु जैसे-जैसे औद्योगिक विकास ने गति पकड़ी तो संचार में लगने वाला समय एक समस्या बन गया। अतः इस कमी को पूरा करने के लिए 'तार' अथवा टेली-प्रिंटर का जन्म हुआ। उसके बाद धीरे-धीरे विभिन्न संचार माध्यमों की संख्या में वृद्धि होती गयी। डाक के अतिरिक्त दूरभाष भी संचार का एक सशक्त माध्यम रहा है। वर्ष 2006-07 में भारत में 155204 डाकघर थे, जबकि दूरभाष कनेक्शनों की संख्या 2058.67 लाख थी।

वर्तमान समय में मोबाइल एवं कम्प्यूटर के क्षेत्र में क्रान्ति की स्थिति देखने को मिल रही है। आज न केवल शहरों में बल्कि ग्रामीण अंचलों में भी लगभग 70 प्रतिशत परिवारों में मोबाइल की सुविधा उपलब्ध है। शहरी क्षेत्र में तो परिवार के लगभग सभी सदस्यों पर व्यक्तिगत मोबाइल हैं। इनसे आज लोग एक सीमित क्षेत्र में बंधने के लिए देशभर अथवा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्बन्ध स्थापित करने में तेजी से आगे बढ़ रहा है। कम्प्यूटर भी इस दिशा में पीछे नहीं है। आज युवाओं में इण्टरनेट का क्रेज इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि वे न केवल डेस्कटॉप या लैपटॉप नैट पर व्यस्त रहते हैं अपितु मोबाइल पर भी नैट पर चैट करते देखे जा सकते हैं। कम्प्यूटर के माध्यम से व्यावसायिक

गतिविधियों विभिन्न प्रकार की सहायता मिलने के साथ ही ईमेल आदि के रूप में संचार का कार्य किया जा रहा है।

शिक्षण क्षेत्र (स्कूल):

यों तो शिक्षण संस्थाओं के विकास की कहानी युगों पुरानी है। रामायणकाल में रामादि भाइयों का गुरु विश्वामित्र के आश्रम में शिक्षा प्राप्त करना, 5000 वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण और सुदामा का सांदीपनि गुरु के आश्रम में आवास करते हुए शिक्षा प्राप्त करना, उसके पश्चात् तक्षशिला विश्वविद्यालय (सन् 43 ई० से 11 वीं सदी तक अथवा राजा आम्भि के समय से सुल्तान महमूद के समय तक पंजाब में वर्चस्व स्थापित करने वाला प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्र का केन्द्र) तथा नालन्दा विश्वविद्यालय (7वीं शताब्दी में बिहार में राजगिरि के निकट स्थित बौद्ध विद्यापीठ)- भारतीय शिक्षा की प्राचीनता के आदर्श प्रतीक रहे हैं। 1858 में ब्रिटिश शासकों ने म्योर सेण्ट्रल कालेज (इलाहाबाद के निकट) की स्थापना कर आधुनिक शिक्षा की शुरुआत की। 1921 में एक अधिनियम पारित करके ब्रिटिश सरकार ने विश्वविद्यालय शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा से प्रथक किया। माध्यमिक शिक्षा को सचिवालय से जोड़ा गया। उसके बाद और भी उप-विभाजन किये गये। उसी आधार पर शिक्षालयों की स्थापना को बल मिला। इसी आधार पर शिक्षा को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा।

भारत में शिक्षण संस्थानों की स्थापना को बढ़ावा दिया गया है। देश में 1921 में 1909 पूर्व माध्यमिक विद्यालय थे जो बढ़कर 1998 में 40553 हो गये। अर्थात् पूर्व माध्यमिक विद्यालयों में 8 दशक से कम अवधि में 21 गुना वृद्धि हुई। इसी प्रकार 1921 में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 3.3 लाख थी जो बढ़कर 1998 में 6.12 लाख हो गयी। मिडिल और सीनियर स्कूलों की संख्या 1921 में 40663 थी जो बढ़कर 1998 में 1.85 लाख हो गयी। हायर सैकेण्डरी स्कूलों की संख्या 1921 में 17257 थी जो बढ़कर 1998 में 107100 हो गयीं। 1921 में कुल 45 विश्वविद्यालय (डीम्ड विश्वविद्यालयों सहित) थे जो 1998 में बढ़कर 228 हो गये।

वर्ष 2007-08 के अनुसार भारत में 767520 जूनियर बेसिक स्कूल, 274731 सीनियर बेसिक स्कूल तथा 152049 हायर सैकेण्डरी स्कूल थे।

चिकित्सा क्षेत्र (अस्पताल):

चिकित्सा क्षेत्र आधार संरचना की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। देशवासियों को स्वस्थ रखने, देश में जन्मदर में स्थिरता लाने तथा मृत्युदर को नीचे लाने में चिकित्सा सेवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

चिकित्सकीय सुविधाएं प्रदान करने के लिए देशभर में चिकित्सालयों की व्यवस्था की गयी है। परन्तु व्यवहार में देखा जा रहा है कि सरकारी चिकित्सालयों द्वारा प्रदान करने की जाने वाली चिकित्सा सुविधाएं महत्वपूर्ण होते हुए भी जनसंख्या के आकार के अनुपात में बहुत कम हैं।

यदि समग्र भारत में चिकित्सालयों के आकार पर विचार किया जाय तो पता चलता है कि 1 जनवरी 2008 को भारत में 9976 चिकित्सालय एवं औषधालय थे। इन चिकित्सालयों एवं औषधालयों में कुल 4 लाख 83 हजार शैयाओं की व्यवस्था थी।

अन्य सेवाएं:

अधो-संरचना के अन्य क्षेत्रों के अन्तर्गत विद्युत तथा बैंकों को रखा जा सकता है। इनकी प्रगति क्रमशः अग्र प्रकार है।

विद्युत:

विद्युत या जल-विद्युत शक्ति का सबसे सस्ता साधन है। कोयला और पैट्रोल को निकालने तथा एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने में बहुत अधिक धनराशि व्यय करनी पड़ती है। इसके विपरीत जल-विद्युत को तारों द्वारा आसानी से और कम व्यय पर दूर-दूर तक ले जाया जा सकता है। विद्युत का एक लाभ यह है कि इनकी योजनाओं के साथ अन्य उद्देश्यों की पूर्ति की जा सकती है, जैसे- बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, आन्तरिक जल-परिवहन, मछली उद्योग का विकास आदि।

भारत में पहला जल विद्युत शक्तिगृह सन् 1898 में दार्जिलिंग में स्थापित किया गया था जिसकी क्षमता 20 किलोवाट थी। इसके बाद 1903 में कर्नाटक में कावेरी नदी के जलप्रपात सिवासमुद्रम् पर 4200 किलोवाट शक्ति वाला बिजली बनाने वाला यन्त्र लगाया गया। यह विद्युत शक्ति 147 किलोमीटर दूर स्थित कोलार की स्वर्ण खदानों को तारों के माध्यम से भेजी जाती थी। 1907 में जम्मू-कश्मीर में झेलम नदी पर मोहरा नामक स्थान पर 4500 किलोवाट शक्ति का यन्त्र लगाया गया। प्रथम महायुद्ध-काल में जल शक्ति के विकास को प्रोत्साहन मिला। 1915 में टाटा जलविद्युत योजना, 1922 में आंध्र घाटी शक्तिपूर्ति योजना तथा 1927 में टाटा शक्ति योजनाएं कार्यान्वित की गयीं। इसके उपरान्त अनेक राज्यों (तत्कालीन मद्रास, पंजाब, ट्रावनकोर, कोचीन, संयुक्त प्रान्त या वर्तमान उत्तर प्रदेश) में कई स्थानों पर जलशक्ति-गृह स्थापित किये गये। राज्य द्वारा संचालित शक्तिगृह में पायकरा (1932), जोगिन्द्रनगर (1935), मैटूर (1937), पल्लीवासल (1940), पापानासम (1943), तथा गंगा विद्युत ग्रिड योजना (1930-47) मुख्य हैं। 1930 तक देश में जल-विद्युत शक्ति की उत्पादन क्षमता 2.8 लाख किलोवाट हो गयी थी।

देश में 1947 में मात्र 1400 मेगावाट बिजली उत्पन्न करने की क्षमता थी जो कि वर्ष 2000-01 में बढ़कर 101153.60 मेगावाट हो गयी। इसमें से 25219.55 मेगावाट पन, 71906.42 मेगावाट ताप (गैस तथा डीजल मिलाकर), 1269.63 मेगावाट पवन और 2758 मेगावाट परमाणु स्रोतों से मिलती है । 2000-01 में 4764.70 मेगावाट की अतिरिक्त क्षमता जोड़ने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। इस वर्ष 530 अरब यूनिट विद्युत उत्पादन करने का लक्ष्य रखा गया।

2006-07 में कुल 6.05 लाख गांवों में से 4.83 लाख गांवों को विद्युतीकृत कर लिया गया था। इस वर्ष विद्युत उपभोग की मात्रा 45575 करोड़ कि॰वा॰घ॰ थी।

बैंक-

बैंक एक व्यापारिक संस्था है जो मुद्रा एवं साख में व्यवहार करती है । 1949 में व्यापारिक बैंकिंग के विकास की दृष्टि से दो महत्वपूर्ण कदम उठाए गये। इनमें पहली बात थी बैंकिंग नियमन अधिनियम बनना। इस अधिनियम को बनाने से भारतीय रिजर्व बैंक को व्यापारिक बैंकों पर नियन्त्रण के लिए विस्तृत अधिकार प्राप्त हुए। दूसरी बात यह कि भारतीय रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण किया गया।

19 जुलाई 1969 के दिन उन 14 व्यापारिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया जिनके पास 50 करोड़ रुपये या इससे अधिक जमा राशि थी। राष्ट्रीयकरण के उपरान्त जून, 2007 तक बैंक शाखाओं की संख्या 8262 से बढ़कर 72165 हो गयी।

राष्ट्रीयकरण से पूर्व बैंकों की दिलचस्पी केवल शहरी क्षेत्र के कारोबार में थी और इसलिए वे अपनी शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में खोलने के विरुद्ध थे। 14 बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद शाखा विस्तार नीति में परिवर्तन किया गया और बैंक शाखाएं ग्रामीण और अल्प विकसित क्षेत्रों में खोली जाने लगीं। जून 1969 में 22.2 प्रतिशत शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में थीं जो बढ़कर 2007 में 42.9 प्रतिशत तक पहुंच गयीं।

4.6 विभिन्न प्राकृतिक संसाधन और आजादी के पश्चात् उनकी प्रगति

भारत के प्राकृतिक संसाधनों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है

4.6.1 भूमि एवं मिट्टियां-भारत की कुल भूमि 32.87 लाख वर्ग किलोमीटर है जो विश्व की कुल भूमि का 2.4 प्रतिशत है । इस पर विश्व की 17.5 प्रतिशत जनसंख्या निवास

करती है। यहां कुल भूमि का 52.7 प्रतिशत कृषि कार्यों में व 19.27 प्रतिशत भाग में वन हैं, शेष भाग में नगर, कस्बे, खनिज पदार्थ, उद्योग हैं अथवा वह भूमि उपयोग के योग्य नहीं है। भारत में अनेक प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं जो विभिन्न प्रकार की फसलें पैदा करने में सक्षम हैं। योजना आयोग के अनुसार भारत में 27 प्रकार की मिट्टियां पायी जाती हैं। इस दृष्टि से भारत के प्राकृतिक संसाधनों को सर्वोत्तम कहा जाता है।

4.6.2 वन संसाधन-भारत में कुल भूमि के 6.41 लाख वर्ग किलोमीटर भाग में वन पाए जाते हैं जो कुल भूमि का लगभग 19.27 प्रतिशत हैं। इनसे हमें लकड़ी, उद्योगों को कच्चा माल, औषधियां, चारा तथा सरकार को भारी मात्रा में राजस्व की प्राप्ति होती है। इनसे जलवायु में सहायता मिलती है। वन मिट्टी के कटाव को रोकते हैं, रेगिस्तान को रोकने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इनके विदोहन के साथ-साथ इनका विकास भी अत्यन्त आवश्यक है।

4.6.3 जल संसाधन-प्रत्येक देश की आर्थिक क्रियाओं की सक्रियता जल पर ही निर्भर करती है। कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्रों के साथ-ही जल मानव जीवन के लिए परम आवश्यक तत्व है। भारत में अनुमानतः 310 करोड़ एकड़ फीट जल वर्षा से प्राप्त होता है जिसका एक तिहाई भाग भाप बनकर उड़ जाता है। 45 प्रतिशत नदियों में बह जाता है, और शेष जल को भूमि सोख लेती है। यद्यपि भारत जल की दृष्टि से एक सम्पन्न राष्ट्र कहा जा सकता है, तथापि भारत में अभी भी जितनी भूमि पर खेती होती है, उसके 37 प्रतिशत भाग को ही सिंचाई-सुविधाएं प्राप्त हैं। इसका कारण जल का उचित नियोजन न होना है।

4.6.4 खनिज संसाधन-विकसित देशों की प्रगति का रहस्य इन देशों में खनिज संसाधनों की प्रचुरता है। आज सैकड़ों वस्तुओं के उत्पादन में खनिज पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। देश के विकास के लिए लोहा, कोयला, पैट्रोलियम अत्यन्त आवश्यक हैं जो खनिज पदार्थों से मिलते हैं। इनके अतिरिक्त सोना, चांदी, मैगनीज, तांबा, सीसा, जस्ता, अल्युमिनियम, पोटाश, अभ्रक, टिन, थोरियम व यूरेनियम का आधुनिक युग में अत्यधिक महत्व है। इनमें से अधिकांश के उत्पादन में भारत आत्मनिर्भर है, लेकिन खनिज पदार्थों के उपयोग की दृष्टि से भारत अभी भी विकसित देशों की तुलना में काफी पीछे है।

4.6.5 शक्ति के संसाधन-आधुनिक समय में आर्थिक विकास के लिए शक्ति के संसाधनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। इन संसाधनों में जीव, लकड़ी, गोबर, परमाणु, विद्युत,

कोयला व तेल प्रमुख हैं। पैट्रोलियम के अतिरिक्त भारत सभी शक्ति-संसाधनों में आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न:

1.अधो-संरचना के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं है-

(अ) डाकघर (ब) अस्पताल

(स) स्कूल (द) कोयला

2.निम्न में से कौन-सा प्राकृतिक संसाधनों की श्रेणी में नही आता:

(अ) खनिज (ब) भूमि

(स) जलवायु (द) आभूषण

3.कौन-सा तत्व खनिज पदार्थ नहीं है:

(अ) कोयला (ब) ईंट

(स) पैट्रोलियम (द) लोहा

4.कौन-सा पदार्थ धातु की श्रेणी में आता है:

(अ) कोयला (ब) कैरोसीन

(स) तांबा (द) कोई नहीं

अति लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. विचार या भाव संप्रेषण के माध्यम को किस नाम से जाना जाता है ?
2. भारत में प्रथम रेल की शुरुआत कब हुई ?
3. शिक्षा व्यवस्था के मुख्यतः कौन से तीन स्तर हैं ?
4. परिवहन के विभिन्न साधनों के नाम बताइये।

लघु उत्तरीय प्रश्न:

1. रेलों के विकास पर 50 शब्दों में अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. भारत के सड़क परिवहन की वर्तमान स्थिति क्या है ?
3. वर्तमान में चिकित्सालयों के विभिन्न कार्यों का उल्लेख कीजिए।
4. कम्प्यूटर के विभिन्न उपयोग कौन-कौन से हैं ?

4.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिशीलता प्रदान करने में अधो-संरचना तथा प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण रही है। आज विश्व की अर्थव्यवस्थाओं में, भारतीय अर्थव्यवस्था को उच्च 12वें स्थान पर देखा जा रहा है तो इसका प्रमुख कारण है, यहां पर प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता और उन प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन करके अधो-संरचनात्मक ढांचे का विस्तार। यदि भूमि, वन, जल जैसे प्राकृतिक संसाधन न केवल अर्थव्यवस्था, अपितु हमारे जीवन का प्राणतत्व है। कोयला, पैट्रोलियम तथा विभिन्न प्रकार की धातुएं जैसे खनिज औद्योगिक क्षेत्र को संजीवनी प्रदान करते हैं। इसी प्रकार अस्पताल हमें शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ रखते हैं तो शिक्षण केन्द्र हमें मानसिक रूप से उन्नत व प्रगतिशील बनाने का कार्य करते हैं। परिवहन सेवाएं, पत्रालय, दूरभाष, कम्प्यूटर हमारे व्यावसायिक व व्यावहारिक क्रियाकलापों को सुगम व तीव्रगामी बनाने में उपयोगी हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि भारत की अर्थव्यवस्था को बेहतर आकार प्रदान करने में अधो-संरचनात्मक ढांचा तथा यहां के प्राकृतिक संसाधनों की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।

4.8 शब्दावली

अधो संरचना-यह आधार संरचना का समानार्थी है। प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था की उन्नति अधो-संरचनात्मक ढांचे की प्रगति पर ही निर्भर करती है।

प्राकृतिक संसाधन-प्रकृति द्वारा प्रदान की गयी सुविधाओं (जिनके लिए हमें कोई मूल्य नहीं चुकाना पड़ता है) को प्राकृतिक संसाधन की संज्ञा दी जाती है। इस श्रेणी में भूमि, जलवायु, खनिज पदार्थ जैसे- पैट्रोलियम, कोयला, लोहा, तांबा, जस्ता, सोना, हीरा, चांदी आदि सम्मिलित हैं।

खनिज-खनन से खनिज शब्द बना है। खनन का अर्थ है- खोदना। अतः जमीन की खुदाई करके प्राप्त किये जाने वाले पदार्थों को खनिज पदार्थ या खनिज तत्व कहा जाता है। पैट्रोलियम, धातुएं आदि को मूल रूप से जमीन को खोदकर ही निकाला जाता है। धरती के भीतर अनेक प्रकार के खनिज तत्व जगह-जगह भरे पड़े हैं। इसी आधार पर धरती को रत्नगर्भा भी कहा जाता है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहां कोई न कोई तत्व धरती के अन्दर न हो।

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न- 1. कोयला; 2. आभूषण; 3. ईंट; 4. कैरोसिन

अति लघु उत्तरीय प्रश्न-1. संचार; 2. 1853;

3. प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा ;4.रेल, सड़क, वायु एवं जल या सामुद्रिक परिवहन।

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
4. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

4.11सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Dhingra, Ishwar C. (2005); The Indian Economy : Environment and Policy; Sultan Chand & Sons; New Delhi.
- Dixit, A.K. (996); The Making of Economic Policy, The MIT Press.
- Gwartney, James D. and Stroup; Richard, L. (1992); Economics : Private and Public Choice, 6th Ed.

4.12 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भूमि तथा खनिज कैसे संसाधन हैं? इनके महत्व एवं प्रयोग पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक संसाधनों की भूमिका को दर्शाइये।
3. क्या अधो-संरचनात्मक ढांचे का विकास किये, एक देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जा सकता है? यदि नहीं तो क्यो?

इकाई 5 गरीबी

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 गरीबी: आशय
5.4 गरीबी की माप
5.5 भारत में गरीबी का अनुमान
5.6 राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी का परिदृश्य
5.7 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ एवं कार्यक्रम
5.8 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन
5.9 सांराश
5.10 शब्दावली
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह पांचवी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों से आपको अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में गरीबी एक प्रमुख आर्थिक समस्या के रूप में विद्यमान है। गरीबी की माप करने के लिए निरपेक्ष प्रतिमान के आधार पर प्रतिदिन कैलोरी के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त करने वालों को गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है। यहाँ आगे गरीबी का आशय उसे जुड़े कारणों, समस्याओं एवं नीतियों का उल्लेख भी किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप गरीबी को सामान्य दृष्टि से समझा सकेंगें। आप यह भी समझा सकेंगें कि गरीबी के क्या कारण, इसके प्रमुख प्रकार एवं इसके क्या दुष्प्रभाव है। देश और राज्यों में गरीबी का विश्लेषण कर सकेगें है और इससे जुड़ी नीतियों एवं कार्यक्रमों को भी जान सकेंगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- गरीबी के आशय को जान सकेंगें।
- भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगें।
- भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगें।
- सरकार द्धारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगें।

5.3 गरीबी: आशय

1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे विरासत में मिली एक पंगु अर्थव्यवस्था जिसमें गरीबी की जड़े बरगद के वृक्ष के समान पनप चुकी थी। सरकार के सामने समस्या थी कि कैसे अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाये भारत में आर्थिक विकास की इन समस्याओं को हल करने लिए बाजार व्यवस्था के साथ नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना। और 1951 से पहली पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ किया। अब तक दस पंचवर्षीय योजना पूर्ण हो चुकी हैं और ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना चल रही है।

गरीबी से आशय उस सामाजिक अवस्था से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित रहता है। जब समाज का एक भाग न्यूनतम जीवन स्तर से भी नीचे जीवन यापन के लिए विवश होते है तो यह स्थिति गरीबी की स्थिति कहलाती है। विश्व के सभी देशों में गरीबी को परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। परन्तु इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन स्तर की कल्पना है। यद्यपि गरीबी को कई दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयास किया जाता है। एक दृष्टिकोण में गरीबी को आधारिक सुविधाओं यथा भोजन, आवास, शिक्षा तथा चिकित्सा से सम्बद्ध कर परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। आय के स्तर पर विचार किए बिना यदि किसी परिवार में इस आधारिक सुविधाओ की कमी रहती है तो उस परिवार को गरीब माना जाता है । इस दृष्टिकोण का सबसे बडा दोष यह है, कि इसमें वे भी परिवार गरीबी की सूची में सम्मिलित कर लिए जाते है जिनकी आय अधिक है परन्तु अपनी बुनियादी आवश्यकताओं पर व्यय नहीं करते है। और दूसरी ओर वे परिवार सम्मिलित नहीं होते है जिनकी आय तो नगण्य है परन्तु वे ऋण, पूर्व बचत को कम करके रिश्तेदारों और मित्रों से सहायता लेकर अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करते है। एक दूसरे दृष्टिकोण में एक परिवार की न्यूनतम आवश्यकताओं का आकलन तथा फिर एक आधार वर्ष की कीमत के आधार पर अपेक्षित आय में रुपांतरित कर दिया जाता है। भारत में इसी दृष्टिकोण के आधार पर गरीबी को परिभाषित किया जाता है।

इस प्रकार गरीबी की धारणा एक बहुआयामी तथ्य है। यह केवल आय व उपभोग स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास व उचित रहन-सहन के स्तर से वंचित रहने की स्थिति से भी सम्बन्धित है।

5.4 गरीबी की माप

गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है जो इस प्रकार हैः

सापेक्षित प्रतिमान: गरीबी के सापेक्षित माप के अन्तर्गत देश की जनसंख्या की सम्पत्ति उपभोग अथवा आय स्तर के आधार पर विभिन्न क्रमिक वर्गो में विभक्त किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त वर्गों को सम्पति, आय, उपभोग के बढ़ते या घटते हुए स्तरो के आधार पर क्रमबद्व किया जाता है। तत्पश्चात उच्चतम 5 प्रतिशत या 10 प्रतिशत निवासियों के अंश से की जाती है। सापेक्षित प्रतिमान के आधार पर प्राप्त जानकारी गरीबी की अपेक्षा आय, सम्पत्ति तथा उपभोग के वितरण में व्याप्त विषमता का बेहतर चित्रण करती है। इसकी सीमा यह है कि इसके द्वारा गरीबी की माप करने पर विकसित देशों में भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी की श्रेणी में आयेगा। यद्यपि उन देशों के गरीबों के रहन सहन का स्तर विकासशील देशों के गरीबों की तुलना में अधिक बेहतर होगा। वस्तुतः

यह प्रणाली गरीबी की वास्तविक माप का चित्रण नहीं करके आर्थिक विषमता का चित्रण करती है। यही कारण है कि भारत में गरीबी की माप इस विधि से नहीं की जाती है।

निरपेक्ष प्रतिमान: गरीबी माप की इस विधि के अर्न्तगत गरीबी की माप के लिए देश में विद्यमान एक न्यूनतम उपभोग स्तर को जीवन यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। न्यूनतम उपभोग स्तर से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति को गरीबों की श्रेणी में रखा जाता है। भारत में इस न्यूनतम उपभोग स्तर को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी है। गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए जीवन यापन हेतु अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं की न्यूनतम मात्रा को पोषकता की न्यूनतम मात्रा के आधार पर ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भौतिक मात्राओं की कीमत से गुणा करके मुद्रा के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। प्राप्त मौद्रिक मान प्रति व्यक्ति न्यूनतम उपभोग व्यय को प्रदर्शित करता है। यही न्यूनतम उपभोग व्यय गरीबी रेखा को व्यक्त करता है। गरीबी रेखा में सम्मिलित व्यय न्यूनतम उपभोग व्यय गरीबी रेखा को व्यक्त करता है। गरीबी रेखा में सम्मिलित व्यय न्यूनतम आवश्यक पोषकता प्रदान करने वाले खाद्य पदार्थो पर किए जाने वाले व्यय को प्रदर्शित करता है। इस व्यय में अनिवार्य आवश्यकताओं यथा वस्त्र, आवास तथा ईधन पर किए जाने वाले व्यय को सम्मिलित नहीं किया जाता है। अत; गरीबी रेखा केवल जीवन यापन हेतु आवश्यक खाद्य पदार्थो पर किए जाने वाले व्यय से संबधित होती है। ज्ञातव्य है कि गरीबी की माप के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग सर्वप्रथम खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रथम महानिदेशक ब्याएड आर ने 1945 में किया तथा इसके आधार पर गरीबी की माप करने के लिए क्षुधा रेखा की संकल्पना का प्रतिपादन किया। यही संकल्पना विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

भारत में गरीबी की माप करने के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का ही प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रतिमान के आधार पर निर्धारित किए गये न्यूनतम उपभोग व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी जाती है। इस विधि के माध्यम से गरीबी की माप करने की विधि को हेड काउंट रेशियो भी कहा जाता है।

योजना आयोग द्वारा आंकलित गरीबों की संख्या को लेकर विवाद बना रहता है। 1989 में योजना आयोग ने प्रसिद्व अर्थविद डी0 टी0 लकड़वाला की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ दल द्वारा योजना आयोग के पूर्व आँकडों को अविश्वसनीय बताते हुए गरीबी की माप के लिए वैकल्पिक फार्मूले का उपयोग करने का सुझाव दिया। जिसके अंतर्गत शहरी गरीबी के आंकलन के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक एवं ग्रामीण क्षेत्रो में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को आधार बनाया। 11 मार्च 1997 को योजना आयोग की पूर्ण बैठक में गरीबी रेखा की माप के लिए लकड़वाला फार्मूले को स्वीकार कर लिया गया।

बृहद अर्थो में गरीबी से आशय उस सामाजिक क्रिया से है जिसमें समाज का एक भाग निश्चित न्यूनतम उपभोग का स्तर प्राप्त करने में असफल रहते है। इस न्यूनतम उपभोग के लिए आवश्यक आय के विषय पर अर्थशास्त्री एकमत नहीं है। इस कारण हमारे देश में योजना आयोग द्वारा गरीबी निर्धारण के सम्बन्ध में एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार संबंधी जरुरतो को घ्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार "जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।" जो व्यापक गरीबी की स्थिति को बताता है। जिसका विद्यमान होना चिन्ता का विषय है। इसी अवधारणा पर आधारित योजना आयोग राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एवं विश्व बैंक द्वारा उपभोग व्यय से सम्बन्धित जो जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी के अनुमापन का प्रयास किया गया।

5.5 भारत में गरीबी का अनुमान

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के विभिन्न दौर पर किए गये सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों से सामान्य गरीबी का विश्लेषण तालिका 5.1 एवं 5.2 के आधार पर करते हैं तो गरीबी के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष पाया गया- समग्र गरीबी का अनुपात 1993-94 से 2004-05 की अवधि के दौरान 36.0 प्रतिशत से कम होकर 27.5 प्रतिशत हो गया अर्थात् इसमें 8.50 प्रतिशत की कमी हुई जो इसके पूर्व की अवधि 1983-84 से 1993-94 के बीच भी 44.5 प्रतिशत से कम होकर 36.0 प्रतिशत अर्थात् इसमें भी 8.5 प्रतिशत की कमी हुई। शहरी क्षेत्र में यह अनुपात 1983-84 से 1993-94 की अवधि में 40.8

तालिका 5.1 : समग्र देश में विभिन्न वर्षो में गरीबी का अनुमान (वर्ष 1983-84 से 2004-05)

वर्ष	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी
1973-74	54.9	56.4	49.0
1983-84	44.50	45.70	40.80
1993-94	36.0	37.30	32.40
2004-05	27.5	28.30	25.70

स्रोत: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

प्रतिशत से कम होकर 32.4 प्रतिशत अर्थात् 8.4 प्रतिशत की कमी जो वर्ष 1993-94 से 2004-05 में 32.4 प्रतिशत से कम होकर 25.7 प्रतिशत अर्थात् इसमें 6.7 प्रतिशत की कमी हुई। ग्रामीण क्षेत्र में यह अनुपात 1983-84 से 1993-94 की अवधि में 45.7 प्रतिशत से कम होकर 37.3 प्रतिशत अर्थात् 8.4 प्रतिशत की कमी हुई वर्ष 1993-94 से 2004-05 में 37.3 प्रतिशत से कम होकर 28.3 प्रतिशत अर्थात् 9.0 प्रतिशत की कमी हुई। इसके साथ, शहरों में 8.1 करोड़ गरीब रहते थे जो कुल गरीबों का 26.8 प्रतिशत और ग्राम क्षेत्रों में 22.1 करोड़ गरीब रहते थे जो कुल गरीबों का 73.2 प्रतिशत है देश में गरीबों की कुल संख्या 30.2 करोड़ थी।

तालिका 5.2 गरीबी में परिर्वतन (वर्ष 1973 से 2005)

प्रतिशत में	दस वार्षिक			वार्षिक		
वर्ष	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी	समग्र भारत	ग्रामीण	शहरी
1973-83	10.40	10.70	8.20	1.00	1.10	0.80
1983-94	8.50	8.40	8.40	0.83	0.81	0.87
1994-2005	8.50	9.00	6.90	0.78	0.80	0.59

स्रोत: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

इन आँकड़ों के विश्लेषण (तालिका 5.2) से यह निश्चित होता है वर्ष 1984-94 में समग्र भारत में गरीबी में कमी की दर जहाँ 0.83 प्रतिशत वार्षिक थी। वह वर्ष 1994से 2005 में कुछ मात्रा में घट कर 0.78 प्रतिशत वार्षिक हो गई। उन्ही वर्षो में ग्रामीण क्षेत्र में 0.81 प्रतिशत से घटकर 0.80 प्रतिशत वार्षिक हो गई। वहीं शहरी क्षेत्र में 0.87 प्रतिशत से घटकर 0.59 प्रतिशत वार्षिक रह गई।

5.6 राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी का परिदृश्य

राज्यों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण से प्राप्त आँकडों का विश्लेषण करें तो वर्ष 1993-94 से 2004-05 के युग में बड़ें चुनौती युक्त परिणाम प्राप्त हुए। 61वें दौर में गरीबी रेखा का अनुमापन समग्र भारत के आधार पर प्रति व्यक्ति मासिक व्यय ग्रामीण क्षेत्रों में 358.03 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 540.40 रुपये के आधार पर किया गया। और राज्यों के सन्दर्भ में यह अलग-अलग है जैसा तालिका 5.3 में दिया है।

तालिका 5.3 विभिन्न राज्यों में निर्धारित गरीबी रेखा (2004-05)

राज्य	ग्रामीण	शहरी
आन्ध्र प्रदेश	292.95	544.30
असम	387.64	378.38
बिहार	356.36	461.70
गुजरात	353.93	540.80
हरियाणा	414.76	504.20
हिमाचल प्रदेश	394.20	504.20
जम्मू व कश्मीर	391.26	504.20
कर्नाटक	324.17	603.50
केरल	429.07	562.00
मध्य प्रदेश	324.48	569.00
महाराष्ट्र	362.25	664.50
उड़ीसा	325.65	544.00
पंजाब	410.38	456.10
राजस्थान	374.57	531.10
तमिलनाडू	351.86	551.70
उत्तर प्रदेश	369.76	487.10
पश्चिम बंगाल	382.82	446.10
सम्पूर्ण भारत	358.03	540.40

स्रोत: राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन

राज्यों के सन्दर्भ में गरीबी के ज्ञात तथ्यों का तालिका 5.4 के के आधार पर विश्लेषण करते है तो निम्न निष्कर्ष प्राप्त होते है।

तालिका 5.4 विभिन्न राज्यों में गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या
(वर्ष 1993-94 से 2004-05)

राज्य	ग्रामीण		शहरी		कुल	प्रतिशत
	1993-94	**2004-05**	**1993-94**	**2004-05**	**1993-94**	**2004-05**
जम्मूकश्मीर	30.3	4.6	9.2	7.9	25.2	5.4
पंजाब	11.9	9.1	11.4	7.1	11.8	8.4
हिमाचल प्रदेश	30.3	10.7	9.2	3.4	28.4	10.0
हरियाणा	28.0	13.6	16.4	15.1	25.1	14.0
दिल्ली	1.9	6.9	16.0	13.2	14.7	14.7
केरल	25.8	13.2	24.5	20.2	25.4	15.0
आन्ध्र प्रदेश	15.9	11.2	38.3	28.0	22.2	15.8
गुजरात	22.2	19.1	27.9	13.0	24.2	16.8
असम	45.0	22.3	7.7	3.3	40.9	19.7
राजस्थान	26.5	18.7	30.5	32.9	27.4	22.1
तमिलनाडु	32.5	22.8	39.8	22.2	35.0	22.5
प0 बंगाल	40.8	28.6	22.4	14.8	35.7	24.7
कर्नाटक	29.9	20.8	40.1	32.6	33.2	25.0
महाराष्ट्र	37.9	29.6	35.2	32.2	36.9	30.7
उ0 प्र0	42.3	33.4	35.4	30.6	40.9	32.8
म0 प्र0	40.6	36.9	48.4	42.1	42.5	38.3
बिहार	58.2	42.1	34.5	34.6	55.00	41.4
उड़ीसा	49.7	46.8	41.6	44.3	48.6	46.4
उत्तराखण्ड	....	40.8	....	36.5	....	39.6
सम्पूर्ण भारत	37.3	28.3	32.4	25.7	36.00	27.5

स्रोत: योजना आयोग एवं राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण

- गुजरात और तमिलनाडु ऐसे राज्य थे जहाँ 1993-94 में ग्रामीण गरीबी शहरी गरीबी से कम थी, परन्तु वर्ष 1993 से 2004 में शहरी गरीबी में विशेष कमी हुई उस रुप में ग्रामीण गरीबी नहीं घटी।
- अनेक सम्पन्न राज्यों में शहरी गरीबी में जिस अनुपात में कमी हुई उस अनुपात में ग्रामीण गरीबी में कमी नहीं हुई जैसे आन्ध्रप्रदेश में ग्रामीण गरीबी में कमी 4.7 प्रतिशत की हुई जबकि शहरी गरीबी में 10 प्रतिशत की कमी हुई। गुजरात में ग्रामीण में 3.1 प्रतिशत और शहरी गरीबी में 14.9 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई और तमिलनाडु में ग्रामीण गरीबी में 9.7 प्रतिशत की एवं शहरी गरीबी में 17.6 प्रतिशत की कमी हुई।
- दिल्ली ऐसा प्रदेश रहा जहाँ ग्रामीण गरीबी 1.9 प्रतिशत से बढ़कर 6.9 प्रतिशत हो गई।
- जम्मू कश्मीर,पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, केरल, असम, राजस्थान, प0 बंगाल एवं कर्नाटक में ग्रामीण गरीबी में विशेष सुधार हुआ।
- हिमाचल प्रदेश (5.8), आन्ध्र प्रदेश (10.3), गुजरात(14.9), तमिलनाडु (17.6), पं0 बंगाल (7.6), कर्नाटक (7.5) आदि सम्पन्न राज्यो में शहरी गरीबी में दस प्रतिशत से अधिक या उससे थोडी कम की कमी हुई।
- गरीबी का सर्वाधिक प्रतिशत उड़ीसा में 46.4 प्रतिशत था और सबसे कम अनुपात जम्मू और कश्मीर में 5.4 प्रतिशत था।
- महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और उत्तराखण्ड में गरीबी अनुपात 30 प्रतिशत से अधिक था। जबकि झारखण्ड, छत्तीसगढ, बिहार और उड़ीसा में गरीबी अनुपात 40 प्रतिशत से अधिक रहा। और दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और जम्मू और कश्मीर ऐसे राज्य थे जहाँ गरीबी अनुपात 15 प्रतिशत से भी कम है।

5.7 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ

भारतीय संविधान और पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक न्याय को सरकार की रण नितियों का प्राथमिक उद्देश्य माना है। **प्रथम योजना (1951-56)** में ही यह विचार व्यक्त किया गया था कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की अतः प्रेरणा का उदय गरीबी और आय, संपत्ति तथा अवसरों की असमानताओं से होता है। और माना गया आर्थिक विकास की प्रक्रिया के बढ़ने के साथ रिसाव

सिद्धान्त प्रभावी हो जायेगा एवं गरीबी और आय, सम्पत्ति की असमानता में कमी आएगी। **दूसरी योजना (1956-61)** में भी कहा गया है, “आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम भाग्यशाली वर्गो तक पहुँचना चाहिए। प्राय सरकार के सभी नीति विषयक प्रपत्रों में गरीबी निवारण और अपनाई जाने वाली रणनीतियों की चर्चा हुई है । इस सन्दर्भ में सरकार गरीबी निवारण के लिए त्रि-आयामी नीति अपनाई। प्रथम संवृद्धि आधारित जो प्रथम, दूसरी एवं तीसरी योजना में रही जो राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि का प्रभाव धीरे -2 गरीबी वर्ग तक पहुँचने पर आधारित था। जिसमें चुने क्षेत्रों का तीव्र औद्योगिक विकास हो एवं **तीसरी योजना (1961-66)** में लागू हरित क्रान्ति से कृषि का पूर्ण काया-कल्प कर समाज के अधिक पिछड़े वर्गो को लाभान्वित करना था। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में बहुत वृद्धि न हो सकी एवं साथ ही धनी एवं गरीबी की खाई और बढ़ गई। हरित क्रान्ति ने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के बीच खाई को और चौड़ा किया। जबकि भूमि के पुर्नवितरण की इच्छा तथा योग्यता का अभाव था। इस तरह **चौथी योजना (1969-74)** तक गरीबी के निवारण हेतु प्रत्यक्ष कार्यवाही की जगह अप्रत्यक्ष नीति का सहारा लिया जाता रहा ।

पाँचवी योजना (1974-1979) में प्रथम बार गरीबी से मुक्ती को मुख्य उद्देश्य माना गया। योजना के अर्न्तगत गरीबी निवारण, स्वालम्बन की प्राप्ति, आय की विषमताओं में कमी और गरीबों के उपभोग स्तर में वृद्धि के मुख्य लक्ष्य नियत किए थे। **छठी योजना (1980-85)** में भी गरीबी निवारण को महत्ता प्रदान की गई। विकास कार्यक्रमो में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की सामाजिक आर्थिक अन्तसंरचना को सुदृढ़ करने, ग्रामीण गरीबी का निवारण एवं क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के लिए विशिष्ट कार्यक्रम संचालित किए ।

इसी तरह **सातवीं योजना (1985-90)** में खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि,रोजगार अवसरों में वृद्धि, आधुनिकीकरण, स्वालम्बन व सामाजिक न्याय के आधारभूत सिद्धान्त के आधारभूत सिद्धान्त के आधार पर उत्पादकता में वृद्धि आने पर बल दिया गया जिससे गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार सम्भव हो इसी रणनीति के तहत गरीबी से सन्दर्भित अनेक कार्यक्रम चलाये गयें ।

आठवीं योजना (1992-97) में नियोजित विकास हेतु **‘मानव विकास’** को मुख्य रूप से ध्यान की स्थितियों में गिरावट की ओर ध्यान देते हुए न्याय संगत सामाजिक स्थिति के पुनरूस्थापन पर जोर दिया गया। यह सुनिश्चित किया गया कि योजना के केन्द्र में, आम लोगों की आवश्यकताएँ व उनका जीवन स्तर सुधार का लक्ष्य रहे। इसके लिए काम के अधिकार, ग्रामीण विकास की अनिर्वायता, विकेन्द्रीकरण व एकीकृत क्षेत्र आयोजना, कृषि का विकास, शहरी गरीबी व बेरोजगारी

का निवारण व सामाजिक विकास शिक्षा व स्वास्थ्य के स्तर में परिवर्तन, खाद्य व सामाजिक सुरक्षा का बेहतर स्थिति व जनसंख्या नियत्रंण की रणनीति प्रस्तावित की गयी।

नवीं योजना (1997-2002) में उन योजना को प्राथमिकता के आधार पर लागू किया गया जों कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गयी जिससें गरीबी का निवारण हो सके। इसके साथ ही योजना हेतु र्निदिष्ट स्कीमों में श्रम गहन होने पर जोर दिया गया जो दीर्घकालीन धारणीय लाभ प्रदान कर सके। योजना काल में आरम्भ किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के द्वारा जो संरचनात्मक सुधार लागू हुए उनका ध्येय भी गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार करना ही था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) के दौरान तीव्र वृद्धि के साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी में बड़ी कमी का लक्ष्य रख गया। योजना में 8 प्रतिशत वार्षिक विकास का लक्ष्य रखा गया। इसके साथ प्राथमिक शिक्षा व साक्षरता में वृद्धि करना, स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई। परन्तु जहाँ वृद्धि दर 7.6 प्रतिशत प्राप्त हुई लेकिन गरीबी निवारण कार्यक्रमों में उतनी सफलता नहीं प्राप्त हुई जितनी आशा थी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2002-12) में समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ शुरू की गई है। जिसमें गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार के अनेक दीर्घकालीन कार्यक्रमों को लगू किया गया है और इसे इस प्रकार क्रियान्वित किया जाना है कि आर्थिक व सामाजिक विकास में राज्यों के बीच अन्तर समाप्त हो जाए।

गरीबी निवारक कार्यक्रम

गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। इसमें से अधिकांश कार्यक्रम भौतिक सम्पदा के निर्माण जैसे- ग्रामीण आधारिक संरचना के अन्तर्गत सड़क, पीने का पानी की सुविधाओं, सीवरेज आदि से जुड़े है जबकि अन्य को स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित करना तथा व्यापार प्रारम्भ करने हेतु सहायता प्रदान करना है। स्वयं सहायता समूह भी लोगों के सतत् विकास हेतु प्रयत्नशील है।

गरीबी निवारक कार्यक्रम

कार्यक्रम	वर्ष	उद्देश्य
सघन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP)	1960-61	कृषकों को बीज, उर्वरक, औजार और ऋण उपलब्ध करना।
साख अधिकरण योजना (CAS)	1995	RBI की चयनात्मक साख नीति

		की एक योजना
बहु फसली कार्यक्रम	1966-67	कृषि उत्पादन में वृद्धि करना
विभेदीकृत ब्याजदर योजना	1972	समाज के कमजोर वर्गो को रियायती दर 4 प्रतिशत पर ऋण उपलब्ध कराना।
ग्रामीण रोजगार के लिए नकद योजना	1972- 74	ग्रामीण विकास हेतु
मरूभूमि विकास कार्यक्रम	1977-78	मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरण सन्तुलन
काम के बदले अनाज कार्यक्रम	1977-78	विकास प्रक्रियाओं के काम हेतु खाद्यान्न देना।
अन्तोदय कार्यक्रम	1977-78	राजस्थान में गांव के सबसे गरीब परिवारों को स्वाबलम्बी बनाना।
ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु ग्रामीण प्रशिक्षण कार्यक्रम (TRYSEM)	15अगस्त 1979	युवा वर्ग की बेरोजगारी को दूर करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम
समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP)	12 अक्टूबर 1980	ग्रामीण निर्धन परिवारों को स्वरोजगार हेत ऋण उपलब्ध कराना।
राष्ट्रीय ग्राम्य रोजगार कार्यक्रम	1980	ग्रामीण निर्धनों को लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना
ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बाल विकास(NREP)	1982	BPL ग्रामीण परिवारों की महिलाओं को कार्यक्रम स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (RLEGP)	15 अगस्त 1983	भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
इन्दिरा आवास योजना	1985-86	ग्रामीण क्षेत्रों में गृह निमार्ण हेतु।
शहरी निर्धनों हेतु स्वरोजगार कार्यक्रम	1986	स्वरोजगार हेतु वित्तीय एवं तकनीकी मद्द
सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण	1988	ग्रामीण क्षेत्रों के लिए नई साख नीति।
प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम	1988	ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में शिक्षा विस्तार

नेहरू रोजगार योजना	अक्टूबर 1989	नगरीय बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।
जवाहर रोजगार योजना	अप्रैल 1989	ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।
कृषि एवं ग्रामीण ऋण राहत योजना	1990	ग्रामीण कुशल श्रमिकों, कारीगरों बुनकरों को 10000रु0 तक ब्याज मुक्त ऋण देना।
शहरी सूक्ष्म उद्यम योजना	1990	शहरी लघु उद्यमियों को वित्तीय सहायता।
शहरी सवेतन रोजगार योजना	1990	एक लाख से कम जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में गरीबों के लिए मूल सुविधा की व्यवस्था करके मजदूरी रोजगार प्रदान करना।
शहरी आवास एवं आश्रय सुधार योजना	1990	1 लाख से 20 लाख की जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में आश्रय उन्नयन के माध्यम से रोजगार प्रदान करना।
रोजगार आश्वासन योजना	1993-94	रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम	1995	विभिन्न योजनाओं द्वारा लोगों को सहायता।
संगम योजना	1996	विकलांगों के कल्याण हेतु।
कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना	15 अगस्त 1997	नीची महिला साक्षरता वाले जिलों में बालिका विद्यालय की स्थापना।
स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना	1 दिसम्बर 1997	शहरी क्षेत्रों में लाभ प्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
जवाहर ग्राम समृद्धि योजना	1अप्रैल, 1999	ग्रामीण निर्धनों का जीवन सुधारना और लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
अन्नपूर्णा योजना	19 मार्च1999	वृद्ध नागरिकों को निःशुल्क अनाज
स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना	1अप्रैल, 1999	सामूहिक प्रयास पर बल। सहायता प्राप्त गरीब व्यक्ति को 3 वर्ष में BPL के ऊपर लाना।
प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना	2000	गाँवों का समग्र विकास।
अन्तोदय योजना	2000	बी.पी.एल .पारिवारिक सर्वाधिक गरीबों

		को अनाज उपलब्ध कराना।
आश्रय बीमा योजना	जून 2001	रोजगार छूटे कर्मचारियों को सुरक्षा कवच प्रदान करना।
सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना	25 सितम्बर 2001	ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का सृजन
बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना	2001, दिसम्बर	शहरी स्लम आबादी को स्वच्छ आवास उपलब्ध कराने हेतु।
सर्वशिक्षा अभियान	2000-01	6-14 वर्ष के सभी बच्चों को 2010 तक निःशुल्क एवं आठवीं तक की प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।
खाद्यान्न बैंक योजना	2001	घोषित ग्राम पंचायत स्तर पर खाद्यान्न बैंक की स्थापना।
प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना	25 दिसम्बर 2000	गाँवों को सडक से जोड़ना।
हरियाली योजना	27 जनवरी 2003	ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षारोपण को प्रोत्साहन।
जवाहर लाल नेहरू नेशनल अरबन	3 दिसम्बर 2005	शहरी अवस्थापना विकास रिनुअल मिशन
राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ अभियान	12अप्रैल 2005	प्राथमिक स्वास्थय सुरक्षा को सुदृढ़ करना।
भारत निर्माण योजना	16 दिसम्बर 2005	ग्रामीण अवसथापना सर्वागीण तथा व्यापक विकास योजना।
नेशनल रूरल लिमलीहुड मिशन	2009-10	SGRY का नया नाम
राजीव आवास योजना	2009-10	स्लमुक्ति से सम्बन्धित
प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम योजना	2009-10	अनुसूचित जाति बहुल ग्राम विकास योजना।
महिला किसान सशक्ति करण योजना	2010-11	ग्रामीण किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु
महात्मागांधी नेशनल रूरल एम्प्लवायमेंट गारन्टी प्रोग्राम (मनरेगा)	2अक्टूबर 2009 मूलतः 2.2.2006	ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार का अधिकार देना

5.8 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारतीय योजनाकारों की आरम्भ से ही यह धारणा थी कि आर्थिक विकास प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी जिसका प्रभाव रिसाव द्वारा नीचे तक स्वंय ही पहुँच जायेगा। जिसके साथ प्रगितिशील करारोपण तथा सार्वजनिक व्यय का कल्याणकारी स्वरूप गरीबी में कमी लायेगा। परन्तु गरीबी निवारण की यह धारणा सफल न हो सकी। इस सन्दर्भ में गरीबी निवारण कार्यक्रम का पूरा ध्यान अतिरिक्त आय के सृजन पर केन्द्रित रहा है । परिवार कल्याण, पैष्टिक आहार, सामाजिक सुरक्षा तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया है । इन कार्यक्रमों में अपाहिज, बीमार तथा उत्पादक रूप से काम करने के अयोग्य लोगों के लिए कुछ नहीं किया गया है । जनसंख्या के लगातार छोटा होता जा रहा है, स्वरोजगार उद्यमों पर या मजदूरों के रोजगार कार्यक्रमों पर निर्भरता सही नहीं है ।

वर्ष 1965-66 के बाद नई कृषि क्रान्ति के आने से गुणात्मक परिवर्तन हुआ। अब कृषि उत्पादन में वृद्धि और अधिक भूमि के कारण नहीं बल्कि गहन खेती के कारण होने लगी। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऐसे परिर्वतन हुए जो गरीबों के लिए हितकर नहीं थे। जैसे मशीनों द्वारा श्रम का प्रतिस्थापन फलस्वरूप रोजगार के अवसर नहीं बढ़ सके। बड़े भूस्वामियों ने छोटे-छोटे काश्तकारों से बटाँई खेती लेकर स्वयं कृषि कार्य करना शुरू कर दिया। बड़े कृषकों की आय बढ़ने एवं मँहगी कृषि आगत से साधन-विहीन सीमांत व छोटे कृषकों की आय घटने से स्थानीय दस्तकारों व कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं की माँग गिरी और लोग ज्यादा गरीब हो गए।

जबकि आवश्यकता इस बात पर ध्यान देने की है कि गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे विभिन्न लोगों के आय स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरिए

1. भारत में .... प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते है।

2. गरीबी रेखा की पुर्न परिभाषा हेतु .... की अध्यक्षता में समिति गठित की गयी है।

3. गरीबी की माप के लिए सामान्यतः..................... का प्रयोग किया जाता है

4.स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना 1 जनवरी ....से प्रारम्भ हुई थी।

5.निर्धनता रेखा मापने का कैलोरी मापदण्ड .... द्वारा दिया गया है।

6.शहरी गरीबी के आंकलन के लिए .... को आधार बनाया।

7.ग्रामीण गरीबी के आंकलन के लिए ....को आधार बनाया।

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1.भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान किस विधि से करते है।

2.निरपेक्ष गरीबी किसे कहते है?

3.नरेगा तथा मनरेगा के पूरे नाम लिखिये।

5.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी है। अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए इसलिए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना गया। गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों सापेक्षित प्रतिमान और निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है। योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न् योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्यओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगें।

5.10 शब्दावली

1. **बी0पी0एल0-** गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगो को कहते है।
2. **गरीबी का दुश्चक्र-** अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास में व्यवधान डालने वाली उन समस्यओं एवं बाधाओं से है जो इन देशों के गरीबी के 'कारण व परिणाम के रूप में' वृत्ताकार आकार में घटित होती रहती है।

3. **प्रति व्यक्ति आय -** राष्ट्रीय आय में कुल जनसंख्या का भाग देने पर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होती है।
4. **मानव विकास सूचकांक -** विकास के तुलनात्मक अध्ययन हेतु मानव विकास रिपोर्ट में संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रम द्वारा (यू.एन.डी.पी.) द्वारा मानव विकास सूचकांक का निर्माण किया गया। इस सूचकांक को जीवन प्रत्याशा, शैक्षिक योग्यता तथा क्रय शक्ति आधारित प्रति व्यक्ति आय को शामिल करके निर्मित किया गया है एवं वर्तमान समय में यह विकास का महत्वपूर्ण पैमाना है।
5. **ग्रामीण विकास -** ग्रामीण स्तर पर सभी को बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराते हुये ग्रामीण जीवन स्तर सुधार करने की प्रक्रिया को ग्रामीण विकास कहते है।
6. **क्रय शक्ति -** खरीदने की क्षमता को कहते है।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरिए 1. 39.6 2. प्रो0 सुरेश तेन्दुलकर 3. दो प्रतिमानों 4.1995. योजना आयोग 6.औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक 6. कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक।

लघु-उत्तरीय प्रश्न 1-देखिए 5.4, 2- देखिए 5.4, 3-देखिए 5.8।

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
2. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation.
3. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
4. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था - सर्वेक्षणतथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.

- business.gov.in/indian_economy/agriculture.
- आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

5.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में गरीबी की समस्या का स्वरूप है? नियोजन काल में लागू किए गये प्रमुख कार्यक्रमों के आधार पर विश्लेषण कीजिए।
2. गरीबी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।
3. गरीबी किसी भी समाज के लिए अभिशाप है?इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।

इकाई 6 बेरोजगारी

इकाई की संरचना

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 बेरोजगारीः आशय
6.4 बेरोजगारी के प्रकार
6.5 बेरोजगारी के दुष्प्रभाव
6.6 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण
6.7 राज्यों में रोजगार का परिदृश्य
6.8 बेरोजगारी दूर करने के सुझाव
6.9 बेरोजगारी को दूर करने के प्रमुख कार्यक्रम
6.10 सांराश
6.11 शब्दावली
6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह छठी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

अर्थव्यवस्था चाहे विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है। बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्वादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बेरोजगारी को सामान्य दृष्टि से समझा सकेंगें। आप यह भी समझा सकेंगें कि बेरोजगारी के क्या कारण, इसके प्रमुख प्रकार एवं इसके दोष और देश में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण कर सकेगें है। आप इससे जुड़ी नीतियों एवं कार्यक्रमों को भी जान सकेंगें।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- बेरोजगारी आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगें।
- भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बेरोजगारी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगें।
- भारत बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगें।
- सरकार द्वारा बेरोजगारी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगें।

6.3 बेरोजगारी : आशय

बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है जिसकी जड़ गहरी पहुंच चुकी है। आज इसका स्परूप दीर्धता की ओर बढ़ता चला जा रहा है। भारत में ही बेकारी नहीं अपितु बेकारी की समस्या विश्वव्यापी है। सामान्यतया जब एक व्यक्ति को अपने जीवन निर्वाह के लिए कोई कार्य नहीं मिलता है तो उस व्यक्ति को बेरोजगार और इस समस्या को बेराजगारी कहते है। दूसरे शब्दों में जब कोई व्यक्ति कार्य करने का इच्छुक है और वह शारीरिक रुप से कार्य करने में समर्थ भी है लेकिन कोई कार्य नहीं मिलता जिससे की वह अपनी जीविका का निर्वाहन कर सके तो इस प्रकार की समस्या

बेरोजगारी की समस्या कहलाती है। हम बेरोजगार जनसंख्या के उस बढ़े भाग को नहीं कहते हैं जो काम के लिए नहीं मिलते जैसे विधार्थी बढ़े उम्र के व्यक्ति घरेलू कार्यो में लगी महिलायें आदि। जैसा प्रो0 पीगू ने कहा है "एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता है। जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो।"

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रकाशन के मुताबिक बेरोजगार शब्द में वे सब व्यक्ति शामिल किये जाने चाहिये जो एक दिये हुए दिन में काम की तलाश में और रोजगार में नहीं लगे हुए हैं किन्तु यदि कोई रोजगार दिया जाय तो काम में लग सकतें है।

समस्या को परिभाषित करने के लिए यह आवश्यक है कि आवश्यकता और साधन के बारे में विस्तृत विवेचन किया जाये। बेरोजगारी के सन्दर्भ में जब हम दृष्टिपात करते है तो पाते है कि रोजगार के अवसरों और रोजगार के साधनों के संख्यात्मक मान में भी बहुत बढ़ा अन्तर है यही अन्तर बेरोजगारी चिन्तन के लिए हमें विवश करता है।

बेरोजगारी मूलरुप से गलत आर्थिक नियोजन का परिणाम है। व्यक्ति जहां संसार में एक मुंह के साथ आता है वही श्रम हेतु दो हाथ भी लाता है। जब तक इन हाथों को श्रम के साधन प्राप्त नहीं होते तब तक अर्थव्यवस्था को पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था नहीं माना जा सकता है।

गाँधी जी का इस संन्दर्भ में विचार सम्पत्ति व्यक्तिगत नहीं होनी चाहिए उत्पत्ति के साधनों पर नियंत्रण होना चाहिए समाज में उपस्थित विभिन्न आर्थिक तत्व को नियोजित ढ़ंग से कुटीर और लघु उद्योगो को प्रश्रय देना चाहिए।

6.4 बेरोजगारी के प्रकार

जब देश में पूँजीं के साधन सीमित होते हैं और काम चाहने वालों की संख्या बराबर बढ़ती जाती हैं तो कुछ व्यक्ति बिना काम के ही रह जाते हैं। क्योंकि उनके लिए पर्याप्त पूँजीं के साधन नहीं होते हैं। इस प्रकार की बेरोजगारी विकासशील देशों में पायी जाती हैं तथा यह दीर्घकालीन होती है। भारत में बेरोजगारी का स्वभाव विशेषतया यही है। इस बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिया हैं, जो निम्नवत है -

- **प्रच्छन्न बेरोजगारी**, बेरोजगारी का वह स्वरूप है जो प्रत्यक्ष रूप में दिखायी नहीं देता और छुपा रहता है भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी कृषि में पायी जाती हैं। जिसमें आवश्यकता से अधिक व्यक्ति लगे हुए हैं। यदि इनमें से कुछ व्यक्तियों को खेती के कार्यों से अलग कर दिया जाता है तो उत्पादन में कोई अन्तर नहीं पड़ता हैं। इसका अर्थ यही है कि इस प्रकार

के व्यक्तियों द्धारा उत्पादन में कोई योगदान नहीं दिया जाता है । ऐसे व्यक्ति प्रच्छन्न बेरोजगारी के अन्तर्गत आते हैं।

- जब किसी व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं मिलता है या पूरा कार्य नहीं मिलता है । तो इसे अल्प रोजगार कहते हैं । जैसे एक इंजीनियरिग की डिग्री प्राप्त व्यक्ति लिपिक या श्रमिक के रूप में कार्य करता हैं तो इसे **अल्प रोजगार** कहते हैं ऐसे व्यक्ति कार्य करता हुआ दिखायी तो देता परन्तु इसकी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं होता है।
- जब व्यक्ति कार्य के योग्य है और वह कार्य करना चाहते है लेकिन उन्हें कार्य नहीं मिलता है तो ऐसी स्थिति को **खुली बेरोजगारी** कहते है। भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी व्याप्त है यहाँ लाखों व्यक्ति ऐसे है जो शिक्षित है तकनीकी योग्यता प्राप्त है लेकिन उनको काम करने का अवसर नहीं मिल रहा हैं।
- **मौसमी बेरोजगारी** इस प्रकार की बेरोजगारी वर्ष के कुछ समय में ही होती है भारत में यह कृषि में पायी जाती हैं। जब खेती की जुताई एवं बुआई का मौसम होता है तो कृषि उद्योग में दिन रात कार्य होता है । इसी प्रकार जब कटाई का समय होता है तो फिर कृषि में कार्य होता है। लेकिन बीच के समय में इतना काम नहीं होता है। अत; इस प्रकार के समय में श्रमिकों को काम नहीं मिलता है। इस बेरोजगारी को मौसमी बेरोजगारी कहते है।
- **शिक्षित बेरोजगारी** खुली बेरोजगारी का ही एक रूप है। इसमें शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार होते हैं। शिक्षित बेरोजगारी में कुछ व्यक्ति अल्प रोजगार की स्थिति में होते है। जिन्हें रोजगार मिला हुआ होता है लेकिन वह उनकी शिक्षा के अनुरूप नहीं होता है। भारत में भी इस प्रकार की बेरोजगारी भी पायी जाती है।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के तीन परिकल्पनाएँ की जाती हैः-

1. **चिरकालिक बेरोजगारी या सामान्य स्थिति**: यह बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या के रुप में माप है जो पूरे वर्ष के दौरान बेरोजगार हो। इसी कारण इस बेरोजगारी को खुली बेरोजगारी के रुप में जाना जाता है।
2. **साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी**: इसे भी व्यक्तियों की संख्या के आधार पर मापन किया जाता है,अर्थात ऐसे व्यक्ति जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक घंटे का भी रोजगार नहीं मिला हो।
3. **दैनिक स्थिति बेरोजगारी**: इसे व्यक्ति दिनों या व्यक्ति वर्षो के रुप में मापन करते है। अर्थात वे व्यक्ति जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान या एक दिन या कुछ दिन रोजगार प्राप्त न

हुआ हो। यह बेरोजगारी की व्यापक माप है । जिसमें सामान्य स्थिति बेरोजगारी और अल्परोजगार दोनो शामिल होते है।

देश में बेरोजगारी के लिए बहुत से कारण जिम्मेंवार होते हैं, इन्हें हम आन्तरिक और बाहरी कारणों में बाँट सकते आन्तरिक कारण श्रमिकों के स्वभाव, शारीरिक, मानसिक व नैतिक कमियों से सम्बन्धित होते है। प्राय; एक व्यक्ति अपनी इच्छा के बावजूद अपनी शारीरिक मानसिक कमजोरियों दोषपूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि के कारण काम पाने में असमर्थ रहता है। इन परिस्थितियों में बेरोजगारी आन्तरिक कारणों का नतीजा होती है। बेरोजगारी के बाहरी कारण भी बहुत से होते हैं। श्रम बाजार में चक्रीय उतार चढ़ाव हो रहा है। मंदी के दिनों में व्यावसायिक क्रियायें एक न्यूनतम स्तर पर होती है और बेरोजगारी बढ़ती है। किन्तु दूसरी ओर तेजी के दौरान व्यावसायिक क्रियाओं का विस्तार होता है और इस समय बेकारी की मात्रा घटने लगती हैं।मंदी और तेजी की ऐसी अवधियॉ विभिन्न कारणों से होती है जिन्हें व्यापार चक्रों के सिद्धान्तों द्धारा स्पष्ट किया जाता हैं।उद्योग में विवेकीकरण की योजनाओं को अपनाया जाना बेरोजगारी को उत्पन्न करता है। इसके अलावा कुछ व्यवसाय व आर्थिक क्रियायें स्वभाव से मौसमी होती है। जैसे बिल्डिग निर्माण या कृषि।अन्त में आकस्मिक श्रम पद्धति भी जिसके अर्न्तगत श्रमिकों को कुछ कार्यों पर सिर्फ व्यवसायिक व्यवस्था के समय ही स्थाई रूप में लगाया जाता है,दूसरे समय ऐसे श्रमिकों के लिए बेकारी पैदा कर दी जाती है।

मोटे तौर से बेरोजगारी के कारणों की व्याख्या के संबंन्ध में **तीन सैद्धान्तिक विचार धाराएँ** पायी जाती है।

1. **पहली विचारधारा** के मुताबिक बेकारी निर्बाध सिद्धान्त अर्थात स्वतंत्र प्रतियोगिता तथा स्वतंत्र व्यापार से डिग जाने का दण्ड होती है।
2. **दूसरी विचारधारा** के मुताबिक बेकारी व्यापार चक्रों के कारणों की जटिलताओं के कारण पैदा होती है। इसे चक्रीये बेकारी के रूप में देखा जाता है।
3. **तीसरी विचारधारा** के मुताबिक बेकारी प्रभावी मांग की कमी उपभोग पर किये जाने वाले पूँजीगत व्यय की कमी या निवेश की कमी या दोनों ही के कारण पैदा होती है।

6.5 बेरोजगारी के दुष्प्रभाव

बेरोजगारी के दुष्प्रभाव बहुत अधिक है। बेरोजगारी से व्यक्ति में यह भावना आती है कि वह समाज के लिए गैर जरूरी है। वह परिवार में अपने को बोझ समझने लगता है। इसी कारण से वह अपराधी तक बन सकता है। किसी देश में निष्क्रिय मानव व्यक्ति का मतलब उत्पादन एवं आय का उस स्तर

से नीचा होना है जिस पर कि वे सभी श्रमिकों को काम पर नहीं लगा सकते है। मानवीय दृष्टिकोण से इस बेरोजगारी का गम्भीर परिणाम व्यक्ति का स्वंय का नुकसान है। इसमें धीरे-धीरे व्यक्ति की कार्य क्षमता ह्रस होता है। उसकी इस शक्ति को यदि उचित रूप में काम में लिया जाये तो यह राष्ट्र के लिए उन्नति समृद्धि एवं सम्पन्नता का साधन बन सकती है।

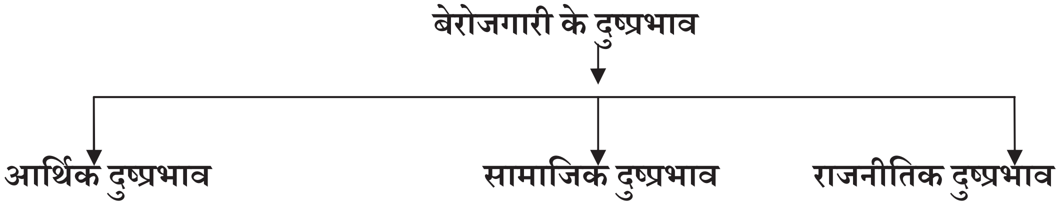

जिस देश में बेरोजगारी होती है उस देश में नयी-नयी सामाजिक समस्यायें जैसे चोरी, डकैती, बेईमानी, अनैतिकता, शराबखोरी, जुआ-बाजी आदि पैदा हो जाती है। जिससे सामाजिक सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है शांति और सुरक्षा की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिस पर सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है। वर्तमान आतंकवाद की समस्या भी मेंरी समझ में किसी न किसी रूप में बेरोजगारी का ही एक परिणाम है।

बेरोजगारी की समस्या देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा करती है। क्योंकि बेकार व्यक्ति हर समय राजनीति उखाड़-पछाड़ में लगे रहते हैं। आज राजनीति से जुड़े हुए बहुत व्यक्ति ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में समाज में अपराधी रहे हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि दबाव और शक्ति से कानून को अपने हाथ में लेना चाहते हैं।

बेरोजगारी के खराब असर बराबर बढ़ते जा रहे हैं। इसीलिए विलयम बेवरिज ने लिखा है कि बेरोजगार रखने के स्थान पर लोगों को गड्ढे खुदवाकार वापस भरने के लिए नियुक्त करना ज्यादा अच्छा है।सार रुप में हमारे देश की बेरोजगारी का कारण उसकी संरचनात्मक अवस्था में निहित है। जो कृषि के अल्प विकास उद्योगो का असंतुलित विकास सेवा क्षेत्र के संकुचित आकार के श्रम की माँग में है जो और रोजगार के अवसर सीमित कर देते है। लोग विद्यमान मजदूरी दर पर कार्य करने को तत्पर है परन्तु फिर भी कार्य की अनुउपलब्धता के कारण वह बेरोजगार हैं ।

6.6 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेषण

देश में रोजगार और बेरोजगारी के संबध में अनुमान लगाने के लिए अधिकांशत वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार का प्रयोग किया गया है। दैनिक स्थिति पर आधारित अनुमान बेरोजगारी की समेंकित दर है जिसमें समीक्षा वर्ष के दौरान एक दिन के आधार पर बेरोजगारी का औसत स्तर

का उल्लेख किया गया है। दैनिक स्थिति के आधार पर रोजगार और बेरोजगारी के अनुमान दर्शाते है जैसा कि तालिका 6.1 में दिया गया है कि वर्ष 1983-1993 के काल में लगभग 74.50 मिलियन कार्य के अवसरों का सृजन हुआ वही वर्ष में 1993 से 2004-05 में लगभग 71 मिलियन कार्य के अवसरो का सृजन हुआ वह भी 1999-2000 से 2004-05 में 46 मिलियन कार्य के अवसरो का सृजन हुआ। रोजगार में वृद्धि इन्हीं वर्षो में 1.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर 2.62 प्रतिशत प्रतिवर्ष प्राप्त हुई। परन्तु बेरोजगारी दर 1983 के 9.22 प्रतिशत से गिरकर 1993-94 में 6.06 प्रतिशत हुई थी। वह 2004-05 में बढकर 8.28 प्रतिशत हो गई परन्तु बेरोजगारों की संख्या

तालिका 6.1 रोजगार और बेरोजगारी मिलियन मानव वर्षो में (वर्ष 1982 से 2004-05)

(दैनिक स्थिति के आधार के अनुसार)

	मिलियन में			**वृद्धि प्रतिवर्ष (प्रतिशत)**		
	1982	1993-94	2004-05	1983 से 1993-94	1993-94 1999-00	1999-00 2004-05
जनसंख्या	718.10	893.68	1092.83	2.11	1.98	1.69
श्रमबल	263.82	334.20	419.65	2.28	1.47	2.84
कार्यबल	239.49	313.93	384.91	2.61	1.25	2.62
बेरोजगारी दर (प्रतिशत)	9.22	6.06	8.28			
बेरोजगारो की संख्या	24.34	20.27	34.74			

स्रोत: राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग

इन्हीं वर्षो में 24.34 मिलियन से गिरकर 20.27 मिलियन थी वह भी बढ़कर 34.74 मिलियन हो गई जबकि जनसंख्या वृद्धि दर 1983 से 1993-94 के दौरान 2.11 प्रतिशत से घटकर 1993-2000 में 1.98 प्रतिशत एवं 1999-2004-05 में 1.69 प्रतिशत ही रह गई।

तालिका 6.2 क्षेत्रीय रोजगार में हिस्सेदारी (वर्ष 1983 से 2004-05)

(वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार पर मिलियनो में)

क्षेत्र	1983		1993-94		2004-05	
कृषि	65.42	207.1	61.03	239.5	52.06	258.8
खनन एवं उत्खनन	0.66	1.8	0.78	2.7	0.63	2.5
विनिर्माण	11.27	32.3	11.10	39.8	12.90	55.9
बिजली, जल आदि	0.34	0.8	0.41	1.4	0.35	1.2
निर्माण	2.56	6.8	3.63	12.1	5.57	26.0
व्यापार, होटल और रेस्तरां	6.98	19.1	8.26	28.4	12.62	49.6
परिवहन, भण्डार और संचार	2.88	7.5	3.22	10.7	4.61	18.6
वित्त, बीमा, स्थावर संपदा और कारोबारी सेवाएँ	0.78	1.98	1.08	3.9	2.00	5.2
सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ	9.10	14.72	10.50	35.9	9.24	40.2
कुल	100.00	302.3	100.00	374.3	100.00	458.0

स्रोत: राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग

एक अन्य विश्लेषण तालिका 6.2 के आधार पर करते है कि वर्ष 1993 से पहले रोजगार में प्राथमिक क्षेत्र की जो सर्वोच्च स्थित थी वह लगातार बनी हुई है, इनके हिस्सेदारी में बहुत ही नाममात्र का परिवर्तन हुआ है कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी जो 1983 में 65.42 प्रतिशत थी वह 1993-94 में 61.03 प्रतिशत और आर्थिक सुधार काल में 2004-05 में 52.06 प्रतिशत पहुँच गई परन्तु इन्हीं वर्षो में संख्या 239.8 मिलियन से बढ़कर 258.8 मिलियन हो गई अर्थात हिस्सेदारी में 8.97 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 21.3 मिलियन की वृद्धि हुई। जबकि खनन एवं उत्खनन सेवाओं में आर्थिक सुधारों के काल (1993-2005) में हिस्सेदारी में 0.15 प्रतिशत और संख्या में 0.2 मिलियन की कमी हुई। इसी प्रकार बिजली जल आदि के क्षेत्र में भी 0.06 प्रतिशत के साथ 0.2 मिलियन की कमी हुई। बल्कि सामुदायिक सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ की हिस्सेदारी 1.26 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 4.3 मिलियन की वृद्धि हुई।

6.7 राज्यों में रोजगार का परिदृश्य

राज्यों में रोजगार का परिदृश्य के संन्दर्भ में विश्लेषण के लिए तथ्यों को तालिका 6.4 एवं 6.5 में दिया गया है इन विश्लेषण से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते है-

1. सम्पन्न राज्य जिनमें पंजाब महाराष्ट्र हरियाणा गुजरात एवं तमिलनाडु शामिल किया गया 1993-94 में रोजगार में हिस्सा 28.6 प्रतिशत था। इन राज्यों में वार्षिक रोजगार में आर्थिक सुधारों के प्राम्भिक वर्षो (1993-94 से 1999-2000) में अत्यंत मंद वृद्धि दर्ज की गई बल्कि तमिलनाडु जैसे राज्य में जिसका कुल रोजगार में हिस्सा 8.1 प्रतिशत था। रोजगार में वर्षिक वृद्धि दर शून्य थी। और महाराष्ट्र में जिसका कुल रोजगार में हिस्सा 10.9 प्रतिशत था, रोजगार में वार्षिक वृद्धि दर मात्र 1 प्रतिशत थी। बाद के वर्षो में इनमें सुधार हुआ परन्तु तमिलनाडु में अभी भी यह मात्र 1.7 प्रतिशत वार्षिक थी।

तालिका 6.4 राज्यों में वार्षिक रोजगार वृद्धि (वर्ष 1993-94 से 2004-05)प्रतिशत में

क्रम	राज्य	रोजगार में हिस्सा	रोजगार वृद्धिदर		
		1993-94	1993-94 से 1999-2000	1999-00 से 2004-05	1993-94 से 2004-05
1	पंजाब	2.3	2.6	2.8	2.7
2	महाराष्ट्र	10.9	1.0	3.4	2.1
3	हरियाणा	1.9	1.2	5.6	3.1
4	गुजरात	5.5	2.3	2.6	2.4
5	तमिलनाडु	8.1	0.0	1.7	0.8
	औसत उच्च पांच	28.6	1.4	3.2	2.2
6	केरल	3.3	1.1	1.3	1.2
7	कर्नाटक	6.3	0.8	3.1	1.8
8	आन्ध्रप्रदेश	10.3	0.2	1.9	1.0
9	पं0 बंगाल	7.6	0.8	3.1	1.8
	औसत मध्यम दर	27.6	0.8	2.4	1.5
10	मध्य प्रदेश	9.1	1.1	2.7	1.8
11	राजस्थान	6.3	0.8	3.0	1.8
12	उ0 प्र0	15.5	1.1	3.8	2.3
13	उड़ीसा	4.1	0.8	2.5	1.6
14	बिहार	9.0	2.0	2.2	2.1
	औसत के नीचे के पांच	43.8	1.1	2.8	1.9
	कुल	100.00	1.0	2.8	1.8

स्रोत: राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण

2- दूसरी तरफ तालिका 6.5 के विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि आर्थिक सुधारो के इस समय (1993-94 से 2004-05) में सम्पन्न राज्यों में विभिन्न क्षेत्रो की रोजगार की हिस्सेदारी में आमूल चूल परिवर्तन हुआ। तमिलनाडु राज्य में 1993-94 में कृषि क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी 52.6 प्रतिशत से घटकर 2004-05 में 41.2 प्रतिशत पहुँच गई अर्थात 11.4 प्रतिशत की कमी दर्ज हुई। वही पंजाब राज्य में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 56.4 प्रतिशत से घटकर 47.4 प्रतिशत रह गई।

तालिका 6.5 राज्यों में क्षेत्रवार रोजगार की हिस्सेदारी (वर्ष 1993-94 से 2004-05)

राज्य	1993-94			2004-05		
	कृषि	विनिर्माण	सेवाएँ	कृषि	विनिर्माण	सेवाएँ
बिहार	76.7	4.9	15.6	68.9	7.2	18.0
उड़ीसा	73.7	7.5	15.0	62.3	11.4	19.1
उ0 प्र0	68.4	8.7	20.1	60.6	12.3	20.9
राजस्थान	69.2	6.2	15.3	61.3	9.1	18.2
म0 प्र0	77.2	5.5	13.4	69.1	7.5	18.2
औसत	73.1	6.6	15.9	64.4	9.5	18.9
प0 बंगाल	48.8	19.9	27.1	45.7	17.5	31.6
अ0 प्र0	67.1	9.2	19.6	58.4	11.0	24.8
कर्नाटक	65.1	10.7	19.7	60.8	10.6	23.8
केरल	48.3	14.3	29.6	35.5	14.4	37.7
औसत	57.3	13.5	24.0	50.1	13.4	29.5
तमिलनाडु	52.6	18.0	24.4	41.2	21.1	30.9
गुजरात	58.9	15.2	21.4	54.8	17.1	23.1
हरियाणा	56.9	9.1	27.7	50.0	13.5	27.7
महाराष्ट्र	59.4	11.3	25.1	53.1	12.5	28.7
पं्जाब	56.4	10.3	28.1	47.4	13.5	29.8
औसत	56.8	12.8	25.4	49.3	15.5	28.0
कुल	64.5	10.5	20.7	57.0	12.4	24.1

स्रोत:राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण

3- मध्यम दर्जे में जिन राज्यों को रखा गया है उनमें केरल कर्नाटक आन्ध्र प्रदेश और पं0 बंगाल को शामिल किया गया है । इनका कुल रोजगार में हिस्सा 1993-94 में 27.6 प्रतिशत था जो आगे सुधारो के काल में सम्पन्न राज्यों से अधिक हो गई। केरल को छोड़कर अन्य तीनो में किसी राज्य की सुधार प्रक्रिया के प्रारम्भिक वर्ष (1993-94 से

1999-2000) में रोजगार में वृद्धि दर पूर्णांक में नहीं थी। आन्ध्र प्रदेश में तो यह 0.2 प्रतिशत वार्षिक थी, बाद में कर्नाटक एवं पं0 बंगाल में सुधार के परिणाम स्वरुप चारों राज्यों के सन्दर्भ में (1993-94 से 2004-05) 1.5 प्रतिशत वार्षिक रही। इसका विशेष कारण यह दिखा कि औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी जो 1993-94 में चारों राज्यों के सन्दर्भ में 13.5 प्रतिशत थी, से घटकर 13.4 प्रतिशत पर ही रह गई। जबकि इन्हीं राज्यों के सन्दर्भ में इसी अवधि में कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी 57.3 से घटकर 50.1 प्रतिशत रह गई। जैसा कि अनुमापन यही रहता है कि यदि कृषि क्षेत्र में रोजगार की हिस्सेदारी घटती है तो सेवा क्षेत्र के साथ ही औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार में हिस्सेदारी निश्चित रुप से बढ़ेगी।

1. पिछ़डे राज्य जिनमें बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राज्यस्थान और मध्य प्रदेश को लिया गया है इनकी रोजगार में हिस्सेदारी 1993-94 में 43.8 प्रतिशत थी। आर्थिक सुधारों के इस दौर में रोजगार में विशेष वृद्धि नहीं प्रदर्शित किया 1993-94 से 1999-2000 के काल में यह सम्मिलित रुप में 1.0 प्रतिशत वार्षिक थी बाद के वर्षो में मामूली वृद्धि के परिणाम स्वरुप समग्र रुप से 1993-94 से 2004-05 की अवधि में 1.8 प्रतिशत वार्षिक हो गई। इसका कारण इन राज्यों में 1993-94 में कृषि क्षेत्र की रोजगार की हिस्सेदारी 73.1 प्रतिशत थी जो 8.7 प्रतिशत घटकर 2004-05 में 64.4 प्रतिशत पर पहॅुच गई। विशेष रुप में उड़ीसा की हिस्सेदारी उन्हीं वर्षो में कृषि क्षेत्र में 73.7 प्रतिशत से कम होकर 62.3 प्रतिशत पर पहुँच गई और उत्तर प्रदेश की 68.4 प्रतिशत से घटकर 60.6 प्रतिशत हो गई।

तालिका 6.8 संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर (वर्ष 1983 से 2004)

	1983-1994	1994-2004
सार्वजनिक क्षेत्र	1.53	-0.70
निजी क्षेत्र	0.44	0.58
कुल संगठित क्षेत्र	1.20	-0.31

स्रोत: लोक उद्यम सर्वेक्षण वर्ष 2008-09

दूसरी तरफ संगठित क्षेत्र की कुल रोजगार में हिस्सेदारी समग्र रुप से 1994 में 7 प्रतिशत थी, वह घटकर 2005 में 5.5 प्रतिशत रह गई। सभी राज्यों की संगठित क्षेत्र में हिस्सेदारी घटी।

संगठित क्षेत्र के संन्दर्भ में बडा आश्चर्यजनक जानकारी तालिका 6.8 से मिलती है कि 1983 से 94 के समय में सार्वजनिक क्षेत्र की रोजगार वृद्धि दर जो 1.53 प्रतिशत वार्षिक थी वह आर्थिक सुधारों के काल में (1994-2004) ऋणात्मक रुप में 0.70 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई अर्थात आर्थिक सुधारों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में कटौती हो गई। इसी प्रकार निजी क्षेत्र में 1983 से 94

के काल में 0.44 प्रतिशत वार्षिक रोजगार वृद्धि दर बढ़कर 1994-2004 के समय में 0.58 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई। जबकि सम्मिलित रुप में संगठित क्षेत्र की रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 1.20 से घटकर सुधार काल में ऋृणात्मक रुप में -0.31 प्रतिशत वार्षिक दर्ज हुई।

6.8 बेरोजगारी दूर करने के सुझाव

तेजी से बढ़ रही बेरोजगारी के प्रति अर्थशास्त्री, राजनेता, चिन्तक और विद्वान सभी चिन्तित है। बेरोजगारी की इस गम्भीर समस्या ने अनेक ऐसी समस्याओं को जन्म दिया है जिनका समाधान खोज पाना अत्यधिक दुश्कर हो गया है। यदि समय रहते सुरसा की भांति मुँह बाये खड़ी बेरोजगारी के समाधान की दिशा में सार्थक प्रयास नही किये जा सके तो देश एवं समाज का विघटन अवश्यम्भावी है। बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए कुछ सुझाव निम्नानुसार है-

- **तेजी से बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण-** बेरोजगारी की गम्भीर समस्या के हल के लिए सर्वप्रथम राज्य में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या की गति को नियन्त्रित किया जाना अति आवश्यक है। जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण किये बिना बेरोजगारी की समस्या का समाधान सम्भव नहीं है।
- **छोटे उद्योग धन्धो का विकास-** बेरोजगारी दूर करने के लिए छोटे-छोटे उद्योग धन्धों का विकास किया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि सरकार द्वारा बेरोजगार युवकों को अत्यधिक सुविधाजनक शर्तो पर ऋण उपलब्ध करायें जायें और बेरोजगारों द्वारा स्थापित उद्योगों के उत्पादन की बिक्री की समुचित व्यवस्था की जाये।
- **कृषि से सम्बद्ध उद्योगों का विकास**- देश की अर्थव्यवस्था में कृषि को प्रधानता प्राप्त है किन्तु अभी भी कृषि व्यवसाय मात्र ऋतुपरक या मौसमी रोजगार उपलब्ध कराता है। वर्ष के मात्र छः-सात माह के लिए कृषक और कृषि श्रमिक के पास रोजगार की व्यवस्था रहती है। शेष समय में कृषक और श्रमिक बेरोजगार रहते है, अतः इस खाली समय के उपयोग के लिए कृषि से सम्बद्ध सहायक उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए; जैसे- दूध का व्यवसाय, मुर्गीपालन, पशुपालन आदि।
- **ग्रामों में रोजगार उन्मुख योजनाओं का क्रियान्वयन-** देश में सर्वाधिक बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की सम्भावनायें भी बहुत अधिक है। सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ऐसी योजनाएं तैयार कराना चाहिए जो ग्रामीणों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायाक सिद्ध हो सकें। इन योजनाओं का क्रियान्वयन भी अत्यधिक प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए।

- **रोजगार उन्मुख शिक्षा प्रणाली**- देश की प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली पूरी तरह सैद्धान्तिक है। यह शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायता नहीं करती। अतः सरकार को रोजगारोन्मुख शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था करनी चाहिए, ताकि युवक स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पूर्ण होने के बाद स्वयं का कोई व्यवसाय या रोजगार स्थापित करने में समर्थ व सक्षम हो सके।
- **उद्योगों की पूर्ण क्षमता का उपयोग**- देश में यद्यपि उद्योग तुलनात्मक रूप से कम लगे हुए है तथा उनका पूर्ण दोहन भी नहीं हो पा रहा है और आवश्यकता इस बात की है कि सिर्फ उद्योगों की संख्या को ही न बढ़ाया जाये बल्कि उनकी उत्पादन क्षमता का भी पूर्ण उपयोग होना चाहिए।
- **विनियोग ढ़ांचे में परिवर्तन**- आधारिक संरचना को मजबूत बनाकर विनियोग को प्रेरित किया जा सकता है जिससे रोजगार में बढ़ोत्तरी होगी तथा अनिवार्य उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का विस्तार भी होगा।
- **तकनीकी को प्रोत्साहन**- नई तकनीकी का इस प्रकार से प्रयोग होना चाहिए जिससे रोजगार पर कोई विशेष फर्क न पड़ते हुए उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी हो।
- **जनशक्ति नियोजन**- देश में बेरोजगारी की स्थिति को देखते हुए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि जनशक्ति का वैज्ञानिक ढंग से नियोजन होना चाहिए। जिससे जनशक्ति का गुणात्मक पक्ष मजबूत होगा और इसके लिए भौतिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा संगठनात्मक पहलुओं स्वस्थ आधारों पर विकसित किया जाये। जनशक्ति का व्यवसाय वितरण, व्यवसायिक ढ़ाचा, रोजगार की सम्भावनाओं की स्थिति तथा जन-वृद्धि में होने वाले परिवर्तन आदि के बारे में विस्तृत एंव पूर्ण सूचनायें एकत्रित की जाये।
- **अन्य सुझाव**- भारत सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय श्रम ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु अनेक सुझाव दिये है; जैसे- देश में रोजगार के लिए एक राष्ट्रीय नीति सुनिश्चित की जाये, अखिल भारतीय स्तर पर मानव शक्ति सेवा का गठन किया जाये, शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किये जाये और उसे रोजगारोन्मुख बनाया जाये, औद्योगिक सेवाओं को सुदृढ़ता प्रदान की जाये तथा देश के प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में कम से कम एक रोजगार कार्यालय की स्थापना की जाये।
- उत्पादक गतिविधियों की पुर्नसंरचना द्वारा उत्पादन में वृद्धि लाकर सरकार द्वारा रोजगार सृजन की प्रक्रिया तो जारी है ही, किन्तु साथ ही सरकार प्रत्यक्ष रूप से युवाओं एवं अन्य

बेरोजगारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाने के लिए विशेष कार्यक्रम भी चला रही है।

6.9 बेरोजगारी को दूर करने के प्रमुख कार्यक्रम

काम के बदले अनाज कार्यक्रम- 14नवम्बर 2004 को बस कार्यक्रम को देश के 150 सर्वाधिक पिछड़े जिलों में शुरू किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य पूरक रोजगार सृजन करना था। यह योजना लोगों को खाद्य सुरक्षा देने से भी सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक परिवार के कम से कम एक शारीरिक रूप से समर्थ व्यक्ति को 100 दिन का रोजगार दिया जा सकेगा।

ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (REGI)- यह कार्यक्रम 1995 में ग्रामीण क्षेत्रों तथा छोटे शहरों से शुरू किया गया। यह कार्यक्रम खादी और ग्रामोद्योग आयोग द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 25 लाख रुपये की लागत वाली परियोजनाओं के लिए उद्यमी खादी ग्रामेद्योग और बैंक ऋणों प्राप्त मार्जिन धन सहायता का लाभ उठाकर ग्राम स्थापित कर सकते है।

इन्दिरा आवास योजना (IAY)- यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जिसका वित्तपोषण केन्द्र एवं राज्यों के बीच 75.25 के अनुपात में किया जाता है। 1999-2000 से प्रारम्भ की गयी इन्दिरा भवन आवास योजना गांवो में गरीबो के लिए मुफ्त में मकानो के निर्माण की प्रमुख योजना है।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (JGSY)- इस योजना को अप्रैल 1999 से प्रारम्भ किया गया जो चली आ रही जवाहर रोजगार योजना ;श्रत्ल्द्ध को ही पुनर्गठित तथा कारगार स्वरूप प्रदान करके किया गया।

रोजगार आश्वासनकार्यक्रम (EAS) - इस योजना का प्रारम्भ 2 अक्टूबर 1993 को सूखा प्रवण, रेगिस्तान बहुल तथा पर्वतीय क्षेत्रों के चुने गये 1772 पिछड़े ब्लाकों में किया गया था।

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना (SGRY)-इस योजना को पहले से चल रही जवाहर ग्रामीण समृद्धि योजना (JGSY)तथा एम्पलामेंट एश्योरेंस स्कीम (EAS) को मिलाकर 25 सितम्बर 2001 को चलाया गया।

शहरी रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम- शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री रोजगार योजना (PMRY)को 1993-94 में शहरी क्षेत्रों में चलाया गया।

स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)-यह योजना दिसम्बर 1997 में लागू हुई जिसमें तीन शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों-नेहरू रोजगार (NRY), शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सेवाये योजना (UBSP) तथा प्रधानमंत्री एकीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम (PMIUPEP)को एक

में मिला दिया गया। इसका उद्देश्य स्वरोजगार उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन देना या मजदूरी रोजगार के सृजन के द्वारा गरीबी रेखा के नीचे नवीं दर्जा तक शिक्षित शहरी बेरोजगारों या अर्धरोजगारों को रोजगार प्रदान करना है।

एकीकृत बाल विकास तथा सेवा स्कीम (ICDS)- 1975 में शुरू इस स्कीम का उद्देश्य 6 वर्ष तक के उम्र के बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य पोषण एवं शैक्षणिक सेवाओं का एकीकृत पैकेज प्रदान करना है, आँगन वाड़ी, भवनो, सीडीपीओ कार्यलयों एवं गोदामों के निर्माण के लिए ऋण प्रदान करना है।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना (PMGY)- जिसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण लोगों की आवश्यक आवश्यकताओं (critical needs) को निर्धारित समयावधि में पूरा करना है।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना- 25 दिसम्बर, 2000 को लागू की गयी।यह एक 100 प्रतिशत केन्द्र प्रायोजित योजना है।

अन्नपूर्णा योजना-1999-2000 की बजट में घोषित अन्नपूर्णा योजना का आरम्भ गाजियाबाद के सिखोड़ा ग्राम से हुआ। ज्ञातव्य है कि इस योजना को उद्देश्य देश के अत्यन्त निर्धन लागों के रोटी की व्यवस्था करनी है।

शिक्षा सहयोग योजना-यह योजना 1 अप्रैल 2001 से लागू, 2001-02 के बजट में प्रस्तावित योजना है। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे के बच्चों के माता-पिता को 100 रुपये प्रतिमाह शैक्षिक भत्ता प्रदान किया जायेगा जिससे वे 9 से 12 वीं कक्षा तक की शिक्षा के व्यय को पूरा कर सके।

अन्तोदय अन्नयोजना-यह योजना दिसम्बर 2000 में चालू की गयी। इसके तहत लक्ष्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत पहचान किये गये बी.पी. एल. परिवारों में से 1 करोड़ निर्धनतम परिवारों को चुना जाता है। शुरू में इसके अन्तर्गत प्रत्येक अर्ह परिवारों को 25 किलोग्राम अन्न 2 रुपया प्रति किलो गेहूं तथा 3 रुपया प्रति किलों ग्राम चावल दिया जाता था। अप्रैल 2002 से 25 किलोग्राम को बड़ाकर 35 किलो ग्राम कर दिया गया।

दीन दयाल स्वालम्बन योजना-केन्द्रीय युवा मामलें व खेल मंत्रालय द्वारा ग्रामीण युवकों को स्वयं सहायता समूहों के रूप में संगठित कर उनमें स्वरोजगार के जरिये आय अर्जित करने के लिए क्रियान्वित।

महात्मागांधी राष्ट्रीय ग्रामीण योजना गारन्टी एक्ट 2004 (मनरेगा) तथा राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी कार्यक्रम-नेशनल रूरल एम्प्लवायमेंट गारण्टी एक्ट (NREGA) नरेगा सितम्बर 2005 को पारित हुआ तथा 2 फरवरी, 2006 को इसकी शुरूआत प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा आन्ध्र

प्रदेश के बन्दापाली से की गयी। **2 अक्टूबर 2009 इसका नाम बदलकर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी ऐक्ट कर दिया गया।**

2 फरवरी को सरकार ने रोजगार दिवस के रूप में घोषित कर दिया। शुरू में यह योजना 200 जिलों में लागू की गयी पर 2007-08 बजट में इसे बढ़ाकर 330 जिलों में कर दिया गया।इस समय यह देश के सभी 614 जिलों में लागू है। रोजगार सृजन करने वाली यह पहली योजना है और इस दृष्टि से यह सभी स्कीमों से भिन्न है, जो पार्लियामेंट द्वारा पारित ऐक्ट के द्वारा ग्रामीण जनसंख्या को रोगार प्राप्त करने की गारण्टी के साथ कानून द्वारा अधिकार प्रदान करती है। प्रत्येक ग्रामीण परिवार के कम से कम एक प्रौढ़ सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन का गारण्टी रोजगार प्रदान की जिम्मेदारी होगी, जिसमें कम से कम 1/3 स्त्रियां होंगी।

प्रधानमन्त्री आदर्श ग्राम योजना- 2009-10 बजट में प्रस्तावित नयी योजना है जो उन 44000 गांवों के समन्वित विकास से सम्बन्धित है जिनकी जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 50प्रतिशत से अधिक है।

प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (PMEGP)-15 अगस्त 2008 से प्रारम्भ प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम **(PMEGP)**अपने ढंग का एक नया प्रयास है जिसका प्रमुख उद्देश्य सब्सिडी पर कराये गये ऋण के माध्यम से शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में माइक्रो इन्टरप्राइज़ेज़ की स्थापना के द्वारा रोजगार के अवसर सृजित करना है। पहले से चली आ रही दो रोजगार योजनाओं PMRY तथा REGP को इसमें मिला दिया गया है।

अभ्यास प्रश्न

1. वह व्यक्ति जिसकी सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है उसे ....बेरोजगार कहते है।
2. अदृश्य बेरोजगारी का अर्थ बताइए?
3. मौसमी बेरोजगारी किस क्षेत्र में पायी जाती है।
4. बेरोजगारी के प्रमुख कारण क्या है?
5. बेरोजगारी दूर करने के प्रमुख सुझाव दीजिए?

6.10 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में एक प्रमुख समस्या बेरोजगारी है। बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता

हैं,जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो। इस बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिया हैं,सरकार ने अनेक बेरोजगारी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए हैं, जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न् योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है । तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या बेरोजगारी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगें।

6.11 शब्दावली

$$\textbf{बेरोजगरी की दर} = \frac{\text{बेरोजगारों की संख्या}}{\text{कुल श्रम शक्ति}} \times 100$$

माइग्रेशन - एक जगह से दूसरी जगह जाकर रहने लगना।

कुशलतम प्रयोग - न्यूनतम नुकसान पर अधिकतम इस्तेमाल द्वारा उत्पादन करना।

6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.छिपी बेरोगारी 2. अदृश्य बेरोजगारी - खेतों पर से यदि अतिरिक्त लोगों को हटा लिया जाय और उत्पादन में कमी न आये। 3.ग्रामीण क्षेत्र। 4.देखे 6.9। 5. देखे 6.10 एवं 6.11।

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
2. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation.
3. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
4. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

6.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.
- business.gov.in/indian_economy/agriculture
- आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. किसी देश के अविकसित रहने के लिए बेरोजगारी किस रूप में जिम्मेदार है?इसे कैसे दूर कर सकते है।
2. भारत में बेरोजगारी की समस्या का स्वरूप है? नियोजन काल में लागू किए गये प्रमुख कार्यक्रमों के आधार पर विश्लेषण कीजिए।

इकाई 7 आर्थिक असमानता

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 भारत में असमानता
7.3.1 आर्थिक असमानता का अर्थ
7.3.2 आय के वितरण का अर्थव्यवस्था में महत्व
7.3.3 भारत में आर्थिक असमानता की प्रकृति एवं विस्तार
7.4 भारत में बढ़ती आर्थिक विषमताएँ/असमानतायें
7.4.1 वैयक्तिक आर्थिक विषमतायें/असमानतायें
7.4.2 परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता
7.4.2.1ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता
7.4.2.2शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता
7.4.3 भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताएं
7.5 भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण
7.6 भारत में आर्थिक विषमताओं/असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ
7.13 सांराश
7.14 शब्दावली
7.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.17 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
7.18 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह सातवीं इकाई है। इससे पहले की इकाइयों से आपको अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानता एक प्रमुख आर्थिक समस्या के रूप में विद्यमान है। यहाँ आगे आर्थिक असमानता का आशय उसे जुड़े कारणों, समस्याओं एवं नीतियों का उल्लेख भी किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आर्थिक असमानता को सामान्य दृष्टि से समझा सकेंगें। आप यह भी समझा सकेंगें कि आर्थिक असमानता के क्या कारण, इसके प्रमुख प्रकार एवं इसके क्या दुष्प्रभाव है। देश और राज्यों में आर्थिक असमानता का विश्लेषण कर सकेगें है और इससे दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ को जान सकेंगें।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भारत में आर्थिक असमानता की प्रकृति एवं विस्तार को जान सकेंगें।
- भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बढ़ती आर्थिक विषमताएँ/असमानतायें का वर्णन कर सकेंगें।
- भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताएं के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगें।
- भारत में आर्थिक विषमताओं/असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ को जान सकेंगें।

7.3 भारत में असमानता

किसी भी देश का आर्थिक विकास केवल राष्ट्रीय आय एवं उत्पादन में वृद्धि में ही निहित नहीं, वरन् उसका एक महत्वपूर्ण पहलू आय एवं उत्पादन का न्यायोचित वितरण भी है। वितरण का स्वरूप कैसा है, व्यक्तिगत एवं प्रादेशिक वितरण की स्थिति कैसी है, वितरण में समानता है अथवा असमानता और विषमता का आर्थिक जीवन पर क्या प्रभाव है ? इन कई महत्वपूर्ण प्रश्नों का सम्बन्ध राष्ट्रीय आय के वितरण से है जिसका अर्थव्यवस्था पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

7.3.1 आर्थिक असमानता का अर्थ

आर्थिक असमानता अथवा आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण से अभिप्राय अर्थव्यवस्था की उस परिस्थितियों से है जिसमें कि राष्ट्र के कुछ लोगों क आय, राष्ट्र की औसम आय से बहुत अधिक तथा अधिकांश लोगों की आय, राष्ट्र की औसम आय से बहुत कम होती है। आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण की समस्या का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्तिगत आय के वितरण में विषमताओं से होता है। इससे अभिप्राय यह है कि कुछ व्यक्तियों की आय बहुत अधिक है जबकि अधिकतर लोगों की आय बहुत कम है।

7.3.2 आय के वितरण का अर्थव्यवस्था में महत्व

किसी भी राष्ट्र में आय और धन के वितरण का इसकी अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब तक आय का वितरण वैयक्तिक एवं प्रादेशिक स्तर पर समान रहता है तो आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है, समृद्धि बढ़ती है और राजनीतिक शान्ति के साथ-साथ सामाजिक सद्भावना बनी रहती है, व्यक्तिगत कुशलता एवं प्रेरणा बढ़ती है। सामाजिक कल्याण में वृद्धि होती है , गरीबी और अमीरी की घृणा नहीं पनपती और सर्वत्र शान्ति एवं सौहार्द पनपता है।

इसके विपरीत समाज में धन एवं आय का असमान वितरण और देश में व्याप्त आर्थिक विषमताओं से अर्थव्यवस्था में कई प्रकार की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं। देश में आय तथा धन की वैयक्तिक एवं प्रादेशिक वितरण जितना विषम एवं असमान होगा उतनी ही आर्थिक विकास की गति धीमी होगी, समाज में वर्ग-संघर्ष और तनाव से राजनीतिक शान्ति एवं सुदृढ़ता को खतरा होगा। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि किसी भी भाग में गरीबी विश्व समृद्धि को सबसे बड़ा खतरा है। आर्थिक क्षेत्र में विषमताएं आर्थिक शोषण को बढ़ावा देती हैं। अमीरों से गरीबों का द्वेष क्रान्ति को बुलावा देता है। गरीबी में नीचा जीवन-स्तर उत्पादन क्षमता को कम करके उन्हें अधिक गरीब बनाता है जबकि दूसरी ओर विलासिता में डूबे धनी लोग देश के आर्थिक साधनों को कम उपयोगी क्षेत्रों में ले जाकर सामाजिक कल्याण में कमी करते हैं।

7.3.3 भारत में आर्थिक असमानता की प्रकृति एवं विस्तार

भारत में आर्थिक असमानता निरन्तर बढ़ती जा रही है। भारत में आय के वितरण की जांच करने के लिए सरकार ने सर्वप्रथम प्रो. पी.सी. महालनोबिस की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की थी। इस समिति के अतिरिक्त नेशनल काउंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च ;छब्।म्त्द्ध, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा कई अर्थशास्त्रियों जैसे लाइडल, ओझा और भट्ट, रानाडिवे, अहमद, भट्टाचार्य आदि ने आय के वितरण के सम्बन्ध में जांच की है। भारत में कई प्रकार की आर्थिक असमानतायें पाई जाती हैं। इनमें से निम्नलिखित प्रकार की असमानतायें अधिक महत्वपूर्ण हैं।

1. परिसम्पत्ति की असमानता

2. आय तथा उपभोग की असमानता

3. क्षेत्रीय असमानता

7.4 भारत में बढ़ती आर्थिक विषमताएँ/असमानतायें

चाहे अर्थव्यवस्था का स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, प्रत्येक में कुछ न कुछ आर्थिक विषमताएं अवश्य होती हैं। जहाँ समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विषमताएं नगण्य और आर्थिक विकास के अनुकूल, समाजिक दृष्टि से न्यायोचित और राजनीतिक दृष्टि से उपयुक्त हैं वहाँ पूजीवादी, विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में आर्थिक विषमातएं बहुत व्यापक और कष्टदायी हैं। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में भी आर्थिक विषमाएं अनेक प्रकार से देश को झकझोर रही हैं और उनकी बढती प्रवृत्ति ने कई प्रकार की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को जन्म दिया है। भारत में आर्थिक विषमता के विभिन्न स्वरूप इस प्रकार हैं -

7.4.1 वैयक्तिक आर्थिक विषमतायें/असमानतायें

यद्यपि भारत में वैयक्तिक आय वितरण के आंकड़ें संकलित नहीं किए जाते, किन्तु समय-समय पर किए अध्ययनों के मोटे अनुमानों से पता लगता है कि राष्ट्रीय आय के वैयक्तिक वितरण में भारी असमानताएं हैं।

आयंगर एवं मुकर्जी के अनुसार 1956-57 में ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 25 प्रतिशत हजम कर जाते थे जबकि नीचे के 20 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 8.5 प्रतिशत भाग ही मिलता था।

प्रो. लिण्डाल ने अनुमान लगाया कि जहाँ ऊपर के 5 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 23 प्रतिशत, ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 34 प्रतिशत तथा ऊपर के 50 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 75 प्रतिशत हड़प कर जाते, वहाँ नीचे के 20 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का केवल 9.5 प्रतिशत तथा नीचे के 50 प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का केवल 25 प्रतिशत ही मिल पाता था।

नेशनल कौन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च ने 1960 के अनुमान में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में वैयक्तिक वितरण की असमानता को अलग-अलग बताया है। इसके अनुमानों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में ऊपर के 10 प्रतिशत लोग राष्ट्रीय आय का 33.6 प्रतिशत भाग प्राप्त करते हैं जबकि शहरी

क्षेत्रों में उनका भाग 42.4 प्रतिशत है जबकि नीचे के 10 प्रतिशत लोग दोनों क्षेत्रों में राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत भाग ही प्राप्त करते हैं।

वैयक्तिक आर्थिक वितरण की असमानायें केवल आय में ही नहीं दिखतीं, वरन् वैयक्तिक उपभोग व्यय के अनुमानों में भी झलकती है। नेशनल सेम्पल सर्वे (NSSO) के 1959-60 के अनुमानों के अनुसार जहाँ ऊपर के 20 प्रतिशत लोगों का उपभोग व्यय कुल का 42 प्रतिशत था वहाँ नीचे के 20 प्रतिशत लोगों का भाग केवल मात्र 8 प्रतिशत अर्थात् बहुत कम था। इसी प्रकार का अनुमान नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाडइ इकोनोमिक रिसर्च के 1964-65 के अध्ययन में दृष्टिगोचर होता है। इसके अनुसार जहाँ ऊपर के 20 प्रतिशत परिवारों का कुल व्यय में 33 प्रतिशत भाग था वहाँ नीचे के 20 प्रतिशत परिवारों का उपभोग व्यय में केवल 13 प्रतिशत ही भाग था। दाण्डेकर एवं रथ के अनुसार 1960-61 की कीमतों के स्तर पर 1967-68 में शहरी क्षेत्र के केवल 5 प्रतिशत लोगों का प्रति व्यक्ति वार्षिक उपभोग व्यय 1,330 रू. था जबकि नीचे के 5 प्रतिशत लोगों का यह व्यय केवल मात्र 78 रू. ही था। इस प्रकार दोनों में 17 गुना अन्तर वैयक्तिक असमानता को उजागर करता है।

प्रो. महालनोबिस ने भी राष्ट्रीय आय वितरण सम्बन्धी अपने प्रतिवेदन में इस असमानता पर विचार करते हुए बताया कि देश के एक प्रतिशत धनिक राष्ट्रीय आय के 10 प्रतिशत भाग को हड़प जाते हैं जबकि नीचे के 50 प्रतिशत गरीबों को राष्ट्रीय आय का केवल 22 प्रतिशत भाग ही मिलता है। ये विभिन्न अनुमान संक्षेप में निम्न तालिका में दर्शाये गये हैं।

विश्व विकास प्रतिवेदन 1988 के अनुसार 1975-76 में भारत के सबसे धनी 10 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का 33.6 प्रतिशत भाग मिल रहा था जबकि निम्नतम 20 प्रतिशत लोगों को राष्ट्रीय आय का केवल 7 प्रतिशत भाग प्राप्त हो रहा था। जहां ऊपर के 20 प्रतिशत धनी राष्ट्रीय आय का 49.4 प्रतिशत भाग हड़प रहे थे वहाँ 80 प्रतिशत जनसंख्या को राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत भाग मिल रहा था।

तालिका 7.1 भारत में वैयक्तिक आय वितरण की असमानता के अनुसार (प्रतिशत के रूप)

लोग	भारतीय रिजर्व बैंक 1953-54 1956-57		लिण्डाल के अनुमान 1955-56	आयंगर एवं मुकर्जी के अनुमान 1956-57	NCAER के अनुसार 1960	
	गांव	शहर			गांव	शहर
ऊपर के 5 % लोग	17	26	23	17.5	-	31
ऊपर के 10 % लोग	25	37	34	25.0	33.6	42.4
ऊपर के 50 % लोग	69	75	75	-	79.3	83
ऊपर के 20 % लोग	9	7	9.5	8.5	4	4

वैयक्तिक आय वितरण की असमानताएं और कई गुना बढ़ जायें अगर हम काले धन के वितरण का भी समावेश कर लें क्योंकि काले धन का सर्वाधिक भाग धनिकों की जेब में जाता है और भारत में काले धन का बाहुल्य किसी भी छिपा नहीं है।

7.4.2 परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता

भारत में परिसम्पत्ति की असमानता के संबंध में प्राप्त आंकड़े अपर्याप्त तथा अविश्वसनीय हैं। परन्तु उपलब्ध आकंड़े स्पष्ट करते हैं कि भारत में परिसम्पत्ति की असमानता काफी अधिक एवम् व्यापक है। परिसम्पत्ति की असमानता का अध्ययन दो भागों में किया जा सकता है:-

7.4.2 .1 ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता

भारत की लगभग 76 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। ग्रामीण क्षेत्र में विद्यमान सम्पत्ति की असमानता निम्नलिखित दो तथ्यों से स्पष्ट हो जाती है:

(अ)कुल परिसम्पत्ति का असमान वितरण. रिजर्व बैंक द्वारा किये गये अखिल भारतीय ऋण एवम् निवेश सर्वेक्षण के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण की असमानता का विस्तार काफी अधिक है।

तालिका 7 2 ग्रामीण क्षेत्रों में सम्पत्ति का विवरण

व्यक्ति	**कुल सम्पत्ति में प्रतिशत भाग**	
व्यक्ति	**1961**	**1971**
नीचे के 10 प्रतिशत	0.1	0.1
ऊपर के 10 प्रतिशत	51.4	51.0
नीचे के 30 प्रतिशत	2.5	2.0
ऊपर के 30 प्रतिशत	79	81.9

तलिका 7.2 में प्रस्तुत ग्रामीण क्षेत्रों की सम्पत्ति के वितरण सम्बन्धी आकंड़ों से निम्न तथ्य स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाते हैं:

(क) गांवों में निवास करने वाली जनसंख्या का नीचे के 10 प्रतिशत वर्ग का ग्रामीण परिसम्पत्ति में केवल 0.1 प्रतिशत भाग है । जबकि ऊपर के 10 प्रतिशत वर्ग का लगभग 51 प्रतिशत भाग है । अन्य शब्दों में ऊपर के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों में से एक व्यक्ति के पास इतनी सम्पत्ति है, जितनी नीचे के वर्ग के 510 व्यक्तियों के पास है । सन् 1961 से 1971 तक के 10 वर्षों में इस असमानता में कोई परिवर्तन नहीं आया है ।

(ख) तालिका यह भी इंगित करती है कि नीचे के 30 प्रतिशत वर्ग का ग्रामीण सम्पत्ति में भाग सन् 1961 में 2.5 प्रतिशत था सन् 1971 में यह कम होकर 2 प्रतिशत रह गया। इसके विपरीत ऊपर के 30 प्रतिशत का भाग जो 1961 में 79 प्रतिशत था वह 1971 में बढ़कर 81.9 प्रतिशत हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण की असमानता कम होने के स्थान पर बढ़ती जा रही है ।

2.भूमि के वितरण में असमानता . ग्रामीण क्षेत्र में भूमि उत्पादन का महत्वपूर्ण साधन है । कृषि के लिए उपयोग की जाने वाली भूमि के वितरण में काफी असमानता पाई जाती है । इस समय भारत में लगभग 9 करोड़ 77 लाख जोतें या खेत हैं । इनके वितरण की असमानता निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाती है ।

तलिका 7.3 कार्यशील भू-जोतों का आकार के अनुसार वितरण

भू जोतों का आकार (हैक्टेयर)	1970-71		1985-86	
	कुल जोतों का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	कुल जोतों का प्रतिशत	कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
1.0 हैक्टेयर से कम	51	9	58	13.1
1 से 2 हैक्टेयर	18.9	11.9	18.2	15.5
2 से 4 हैक्टेयर	15	18.5	13.6	22.2
4 से 10 हैक्टेयर	11.2	29.7	8.2	28.7
10 से अधिक हैक्टेयर	3.9	30.9	2.00	20.5
	100	100	100	100

Source : Agricultural Situation in Brief 1988

उपरोक्त तालिका 7.3 प्रस्तुत कार्यशील भू-जोतों का आकार के अनुसार वितरण से यह स्पष्ट होता है कि:

1.सन् 1985-86 में सीमान्त जोतों (1 हैक्टेयर तक की जोतों) तथा लघु जोतों (2 हैक्टेयर तक की जोतों) की संख्या कुल कार्यशील जोतों की 76 प्रतिशत थी परन्तु इनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का 28 प्रतिशत भाग था। इसके विपरीत मध्यम (10 हैक्टेयर तक की जोतों) तथा बड़ी जोतों (10 हैक्टेयर से अधिक तक की जोतों) की संख्या कुल जोतों की केवल 10 प्रतिशत थी परन्तु इनके अन्तर्गत कुल क्षेत्रफल का लगभग 49 प्रतिशत भाग था। इस प्रकार 10 प्रतिशत जोतों के स्वामी धनी किसानों का 49 प्रतिशत कृषि भूमि पर स्वामित्व है । इसके विपरीत 76 प्रतिशत निर्धन किसानों का केवल 28 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व है। सन् 1970-71 में 15 प्रतिशत धनी किसानों का केवल 60 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व है । सन् 1970-71 में 15 प्रतिशत धनी किसानों का केवल 60 प्रतिशत भूमि पर स्वामित्व था। तालिका- 2 में प्रस्तुत आंकड़ों से यह भी सिद्ध हो जाता है कि भारत में भूमि के स्वामित्व की असमानता काफी अधिक है।

7.4.2.2 शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की आर्थिक असमानता

भारत के केवल ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं अपितु शहरी क्षेत्रों में भी सम्पत्ति की असमानता बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है। इसे निम्नलिखित दो तथ्यों से स्पष्ट किया जा सकता है:

1. भवन सम्पत्ति का स्वामित्व - शहरों में सम्पत्ति के वितरण की असमानता और भी अधिक है। नेशनल सैम्पल सर्वे के आठवें दौर के अनुसार शहरी क्षेत्र के ऊपर के 20 प्रतिशत परिवारों के पास शहरी जमीन का 93 प्रतिशत भाग था। इनमें से सबसे अधिक धनी 5 प्रतिशत परिवारों के पास शहरी भूमि का 52 प्रतिशत भाग था। नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च के अनुसार शहरी क्षेत्र के सबसे उच्च वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों के पास 57 प्रतिशत भवन सम्पत्ति केन्द्रित है । इसके विपरीत नीचे के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों के पास 1 प्रतिशत से भी कम भवन सम्पत्ति है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि शहरी क्षेत्र में सम्पत्ति के वितरण में काफी असमानताएं पाई जाती हैं।

2. शेयर सम्पत्ति का स्वामित्व - भारत में शेयर सम्पत्ति से सम्बन्धित असमानताएं और भी अधिक हैं । महालनोबिस समिति के अनुसार आय कर देने वालों में सबसे धनी वर्ग 10 प्रतिशत लोगों को शेयरों के लाभांश से प्राप्त कुल आय का 52 प्रतिशत लाभ मिला था। नीचे के वर्ग के 10 प्रतिशत लोगों का भाग केवल 2.5 प्रतिशत था। इकोनोमिक टाइम्स रिसर्च ब्यूरों के अनुसार भारत में 20 व्यावसायिक घरानों की परिसम्पत्ति 10,000 करोड़ रूपये से भी अधिक है । इन 20 बड़े घनों का अर्जित लाभ 900 करोड़ रूपये से भी अधिक है । इससे सिद्ध होता है कि देश में आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण होने के फलस्वरूप सम्पत्ति की असमानता का विस्तार काफी व्यापक है।

संक्षेप में, भारत में आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पाई जाती हैं । पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में इन असमानताओं में कमी होने के बजाय बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

7.3.4 भारत में आय वितरण में प्रादेशिक असमानताएं

भारतीय अर्थव्यवस्था एक विशाल अर्थव्यवस्था है और उसके विभिन्न क्षेत्रों में भी आय वितरण में काफी असमानताएं हैं। आर्थिक दृष्टि से विकसित एवं प्राकृतिक दृष्टि से सम्पन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है जबकि पिछड़े राज्यों में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है । नेशनल कौन्सिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च ;छब्।म्त्द्ध के एक सर्वेक्षण के अनुसार 1960-61 में बिहार में प्रति व्यक्ति आय 220.6 रू. सबसे कम थी जबकि दिल्ली में प्रति आय सर्वाधिक 871.61 रुपये थी। महाराष्ट्र की प्रति व्यक्ति आय 668.5 रु. तथा पश्चिमी बंगाल में 464.6 रु. होने से वे क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर थे।

योजनाबद्ध विकास में यद्यपि लक्ष्य प्रादेशिक विषमाओं को यथासम्भव कम करने का था, किन्तु वास्तविकता यह रही कि धनी राज्य और अधिक धनी एवं समृद्ध हुए और पिछड़े राज्यों की प्रति

व्यक्ति आय बढ़ने के बावजूद धनी राज्यों के मुकाबले कम कम रही। इस विषमता की झलक निम्न तालिका से मिलती है।

तलिका 7.4 भारत में प्रादेशिक आय वितरण (प्रति व्यक्ति आय)

राज्य	1981-82	1985-86 (औसत)	1987-90 (औसत)	1992-95 (औसत)	2005-06	राज्यों में स्थान
पंजाब	3122	4084	6303	12538	30701	(3)
महाराष्ट्र	2519	3208	5368	11369	32170	(2)
हरियाणा	2581	3322	5371	10563	32712	(1)
गुजरात	2211	2814	4602	8829	28355	(4)
राजस्थान	1417	2069	2878	5665	16593	(11)
उड़ीसा	1308	1754	2684	4263	13601	(15)
बिहार	995	1417	2026	3482	5772	(17)

उपर्युक्त तालिका 7.4 से स्पष्ट है कि 2003-04 में हरियाणा में प्रति व्यक्ति आय सर्वाधिक थी जबकि बिहार में सबसे कम है। दोनों की प्रति व्यक्ति आय में साढ़े चार गुना अन्तर है। राजस्थान की प्रति व्यक्ति आय पंजाब से आधी से भी कम है जबकि बिहार से ढ़ाई गुना है। हरियाणा, गुजरात और महाराष्ट्र में प्रति व्यक्ति आय बिहार, उड़ीसा, केरल, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के मुकाबले कहीं अधिक है।

7.5 भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण

भारत में आय तथा सम्पत्ति में पाई जाने वाली असमानता का मुख्य कारण जमींदारी प्रथा के फलस्वरूप भूमि के स्वामित्व में विद्यमान असमानता है। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में जमींदारी प्रथा पाई जाती थी। इसके फलस्वरूप भू-स्वामित्व में भारी असमानता पाई जाती थी। स्वतंत्रता के पश्चात् जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई परन्तु भूमि के स्वामित्व की असमानता में कोई विशेष कमी नहीं हुई है। इस समय देश के 10 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या के पास कृषि भूमि का 56 प्रतिशत भाग है तथा 70 प्रतिशत जनसंख्या के पास केवल 14 प्रतिशत भाग है। भूमि के स्वामित्व में पाई जाने वाली असमानता ग्रामीण क्षेत्र में पाई जाने वाली आय की असमानता का मुख्य कारण है। ग्रामीण क्षेत्र में भूमिहीन कृषि श्रमिकों तथा छोटे किसानों की आय बहुत कम है। वे बड़ी कठिनाई से अपना जीवन

निर्वाह कर पाते हैं। इसके विपरीत बड़े किसानों की आय बहुत अधिक है तथा इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। इन किसानों के पास पूंजी अधिक होती है इसलिए ये ट्रैक्टर, ट्यूबवैल, रासायनिक खाद, उत्तम बीज आदि का प्रयोग करके अधिक उत्पादन करते हैं। इससे इनकी आय में और अधिक वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत छोटे किसान पूंजी के अभाव में अपने खेतों से अधिक उत्पादन नहीं कर पाते। वे पिछड़े तथा निर्धन रह जाते हैं। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र में भूस्वामित्व की असमानता के कारण आय तथा सम्पत्ति की असमानता में वृद्धि होती है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक असमानताओं के कई कारण है। वैयक्तिक आय में भिन्नता, योग्यता, अवसर कुशलता एवं सम्पत्ति स्वामित्व पर निर्भर है जबकि क्षेत्रीय विषमताएं तो कई कारणों का सामूहिक परिणाम है, अतः उनमें प्रमुख कारण इस प्रकार हैं-

जन्मजात योग्यताओं में अन्तर- यह वैयक्तिक आय में सम्पत्ति की असमानताओं का एक प्रमुख कारण है। कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान, योग्य, परिश्रमी एवं कुशल होते हैं और ऐसे लोगों की आय कम बुद्धिमानों, अयोग्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ही होगी।

अवसरों की असमानता- व्यक्तियों के जन्मजात गुणों में समानता होते हुए भी उन व्यक्तियों की अधिक आय एवं सम्पत्ति प्राप्त होती है जिन्हें अच्छा अवसर मिल जाता है। जिन व्यक्तियों को अवसर नहीं मिल पाता वे पिछड़ जाते हैं। जहां धनी वर्ग के सामान्य बुद्धि वाले बच्चे उचित अवसर मिलने से आर्थिक उन्नति कर जाते हैं जबकि कुशाग्र बुद्धि वाले परिश्रमी एवं योग्य बच्चे अच्छे अवसर के अभाव में पिछड़ जाते हैं। प्रो. तबानी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक में लिखा है ''आधुनिक समाज में धन का वितरण अवसर के अनुसार होता। ''एक निर्धन का पुत्र अपनी शक्ति एवं योग्यता के अवसर उत्पन्न कर सकता है पर धनी व्यक्ति के पुत्र को अवसर स्वतः ही मिल जाता है''।

व्यावसायिक भिन्नता- व्यावसायिक भिन्न भी आय एवं सम्पत्ति की असमानता का एक प्रमुख कारण है। जहाँ फिल्मी अभिनेताओं को अपने व्यवसाय में इतनी ऊँची दर से आय प्राप्त होती है कि शिक्षक उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। जोखिमपूर्ण व्यवसायों से आय अधिक प्राप्त होती है जबकि साधारण व्यवसायों में लाभ उतना ही कम मिलता है।

आर्थिक शोषण- व्यक्तिगत लाभ एवं सम्पत्ति के स्वामित्व की लालसा व्यक्ति को मानव से दानव भी बना सकती है। यही भावना पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण, उत्पादकों एवं व्यापारियों द्वारा उपभोक्ता का शोषण, धनी व्यक्तियों द्वारा गरीबों का शोषण तथा सबलों द्वारा निर्बलों के शोषण की प्रवृत्ति समाज में धन एवं आय में अन्तराल पैदा करती है। भारत में शोषणकर्ताओं की आय शोषितों के मुकाबले काफी अधिक है।

सम्पत्ति एवं भूस्वामित्व की भावना- पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति एवं भूस्वामित्व की असमानता आर्थिक विषमता का मुख्य घटक है। यह आर्थिक असमानता को बढ़ाने के साथ-साथ उसे स्थायी बनाती है, क्योंकि वितरण का आधार व्यक्ति की कुशलता नहीं, वरन् साधनों की मात्रा से है, जितनी ही जिसके पास सम्पत्ति एवं पूँजी अधिक है उसको राष्ट्रीय आय में इतना ही अधिक भाग मिलता है। भारत में जागीरदारों, बड़े-बड़े भूस्वामियों, उद्योगपतियों एवं सम्पत्ति स्वामियों को राष्ट्रीय आय में भूमिहीनों, श्रमिकों और सम्पत्तिहीनों से कहीं अधिक हिस्सा मिलता है जो आर्थिक विषमता को बढ़ाता है।

उत्तराधिकार- भारत प्रचलित उत्तराधिकार प्रथा से पैतृक सम्पत्ति पुश्त-दर-पुश्त विरासत के रूप में उत्तराधिकारियों को मिलती रहती है। धनी घर में जन्म लेने वाले बच्चे भाग्यशाली होते हैं और चाँदी का चम्मच मुँह में लेकर जन्मते हैं जबकि निर्धन घर में जन्म लेने वाले बच्चों को गरीबी, ऋणग्रस्तता एवं भुखमरी विरासत में मिलती हैं

प्रो. टाजिंग ने ठीक ही कहा है, ''उत्तराधिकार प्रथा ही पूँजी तथा आय अर्जित करने वाली सम्पत्तियों की असमानताओं को स्थायित्व प्रदान करती है और धनी तथा निर्धनों के बीच गहरी खाई की व्याख्या करती है।''

शहरी क्षेत्र में सम्पत्ति का निजी स्वामित्व . शहरी क्षेत्र में उद्योगों, व्यापार, भूमि, मकानों आदि सम्पत्ति पर निजी स्वामित्व पाया जाता है। कुछ लोगों के अधिकार में अधिकतर शहरी सम्पत्ति होती है। इसके विपरीत शहरों की अधिक जनसंख्या निर्धन होती है। शहरों में पूंजीपति, उद्योगों, व्यापार, यातायात तथा अन्य व्यवसायों में पूंजी का निवेश करके अधिक आय प्राप्त कर पाते हैं, परन्तु शहरों का मध्यम तथा निर्धन वर्ग अपना जीवन निर्वाह भी बड़ी कठिनाई से कर पाता है। यद्यपि यह वर्ग अधिक शिक्षित तथा योग्य होता है परन्तु पूंजी की कमी के कारण इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार सम्भव नहीं हो पाता। इसके फलस्वरूप शहरी क्षेत्र में भी आय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमनता बनी रहती है।

उत्तराधिकार के नियम . भारत में प्रचलित उत्तराधिकार के नियमों के फलस्वरूप भी आय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमानता में वृद्धि हुई है तथा यह स्थाई बन गई है। उत्तराधिकार के नियमों के अनुसार किसी धनी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसकी सम्पत्ति उसकी सन्तान को मिलती है। इस प्रकार धनी व्यक्ति की सन्तान प्रारम्भ से ही धनी हो जाती है। इसके विपरीत किसी निर्धन व्यक्ति की मृत्यु पर उसकी सन्तान को कोई सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती तथा वह आरम्भ से ही निर्ध रहती है। वह अपने परिश्रम द्वारा ही अपनी आय तथा सम्पत्ति में वृद्धि करने का प्रयास कर सकते हैं। परन्तु इसकी

सम्भावना बहुत कम होती है। अतएव् उत्तराधिकार के नियमों के भारत में आय तथा सम्पत्ति के वितरण की असमानता को स्थायी बना दिया है।

व्यावसायिक प्रशिक्षण में असमानता . व्यावसायिक प्रशिक्षण में पाई जाने वाली असमानता भी आय की असमानता भी आय की असमानता का एक मुख्य कारण है। कुछ व्यवसायों जैसे- डॉक्टर, इंजीनियर, कम्पनी प्रबन्धक तथा वकीलों आदि की आय तथा अन्य व्यवसायों में लगे हुये लोगों की आय की तुलना में बहुत अधिक होती है परन्तु इन व्यवसायों का प्रशिक्षण प्राप्त करना निर्धन व्यक्ति के बच्चों के लिए साधारणतया सम्भव नहीं है। इन व्यवसायों में अधिकतर धनी वर्ग के बच्चे ही प्रशिक्षण प्राप्त कर पाते हैं। इसके फलस्वरूप आय की असमानता बढ़ती जाती है।

आय की असमानता का ज्ञान उपभोग व्यय के वितरण से किया जा सकता है। विभिन्न स्रोतों द्वारा एकत्रित किये गये उपभोग सम्बन्धी आंकड़े निम्न तालिका में प्रस्तुत किये गये।

तालिका 7.5 भारत में उपभोग की असमानता के अनुमान

व्यक्ति	**NCAER**	**N.S.S.**
ऊपर के 20 प्रतिशत	42.39	37.87
नीचे के 20 प्रतिशत	8.66	8.47

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से आभास होता है कि नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च **NCAER** के अनुसार सबसे ऊंचे वर्ग के 20 प्रतिशत व्यक्तियों का कुल उपभोग में 42.39 प्रतिशत भाग था सबसे निचले 20 प्रतिशत लोगों का केवल 8.66 प्रतिशत भाग था। इसी प्रकार राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे **N.S.S.**के अनुसार उपरोक्त वर्गों का कुल उपभोग में क्रमशः भाग 37.87 प्रतिशत तथा 8.47 प्रतिशत था। इन आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि भारत में आय की असमानता का विस्तार काफी व्यापक है।

उपरोक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप आर्थिक असमानता के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि भारत में आय तथा सम्पत्ति की असमानताएं शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में पाई जाती है। योजनाओं की अवधि में इन असमानताओं में बढ़ने की प्रवृत्ति पाई गई है।

7.6 भारत में आर्थिक विषमताओं/असमानताओं को दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ

भारत के संविधान में ही समानता का अधिकार है। समानता का कतई यह अभिप्राय नहीं है कि सबकी समान आय तथ सम्पत्ति हो, निरपेक्ष समानता न तो सम्भाव है और न वांछित ही। निपुण और अकुशल, योग्य और अयोग्य, श्रेष्ठ एवं सामान्य व्यक्ति की मजदूरी, वेतन एवं आय में कुछ अन्तर तो होना ही चाहिए, क्योंकि इसके बिना कुशल श्रम-शक्ति का विकास सम्भव नहीं। अतः आर्थिक विषमता में यथासम्भव कमी करना ही आर्थिक समानता का आदर्श है। आर्थिक असमानताओं को कम करने के लिए समाजवादी राष्ट्रों में तो उग्र उपायों का सहारा लिया जाता है जिसमें निजी सम्पत्ति का बिना मुआवजा दिये राष्ट्रीयकरण कर लिया जाता है। सभी व्च्यक्तियों को जाति, लिंग एवं धर्म के भेदभाव किये बिना समान आय प्रदान की जा सकती है, किन्तु पूँजीवादी एवं मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक विषमताओं को दूर करने के लिए उदार उपाय किये जाते हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक विषमताओं को यथासम्भव कम करने के लिए द्वि-दिशा आक्रमण (Two Pronged Attack) के उदार उपायों का सहारा लिया है। जहां एक और वैधानिक एवं प्रजातान्त्रिक तरीकों से धनी व्यक्तियों की आय और सम्पत्ति को कम किया जा रहा है वहां दूसरी ओर निर्धनों की आय, उत्पादन क्षमता, धनोपार्जन विधियों में वृद्धि की जा रही है। धनी एवं निर्धनों के अन्तराल को पाटने के लिए काफी उपाय किये गये हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् से ही सरकार इस बात का प्रयत्न कर रही है कि देश में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम किया जाए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई नीति की मुख्य विशेषताएं या सरकार द्वारा अपनाए गए मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं:-

भूमि सुधार - ग्रामीण क्षेत्र में आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम करने के लिए भूमि सुधार किये गए हैं। भूमि सुधार सम्बन्धी नीति का मुख्य उद्देश्य भूमि स्वामित्व की असमानता में कमी लाना है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार ने स्वतन्त्रता के शीघ्र पश्चात् ही जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धी कानून बना दिए थे। इसके फलस्वरूप जमींदारी समाप्त कर दी गई तथा जमींदारी की उच्चतम सीमा से अधिक भूमि का वितरण उस पर काश्त करने वाले काश्तकारों में कर दिया गया। कृषि भूमि की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के लिए कानून बनाए गए हैं। सीमा से ऊपर की जमीन उनके स्वामियों से ली जा रही है। इस जमीन का वितरण उन लोगों में किया जा रहा है जिनके पास बहुत थोड़ी भूमि थी या जो भूमिहीन थे। परन्तु भारत में भूमि सुधार की प्रगति बहुत धीमी रही है। भूमि सुधार के अधिकतर उद्देश्य अधिक सफल नहीं हो सके हैं।

रोजगार में वृद्धि- भारत में आर्थिक विषमता एवं गरीबी मिटाने के लिए सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत पिछले 56 वर्षों में लगभग 26.5 करोड़ से अधिक अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया है। सातवीं योजना में 4 करोड़ अतिरिक्त मानक मानव वर्ष को रोजगार दिये जाने का लक्ष्य था। जहाँ पहली योजना में 75 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया वहां चौथी योजना में लगभग 170 लाख अतिरिक्त लोगों को रोजगार दिया। गरीबी हटाओ कार्यक्रम के अन्तर्गत भी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार तथा ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारन्टी योजना द्वारा रोजगार दिया जा रहा है। जवाहर रोजगार योजना के तहत भी गरीबी रेखा के नीचे 4-6 करोड़ परिवारों को रोजगार देने का लक्ष्य था। आठवीं योजना में रोजगार में 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था। दसवीं योजना में 5 करोड़ आर्थिक रोजगार का लक्ष्य था।

सार्वजनिक क्षेत्र का विकास - सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र का तेजी से विकास करने की नीति को अपनाया है। इस क्षेत्र के विकास के कई उद्देश्य आय तथा सम्पत्ति की असमानता को कम करना है। यह क्षेत्र निजी क्षेत्र के स्वामित्व के विस्तार को रोकने में सहायक ह। बैंकों के राष्ट्रीयकरण का भी यह एक मुख्य उद्देश्य है। इसके फलस्वरूप निजी लोगों के हाथ में धन तथा आय में केन्द्रीयकरण को रोकने तथा इस प्रकार समानता को बढ़ाने में मदद मिलेगी। किन्तु सरकार द्वारा जिस आदर्श की प्राप्ति हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार की नीति का अनुशरण किया गया उसमें असफलता ही प्राप्त हुई। अतः विवशतावश अब सार्वजनिक क्षेत्र की बजाय निजी क्षेत्र को विकसित किये जाने को अधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है।

जनकल्याण कार्यक्रमों में वृद्धि- भारत में आर्थिक विषमताओं को कम करने के लिए जनकल्याण कार्यक्रमों में निरन्तर वृद्धि की है ताकि गरीबों का आर्थ्रिक स्तर ऊपर उठे। इस दिशा में समाज कल्याण विभाग द्वारा सहायता, अनुदान, बेकारी भत्ता, चिकित्सा सुविधायें, न्यायिक सहायता, निःशुल्क शिक्षा, 20- सूत्रीय कार्यक्रम द्वारा आय एवं रोजगार में वृद्धि महत्वपूर्ण है, किन्तु कुल व्यय जनसंख्या को देखते हुए नगण्य है, अतः स्थिति में विशेषकर सुधार नहीं हुआ है।

लघु तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन- पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने की नीति को अपनाया गया है। इन उद्योगों को प्रोत्साहन देने से आय तथा सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने में सहायता प्रापत होगी, सम्भावना है। इस नीति के फलस्वरूप बेरोजगार मजदूरों को राजगार दिया जा सकेगा। इस प्रकार निर्धन लोगों की आय में वृद्धि होगी। इसके परिणामस्वरूप आर्थिक असमानता कम होगी। कुटीर उद्योगों के विकास के फलस्वरूप निम्न आय वाले लोगों को अपनी आय में वृद्धि करने के अवसर प्राप्त हो सकेंगें।

जनसंख्या नियन्त्रण- गरीबों के अधिक बच्चे और कम आय आर्थिक विषमता को बढ़ाते हैं, अतः जनसंख्या पर नियंत्रण के लिए देश में छिले 56 वर्षों में 50,100 करोड़ रू. व्यय किया गया है और उसमें नसबन्दी, लूप तथा परिवार नियोजन पद्धतियों से लगभग 30 करोड़ बच्चों का जन्म रोका गया है । सातवीं योजना में भी परिवार नियोजन कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दिया गया। भारत में जन्म-दर घटकर सातवीं योजना के अन्त तक 30 प्रति हजार हो गई और आठवीं योजना में 23 से 25 प्रति हजार करने का लक्ष्य था किन्तु 2005 में जन्म-दर 23.8 प्रति हजार रही।

एकाधिकारी तथा प्रतिरोधात्मक व्यापारिक व्यवहार पर नियंत्रण - शहरी सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए सन् 1969 में एकाधिकार तथा प्रतिरोधात्मक व्यापारिक अधिनियम (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act 1969) पास किया गया है । इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकना है । सरकार ने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए औद्योगिक लाइसेंस की नीति को भी अपनाया है । औद्योगिक लाइसेंस की नीति के द्वारा औद्योगिक तथा व्यावसायिक शक्ति के केन्द्रीयकरण को कम करने के प्रयत्न किये जाते हैं । इस सम्बन्ध में हजारी समिति, दत्त समिति आदि की रिपोर्टों से ज्ञात होता है, ये सभी उपाय अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके हैं।

मुद्रा-स्फीति पर नियंत्रण- गरीबों को महंगाई की मार से बचाने तथा मुद्रा-स्फीति द्वारा साधनों का हस्तान्तरण गरीबों से अमीरों के हित में रोकने के लिए हीनार्थ प्रबन्ध एवं फिजूलखर्ची पर नियंत्रण किया है । उत्पादक विनियोग को बढ़ावा दिया गया है । आवश्यकता की वस्तुओं के लिए गल्ले की 4.6 लाख दुकानें खोली गई हैं । अधिकतम मूल्यों पर नियन्त्रण रखा गया है । मुनाफाखोरी एवं चोरबाजारी को नियन्त्रित किया गया है । गरीबों को सस्ती गल्ले की दुकानों से आधी दर पर खाद्यान्न बेचने की व्यवस्था की जा रही है।

रोजगार तथा मजदूरी नीतियां- देश की बेरोजगार जनता को रोजगार प्रदान करके भी आय की असमानता को कम किया जा सकता है । पंचवर्षीय योजनाओं में रोजगार के अवसर अधिक से अधिक बढ़ाने पर जोर दिया जा सकता है । इस सम्बन्ध में अनेक विशेष योजनाओं जैसे छोटे किसानों के विकास की एजेन्सी, सीमान्त किसान तथा कृषि श्रमिक एजेन्सी (MFALA), सूखा क्षेत्र कार्यक्रम , काम के बदले अनाज आदि को लागू किया गया था। पांचवी योजना के अन्त में देश में रोजगार के अवसर अधिक बढ़ाने के लिए एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा छठी योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम आरम्भ किया गया है । सातवीं योजना में जवाहर रोजगार योजना आरम्भ की गई थी। देश में रोजगार कार्यालयों की संख्या में भी काफी वृद्धि की गई है । परन्तु इन योजनाओं का आय तथा सम्पत्ति के वितरण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है । अभी हाल ही में सरकार द्वारा आर्थिक असमानता कम करने हेतु पूर्व में घोषित कार्यक्रमों के स्थान पर नवीन

कार्यक्रमों की घोषणा की है। इन कार्यक्रमों में प्रमुख सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना आदि प्रमुख हैं।

सामाजिक सुधार- प्रदर्शनात्मक प्रभाव (Demonstration Effect) से प्रेरित होकर गरीब लोग जब धनिकों की-सी फिजूलखर्ची करें तो आर्थिक विषमता में वृद्धि होती है। अतः सरकार ने मृत्यु-भोज एवं विवाहोत्सवों के भारी व्यय पर रोक लगा रखी हे। बाल-विवाह तथा दहेज की रोक के लिए अधिनियम पारित किये हैं, पर प्रभावी क्रियान्वयन नहीं हो पाया है।

'गरीबी हटाओ' कार्यक्रमों का क्रियान्वन- इस कार्यक्रम के अन्तर्गत समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (I.R.D.P.), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (N.R.E.P.), ग्रामीण भूमिहीन श्रमिक रोजगार गारण्टी योजना (R.L.G.E.P.) तथा 20-सूत्रीय कार्यक्रम लागू करके देश में लगभग 4.5 करोड़ लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाया है जबकि सातवीं योजना में लगभग 6 करोड़ लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने का लक्ष्य था। जवाहर रोजगार योजना से भी गरीबी मिटाने का प्रयास चालू है।

कीमत तथा वितरण नीतियां- आय की असमानता को कम करने के लिए कीमत तथा वितरण नीतियों को भी अपनाया गया है। उनका उद्देश्य समाज के निर्धन वर्ग को सहायता देना है। आवश्यकता की कई वस्तुओं जैसे चीनी, कपड़ा, कागज आदि के लिए सरकार ने दोहरी नीति अपनाई है। इसके फलस्वरूप् निर्धन वर्ग को सम्पन्न वर्ग की तुलना में वस्तुएं सस्ती प्राप्त होती हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा निर्धन वर्ग को आवश्कताओं की वस्तुएं कम कीमत पर उपलब्ध कराने की व्यवस्था की गई है। परन्तु इस उपाय का आय तथा सम्पत्ति की असमानता को दूर करने पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में आर्थिक विषमता को कम करने के प्रयास किये जा रहे हैं, पर देश में प्रजातान्त्रिक मित्रित अर्थव्यवस्था में काला धन, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, रिश्वतखोरी, प्रशासनिक अकुशलता, गरीबी निवारण की असफलता तथा राजनीतिक इच्छा-शक्ति के अभाव में आर्थिक विषमता घटने के बजाय बढ़ती जा रही है। मुद्रा-स्फीति ने आय का वितरण अमीरों के पक्ष में कर आर्थिक विषमताओं को और बढ़ाया है और आर्थिक विषमता की खाई निरन्तर चौड़ी होती जा रही है। अतः इन सामाजिक बुराईयों एवं आर्थिक विषमता के कारणों को जब तक प्रभावी ढंग से नियन्त्रित नहीं किया जाता, आर्थिक समानता की कल्पना एक राजनीतिक नारा बनकर रह जायेगी।

अभ्यास प्रश्न

लघुस्तरीय

1.ग्रामीण क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की असमानता कितनी प्रकार की होती है ?

2.शहरी क्षेत्रों में परिसम्पत्ति की असमानता कितनी प्रकार की होती है?

3.भारत में आय तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के चार कारण बताइये ?

4.भारत में आर्थिक विषमताओं/असमानताओं को दूर करने के उपाय बताइये ?

7.13 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या असमानता है। अर्थव्यवस्था को आर्थिक असमानता के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए इसलिए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना गया। तथापि इन समस्यओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या आर्थिक असमानता के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगें।

7.14 शब्दावली

उदारीकरण: अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रतिबन्धा से मुक्त करके अधिक प्रतियोगी बनाना है। आर्थिक उदारीकरण का अर्थ है- उद्योग एवं व्यापार संबन्धी आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता।

निजीकरण: निजीकरण एक ऐसी सामान्य प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सरकारी व सार्वजनिक उद्यमों के संचालन, स्वामित्व और नियंत्रण में निजी क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से है।

भूमण्डलीकरण: भूमण्डलीकरण से तात्पर्य देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किए जाने से है।

आर्थिक संवृद्धि: प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को संवृद्धि कहते हैं।

आर्थिक विकास: सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं।

7.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न

लघुस्तरीय 1.देखिए 7.4.2.1 , 2. देखिए 7.4.2.2 , 3. देखिए 7.5 , 4. देखिए 7.6।

7.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
2. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
3. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation.
4. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
5. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था - सर्वेक्षणतथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

7.17 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.
- business.gov.in/indian_economy/agriculture
- आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

7.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में आर्थिक असमानता की समस्या का स्वरूप है? इसे दूर करने के उपाय और उपलब्धियाँ का विश्लेषण कीजिए।
2. आर्थिक असमानता कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।
3. आर्थिक असमानता किसी भी समाज के लिए अभिशाप है?इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।

इकाई 8 मुद्रा स्फीति एवं खाद्य सुरक्षा

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 मुद्रा स्फीति का आशय
8.4 मुद्रा स्फीति के प्रकार
8.5 मुद्रा स्फीति की माप
8.6 मुद्रा स्फीति के प्रभाव
8.7 मुद्रा स्फीति रोकने के उपाय
8.8 खाद्य सुरक्षा का आशय
8.9 खाद्य समस्या का स्वरूप
8.10 खाद्य समस्या के कारण
8.11 सरकार की खाद्य नीति
8.12 खाद्य सुरक्षा के उपाय
8.13 सारांश
8.14 शब्दावली
8.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.17 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
8.18 निबन्धात्मकप्रश्न

8.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह आठवीं इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप अर्थव्यवस्था की सामान्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित आर्थिक समस्याओं की चर्चा चलती है और कुछ समस्याओं को अंगुली पर गिना जाता है तो उनमें सबसे प्रमुख समस्या जो सभी सामान्य व्यक्ति को छू जाती है, वह समस्या मुद्रा स्फीति एवं खाद्य सुरक्षा है, मूल्य स्तर में वृद्धि या स्फीति की वृद्धि दर क्या है और इसे हम कैसे नापते है, क्या कारण जिनके कारण स्फीति होती है और स्फीति का क्या प्रभाव अर्थव्यवस्था पर पड़ता है, इससे सबसे अधिक प्रभावित 'कौन होता है' और क्यों आदि। खाद्य सुरक्षा का आशय, स्वरूप एवं सरकार की खाद्य नीति और खाद्य सुरक्षा के उपाय के सम्बन्ध में कुछ धारणात्मक तथा महत्वपूर्ण तथ्यों से हम आपको इस इकाई में परिचित करा रहे हैं।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- मुद्रा स्फीति आशय, प्रकार एवं प्रभाव को जान सकेंगें।
- मुद्रा स्फीति रोकने के उपाय का वर्णन कर सकेंगें।
- खाद्य सुरक्षा का आशय, स्वरूप एवं कारणों को जान सकेंगें।
- सरकार की खाद्य नीति का वर्णन कर सकेंगें।
- खाद्य सुरक्षा के उपाय बता सकेंगें।

8.3 मुद्रा स्फीति का आशय

मूल्यस्तर किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं के औसत मूल्यों की अभिव्यक्ति है। हम किसी एक वर्ष को आधार मानकर चालू वर्ष के मूल्यों के सम्बन्ध में सूचकांक (Index) प्राप्त करते हैं और उसके आधार पर हम कहते हैं कि मूल्य स्तर बढ़ रहा है या घट रहा है। मूल्य स्तर वृद्धि क दर ही स्फीति की दर प्रदर्शित करेगी।

इस दृष्टि से सामान्यता मूल्य सूचकांक के हम दो रूप लेते हैं- थोक मूल्यों का निर्देशांक (औद्योगिक श्रमिकों के लिए) इसलिए मूल्य स्तर का भी सम्बन्ध इन दो प्रकार के मूल्य सूचकांको से होगा।किसी

भी वस्तु का मूल्य सामान्यता मांग एवं पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है, इसलिए हम यह कह सकते है कि मूल्य स्तर मांग एवं पूर्ति कारकों की क्रियाशीलता तथा गहनता प्रदर्शित करता है। मूल्य स्तर के बढ़ने का मतलब हुआ कि या तो वस्तुओं की पूर्ति या उत्पादन लागत बहुत तेजी से बढ़ रही है इसलिए मूल्यस्तर तेजी से बढ़ रहा है।

अर्थव्यवस्था में वस्तुओं का उत्पादन तथा उसकी लागत पूर्ति के पक्ष को प्रदर्शित करेगा जबकि वस्तुओं पर किया जाने वाला व्यय माँग प्रदर्शित करेगा जो मुद्रा की पूर्ति का वह भाग होगा जो वस्तुओं पर व्यय होगा।

इस प्रकार मूल्य स्तर मांग, पूर्ति तथा लागत को प्रभावित करने वाले कारकों पर निर्भर करेगा।

मूल्य स्तर व्यक्त को करने के लिए आप कहते है कि एक किलोग्राम गेहूँ का मूल्य 8 रुपया है। इसके आधार पर आप यह भी कह सकते हैं कि एक रुपये की क्रयशक्ति 1/8 किलोग्राम गेहूँ है कहने का आशय यह हुआ कि मुद्रा की क्रयशक्ति मूल्य स्तर की व्युत्क्रम होती है। और मूल्य स्तर का बढ़ना मुद्रा की क्रयशक्ति का गिरना प्रदर्शित करेगा (क्योंकि इस स्थिति में पहले की अपेक्षा मुद्रा से कम ही क्रय किया जा सकेगा) तथा मूल्य स्तर की कमी मुद्रा के मूल्य में वृद्धि प्रदर्षित करेगी।

जब हम मुद्रा की पूर्ति की बात करते हैं तो केवल मुद्रा की संख्या नहीं लेते है बल्कि उसकी चलन गति भी लेते है। चलन गति से आशय है कि कोई मुद्रा कितनी बार वस्तुओं के क्रय-विक्रय में प्रयोग आ रही है।

8.4 मुद्रा स्फीति के प्रकार

मूल्य स्तर की वृद्धि मुद्रा स्फीति की सूचक हो सकती है पर मूल्य स्तर की प्रत्येक वृद्धि आवश्यक रूप से स्फीतिक नहीं होगीं। सामान्यता मुद्रा स्फीति उस स्थिति को कहते हैं जबकि पूर्ति वृद्धि न हो पाने के कारण मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में मांग आधिक्य के कारण मूल्य स्तर में लगातार तेज संचयी तथा स्थायी वृद्धि हो रही है। इस प्रकार मूल्य में मुद्रा स्फीति की आवश्यक दशा है।

स्फीति के अनेक रूप हो सकते हैं। प्रायः स्फीति के निम्नांकित रूपों की चर्चा की जाती है-

(क)दर के आधार पर स्फीति

1. रेंगती नम्र स्फीति -जब स्फीति की वार्षिक दर अंक में हो तो इसे नम्र या रेंगती स्फीति कहते हैं। नम्र स्फीति को वंछित माना जाता है क्योंकि इससे आर्थिक क्रियायें प्रेरित होती हैं।

2.कूदता या गैलोपिंग स्फीति-स्फीति की वार्षिक दर दो अंकीय या तीन अंकीय हो जैसे 20,100,200 प्रतिशत मो इसे गैलोपिंग स्फीति कहते है।

3.अधि स्फीति या हाइपर स्फीति-जब स्फीति की दर अंको से भी बहुत अधिक हो जाय तो उसे अधिस्फीति कहते है। हाइपर स्फीति की सबसे पहले चर्चा केगन ने की।

(ख)खुली तथा दबी स्फीति-

जब स्फीति पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं हो तथा मूल्यस्तर स्वतः बिना रोक टोक के ऊपर आ जाता है तो इस प्रकार की स्फीति को खुली स्फीति कहते है ।पर जब सरकार अनेक प्रकार की नीतियों के द्वारा मूल्य स्तर की एक सीमा में रखने की कोशिश करें और मूल्य स्तर उतना ऊँचा नहीं दिखाई दे जितना वह वास्तविक रूप में हों सकती है तो इस प्रकार की स्फीति को दबी स्फीति कहते हैं।

(ग)मांग एवं लागत प्रेरित स्फीति

1. मांग प्रेरित स्फीति -जब समग्र पूर्ति की अपेक्षा समग्र मांग को प्रभावित करने वाले कारक अधिक प्रभावी हो इस प्रकार मांग पूर्ति से अधिक हो जाय तो मांग प्रेरित स्फीति कहते हैं।

2. लागत प्रेरित स्फीति -लागत में वृद्धि के कारण में वृद्धि आये या वस्तुओं की पूर्ति में अत्यधिक कमी के कारण मूल्यस्तर में वृद्धि आये तो इस प्रकार की स्फीति को लागत प्रेरित स्फीति कहते है।

(घ) अन्य प्रकार

1. आय स्फीति- यह मार्क अप इनफ्लेशन जो मांग जन्य तथा लागत प्रेरित दोनों कारणें को समन्वित करता है।

2. क्षेत्रीय विवर्तन स्फीति- जो यह प्रतिपादित करता है कि मांग आधिक्य के कारण नहीं बल्कि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों या विभिन्न उत्पादों के बीच मांग के बँटवारे में विवर्तन के कारण स्फीति होगी।

3.संरचनात्मक स्फीति- जिसका प्रतिपादन गुनार मिर्डाल ने किया तथा जिसमें पॉल स्ट्रीटेन ने योगदान किया। कम विकसित देशों में अर्थव्यवस्था के संचार में होने वालें असन्तुलन स्फीति को जन्म देंगें। प्रमुख संरचनात्मक असन्तुलन हैं- खाद्य में कमी, संसाधन असन्तुलन, विदेशी विनिमय अवरोध, अवस्थपनात्मक अवरोध तथा सामाजिक तथा राजनैतिक प्रतिबन्ध।

8.5 मुद्रा स्फीति की माप

मूल्यस्तर में परिर्वतन की दर ही मुद्रा स्फीति की दर प्रदर्शित करती है। एक एसी अर्थव्यवस्था में जो पूर्ण रोजगार में है, मुद्रा की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि मूल्यस्तर में अनुपातिक वृद्धि लाती है अर्थात यदि मुद्रा की पूर्ति में 5 प्रतिशत की वृद्धि हो तो मूल्यस्तर में भी 5 प्रतिशत की वृद्धि होगी, ऐसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति की वृद्धि दर स्फीति की दर प्रदर्शित करेगी।

किसी भी अर्थव्यवस्था में स्फीति की दर के नापने के सामान्यता दो तरीके प्रयोग में लायें जाते है।

(क) मूल्य सूचकांक (PIN) में विभिन्न वर्षो में प्रतिशत परिर्वतन

(ख) GNP या GDP अवस्फीतिक में परिर्वतन

(क) मूल्य स्तर में परिर्वतन की माप के लिए मूल्य सूचकांक (Price Index-PIN) का प्रयोग करते है इसलिए हम यह कह सकते है कि मूल्य सूचकांक स्फीति की दर के माप का तरीका है। इसके लिए हम

विभिन्न अवधियों में PIN में होने वाले परिर्वतन ज्ञात करते हैं इसके अनुसार

$$\text{स्फीति की दर} = \frac{\text{PIN चालू अवधि - PNI पिछली अवधि}}{\text{PIN चालू अवधि}} \times 100$$

PIN के तीन रूप हो सकते हैं- थोक मूल्य निर्देशांक (WPI) औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक (CPI-IW) तथा कृषि श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक (CPL-AL) पर तीनों विधियों में स्फीति दर की गणना सूत्र ऊपर वाला ही होगा, अन्तर केवल PIN के स्वभाव का होगा।

अभिजीत सेन पैनेल की 2008 में प्रस्तुत रिपोर्ट की संस्तुतियों को क्रियान्वित करते हुए थोक मूल्य निर्देशांक (WPI) में अनेक महतवपूर्ण परिर्वतन किए गये हैं **(i)** अब WPI का आधार वर्ष 1993-94 के स्थान पर 2004-05 (ii) थोक मूल्य अब मासिक आधार पर प्रदर्षित होगा जो अब तक साप्ताहिक होता है था (i) इसमें 435 वस्तुओं की वर्तमान संख्या के स्थान पर 850 वस्तुयें होंगी,

सेन कमेटी ने 1135 वस्तुओं की बात की थी (ii) निर्देशांक में मैन्युफैक्चर्ड वस्तुओं को 63.75 प्रतिशत भार के स्थान पर लगभग 80 प्रतिशत का भार प्राप्त होगा। (iii) नयी व्यवस्था के बाबजूद भी संवेदनशील प्राथमिक वस्तुओं और ईधन सामाग्री के थोक मूल्य सम्बन्धी आंकड़े साप्ताहिक आधार पर जबकि विनिर्मित वस्तुओं के थोक मूल्य सम्बन्धी ऑकड़े मासिक आधार पर इकट्ठा किए जायेंगे।

(ख) सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) अवस्फीतिक जब हम बाजार में प्रचलित मूल्य पर जी0 डी0 पी0 ज्ञात करते हैं तो इसे चालू मूल्य पर व्यक्त जी0 डी0 पी0या मौद्रिक जी0 डी0 पी0 कहते है और जब इसे हम किसी आधार वर्ष के स्थिर मूल्य के आधार पर व्यक्त करते है, जिसमें जी0 डी0 पी0 पर पड़ने वाला स्फीतिक प्रभाव समाप्त हो जाता है तो इसे हम वास्तविक जी0 डी0 पी0या स्थिर मूल्य पर व्यक्त जी0 डी0 पी0 कहते है। इस प्रकार मौद्रिक जी0 डी0 पी0 को बदलते हुए मूल्यों के आधार पर व्यक्त करते है जबकि वास्तविक जी0 डी0 पी0 को व्यक्त करने के लिए मूल्य में परिर्वतन को ही समाप्त कर दिया जाता है। मौद्रिक जी0 डी0 पी0 की कीमत में वृद्धि है और इसे हम जी0 डी0 पी0 डिफ्लेटर कहते है। इस प्रकार यह मौद्रिक जी0 डी0 पी0 को वास्तविक जी0 डी0 पी0 में परिर्वतन करने का तरीका है और इसे ही हम अर्थव्यवस्था में मूल्यस्तर में परिर्वतन की माप के लिए प्रयोग में लाते है। इसलिए यह अर्थव्यवस्था में मूल्य स्तर में वृद्धि या सफीति की दर नापने का तरीका है।

$$\text{जी0 डी0 पी0 अवस्फीतिक} = \frac{\text{चुने गये या चालू वर्ष का PIN}}{\text{आधार वर्ष का PIN या 100}}$$

एक अन्य प्रकार के जी0 डी0 पी0 अवस्फीतक को कहते है

$$\text{जी0 डी0 पी0 अवस्फीतिक} = \frac{\text{चालू वर्ष की मौद्रिक आय}}{\text{चालू वर्ष की मौद्रिक आय का वास्तविक मूल्य}} \times 100$$

8.6 मुद्रा स्फीति के कारण एवं प्रभाव

मुद्रा स्फीति के लाने वाले कारणों को निम्नांकित वर्गों में रख सकते हैं-

(क) मांग आधिक्य के फलस्वरूप मूल्यस्तर में वृद्धि लाने वाले कारक-

1. घाटे की वित्तीय व्यवस्था जिसके फलस्वरूप मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि, लोगो की मौद्रिक आय में वृद्धि फलस्वरूप मांग में वृद्धि हो।
2. सरकार की आय में तेजी से वृद्धि जो गुणक प्रभाव के कारण मौद्रिक आय में बहुत वृद्धि लाये और मांग में वृद्धि हो।
3. सरकार द्वारा प्रत्यक्ष कर की दर में कमी, फलस्वरूप लोगो की व्यय योग्य आय में वृद्धि।
4. परोक्षकर की दर में वृद्धि जो वस्तुओं के मूल्य में प्रत्यक्ष वृद्धि लाये।
5. बैंकों द्वारा अधिक मात्रा में साख मुद्रा का निर्माण या लोगो को ऋण देना।
6. विदेशी पूंजी के अधिक अन्तप्रवाह या किसी कारण से विदेशी विनिमय कोष में वृद्धि के परिणाम M_3 में वृद्धि।
7. ऐसी परियाजनाओं पर अधिक व्यय जिनकी फलन अवधि लम्बी हो फलस्वरूप व्यय मांग में तो वृद्धि लाये पर पूर्ति में वृद्धि नही हो।
8. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि या पड़ोसी देशों से शरणार्थियों के कारण जनसंख्या के आकार तथा फलस्वरूप मांग में वृद्धि।
9. ब्याज दर में कमी जिसके परिणामस्वरूप विनियोग व्यय तथा उपभोग व्यय (विशेष रूप से उपभोक्ता टिकाउ वस्तुओं पर) में वृद्धि।

(ख) ऐसे कारण जो अर्थव्यवस्था में पूर्ति की मात्रा में कमी लाते हैं, फलस्वरूप मूल्य स्तर में वृद्धि हो।

i. आगत की कमी, बाढ़, सूखा का होना, उत्पादकता में कमी आदि के कारण कृषि क्षेत्र से खाद्यान्नों की पूर्ति में कमी आये।
ii. राजनैतिक वातावरण की प्रतिकूलता, कच्चा माल, ऊर्जा की अनुपलब्धता, श्रमिकों की हड़ताल, पूंजी की अनुपलब्धता, व्यापारिक बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋण में कमी या सभी प्रकार के अवरोध जो औद्योगिक उत्पादन में कमी लाये।
iii. वस्तुओं की पूर्ति को कृत्रिम रूप से जानबूझ कर अवरोधित करना या वस्तुओं के स्टाक के आधार पर बैंक से ऋण लेना तथा इस प्रकार बाजार में पूर्ति में जानबूझ कर कमी लाना जैसे होर्डिंग के कारण।
iv. आयात, विशेष रूप से ऐसी वस्तुओं के आयात को प्रतिबन्धित करना या कमी लाना जिनकी कमी के कारण मूल्य बढ़ रहा है। अथवा घरेलू पूर्ति पर ध्यान दिए बिना इन वस्तुओं का निर्यात करना।

(ग) ऐसे कारण जो वस्तुओं की लागत में वृद्धि तथा परिणामस्वरूप मूल्य वृद्धि लाते हैं-

(i) परोक्ष करारोपण की ऊँची दर जो सामान्य रूप से वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि लाती है पर इसका प्रभाव और गम्भीर होगा यदि माध्यमिक वस्तुयें अत्यधिक करारोपित हों।

(ii) प्रशासित मूल्य-नीति, रेलवे सेवा, स्टील, सीमेन्ट, कोयला, पेट्रोल अदि के मूल्य में वृद्धि जो लागत में वृद्धि लायें।

(iii) ब्याजदर में वृद्धि, सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा क्राउडिंग आउट फलस्वरूप ऋण की लागत में वृद्धि।

(iv) तेल संकट तथा पेट्रोल के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य में तेजी से वृद्धि जो लागत को प्रभावित करके मूल्य स्तर में वृद्धि लायें। उर्वरक की लागत में वृद्धि कृषि वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि लाती है ।

(घ) ग्लोबल कारक- कोई भी अर्थव्यवस्था जितनी ही अधिक खुली अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ती हैं विश्व के अन्य देशों में होने वाली आर्थिक क्रियाओं तथा आर्थिक विकास सम्बन्धी व्यवहार का प्रभाव देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है।

i. विकासशील देशों में आय में तीव्र वृद्धि के कारण खाद्यान्नों तथा खाद्य तेलों की मांग मेंवृद्धि, बायोफ्यूएल निर्माण में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की मांग तथा मूल्य में वृद्धि।
ii. उत्पादन तथा स्टाक में कमी के कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कीमतों का बढ़ना।
iii. उर्वरकों तथा फ्यूएल के मूल्यों में वृद्धि के कारण कृषि लागत में वृद्धि।
iv. मेटल के मूल्य में, विशेषरूप से विकासशील देशों की मांग उसमें भी विशेषरूप से चीन की माँग में वृद्धि के कारण।

मुद्रा स्फीति के प्रभाव	**प्रभाव क्षेत्र**
उपभोक्ता	नकारात्मक
ऋणी	लाभ
ऋणदाता	हानि
सार्वाजनिक बचत	कमी
सार्वजनिक व्यय	वृद्धि
आयात	वृद्धि
निर्यात	कमी
रोजगार	वृद्धि

करारोपण	वृद्धि
उत्पादक	लाभ
व्यापारी वर्ग	लाभ
कृषक	लाभ
विनियोजक	लाभ
परिवर्तनशील आय समूह	लाभ
स्थिर आय समूह	हानि
पेंशन भोगी वर्ग	हानि
नकद ऋणपक्ष तथा डिवेन्चर के रूप में सम्पत्ति धारक	हानि

8.7 मुद्रा स्फीति रोकने के उपाय

(i) मौद्रिक नीति के द्वारा जैसे बैंकदर में वृद्धि, खुले बाजार की क्रियाओं के अन्तर्गत प्रतिभूतियों का विक्रय, रीपो के द्वारा तरलता का अभिशोषण, सी. आर. आर. में वृद्धि, स्फीति संवेदनशील वस्तुओं के सम्बन्ध में मार्जिन का बढ़ाना, बढ़ते विदेशी विनिमय कोष के स्फीतिक या मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि लाने वाले प्रभाव को निरस्त करना।

(ii) राजकोषीय नीति का प्रयोग जिसके अन्तर्गत करारोपण में वृद्धि जिससे व्यय योग्य आय में कमी हो, सार्वजनिक व्यय में कमी, हीनार्थ प्रबन्ध तथा मौद्रीकरण पर रोक, ऋण के प्रतिदान का स्थगित करना।

(iii) आयात तथा निर्यात नीति- स्फीति-संवेदनशील उपभोग वस्तुओं के आयात को प्रोत्साहित करना तथा उनके निर्यात को प्रतिबन्धित करना, पूंजीगत वस्तुओं तथा उन्नत टेक्नालजी के आयात को प्रोत्साहित करना जिससे उत्पादकता तथा उत्पादन में वृद्धि हो।

(iv) उत्पादन की वृद्धि तथा लागत में कमी के उपाय आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करना, संवेदनशील वस्तुओं की होर्डिंग तथा संग्रहण पर रोक लगाना,निष्क्रिय उत्पादन क्षमता के प्रयोग पर बल वस्तुओं की राश्निंग, बफर स्टाक

के निमार्ण तथा कायम रखने पर बल, मजदूरी तथा लाभ की वृद्धि पर रोक, उत्पादन अवरोधित करने वाले तथा लागत बढ़ानें वाले कारकों पर रोक, लाभांश के वितरण पर रोक।

अभ्यास प्रश्न 1

1.मुद्रा स्फीति से क्या आशय है?

2. मुद्रा स्फीति के प्रकार बताइए?

3. मुद्रा स्फीति की मापन की विधियॉं कौन-2 सी है?

4. मुद्रा स्फीति के प्रभाव को संक्षेप में बताइए?

8.8 खाद्य सुरक्षा का आशय

कृषि क्षेत्र से जुड़ा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है खाद्य सुरक्षा जिसे खाद्य एवं कृषि संस्था (थ्।व्) ने परिभाषित किया कि ‘‘सभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए आवश्यक बुनियादी भोजन के लिए भौतिक एवं आर्थिक दोनों रूप में उपलब्धि के आश्वासन के रूप में की है।’’ इस परिभाषा से कुछ बातें उभर कर आती हैं, किसी देश की समग्र जनसंख्या को खाद्य की भौतिक उपलब्धि आवश्यक है। पर्याप्त खाद्य उपलब्धता के लिए पर्याप्त क्रय शक्ति होना चाहिए जिससे खाद्य पदार्थ हासिल कर सकें। स्वस्थ जीवन के लिए उपलब्ध खाद्य, गुणवत्ता और मात्रा दोनों दृष्टिकोण से पोषण सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को मजबूत करने के लिए खाद्य उत्पादन में स्वावलम्बिता दीर्घकालीन होनी चाहिए। किसी भी राष्ट्र को खाद्य संभरण की इतनी वृद्धि दर आश्वस्त करनी होगी जिससे न केवल जनसंख्या की वृद्धि का ध्यान रखा जा सके अपितु साथ-साथ लोगों की आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप खाद्य की मांग में वृद्धि की भी पूर्ति की जा सके।

विश्व विकास रिपोर्ट 1986 में खाद्य सुरक्षा की परिभाषा इस प्रकार व्यक्त कि, ‘‘सभी व्यक्तियों के लिए सभी समय पर एक सक्रिय, स्वस्थ जीवन के लिए पर्याप्त भोजन की उपलब्धि के रूप में है’’ किन्तु खाद्य एवं कृषि संस्था ने 1983 में खाद्य सुरक्षा की परिभाषा इस प्रकार व्यक्त कि ‘‘सभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए आवश्यक बुनियादी भोजन के लिए भौतिक एवं दोनों रूप में उपलब्धि के आश्वासन के रूप में की है’’ ।

8.9 खाद्य समस्या का स्वरूप

अध्ययन की सुविधा के लिए खाद्य समस्या के तीन पक्ष माने जाते है- परिमाणात्मक, प्रशासनिक और आर्थिक। इन्हें निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

परिणात्मक पक्ष- इसका सम्बन्ध खाद्यान्नों की मांग व पूर्ति से होता है सामान्यतः खाद्य सामाग्री का उपलब्ध परिमाण प्रायः मांग से कम रहा है, अतः खाद्या समस्या एक अल्पकालीन संकट नहीं अपितु दीर्घकालीन समस्या मानी जाती है। मात्रात्मक पहलू की दृष्टि से पहले की तुलना में स्थिति बेहतर अवश्य हुई है। दीर्घकाल तक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए इनका उत्पादन बढ़ाने के साथ जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण करना होगा।

प्रशासनिक पक्ष-इसका सम्बन्ध वितरण पक्ष से हाता है न कि उत्पादन पक्ष से। सामान्यतः यह संभव है कि खाद्यान्नों का उत्पादन तो बढ़ जाये लेकिन वितरण व्यवस्था के दोषपूर्ण होने से खाद्य समस्या निरन्तर बनी रहती है।

आर्थिक पक्ष-भारत में कई बार यह देखा जाता है कि महंगे अनाज को क्रय करेन के लिए लोगों के पास आवश्यक क्रय शक्ति का अभाव रहता है अर्थात इस पहलू का सम्बन्ध जनता की गरीबी तथा खाद्यान्नों कें ऊँचे भावों से होता है।

8.10 खाद्य समस्या के कारण

दीर्घकालीन दृष्टि से, इस समस्या के निम्न कारण उत्तरदायी माने जा सकते है।

भारत में वस्तुओं की मांग-सामान्यतः वस्तुओं की माँग बड़े पैमाने पर बढ़ती रही है। मांग में यह वृद्धि मुख्यतः निम्न कारणों से हुई है:-

(1) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि - भारत में जनसंख्या 1951 से 2011 के बीच 36 करोड़ से बढ़कर लगभग 121 करोड़ हो गई तथा इस अवधि के दौरान खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़कर 5 करोड़ टन से लगभग 24 करोड़ टन पहुँच गया लेकिन जनसंख्या वृद्धि व आय से खाद्यान्नों की मांग बड़ रही है। अकाल व सुखे के दौरान देश में खाद्यान्नों की कमी महसूस की जाती है अतः स्पष्ट है कि जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि खाद्य समस्या का प्रमुख कारण मानी जा सकती है।

(2) मांग की ऊँची आय लोच- आमतौर पर कम आय वाले लोगों की आय का अधिकांश भाग आवश्यक वस्तुओं पर खर्च होता है परिणामस्वरूप आय में वृद्धि होने पर अनाज की मांग तेजी से बढ़ती है अतः कम आय वर्ग अनाज के लिए मांग की आय बहुत अधिक रहती है।

आपूर्ति विषयक कारक

सामान्यतः अनाज व खाद्य पदार्थो की आपूर्ति की तुलना से मार्ग तेजी से बढ़ती है। अल्पकालीन हल आयात के द्वारा समय समय पर किये जाते है। लेकिन दीर्घकालीन दृष्टि से आपूर्ति सदैव कम ही रही है। इसके मुख्य कारण निम्न प्रकार से है:-

(1) उत्पादन में धीमी और अनिश्चित वृद्धि- भारत में भोजन का महत्वपूर्ण अश अनाज है- लेकिन उपज की वृद्धि धीमी होने के कारण आपूर्ति सदैव कम बनी रहती है। इस दिशा में हरित क्रांन्ति एक कदम था लेकिन उसका लाभ केवल कुछ क्षेत्रों तक तथा कुछ फसलों तक सीमित हो गया। परिणामस्वरूप के पाँच राज्य अतिरेक उत्पादन कर रहे है, सुखा व बाढ़ आदि ने भी अनाज की कमी को बढ़ाया है। अनाज की आपूर्ति कम व अनिश्चित बनी रहती है। जिसमें खाद्य समस्या और अधिक उलझ जाती है।

(2) कम और घटती बढ़ती आपूर्ति- भंडारण व विपणन की अपर्याप्त सुविधा के कारण खेतिहर अपनी उपज को कीट पतंगों व चूहों आदि से नही बचा पाते है इससे फसल का एक तिहाई भाग नष्ट हो जाता है और शहरी आबादी के संदर्भ में समस्या गम्भीर रूप धारण कर लेती है। कभी कभी लाभ कमाने की चेष्टा से किसान भंडारण कर बाजार में आपूर्ति कर देते है। जिससे खाद्य समस्या उत्पन्न हो जाती है।

भारत में गरीबी एक अभिशाप है खाद्य समस्या गरीबों के संन्दर्भ में और बुरी होती है इसके निम्न कारण है-(1) अपर्याप्त क्रयशक्ति

सामान्यत: गरीबों के पास पर्याप्त क्रय शक्ति नहीं होने के कारण वे अपेक्षित मात्रा में वस्तुएँ खरीदनें में असमर्थ रहते है और जब फसल की स्थिति खराब होती है तो यह स्थिति और अधिक दयनीय हो जाती है।

(3) काम काज का अभाव व बड़े परिवार

हमारे समाज का एक वर्ग ऐसा है जिसके पास कोई परिसम्पत्ति नहीं है। परिवार में सदस्यों की अधिक है और एसे काम भी नहीं मिलता है तो समस्या और कठिन हो जाती है। अन्य खाद्यान्नों की बढ़ती जमाखोरी, भ्रष्टप्रशासनिक व्यवस्था दीर्घकालीन नीति का अभाव आदि।

8.11 भारत सरकार की खाद्य नीति

आयोजनकाल में खाद्य समस्या के समाधान के लिए सराकार ने चार प्रकार से उपाय किए है।

क.खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की दिशा में प्रयास-खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से सरकार ने तीन प्रकार के उपाय किए है।

1.तकनीकी उपाय - आयोजकाल में खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाने के लिए यद्यपि तकनीकी उपायों के महत्व को प्रारम्भ से ही स्वीकार किया गया है लेकिन 1966 के बाद से कृषि विकास की नई युक्ति नीति के अन्तर्गत सिचाई की सुविधाओं के विस्तार पर अधिक बल दिया गया था, लेकिन उसके बाद उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरकों, कीटनाशक दवाओं, आधुनिक कृषि मशीनरी इत्यादि के उपयोग को बढ़ानें की ओर ध्यान दिया गया है। खेती में मशीनीकरण भी तेज गति से हो रहा है। टैक्टरों, हार्वेस्टर मशरनों, पम्पसेटों, नलकूपों आदि का प्रयोग बढ़ रहा है। इन तकनीकी उपायों से खाद्यान्नों के उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने में काफी सहायता मिली है।

2.भूमि सुधार - भारत में कृषि विकास के लिए भूमि सुधारों की आवश्यकता को सैद्धान्तिक रूप से सरकार ने बहुत पहले स्वीकार कर लिया था। परन्तु ये भूमि सुधार दोषपूर्ण थे और इन्हें लागू करने में भी शिथिलता दिखाई गई। अतः उत्पादन पर इनका विशेष अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा।

3.प्रेरक मूल्य नीति - किसानों को उनकी फसलों का अच्छा मूल्य देने से खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी अर्थात् प्रेरक मूल्य नीति का अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए सरकार ने 1965 में कृषि कीमत आयोग गठित किया कृषि लागत व कीमत आयोग यह आयोग विभिन्न कृषि फसलों के लिए वसूली कीमतों व न्यूनतम समर्थन कीमतों की घोषणा करता है।

भारत में खाद्य समस्या के समाधान के अन्तर्गत सरकार ने अथक प्रयास किये है, लेकिन वे कहां तक सफल रहें हैं इस सम्बन्ध में निष्कर्ष उन्हीं तीन बातों के आधार पर निकाले जा सकते है जो कि खाद्य समस्या के स्वरूप के अर्न्तगत स्पष्ट की गयी है। ये है, उपलब्ध अनाज की मात्रा, लोगों के आहार की कोटि और गरीबों को अनाज की प्राप्यता। इन कसौटियों पर नीति की परख की जाकर कोई उचित व संतुलित निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

ख.खाद्यान्नों के वितरण व्यवस्था के सुधार -पिछले वर्षो में सरकार ने खाद्यान्नों के वसूली मूल्य निर्धारित किये है और निर्धारित कीमतों पर क्रय कर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आम जन को अनाज के उचित वितरण का प्रयास किया ऐसा करने का प्रमुख उद्देश्य यह था कि सभी लोगों के बीच विशेषतः समाज के पिछड़े व कमजोर वर्गो के अनाज का उचित वितरण हो सके।

ऐसे समय जब देश में खाद्य स्थिति उच्छी नही थी देश ऐसे क्षेत्रों में विभक्त किया गया जो यथा सम्भव आत्म निर्भर रखे जा सकें अर्थात इसके लिए प्रत्येक क्षेत्र में अधिक व कम उपज वाले क्षेत्रों को शामिल किया गया, तथा यह नियंत्रण किया गया कि अनाज का व्यापार क्षेत्र विषेष के भीतर ही

किया जा सकता था। साथ ही गेहूँ तथा चावल के व्यापार का सरकारीकरण एवं थोक व्यापार का राष्ट्रीयकरण समाप्त कर दिया गया।

ग.माँग एवं कीमत में नियत्रण -इस हेतु सरकार ने तीन तरह के उपाय किये है ये है राशन व्यवस्था,थोक एवं खुदरा व्यापारियों और उपभोक्ता के स्टाकों से सम्बन्धित मागों को न्यूनतम स्तर पर बनाए रखा जाए, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण हेतु परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रचार आदि। ये सभी उपाय खाद्य पदार्थो की कीमत एवं मांग में नियत्रण रखेंगें।

घ.गरीबी को कम करने की कोशिश -विभिन्न माध्यमों से इस समस्या का समाधान परोक्ष रूप से खाद्य समस्या के निवारण में सहायता करता है इनमें प्रमुख रूप से श्रम प्रधान तकनीक का उपयोग अधिक किया जाए। जिससे रोजगार अधिक मिल सके, भूमि की सीमा बन्दी नीति से प्राप्त अतिरिक्त भूमि का वितरण, उत्पादक कार्यो के लिए रियायती दरों पर ऋण की व्यवस्था आदि एवं इसके अतिरिक्त अनेक गरीबी उन्मूलन व रोजगार योजना, अन्त्योदय योजना प्रमुख रही है। परिणाम स्वरूप अनेक निर्धन परिवारों को अपेक्षाकृत मात्रा में नीची कीमत पर अनाज प्राप्त कराया जाता रहा है।

इस सन्दर्भ में कुछ अन्य उपलब्धियों का भी उल्लेख किया जा सकता है। उदाहरण के लिए घरेलू उत्पादन और आयात के सहारे अनाज की कुल आपूर्ति जो देश में उपलब्ध होती है। विभिन्न प्रदेशों और वर्गो के बीच उसके समुचित वितरण के सिलसिले में आवश्यक कदम उठाए गए है। इसी प्रकार कीमत नीति द्वारा निम्न वर्ग को सस्ते दाम पर अनाज सुलभ हो और उत्पादकों को अपने माल की उचित कीमत मिले इसका निदान करने की कोशिश की गयी है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह नजर आता है कि सरकारी नीति के खाद्य आपूर्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़े है किन्तु यह परिमाणात्मक कमियों से मुक्त नहीं है। अतः विफलताओं पर भी नजर डालना आवश्यक है।

सरकार को खाद्यान्नों की खरीद संग्रह व वितरण की एक ऐसी व्यवस्था अपनानी चाहिए जो अभाव व आधिक्य दोनों प्रकार के वर्षो की कठिनाइयों को दूर करके उत्पादकों व उपभोंक्ताओं के हितों की भली भॉति रक्षा कर सके। इसके लिए प्रों मिन्हास दारा बतलाई गई कमी को दूर करके एक सुदृढ़ व दीर्घकालीन खाद्य नीति तैयार की जानी चाहिए।

खाद्य समस्या के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि किसी भी अर्थव्यवस्था के खाद्य सुरक्षा प्रणाली के निम्नलिखित अंगो का उचित समाधान किया जाए तो खाद्य समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। ये प्रमुख अंग है देशीय उत्पादन को बढ़ावा देना ताकि बढ़ती हुई जनसंख्या की मांग पूरी की जा

सके। और इसके साथ-साथ जनसंख्या के काफी बड़े भाग में अल्प पोषण कम किया जा सके। खाद्य पदार्थो की वसूली और संग्रहण के लिए न्यूनतम आलम्बन कीमतें (Minimum Suppoty Price) उपलब्ध कराना। सार्वजनिक वितरण की प्रणाली को चलाना और बफर स्टाँक कम करना ताकि प्राकृतिक विपत्तियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हाने वाली अस्थायी दुर्लभता का मुकाबला किया जा सके। और खाद्य कीमतों के ऊपर धकेलने का प्रयास करने की समस्या प्रतिशक्ति का कार्य कर सके।

पहली योजना में कृषि को प्राथमिकता क्रम में पहला स्थान दिया गया। इस योजना के आखिरी वर्ष में खाद्यान्नों का उत्पादन योजना में निर्धारित लक्ष्य से ऊचां था। अतः खाद्यान्नों की घरेलू पूर्ति में सुधार होने से आयातों में भारी कमी हुई। इनका प्रभाव खाद्यानों की कीमतों पर पड़ा और उनमें भारी कमी हुई। इस अनुकूल स्थिति से संतुष्ट होकर सरकार और योजना आयोग को विश्वास से चला था कि देश को खाद्य संकट से मुक्ति मिल गई। परन्तु यह विश्वास आकरण था क्योंकि खाद्य स्थिति में सुधार अनुकूल मौसम के कारण था, जो अस्थाई था दूसरी योजना की अवधि में, विशेष रूप से 1959 और 1960 में, खद्यान्नों के भारी अभाव की स्थिति थी। अतः इन वर्षो में खाद्यान्नों का काफी आयात किया गया। 1963-64 के वर्ष को छोड़कर तीसरी योजना के अन्य सभी वर्षो में खाद्यान्नों का उत्पादन 1960-61 के स्तर पर अथवा उससे नीचा था। योजना की अवधि में खाद्य संकट के कारण जिस बड़े पैमाने पर खाद्यान्नों का आयात किया गया, उससे भुगतान शेष की स्थिति काफी बिगड़ गई।

तीसरी योजना के बाद (विशेषतया हरित क्रांन्ति के काल में) खाद्यान्नों के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। सरकार ने भारतीय खाद्य निगम के माध्यम में खाद्यान्नों की काफी वसूली की है और बफर भंडारों का निर्माण किया है।

परिमाणात्मक स्तर पर खाद्य समस्या का निदान हो चुका है तथापि गुणात्मक स्तर पर अभी बहुत कुछ करना बाकी है। अभी भी करोड़ो लोग भुखमरी और कुपोषण का शिकार है, इस संदर्भ में निम्नलिखित तथ्यों की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है, (1) जनसंख्या का एक बहुत बड़ा वर्ग गरीबी रेखा से नीचे रहने को मजबूर है। (2) प्रति व्यक्ति अनाज का उपभोग न केवल कम है बल्कि उसमें समय के साथ गिरावट आई है। (3) ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रति दिन और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी प्रति व्यक्ति प्रति दिन को न्यूनतम आवश्यकता के रूप में स्वीकार किया है। देश के 70-80 परिवार न्यूनतम कैलोरी आवश्यकताओं को पूरा कर पाने में असमर्थ थें (4) बहुत से लोग सूक्ष्म पोषण तत्वों जैसे विटामीन ।, विटामीन ब्, आयरन, नियासिन, रिबोफ्लेबिन, थियामिन इत्यादि की कमी से पीड़ित है; तथा (5) मानवमितीय मापदंडों के आधार पर, पोषाहार अवस्था अनुसार, देश के 50 प्रतिशत व्यस्क और 55 प्रतिशत बच्चे कुपोषण का शिकार है।

वस्तुतः भुखमरी और कुपोषण का व्यापक स्तर पर होना ही सार्वजनिक वितरण प्रणाली को बनाए रखने का औचित्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है।

खाद्य पदार्थो की ऊंची कीमतें-भारत में खाद्यान्नों की निरन्तर बढ़ती कीमतों ने खाद्य संकट को बहुत अधिक गम्भीर बना दिया है। इस देश में श्रमजीवी वर्ग जीवन निर्वाह के लिए केवल खाद्यान्नों पर निर्भर है। इस वर्ग के लोगों की खाद्यान्नों की मांग बेलोच है। अतः व्यापारी और बड़े किसान अभाव की स्थिति में अपने मुनाफे बढानें के उद्देश्य से खाद्यान्नों की बड़े पैमानें पर जमाखोरी करते है।

खाद्य नीति की विफलताएँ-सरकार की खाद्य नीति की विफलता का सम्बन्ध अकुशल प्रबंधन से जुड़ा हुआ है क्योंकि देश में अनाज के सम्बन्ध में भारी क्षेत्रीय असमानताएं विद्यमान है जो कि गंभीर समस्या है। अनाज का उत्पादन बढ़ा तो है लेकिन संतोषजनक नहीं है। इस सन्दर्भ में एक बात का स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि हमारी खेती अभी भी मौसम की दासता से मुक्त नहीं है तथा दालों की उपज में वृद्धि की दर बहुत कम है।

अनाज वसूली की नीति का विफलता और सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए अनाज सुलभ कराने के लिए आयात पर निर्भरता के परिणामस्वरूप अनाज की उपज बढ़ाने के प्रयत्नों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जिससे कीमतों में वृद्धि हुई है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि अनाज की कीमतें तेजी से बढ़ा दे इस वस्तु स्थिति में मजदूरी बढ़ाकर और गरीब वर्ग के जीवन निर्वाह व्यय में वृद्धि करके मुद्रास्फीति रूपी आग को भड़काया हैं। दूसरी और दालों की मूल्य वृद्धि का गरीब पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा है क्योंकि दाले ही प्रोटीन का प्रमुख स्रोत को पूरा करना भले ही मुश्किल न हो।

8.12 खाद्य सुरक्षा के उपाय

खाद्य सुरक्षा का आधारभूत अर्थ होता है लोगों को आर्थिक और भौतिक रूप से खाद्यान्न सुलभ होना। जहाँ तक भौतिक सुलभता का प्रश्न है, वह उत्पादन में बढ़ोतरी करके प्राप्त की जा सकती है, या खाद्यान्नों के आयात के द्वारा भी। किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। खाद्य सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि लोग खाद्य क्रय के लिए आर्थिक रूप से समर्थ हों यानि, उनके पास पर्याप्त क्रय शक्ति हो ताकि वे आवश्यक मात्रा में खाद्य खरीद सके। हालाकि गत वर्षो में भारत खाद्य के मामलों में सुरक्षित हो गया है, फिर विश्व खाद्य संगठन का अनुभव है करोड़ों भारतवासी अभी भी **“चिरंतन खाद्य असुरक्षा”**

के दुष्चक्र में फंसे है। इनमें सीमांत किसान, जन जातियां, दलित, भूमिहीन मजदूर और अस्थायी मजदूर शामिल है।

दूसरे, राष्ट्रीय स्तर पर खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता का आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं है कि राज्य या प्रदेशिक स्तर पर भी आत्मनिर्भरता है। भारत में केवल 5 राज्यों में ही अतिरिक्त खाद्य उत्पादन होता है जबकि अन्य राज्य खाद्य की कमी वाले राज्य है। खाद्य सुरक्षा बनाये रखने के लिए अतिरिक्त बचे हुए अन्न वाले राज्यों से कमी वाले राज्यों में निर्बाध प्रवाह होना चाहिये।

तीसरे, उच्चतर खाद्यान्न उत्पादन से खाद्य सुरक्षा की समस्या स्वतः हल नही होता। इससे यह गारंटी नही होती कि जरूरतमंद को खाद्यान्न उपलबध है। ऐसी स्थिति तब पैदा होती है जब निर्धन लोग आय या क्रय क्ष्मता के अभाव के कारण, पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न नहीं खरीद पाते। इस दशा में खाद्य अधिक्य की बहुत ही भ्रामक स्थिति का निर्माण हो जाता है।

कुल खाद्यान्न का लगभग 85 प्रतिशत मनुष्यों के उपभोग के लिए उपलब्ध है जबकि 15 प्रतिशत खाद्यान्न उत्पादन का प्रयोग बीज या चारे के लिए होता है, या व्यर्थ हो जाता है।

खाद्यान्नों की उपलब्धता उत्पादन से भिन्न भी हो सकती है। उत्पादन से अधिक उपलब्धता दो माध्यमों से होती है पहला विदेशों से अन्न आयात करके उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है। दूसरी और निर्यात से उपलब्धता घट सकती है ।

एक खास वर्ष में विद्यमान भंडार से खाद्यान्न निकालकर उपलब्ध्ता बढ़ाई जा सकती है। अतः भंडार में परिर्वतन से भी उपलब्धता पर प्रभाव पड़ता है।

पूर्व दशक की अपेक्षा 1990 के दशक में कृषि उत्पादन में काफी मंदी आई है। 1980 के दशक में प्रति वर्ष 3.2 प्रतिशत की तुलना में 1990 के वर्षो में केवल 1.5 प्रतिशत की दर से खाद्य उत्पादन बढ़ा और 2000 के दशक में जनसंख्या वृद्धि दर से भी कम है।

खाद्य उत्पादन वृद्धि की धीमी गति और बढ़ते खाद्यान्न भंडार के परिणामस्वरूप जनता को उपलब्ध खाद्यान्नों की मात्रा 1991 के प्रति दिन प्रति व्यक्ति क औसत 510 ग्राम से गिर कर 2010 में 451 ग्राम पहुँच गई।

नवम पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज के अनुसार अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों में लोग औसतन कुल खर्च का 63 प्रतिशत भोजन पर व्यय करते हैं और नगरों में लगभग 55 प्रतिशत भोजन पर खर्च करते हैं। खाद्यान्नों पर होने वाला व्यय ग्रामीण क्षेत्रों में 45 प्रतिशत और नगरीय क्षेत्रों में 32 प्रतिशत के लगभग बैठता है। जनसंख्या का निम्नतम आय वाला 30-40 प्रतिशत वर्ग

अपने कुल व्यय का 70 प्रतिशत से अधिक भोजन पर खर्च करता है। इस वर्ग में ग्रामीण लोग खाद्यान्न पर 50 प्रतिशत आय तथा शहरी 40 प्रतिशत आय से अधिक खर्च करते है।

दालों व अनाजों की कुल उपलब्धता

प्रति व्यक्ति निवल उपलब्धता प्रतिदिन (ग्राम)			
वर्ष	**अनाज**	**दालें**	**कुलयोग**
1961	399.7	69.0	468.7
1971	417.6	51.2	468.8
1981	417.3	37.5	454.8
1991	468.5	41.6	510.1
2000	426.0	32.0	458.0
2009 - 10	421.0	30	451.0

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण

खाद्य समस्या के स्वरूप, प्रस्तावित समाधानों और सरकारी नीति के उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि समस्या बड़ी भी है और गम्भीर भी है। सरकारी नीति अभी भी इस चुनौती का सामना करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त नही कर पाई अतः एक उचित खाद्य नीति क्या हो यह एक यक्ष प्रश्न बना हुआ है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक उचित खाद्य नीति

सरकार ने खाद्य-समस्या को हल करने के कई प्रयत्न किये है, लेकिन उसको खाद्य-समस्या के सभी पहलुओं के उचित हल निकालने में अभी तक पूरी सफलता नहीं मिलि है। खाद्य-समस्या को हल करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है:-

(1) आधुनिक व गहन खेती की आवश्यकता - भारत में नई भूमि पर विस्तृत खेती की सम्भावनाएँ बहुत कम हैं। अतः वर्तमान कृषत भूमि पर गहन खेती के उपाय अपनाकर प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि की जनी चाहिए इसके लिए सुधरे हुए बीजों, उत्तम खाद और रासायनिक उर्वराकों, उत्तम हल तथा अन्य औजारों और खेती के सुधरे तरीकों का प्रयोग करना चाहिए।

(2) वर्षा पर आश्रित तथा सूखी खेती के विस्तार की आवश्यकता - भारत में वर्षा पर आश्रित क्षेत्र से लगभग 45 प्रतिशत खाद्यान्न प्राप्त होते है। विभिन्न श्रोतों से कुल कृषिगत क्षेत्र फल के

लगभग 1/3 भाग में सिचाई की जाती है और शेष 2/3 क्षेत्र आज भी वर्षा पर आश्रित रहता है। लगभग समस्त मोटे अनाज, दालें, अधिकांश कपास व तिलहन वर्षा पर आश्रित क्षेत्रों में बोये जाते है। अतः स्पष्ट है कि भारत में बहुचर्चित दूसरी हरित क्रान्ति सूखी-कृषि की ही क्रान्ति होगी।

(3) प्रति व्यक्ति अनाज व दालों क उपभोग में स्थिरता या गिरावट की समस्या को हल किया जाना चाहिए।

(4) फसलों की रक्षा- भारत में प्रति फसल का एक बड़ा हिस्सा टिड्डियों, चूहों, कीड़ों, फसलों क रोगों से नष्ट हो जाते है। कीड़े मारने की दवाओं के प्रयेग से भी फसलों को रोग नहीं लगता। फसलों को बाढ़, अनावृष्टि व अन्य खतरों से बचाने के लिए इनका बीमा कराया जाना चाहिए। इनका सुरक्षित भण्डार किया जाए।

(5) संस्थागत परिर्वतन- इनके अन्तर्गत भूमि-सुधार व बिक्री-सम्बन्धी नये संगठनों आदि का समावेश किया जाता है। सहकारी संयुक्त खेती करनी चाहिए।

(6) विस्तार कार्यो के लिए प्रभावशाली संगठन-केवल संस्थागत परिर्वतन से ही काम नही चलेगा, बल्कि सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं जैसे ग्राम पंचायतों, सहकारी संगठनों, जिला ग्रामीण-विकास-ऐजेन्सियों ;क्त्क्।द्ध आदि को अधिक सक्रिय व सफल बनाया जाना चाहिए। कृषिकों को कृषिगत साधन खाद, बीज, कीटनाशक दवाएँ आदि उचित समय पर उचित मूल्यों पर उचित मात्रा में उपलब्ध की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में प्रशासनिक कार्य कुशलता बढ़नी चाहिए।

(7) देश व्यापी सार्वजनिक वितरण की प्रणाली का महत्व प्रदान किया जाए।

(8) उपयोग में सुधार एवं परिर्वतन किया जाना चाहिए।

(9) जनसंख्या का नियन्त्रण- जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण स्थापित किये बिना खाद्यान्नों में स्थायी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में कठिनांई होगी।

(10) खाद्यान्नों के लिए आर्थिक सहायता कम करने की आवश्यकता।

(11) खाद्यान्नों के सम्बन्ध में उचित मूल्य नीति की आवश्यकता एवं निजी संस्थान क्रय को बढ़ावा देना।

(12) अधिक स्थिर व अपेक्षाकृत अधिक स्थायी व दीर्घकालीन खाद्य नीति- की आवश्यकता खाद्य नीति के सम्बन्ध में योजना आयोग के पूर्व सदस्य तथा भारत के सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. बी. एस. मिन्हास का यह मत था कि ‘‘एक स्थिर खाद्य-नीति के अभाव में खाद्यान्नों

के उत्पादन के क्षेत्र में हमारी कमियाँ और भी तीव्र हो जाती है। हमारी खाद्य नीति काफी अस्थिर भी रही है। एक वर्ष खुले बाजार में खरीद, दूसरें वर्ष एकाधिकार खरीद, तीसरे वर्ष व्यापारियों व मिलर्स पर लेवी और चौथें वर्ष में इनमें से कुछ का मिश्रण तथा पाँचवें वर्ष में पुनः इनमें से किसी भी एक पर वापस चले जाने की स्थिति आदि। इस प्रकार पिछली शताब्दी में एक स्थाई व स्थिर खाद्य-नीति की कमी ने हमें बहुत हानि पहुँचाई है। इसी के फलस्वरूप हमें खाद्यान्नों के आयात की शरण लेनी पड़ी है, जिसमें दीर्घकाल तथा रियायती शर्तो पर पी. एल. 480 के आयात व आजकल व्यावसायिक आयात भी शामिल होते है।”

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन - इसका प्रारम्भ रबी मौसम 2007-08 से केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में हुआ। इसका उद्देश्य 11वीं योजना (2007-12) के अन्त तक चावल, गेहूँ और दलहनों का उत्पादन क्रमशः 10, 8 और 2 मिलियन टन करना, रोजगार सृजन तथा किसानों के विश्वास की बहाली।

- यह योजना कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय द्वारा संचालित होती है।
- वर्तमान में यह देश के 17 राज्यों के 476 चिन्हित जिलों में कार्यान्वित की जा रही है।
- इस मिशन के तीन प्रमुख संघटक हैं एन.एफ.एस.एम.-चावल, एन.एफ.एस.एम.-गेहूँ तथा एन.एफ.एस.एम.-दलहन।
- इसके तहत क्षेत्र विस्तार और उत्पादकता संवर्द्धन, मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता की वापसी, रोजगार अवसरों के सृजन, किसानों में आत्मविश्वास की वापसी तथा कृषि स्तर की मितव्ययिता के संवर्धन के जरिए उत्पादन वृद्धि के प्रयास किये जा रहे हैं।
- 2010-11 से नई पहल के रूप में ए3पी एन.एफ.एस.एम.-दालों के भाग के रूप में शुरू हुआ। इसके तहत तूर, उड़द, मूंग, चना और मसूर सहित सम्भावित दलहन क्षेत्र का 1 मिलियन हेक्टेयर सघन खण्डों में तकनीकी के बड़े स्तर पर प्रदर्शन के लिए लिया गया है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन देश के 17 राज्यों के 476 चिन्हित जिलों में कार्यान्वित की जा रही है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. खाद्य सुरक्षा से क्या आशय है ?

2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन को संक्षेप में बताइए ?

8.13 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या मुद्रा स्फीति है। अर्थव्यवस्था को मुद्रा स्फीति के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए इसलिए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना गया। मुद्रा स्फीति की माप के लिए दो प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या मुद्रा स्फीति के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगें।खाद्य समस्या का स्वरूप क्या है।खाद्य समस्या के कारणों एवं भारत सरकार की खाद्य नीति और भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक उचित खाद्य नीति का विवेचन इस इकाई में किया गया है।

8.14 शब्दावली

स्फीति की दर- मूल्य स्तर वृद्धि की दर ही स्फीति की दर कहलाती है।

खाद्य सुरक्षा-खाद्य सुरक्षा से तात्पर्य है कि लोगो को व्यावहारिक और आर्थिक तौर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना।

खाद्य सहायता-यह उपभोक्ता सहायता और सुरक्षित भंडार के वहन मूल्य का कुल योग होता हैं।

8.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1-देखिए 8.3, 2- देखिए 8.4, 3-देखिए 8.5 4-देखिए 8.6।

अभ्यास प्रश्न 2

1-देखिए 8.8, 2- देखिए 8.12।

8.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.

3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
4. Rao, Hanumantha C.H. (2006) Agriculture, Food Security Poverty and Environment, Oxford University Press.
5. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
6. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
- www.economywatch.com/database/agriculture.
- business.gov.in/indian_economy/agriculture
- आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

8.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुद्रा स्फीति की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।
2. भारत में मुद्रा स्फीति की समस्या का स्वरूप है? इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।
3. खाद्य सुरक्षा से क्या आशय है?इस समस्या से निवारण हेतु सरकार ने क्या कदम उठायें स्पष्टकीजिए।

इकाई - 9 आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता एवं योजना निर्माण प्रक्रिया

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 भारत में नियोजन का इतिहास
9.4 आर्थिक नियोजन से अभिप्राय
9.5 अल्पविकसित देशों में आयोजन का औचित्य
9.6 अल्पविकसित देशों में आयोजन की सफलता की शर्तें
9.7 भारत में आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता
9.8 नियोजन के प्रकार
9.9 भारत में योजना निर्माण प्रक्रिया
9.10 सारांश
9.11 शब्दावली
9.12 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित
9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह नवीं इकाई है । इससे पहले की इकाइयों से आपको अर्थव्यवस्था की विशेषताओं की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं । पाश्चात्य विकसित देशों में विकास की जिम्मेदारी व्यक्तिगत साहसियों पर सौंप दी गई। बाजार आधारित अर्थव्यवस्था को चक्रात्मक परिवर्तन देखने पड़ते हैं । 1930 की विश्व मन्दी के बाद सरकारों ने रोजगार बढ़ाने और श्रम उत्पादकता में वृद्धि की जिम्मेदारी ले ली। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत जैसे अल्पविकसित देश उपनिवेशवाद के चंगुल से जब मुक्त हुए तो वहाँ की सरकारों ने आर्थिक विकास के लिए नियोजन का रास्ता चुना जिससे सीमित साधनों में अधिकतम सामाजिक कल्याण किया जा सके। इस इकाई में हम देखेंगे कि भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र हमारे नीति निर्धारकों ने अपनायी। आयोजन की शुरूआत में सरकार ने अर्थ व्यवस्था को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अपने नियंत्रण में रखा निजी क्षेत्र की स्वतंत्रता कम रही। अस्सी के दशक के अन्त से धीरे-धीरे बन्धकों को सरकार हटाती जा रही है । वर्तमान में हमारी अर्थव्यवस्था के लिए सरकार निर्देशात्मक आयोजन विधि का अधिक सहारा ले रही है । आयोजित अर्थव्यवस्था में मूल्य यंत्र के स्थान पर आयोजन अधिकारी अथवा केन्द्रीय संगठन विद्यमान रहता है जो समस्त आर्थिक क्रियाओं को संचालित तथा नियंत्रित करता है । आयोजित अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु का उत्पादन सम्पूर्ण समाज की आवश्यकता तथा सामाजिक कल्याण को अधिकतम करने की प्रवृत्ति से नियंत्रित होता है । भारत में आर्थिक नियोजन प्रासंगिक है क्योंकि विशाल जनसंख्या को नियंत्रित करना एवं उसकी जरूरतों को पूरा करने की जिम्मेदारी निजी क्षेत्र नहीं लेगा, उसके लिए कर्मबद्ध, मजबूत एवं ईमानदार सार्वजनिक क्षेत्र की आवश्यकता है । इस इकाई में हम देखेंगें इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकार जो योजना बनाती है, उसकी निर्माण प्रक्रिया क्या है और उसमें कौन-कौन से संगठन सम्मिलित हैं ।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- भारत में नियोजन की पृष्ठभूमि का वर्णन कर सकेंगें ।
- भारत ने स्वतंत्रता पश्चात आर्थिक नियोजन का रास्ता अपनाया को जान सकेंगें ।
- नियोजन कितने प्रकार के हो सकते हैं और भारतीय नियोजन व्यवस्था में किस-किस प्रणाली के गुण आते है का वर्णन कर सकेंगें ।

- भारत के योजना निर्माण प्रक्रिया में सरकार - केन्द्र एवं राज्य और विभिन्न संगठनों की क्या भूमिका को जान सकेंगें।

9.3 भारत में नियोजन का इतिहास

1934 में सर एम विश्वेश्वरैया ने अपनी पुस्तक Planned Economy of India में 10 वर्षीय योजना प्रस्तुत की जिसका मूल उद्देश्य 10 वर्षों में राष्ट्रीय आय को दुगुना करना, औद्यागिक उत्पादन में वृद्धि करना, लघु एवं बड़े उद्योगों का समन्वित विकास करना था। राष्ट्रीय आयोजन समिति 1938 के अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू थे जो स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री थे इसलिए इस समिति के विचार 1950 में आयोजन की प्रक्रिया का आधार बने। मूल उद्योगों और सेवाओं, खनिज साधनों, रेलों, जल मार्गों, नौ-परिवहन और अन्य सार्वजनिक उपयोगिता वाले उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व या नियंत्रण होना चाहिए तथा उन बड़े पैमाने के उद्योगों पर थी जिनमें एकाधिकार कायम होने की सम्भावना हो। आर्थिक विकास के लिए अर्थ व्यवस्था का आद्योगिकीकरण, कुटीर उद्योगों सहित आवश्यक है। कृषि क्षेत्र का विकास भी जरूरी है इसके लिए समिति ने सिफारिश की कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन क्षतिपूर्ति देकर हो, सहकारी खेती और ऊँची कृषि आय पर आयकर की भाँति आरोही कर लगाया जाय। इसके आठ उद्योगपतियों ने मिलकर बम्बई योजना के नाम से एक योजना बनाई। आचार्य श्रीमन्नारायण ने गाँधीवादी योजना बनाई जिसमें 10 वर्ष के अन्दर न्यूनतम जीवन स्तर उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा। कृषि एवं उद्योगों का एक साथ एवं संतुलित विकास पर बल दिया। कुटीर एवं लघु उद्योगों पर विशेष बल दिया गया। क्रान्तिकारी श्री एन. राय ने जनता योजना बनाई। यह रूसी आयोजन से प्रेरित थी और इसमें सामूहिक या सरकारी खेती एवं भूमि के राष्ट्रीयकरण की सिफारिश की गई। ये सभी कागजी योजनाएं थीं किन्तु ये सभी योजनाओं ने भारत में आयोजन की सोच के लिए प्रेरक का कार्य किया। 1950-51 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरूआत हुई तत्पश्चात पंचवर्षीय योजनाओं की श्रृंखला चालू हो गयी। आर्थिक विकास के लिए मिश्रित प्रणाली को चुना गया जिसमें निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र दोनों को समाहित किया गया।

9.4 आर्थिक नियोजन से अभिप्राय

आर्थिक नियोजन से अर्थ एक संगठित आर्थिक प्रयास से है जिसमें एक निश्चित अवधि में सुनिश्चित एवं सुपरिभाषित सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आर्थिक साधनों का विविकपूर्ण ढंग से समन्वय एवं नियंत्रण किया जाता है। इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं -

- लक्ष्यों एवं प्राथमिकताओं का निर्धारण - सोच समझकर लक्ष्यों को निर्धारित करना और उनकी प्राप्ति हेतु प्राथमिकताओं के क्रम को निश्चित करना।
- संगठित प्रणाली द्वारा कार्य करना।
- केन्द्रीय नियोजन संस्था जो योजनाएं बनायें उन्हें समन्वयित करें और उनके क्रियान्वयन की व्यवस्था करें।
- आर्थिक नियोजन एक निश्चित अवधि हेतु होता है जिसमें निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किये जाते हैं।
- यह सरकारी रणनीति का हिस्सा होता है।
- राज्य हस्तक्षेपक का कार्य करता है और निजी संस्थाओं को भी सरकारी निर्देशों का पालन करना पड़ता है।
- इसका उद्देश्य समाज का विकास करना, रहन सहन के स्तर को उठाना, आय में वृद्धि करना और सामाजिक बुराइयों का अन्त करना है।
- साधन किसी भी देश के सीमित होते हैं इसलिए उनका विविकपूर्ण ढंग से उपयोग करना।
- यह दीर्घकालीन प्रक्रिया है।
- वर्तमान साधनों का ज्ञान तथा उनका सर्वोत्तम आवंटन।

संविधान के निदेशक सिद्धान्तों (Directive Principles of Constitution) में राज्य की नीतियों के संचालन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य रखे गयेः-

(क) नागरिकों - पुरूषों और स्त्रियों दोनों को समान रूप से जीवन निर्वाह के पर्याप्त साधनों का अधिकार मिलेगा।

(ख) भौतिक साधनों के स्वामित्व का वितरण और नियंत्रण सर्वकल्याणकारी हो।

(ग) धन और उत्पादन के साधनों का संकेन्द्रण आम जनता के हितों के विरूद्ध न हो।

आयोजन के फलस्वरूप आर्थिक विकास की गति ऐसी हो कि आम जनता उसे महसूस कर सके जिससे अनियोजित समाज की अपेक्षा प्रगति अल्पकाल में प्राप्त की जा सके। भारत में आयोजन के प्रमुख लक्ष्य निम्नांकित हैं -

- आर्थिक विकास को बढ़ावा देना।

- सामाजिक न्याय
- पूर्ण रोजगार की प्राप्ति
- गरीबी निवारण एवं रोजगार अवसरों का सृजन
- आत्म निर्भरता की प्राप्ति
- निवेश एवं पूँजी निर्माण को बढ़ावा
- आय वितरण एवं क्षेत्रीय विषमता दूर करना
- आधुनिकीकरण जिसे छठी योजना में लागू किया गया।
- मानव संसाधन का विकास जिसे आठवीं योजना में लागू किया गया।
- निजीकरण, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर में गरीबों को सुरक्षा जाल प्रदान करना ।
- तीव्र आर्थिक विकास के साथ समावेशी विकास जिसे ग्यारहवीं योजना में लागू किया गया।

9.5 अल्पविकसित देशों में आयोजन का औचित्य

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब भारत जैसे देश उपनिवेशवाद की जकड़न से छूटे तब उनके सामने समस्या थी कि किस प्रकार वे अपने सीमित संसाधनों को विभिन्न विकासात्मक परियोजनाओं और अपनी आवश्यकताओं पर खर्च करें जिससे सामाजिक कल्याण अधिकतम हो। अल्पविकसित देशों में उपभोग की सीमान्त इच्छा बहुत तीव्र होती है तथा प्रदर्शन प्रभाव बहुत बलवती होता है इसलिए पूँजी निर्माण की दर को बढ़ाने के लिए राज्य द्वारा हस्तक्षेप आवश्यक है । इसलिए भारत जैसे गरीब देशों ने पूँजी निर्माण की दर में बढ़ोत्तरी लाने के लिए मूल्य मंत्र प्रणाली को छोड़कर सरकारी हस्तक्षेप प्रधान आयोजन का रास्ता चुना। अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास को प्रारम्भ कराने तथा उसे बनाये रखने के लिए आर्थिक आयोजन का सुझाव दिया गया। इन देशों में आर्थिक विकास के लिए राज्य के हस्तक्षेप की नीति इसलिए भी अपनायी जाती है क्योंकि इन देशों में श्रम बेरोजगारी प्रचुर मात्रा में है । मूल्य यंत्र द्वारा संचालित आर्थिक विकास सन्तुलित नहीं होता क्योंकि निजी उद्यमी वहीं विनियोग करते हैं जो क्षेत्र विकसित होते हैं और जहाँ लाभ अधिक हो। इसलिए अल्पविकसित देशों में तीव्र तथा सन्तुलित आर्थिक विकास के लिए राज्य को आधारभूत संरचना में विनियोग करना पड़ता है । आयोजन ही एकमात्र विकल्प बचता है गरीबी के दुश्चक्र को तोड़ने और सन्तुलित विकास के लिए। इन देशों में साहसियों की कमी होती है । इस स्थिति में सरकार को साहसी का काम करना पड़ता है और आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना

पड़ता है। आयोजन इसलिए भी जरूरी है जिससे पूँजी तथा शक्ति का केन्द्रीयकरण कुछ ही हाथों में न हो तथा सबको ठीक ढंग से जीने व कार्य करने का अवसर मिल सके।

9.6 अल्पविकसित देशों में आयोजन की सफलता की शर्तें

1.आयोजन की सफलता के लिए जरूरी है कि सरकार शक्तिशाली तथा कुशल हो तथा आर्थिक संगठन मजबूत हो। योजना के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व सरकार के ऊपर होता है इसलिए कमजोर तथा अस्थायी सरकार विकासात्मक कार्यक्रमों को सफल नहीं बना पायेगी। अल्पविकसित देशों में जहाँ प्रजातांत्रिक सरकारें हैं आयोजन बहुत सफल नहीं हुआ है क्योंकि योजना के सम्बन में विभिनन दलों की स्वीकृति लेना बहुत कठिन है। संघीय व्यवस्था में आयोजन के सम्बन्ध में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के बीच समन्वय आवश्यक है। संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्र का शक्तिशाली होना जरूरी है।

2.आर्थिक योजना की क्रिया विश्वसनीय तथा उचित मात्रा में सांख्यिकी आँकड़ों की उपलब्धता पर निर्भर करती है। ज्वेइंग के अनुसार ‘‘प्रभावपूर्ण आयोजन का रास्ता शोध तथा तथ्यों के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान के बीच से होकर जाता है। अच्छे प्रशासन तथा प्रोपोगैण्डा के अतिरिक्त सन्तोषप्रद आँकड़े, जाँच, रिपोर्ट तथा लागत लेखा आदि आयोजन को प्रभावपूर्ण बनाते हैं।’’

3.एक निश्चित उद्देश्य हों जिनकी पूर्ति का प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर किया जा सके।

4.योजना के क्रियान्वयन के लिए प्रशासनिक कुशलता पर निर्भर करता है। अल्पविकसित देशों में प्रशासनिक भ्रष्टाचार बहुत अधिक पाया जाता है जिसके फलस्वरूप आयोजन के प्रति असन्तोष लोगों में बढ़ता जा रहा है।

5.जन सहयोग - प्रजातांत्रिक व्यवस्था में आयोजन की सफलता में जन-सहयोग का महत्व बढ़ जाता है। इसके लिए जरूरी है कि आयोजन सम्बन्धी नीतियों में जनता का विश्वास हो और सरकार उन्हीं के हित के लिए आयोजन करे और यह निर्भर करता है आयोजन के उद्देश्य, उसके क्रियान्वयन एवं उससे प्राप्त लाभ के वितरण पर।

9.7 भारत में आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता

जीवन स्तर को सुधारने के लिए राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाना जिससे लोगों की क्रयशक्ति बढ़े और देश से गरीबी को दूर किया जा सके। इसके लिए कृषि, उद्योग, सेवाक्षेत्र, संचालन शक्ति, परिवहन एवं संचार और सभी क्षेत्र में तीव्र आर्थिक विकास को प्रेरित करना। न्याय के साथ

विकास, गरीबी हटाओ, समावेशी विकास इस बात की पुष्टि करते हैं कि राष्ट्रीय आय वृद्धि के साथ इसका समान वितरण जरूरी है। नियोजन प्रारम्भ होने पर यह सोचा गया कि कृषि एवं औद्योगिक विकास की गति को तीव्र करने से कुल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि के साथ बेरोजगारी, अल्परोजगार एवं अदृश्य बेरोजगारी की समस्या स्वतः समाप्त हो जायेगी और प्रति व्यक्ति आय बढ़ने से जीवन स्तर उन्नतशील होगा। जब नियोजनकों ने इस बात का अनुभव किया कि कृषि तथा औद्योगिक विकास की वृद्धि के साथ-साथ बेरोजगारी बढ़ रही है तो उसे रोजगार प्रधान बनाने के लिए विभिन्न योजनाओं में रोजगार सृजन एवं गरीबी निवारण हेतु अनेक कार्यक्रम चलाये गये जो अनवरत सभी योजनाओं में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं।

आय की असानताओं में कमी और समाजवादी समाज की स्थापना से प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा एवं रोजगार में समान अवसर दिये जा सकते हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में भारत के आर्थिक आयोजन की दीर्घकालीन उद्देश्य इस प्रकार है- ''अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार, आर्थिक समानता तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति जो कि वर्तमान परिस्थिति में आयोजन के स्वीकार्य उद्देश्य समझे जाते हैं, भिन्न-भिन्न विचार नहीं हैं बल्कि उन सम्बन्धित उद्देश्यों की श्रृंखला है जिनकी प्राप्ति के लिए देश को प्रयास करना है। इनमें से किसी एक उद्देश्य की पूर्ति दूसरे को छोड़कर नहीं की जा सकती, विकास की योजना में इन सबको सन्तुलित महत्व दूना अनिवार्य है।

आयोजकों को दीर्घकालीन उद्देश्यों के साथ अल्पकालीन उद्देश्यों का भी ध्यान रखना पड़ता है। परन्तु इस बात का ध्यान रखना होगा कि अल्पकालीन लक्ष्य चाहे कितने ही महत्वपूर्ण क्यों न लगे दीर्घकालीन उद्देश्यों पर हावी नहीं होने चाहिए। आयोजन का सशक्त दार्शनिक आधार होना चाहिए। शोषण खत्म करने के लिए निजी स्वामित्व समाप्त करना आवश्यक हैं मार्क्स और एंजल्स से प्रेरित हो सोवियत रूस में समग्र राष्ट्रीयकरण को आधार बनाये हुए आयोजन का सर्वप्रथम विकास हुआ जिसमें पहली बार निर्धनता, भूख और बेरोजगारी मिटाने के लिए संगठित प्रयास हुआ। रूसी आयोजकों को भारी सफलता का विश्व के पूंजीवादी देशों पर प्रभाव पड़ा।

स्वतंत्रता प्राप्ति पर भारत को व्यापक निर्धनता, व्यापक बेरोजगारी, निरक्षर और अप्रशिक्षित श्रमिकों जैसी संरचनात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ा। अतः भारत ने सामाजिक और आर्थिक उत्तोलक के रूप में आयोजन का सहारा लिया। समाजवादी आयोजन से प्रभावित होने के साथ-साथ न्यायोचित समाज के पूर्ण विकास के लिए पूंजीवादी समाज के लोकतांत्रिक मूल्यों को भी अपरिहार्य माना गया। भारत ने समाज के लिए लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणा को अपनाया जिसमें यह ध्यान रखा जाता है कि एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण न हो और व्यक्ति को आत्माभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता हो जिससे मानवीय व्यक्तित्व का अपेक्षाकृत पूर्ण और मुक्त विकास लोकतांत्रिक समाजवाद का सर्वोच्च लक्ष्य है। हाल ही में सोवियत रूस ने बाजार आधारित

अर्थव्यवस्था चालू की है। भारत ने भी 1990 के बाद अर्थव्यवस्था में उदारीकरण को अपनाया और सरकारी नियंत्रण एवं विनियमन को कम करता जा रहा है, परन्तु साथ ही साथ नेहरू के लोकतांत्रिक समाजवाद के दर्शन का परित्याग नहीं कर रहा है। सिर्फ भौतिक समृद्धि, मानव जीवन को सुखी और सम्पन्न नहीं बना सकी। भौतिक समृद्धि के साथ सभी नागरिकों को समान अवसर मिलने चाहिए जिससे वैयक्तिक और सामूहिक विकास की नीतियाँ अपनायी जा सकें। अनुकूलतम उत्पादन के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को दूर करने का प्रयास नियोजनकर्ताओं को करना होगा।

भारत ने जो मिश्रित अर्थव्यवस्था के स्वरूप को अपनाया है उसमें अन्तर्विरोधी प्रेरणाओं में एक और है निजी हित और दूसरी ओर है सामाजिक लाभ। आयोजन का लक्ष्य है इन प्रतिद्वन्दी हितों में तालमेल बिठाकर राष्ट्रीय हित को उन्नतशील करना-

- योजना परिव्यय का महत्वपूर्ण अनुपात प्रतिरक्षा, भारी तथा मूल उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए खर्च किया गया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था का औद्योगिक आधार स्थापित किया गया।
- आर्थिक आधार संरचना में विस्तार जिससे कृषि एवं उद्योगों की उत्पादकता को बढ़ाया जा सके और प्रत्यक्ष उत्पादक विनियोग क्षेत्र का विस्तार सम्भव हो।
- राज्य ने वित्तीय संस्थानों पर नियंत्रण रखा और जीवन बीमा निगम और वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। 1991 के बाद वित्तीय संस्थानों को भी निजी क्षेत्र के लिए खोला जा रहा है किन्तु सरकार उनको यथासम्भव निर्देशित कर सकती है।
- एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग की स्थापना की गई जिससे व्यापारिक घराने या अन्य पूँजीपति उपभोक्ताओं का शोषण न करें किन्तु नये आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत इसको समाप्त कर दिया गया जिससे अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़े।
- कीमतों को नियंत्रित रखना जिससे जनमानस को कठिनाई का सामना न करना पड़े आयोजन का उद्देश्य होना चाहिए किन्तु राज्य कीमतों की वृद्धि को रोकने में सफल नहीं हो पाया है। व्यापारी दुर्लभता की कृत्रिम परिस्थितियाँ कायम कर कीमतों में वृद्धि कर देते हैं। इससे निपटना सरकार की जिम्मेदारी है। इस दिशा में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से कमजोर वर्गों के लिए सरकार वस्तुएं उचित कीमत पर उपलब्ध कराती है।
- शिक्षा एवं प्रशिक्षण के माध्यम से कमजोर वर्ग के बच्चों को सहायता देना जिससे उन्हें रोजगार मिले और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठे।

- निजी क्षेत्र को राष्ट्रीय प्राथमिकाओं में ढालने की जरूरत है। खासतौर से 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद जिसमें पूँजीवादी समाज की परिग्रहणशील प्रवृत्ति और लाभ प्रेरणा आयोजन प्रक्रिया में विकृति पैदा कर सकती है।
- 1991 में चालू किये उदारीगरण, निजीकरण, बाजारीकरण और वैश्वीकरण के मॉडल ने भारतीय नियोजन की दिशा में महत्वपूर्ण बदलाव किये। सरकार ने अर्थव्यवस्था को कई बन्धनों से मुक्त किया जिससे आर्थिक संवृद्धि को गति मिले। आज इस नीति का विश्लेषण करने पर हम पायेंगे कि आर्थिक संवृद्धि तो ऊँची दर पर हुई किन्तु असमानताएं बढ़ी चाहे वह वैयक्तिक हो चाहे क्षेत्रीय और इनके दुष्परिणाम देखने को मिल रहे हैं। भारतीय दर्शन के मूल्यों का ह्रास हो रहा है और एक समाज जो स्वार्थ से प्रेरित है, अपने लाभ को अधिकतम करने पर लगा है उसे चाहे जितना नीचे गिरना पड़े और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियाँ चरम की तरफ जा रही हैं। जबकि नियोजन का आधार एक आदर्शवादी, दार्शनिक सोच होना चाहिए तभी विकास टिक पायेगा।

डा0 ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने अपने विजन 2020 में गरीबी दूर करने और गाँवों में शहरी सुविधाएं उपलब्ध कराने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि ''पूरा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रयोग हमारे गाँवों को उत्पादक आर्थिक क्षेत्रों में तब्दील करने के लिए किया जायेगा। '' पूरा मॉडल के अन्तर्गत चार प्रकार के सम्पर्क हैं -

1.भौतिक सम्पर्क - 15-25 गाँवों को सड़कों से जोड़कर इसके इर्द-गिर्द एक रिंग रोड का निर्माण साथ ही साथ बिजली, परिवहन आदि की सुविधाएं।

2.डिजिटल सम्पर्क - इन गाँवों के समूहों में दूर संचार और सूचना टेकनोलॉजी सम्बन्धी सेवाएं उपलब्ध कराना जैसे- पी0सी0ओ0, साइबर कैफे आदि।

3.ज्ञान आधारित सम्पर्क - रिंग रोड पर हर पाँच-सात किलोमीटर की दूरी पर स्कूल, उच्च शिक्षा केन्द्र, अस्पताल आदि।

4.आर्थिक सम्पर्क - गाँवों के समूहों में बढ़िया विपणन सुविाओं की उपलब्धता इस मॉडल के लागू होने से ग्राम क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंख्या के प्रवसन को नियंत्रित किया जा सकता है। सामाजिक एवं आर्थिक आधार संरचना को गाँवों में स्थापित करना जिससे वहाँ निवेश बढ़ने के साथ विकास हो। यह माडल रोजगार और सकल देशीय उत्पाद की वृद्धि के लक्ष्यों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है। सरकार ने पूरा मॉडल का प्रयोग सीमित रखा है, 2004 से यह चल रहा है किन्तु इसे और विस्तृत करने की आवश्यकता है।

9.8 नियोजन के प्रकार

(क)साम्यवादी तथा प्रजातांत्रिक नियोजन - साम्यवादी नियोजन में सभी आर्थिक निर्णय केन्द्रीय संगठन द्वारा लिये जाते हैं और इसमें निजी क्षेत्र एवं बाजार व्यवस्था समाप्त कर दी जाती है।

प्रजातांत्रिक नियोजन व्यवस्था दो प्रकार की दो सकती हैः-

- उदार या नरम प्रजातांत्रिक नियोजन - इसका इस्तेमाल तीसा (1930) की मन्दी से उबरने के लिए यू0एस0ए0 एवं ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था को द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात पुनर्गठित करने के लिए किया गया। राज्य बाजार यंत्र की पूरक व्यवस्था के रूप में कार्य करता है और इसे बाजार मिश्रित प्रणाली भी कहा जाता है।
- दूसरी व्यवस्था अधिक केन्द्रीकृत होती है। इसमें राज्य हस्तक्षेप करने वाली व्यवस्था होती है।

(ख)प्रेरणा द्वारा आयोजन या निर्देशात्मक आयोजन तथा आदेशात्मक नियोजन - निर्देशात्मक आयोजन में केन्द्रीय नियोजन संस्था लक्ष्यों का निर्धारित करती है तथा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों के विनियोग तथा उत्पादन सम्बन्धी योजनाओं को समन्वित करती है। निर्णय विकेन्द्रित रूप में लिये जाते हैं पर सभी क्षेत्रों को निर्धारित लक्ष्यों की ओर प्रेरित किया जाता है। बाजार व्यवस्था बनी रहती है परन्तु निर्णय से सम्बन्धित अनिश्चितता कम हो जाती है। यह सहभागिता पर आधारित होती है। आठवीं योजना में निर्देशात्मक नियोजन की धारणा स्वीकारी गई।

आदेशात्मक आयोजन में अनिवार्यता के लक्षण पाये जाते हैं। प्रशासनिक मशीनरी को यह पावर होती है कि वह विनियोग एवं उत्पादन सम्बन्धी सभी निर्णयों को विभिन्न आर्थिक इकाइयों को आदेशित करें। भारत में पहली से चौथी योजना तक इस प्रकार के आयोजन के महत्वपूर्ण लक्षण मिलते हैं।

(ग)केन्द्रीयकृत एवं विकेन्द्रीयकृत नियोजन - केन्द्रीय नियोजन में एक केन्द्रीय संगठन की योजना को बनाने, पूरा करने और निरीक्षण करने की पूरी जिम्मेदारी होती है।

विकेन्द्रीकृत नियोजन में सरकार, स्थानीय निकाय, व्यक्तिगत उद्यमी आदि मिलकर योजना से सम्बन्धित निर्णय लेते हैं। ग्राम पंचायतों की भागीदारी बढ़ जाती है। जनता सरकार (1977 से 1979) ने भारत में इस मॉडल का प्रयोग किया।

(घ)दीर्घकालीन नियोजन एवं चक्रीय योजना - अवधि के आधार पर योजना अल्पकालीन या दीर्घकालीन हो सकती है। अल्पकालीन योजनाएं पंचवर्षीय, सात वर्षीय या एक वर्षीय हो सकती हैं। अल्पकालीन योजनाएं दीर्घकालीन योजनाओं के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं। दीर्घकालीन योजनायें 20 से 25 वर्ष के दीर्घकालीन लक्ष्यों को ध्यान में रखकर बनायी जाती हैं।

रोलिंग योजना में प्रत्येक वर्ष की योजना पूरी योजना की आवर्ती योजना होती है। यह योजना बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार प्रत्येक वर्ष की योजना को समायोजित किया जाता है। भारत में इसको 1978 में लागू किया गया। इसके अन्तर्गत तीन योजनायें तैयार की जाती हैं - एक योजना चालू वर्ष के लिए अर्थात् अल्पकालीन योजना, दूसरी मध्यकालीन स्वरूप की तीन से पाँच वर्ष की योजना तथा तीसरी दीर्घकालीन योजना जो 10 वर्ष से अधिक की होती है और यह आर्थिक नियोजन की रणनीति बताती हैं। अल्पकालीन एवं मध्य कालीन योजनाएं दीर्घकालीन योजनाओं पर आधारित होती हैं। चक्रीय योजना की धारणा का प्रतिपादन गुनार मिर्डाल ने किया तथा भारत में इसका प्रयोग डी0टी0 लकड़वाला ने किया जब वे योजना आयोग के उपाध्यक्ष थे।

(ड.)संरचनात्मक एवं क्रियात्मक नियोजन - संरचनात्मक आयोजन वह आयोजन है जो प्रचलित ढाँचे में आमूल परिवर्तन करके नये ढाँचे में लागू किया जाये। इसका उद्देश्य देश के आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे को पूर्णतया परिवर्तित कर देना होता है। अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास के लिए इसको अपनाया जाता है क्योंकि इन देशों में चालू ढाँचे में आमूल परिवर्तन लाना जरूरी है। इन देशों में आर्थिक विकास लाने के लिए परम्परांगत उत्पादन के तरीकों की जगह नये तकनालाजी परिवर्तनों का इस्तेमाल किया जाता है। क्रियात्मक आयोजन का उद्देश्य समाज के ढाँचे में परिवर्तन लाये बगैर सुधार करना है। इसमें किसी नये सामाजिक ढाँचे का निर्माण नहीं होता।

भारत जैसे देश जिनका उद्देश्य तीव्र आर्थिक विकास करना है वहाँ संरचनात्मक नियोजन अपनाया जाता है।

(च)भौतिक तथा वित्तीय नियोजन - भौतिक नियोजन का सम्बन्ध मानव शक्ति, मशीनों और कच्चे माल के अनुकूलतम वितरण एवं राशनिंग से है जो देश के उत्पादन में वृद्धि करके विकास प्रक्रिया को गति प्रदान कर सके। इसके अन्तर्गत उपलब्ध सम्पूर्ण वास्तविक साधनों तथा इन्हें प्राप्त करने के तरीके के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है जिससे योजना के सम्पादन के दौरान किसी भी प्रकार का अवरोध न उत्पन्न हो।

जब भौतिक लक्ष्यों को मुद्रा के रूप में व्यक्त कर दिया जाता है तो उसे वित्तीय नियोजन कहते हैं। इसमें योजना में होने वाले कुलव्यय को मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाता है तथा राष्ट्रीय

आय, उपभोग, आयात आदि की वृद्धि के द्वारा होने वाले कुल व्यय को पूरा करने के सम्बन्ध में अनुमान लगाये जाते हैं। वित्त भौतिक आयोजन का गतिशीलक है।

(छ)क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय आयोजन - क्षेत्रीय नियोजन किसी अर्थ व्यवस्था के एक विशिष्ट क्षेत्र या भाग तक ही आयोजन सीमित रहता है। इसे आंशिक नियोजन भी कहते हैं। जब नियोजन सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित हो और इसका संचालन देश की किसी केन्द्रीय संस्था द्वारा हो तो उसे राष्ट्रीय नियोजन कहते हैं। इसे विस्तृत नियोजन भी कहते हैं। क्षेत्रीय नियोजन, राष्ट्रीय नियोजन का ही अंग होता है और विकेन्द्रीयकरण की नीति के कारण क्षेत्र विशेष का प्रभार क्षेत्रीय अधिकारियों को दे दिया जाता है।

9.9 भारत में योजना निर्माण प्रक्रिया

भारत में योजना निर्माण के अन्तर्गत स्वीकृति से लेकर क्रियान्वयन के लिए विभिन्न चरणों पर योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें शामिल होती हैं। योजना निर्माण आयोजन की पहली अवस्था है। इसके अन्तर्गत सरकार की नीतियों को ध्यान में रख कर अथवा सरकार की राय के अनुसार योजना आयोग आयोजन का उद्देश्य, लक्ष्य, विनियोग की मात्रा, साधनों की उपलब्धता आदि से सम्बन्धित रूपरेखा तैयार करता है।

योजना आयोग अनेक खण्डों तथा सेक्शन्स के द्वारा कार्य करता है। इन खण्डों को मुख्य रूप से पाँच खण्डों में बांटा जा सकता हैः-

1.सामान्य खण्ड -यह पूरी अर्थव्यवस्था के कुछ विशिष्ट पहलुओं से सम्बन्धित होता है। जैसे- आर्थिक खण्ड, पर्सपेक्टिव प्लानिंग डिवीजन, श्रम तथा रोजगार खण्ड, सांख्यिकीय तथा सर्वेक्षण खण्ड, कार्यक्रम प्रशासन खण्ड, संसाधन एवं वैज्ञानिक शोध खण्ड, सामाजिक, आर्थिक शोध खण्ड तथा योजना समन्वय खण्ड आते हैं।

2.विषय खण्ड - जो विकास के विशिष्ट क्षेत्रों से सम्बन्धित होता है, इसमें कृषि खण्ड, सिंचाई तथा शक्ति खण्ड, भूमि सुधार खण्ड, उद्योग तथा खनिज, ग्रामीण तथा लघु उद्योग, यातायात तथा संवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण आदि खण्ड आते हैं।

3.समन्वय विभाग - इसमें दो विभाग हैं -

(1)नियोजन समन्वय विभाग जो योजना आयोग के विभिन्न विभागों के क्रिया-कलापों के बीच समन्वय करता है।

(2)कार्यक्रम प्रशासन विभाग जो राज्यों की योजनाओं के मध्य समन्वय, निगरानी तथा सुझाव देता है।

4.विशेष विकास कार्यक्रम विभाग - यह राष्ट्रीय विकास के विभिन्न कार्यक्रमों से सम्बन्धित है।

5.मूल्यांकन विभाग - विभिन्न प्रस्तावित तथा चल रही योजनाओं के मूल्यांकन से सम्बन्धित है।

कार्यकारी समूहों द्वारा तैयार किए गए क्षेत्रीय कार्यक्रमों के आधार पर योजना आयोग पंचवर्षीय योजना का संक्षिप्त मेमोरैण्डम तैयार करता है जिसे मंत्री परिषद तथा राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने रखा जाता है। इनसे अनुमोदित होने के पश्चात् उनके सुझावों तथा निर्देशों को ध्यान में रखकर पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार किया जाता है तथा योजना के शुरू होने के अनेक महीने पहले ही प्रकाशित किया जाता है। योजना के प्रारूप को विचार विमर्श हेतु पार्लियामेण्ट, राज्य सरकारों, विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों आदि को उपलब्ध कराया जाता है। इन सबके सुझावों का सन्दर्भ लेते हुए योजना का अन्तिम रूप तैयार किया जाता है तथा मंत्री परिषद तथा राष्ट्रीय विकास परिषद के सामने अन्तिम अनुमोदन के लिए पेश किया जाता है। राष्ट्रीय विकास परिषद के अनुमोदन के बाद इसे अन्तिम योजना माना जाता है। अन्तिम रूप में प्रधानमंत्री इसे संसद में सूचनार्थ तथा अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करता है। योजना आयोग एक परामर्शदात्री मण्डल है। इसलिए योजना की रूपरेखा को जब तक सरकार से स्वीकृति नहीं मिल जाती, तब तक योजना शुरू नहीं हो पाती। संसद द्वारा अनुमोदन के बाद योजना को वैधानिक रूप मिल जाता है।

क्रियान्वयन - लेविस के अनुसार ‘‘ योजना का क्रियान्वयन उसे बनाने की अपेक्षा अधिक कठिन है। योजना की रूपरेखा तैयार करना तो कल्पनाओं की कसरत है जबकि उसका क्रियान्वयन वास्तविकता से संघर्ष करना है। जब वास्तविकता अनुमान से भिन्न हो तो परिवर्तित तथ्यों के साथ चलने के लिए योजना में अवश्य निरन्तर संशोधन होना चाहिए। योजना का क्रियान्वयन सरकार के विभिन्न विभागों तथा अधिकारियों द्वारा होता है।

निरीक्षण - समय-समय पर योजना की प्रगति का मूल्यांकन आवश्यक है जिससे यह पता चल सके कि योजना का क्रियान्वयन उसके निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार हो रहा है या नहीं।

योजना आयोग - सम्पूर्ण आर्थिक क्षेत्र के पुनर्निमार्ण हेतु 1946 में गठित नियोगी समिति की संस्तुति को संज्ञान लेते हुए 1950 में संविधान लागू होने के बाद मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव द्वारा योजना आयोग का गठन हुआ। यह एक गैर संवैधानिक, सलाहकारी, परामर्शदात्री निकाय है। प्रधानमंत्री पदेन योजना आयोग का अध्यक्ष होता है। योजना आयोग के प्रथम अध्यक्ष पण्डित जवाहर लाल नेहरू थे। योजना आयोग में एक उपाध्यक्ष, तीन पूर्ण कालिक तथा तीन अंशकालिक सदस्य होते हैं।

वित्त मंत्री, विदेश मंत्री तथा विनिवेश मंत्री इसके पदेन सदस्य होते हैं। उपाध्यक्ष को कैबिनेट स्तर के मंत्री तथा सदस्यों को राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त होता है। योजना आयोग के प्रथम उपाध्यक्ष गुलजारी लाल नन्दा थे। 15 मार्च 1950 में मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव में उपयोग को निम्नलिखित दायित्व सौंपे गये-

i. देश के भौतिक संसाधनों तथा जनशक्ति का अनुमान लगाना और आवश्यकतानुसार उसमें वृद्धि की संभावना तलाशना।

ii. देश के संसाधनों के संतुलित उपयोग हेतु प्रभावी योजना बनाना।

iii. प्राथमिकताओं का निर्धारण करना और इन प्राथमिकताओं के आधार पर योजना के उद्देश्य निर्धारित करके संसाधनों का आवंटन करना।

iv. योजना के सफल संचालन के लिए संभावित अवरोधों की ओर संकेत करना और उन्हें दूर करने के उपाय सरकार को बताना।

v. योजना के प्रत्येक चरण के सफल क्रियान्वयन के लिए आवश्यक तंत्र का स्वरूप निश्चित करना।

vi. योजनावधि में विभिन्न चरणों पर योजना प्रगति का मूल्यांकन करना।

vii. आयोग के क्रिया-कलापों को सुविधाजनक बनाने तथा केन्द्र एवं राज्यों की समस्याओं का समाधान करने के लिए परामर्श देना।

राष्ट्रीय विकास परिषद

राज्यों तथा केन्द्र के बीच शक्तियों के विभाजन को ध्यान में रखते हुए राज्यों की हिस्सेदारी योजना तैयार करने में सुनिश्चित करने हेतु 6 अगस्त, 1952 को राष्ट्रीय विकास परिषद का गठन किया गया। यह एक संविधानेत्तर निकाय है जिसका उद्देश्य राज्यों और योजना आयोग के बीच सहयोग का वातावरण बनाकर आर्थिक नियोजन को सफल बनाना है। प्रधानमंत्री इस परिषद के पदेन अध्यक्ष होते हैं। वर्तमान में सभी राज्यों के मुख्यमंत्री केन्द्रीय मंत्रि परिषद के सभी सदस्य, केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासक तथा योजना आयोग के सभी सदस्य राष्ट्रीय विकास परिषद के पदेन सदस्य होते हैं। इसके प्रमुख उद्देश्य हैं- सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों में एक समान आर्थिक नीतियों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना तथा देश के सभी क्षेत्रों के तीव्र एवं सन्तुलित विकास हेतु प्रयास करना।

राष्ट्रीय विकास परिषद के प्रमुख कार्य निम्नांकित हैं-

- राष्ट्रीय योजना की प्रगति पर समय-समय पर विचार करना।
- योजना आयोग को प्राथमिकताएं निर्धारण में परामर्श देना।
- योजना के लक्ष्यों के निर्धारण में योजना आयोग को सुझाव देना।
- योजना को प्रभावित करने वाले आर्थिक एवं सामाजिक घटकों की समीक्षा करना।
- योजना आयोग द्वारा तैयार की गई योजना का अध्ययन करके इसे अन्तिम रूप देना तथा स्वीकृति प्रदान करना अर्थात पंचवर्षीय योजनाओं का अनुमोदन करना।
- राष्ट्रीय योजना के संचालन का समय-समय पर मूल्यांकन करना।

9.10 सारांश

हमने इस इकाई में देखा कि भारत ने स्वतंत्रता के पश्चात नियोजन का रास्ता चुना और मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रणाली अपनायी भारत को अपनी अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन लाने पड़े जिससे देश में विकास की दिशा तय हो सके। भारत में आयोजन के उद्देश्य जो सरकार ने तय किये वे थे- निर्धनता को समाप्त करना और रोजगार के अवसर सृजित करना, आय और सम्पत्ति की असमानताओं को कम करना, सबको समान अवसर प्रदान करना, एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकना, निजी लाभ की अपेक्षा सामाजिक लाभ को बढ़ाना और लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना। भारतीय आयोजन प्रणाली ने कई प्रकारों को समाहित कर रखा है जैसे- लोकतांत्रिक समाजवादी, निर्देशात्मक, लोचशील संरचनात्मक, भौतिक तथा वित्तीय, केन्द्रीकृत एवं विकेन्द्रीकृत, क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय तथा दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन। भारत में योजना निर्माण प्रक्रिया में केन्द्र सरकार, राज्य सरकारें, योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद, अर्थशास्त्री, विश्वविद्यालय, शोध संस्थान, संसद आदि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में शामिल रहते हैं। किन्तु संसद द्वारा अनुमोदन के बाद ही योजना को वैधानिक माना जाता है।

9.11 शब्दावली

I. साहसी - निवेशक जो उद्यम के लिए रिस्क लेने को तैयार रहते हैं।
II. चक्रात्मक - बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में होने वाले उतार चढ़ाव

III. मन्दी - जब अर्थव्यवस्था में निवेशकों को प्रेरणा देने के लिए उचित माहौल नहीं रहता। लाभ और लाभ की आशा दोनों कम होती है । मूल्य, उत्पादन, निवेश सब निम्न स्तर का होता है ।

IV. अल्प विकसित - विकसित देशों की अपेक्षा जिन देशों में आय, उत्पादन, उत्पादकता, रोजगार आदि का स्तर नीचा हो।

V. उपनिवेशवाद - राष्ट्रीय सीमाओं के परे प्रभुत्व का विस्तार

VI. क्षतिपूर्ति - किसी नुकसान के बदले में मिलने वाली राशि।

VII. उन्मूलन - जड़ से खत्म करना ।

VIII. आरोही कर - आय बढ़ने के साथ यदि कर की दर बढ़े।

IX. सन्तुलित विकास - सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास

X. समावेशी - विकास के पथ पर जो पिछड़ गये हैं सबको लेकर विकास करना ।

XI. अनवरत - लगातार

XII. उदारीकरण - नियंत्रण कम करना ।

XIII. वैश्वीकरण - विश्व से एकीकृत होना

XIV. पर्सपेक्टिव प्लानिंग - दीर्धकालीन योजना

9.12 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित

1. Planned Economy of India पुस्तक .... ने लिखी।
2. राष्ट्रीय आयोजन समिति 1938 के अध्यक्ष .... थे।
3. आचार्य श्रीमन्नारायण ने .... योजना बनाई।
4. भारत में आर्थिक विकास के लिए .... प्रणाली अपनायी गयी।
5. एकाधिकारी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए .... की स्थापना हुई।
6. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने .... मॉडल सुझाया।
7. चक्रीय योजना का प्रतिपादन .... ने किया।
8. योजना आयोग ...., ... संस्था है ।
9. योजना निर्माण में राज्यों की हिस्सेदारी सुनिश्चित करने हेतु .... की स्थापना की गई।
10. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत जैसे अल्पविकसित देश .... के चंगुल से मुक्त हुए।

उत्तर-

1. एम. विश्वेश्वैरैया 2. जवाहर लाल नेहरू 3. गाँधीवादी 4. मिश्रित
5. एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार आयोग 6. पूरा

7. गुनार मिर्डाल 8.गैर-संवैधानिक, परामर्शदात्री 9. राष्ट्रीय विकास परिषद
10. उपनिवेशवाद

9.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
- लाल, एस.एन. एवं एस.के. लाल (2009), आर्थिक विकास, आयोजन तथा पर्यावरण शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद है।
- लाल, एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था-सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम पब्लिशर्स, इलाहाबाद।
- भारतीय अर्थव्यवस्था (2010) प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, आगरा है।

9.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation
3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.

9.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अल्पविकसित देशों में नियोजन के औचित्य एवं उसकी सफलता की शर्तों पर प्रकाश डालिए?
2. भारत में आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता दर्शाइये?
3. नियोजन व्यवस्था कितने प्रकार की होती है?
4. भारत में नियोजन निर्माण प्रक्रिया बताइये?

इकाई - 10 आर्थिक नियोजन की उपलब्धियाँ

इकाई संरचना

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 प्रथम से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनाएँ
10.3.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना
10.3.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना
10.3.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना
10.3.4 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना
10.3.5 पाँचवी पंचवर्षीय योजना
10.3.6 छठी पंचवर्षीय योजना
10.3.7 सातवीं पंचवर्षीय योजना
10.3.8 आठवीं पंचवर्षीय योजना
10.3.9 नवीं पंचवर्षीय योजना
10.3.10 दसवीं पंचवर्षीय योजना
10.3.11 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना
10.4 सारांश
10.5 शब्दावली
10.6 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित
10.7 सन्दर्भ सूची
10.8 उपयोग पाठ्य सामग्री
10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह दसवीं इकाई है । आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत इससे पहले की इकाई में आपने जाना कि योजना कितने प्रकार की होती है, भारत में कितने प्रकार की नियोजन प्रणालियों का उपयोग अब तक हुआ। किसी भी योजना की निर्माण प्रक्रिया क्या है और कौन-कौन से संगठन इसमें शामिल हैं । ब्रिटिश शासन ने स्वतंत्रता के पहले हमारी अर्थव्यवस्था को खोखला कर दिया था वह जो भी कर रहे थे अपने स्वार्थ के लिए करते थे और भारतीयों का शोषण करते रहे। स्वतंत्रता पश्चात सरकार के सामने चुनौती थी किस प्रकार देश को सहारा देकर आत्मनिर्भर बनाया जाय। इसके लिए विकास की किस प्रणाली का उपयोग हो यह निर्भर करता था उस समय सत्ता में रही सरकार की सोच पर। सरकार ने सोचा निजी निवेशक अपने स्वार्थ और अधिकतम लाभ की कोशिश करेंगे और सबसे महत्वपूर्ण बात साहसियों की कमी थी। इसलिए सरकार ने क्या उत्पादित हो, कितना हो और इसका आवंटन किस प्रकार हो जिससे कि जनता का अधिकतम कल्याण हो। अपने नियंत्रण में रखा परिणामतः शुरू की योजनाओं में ज्यादातर उद्योग धन्धे सरकार के हाथ में थे जो निजी निवेशकों के लिए खोले गये उन पर सरकार कड़े प्रतिबन्ध रखती थी। 1980 के दशक से उदारीकरण का दौर शुरू हुआ और 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा हुई जिससे बाजारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण पर बल दिया गया और सरकार निर्देशात्मक तरीके से काम करने लगी। विभिन्न योजनाओं के दौरान आये परिवर्तन, उद्देश्य, उपलब्धियों और कमजोरियों की व्याख्या हम इस इकाई में देखेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

1. अब तक की योजनाओं के उद्देश्यों को जान सकेंगें ।
2. विभिन्न योजनाओं में क्या उपलब्धियाँ रहीं, इनका वर्णन कर पायेंगे।
3. प्रथम से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान कौन सी कमियाँ रह गई कि अब तक गरीबी, बेरोजगारी से मुक्ति नहीं मिली, असमानताएं बढ़ी और कृषि क्षेत्र में अपेक्षित उन्नति नहीं हुई की समीक्षा कर पायेंगे।

10.3 प्रथम से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनाएँ

1951 के पश्चात् अब तक दस पंचवर्षीय योजनाएं पूरी हो चुकी हैं तथा 1 अप्रैल, 2007 से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना प्रारम्भ हो चुकी हैं । इस बीच पाँच एक वर्षीय योजनाएं व एक वर्ष के अन्तराल में भी नियोजन हुआ। इन अवधियों को 1951 से अब तक के योजनाकाल में ''योजना अवकाश'' माना जाता है । 1966-1967, 1967-1968, 1968-1969 एवं 1990-1991, 1991-1992 और योजना अन्तराल 1979-1980।

10.3.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना

प्रथम पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1951 से 31 मार्च 1956 डोमर संवृद्धि मॉडल पर आधारित थी। सार्वजनिक क्षेत्र में 2378 करोड़ रूपये का संशोधित लक्ष्य रखा गया था, किन्तु इस अवधि में वास्तविक व्यय 1960 करोड़ रूपये ही हुआ। लक्षित विकास दर 2.1 प्रतिशत के मुकाबले 3.6 प्रतिशत की विकास दर प्राप्त हुई। इस दौरान प्रति व्यक्ति आय में 1.8 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी। 1955-56 में खाद्यान्नों का उत्पादन 64.8 मिलियन टन था, जो लक्ष्य से 3 मिलियन टन अधिक था। यद्यपि इस योजना में औद्योगिक विकास पर कम ध्यान दिया गया किन्तु इसके उत्पादन में 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस योजना में भूमि सुधार, सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय प्रसार सेवा तथा सहकारी संगठनों के माध्यम से अर्थव्यवस्था में संस्थागत परिवर्तनों की शुरूआत हुई। तीन अल्पकालीन उद्देश्य अर्थात शरणार्थियों का पुनर्वास, खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता और कीमतों पर नियंत्रण लगभग प्राप्त कर लिये गये। पहली योजना की सफलता मूल रूप से अनुकूल जलवायु सम्बन्धी परिस्थितियों का परिणाम थी किन्तु योजना आयोग और सरकार ने विभिन्न योजना लक्ष्यों की प्राप्ति का श्रेय लिया ।

10.3.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1 अपैल 1956 से 31 मार्च 1961)

यह पी0सी0 महालनोबिस द्वारा विकसित 4 क्षेत्रीय मॉडल पर आधारित थी माडल में सम्मिलित क्षेत्र थे - पूँजीगत वस्तु क्षेत्र, फैक्ट्री उत्पादित उपभोग वस्तु क्षेत्र, लघु इकाई उत्पादन क्षेत्र तथा घरेलू उद्योग क्षेत्र कृषि सहित एवं सेवा क्षेत्र मॉडल वास्तव में असन्तुलित विकास रणनीति पर आधारित था। दूसरी योजना में आधारभूत तथा भारी उद्योगों पर विशेष बल के साथ तीव्र औद्योगिकरण को प्रमुख लक्ष्य माना गया। दूसरी योजना में सार्वजनिक क्षेत्र पर 4800 करोड़ रूपये का संशोधित व्यय प्रस्तावित था किन्तु वास्तविक व्यय 4672 करोड़ रूपये ही हुआ। इस योजना में राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था लेकिन वास्तविक वृद्धि 20 प्रतिशत रही। द्वितीय योजना में लक्षित विकास दर 4.5 प्रतिशत थी किन्तु वास्तविक वृद्धि दर 4.2 प्रतिशत

रही। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ही राउरकेला (उड़ीसा), भिलाई (छत्तीसगढ़), दुर्गापुर (पश्चिम बंगाल) इस्पात संयत्रों की स्थापना हुई, इन्टेगरल कोच फैक्ट्री तथा चितरंजन लोकोमोटिव्स भी द्वितीय योजना की ही उपलब्धि थी। इस योजना में औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दिये जाने के कारण औद्योगिक उत्पादन का निर्देशांक सन् 1956 में 139 से बढ़कर 1961 में 194 हो गया। खाद्यान्नों का उत्पादन 1955-56 में 64.8 मिलियन टन से बढ़कर सन् 1960-61 में 76 मिलियन टन हो गया।

10.3.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना (1 अप्रै्रल 1961 से 31 मार्च 1966)

द्वितीय योजना के अन्त में आयोजनकर्ताओं ने यह महसूस किया कि अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के पूर्व की स्थिति (Take off stage) प्राप्त हो चुकी है अतः देश के संरचनात्मक ढाँचे में इतना परिवर्तन हो चुका है कि अब पूर्ण आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस विश्वास के साथ इस योजना में कहा गया है कि ‘‘इस अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था न केवल तीव्र गति से विकसित होगी पर साथ ही निश्चित रूप से आत्मनिर्भर तथा स्वयं स्फूर्ति अर्थव्यवस्था हो जायेगी “ इस योजना पर महालनोबिस के चार क्षेत्रीय मॉडल, जे0 सैण्डी के Demonstration Planning Model तथा सुखमय चक्रवर्ती के प्लानिंग मॉडल का प्रभाव दिखाई पड़ता है। सार्वजनिक क्षेत्र में कुल अनुमानित व्यय 7500 करोड़ रूपये से अधिक 8577 करोड़ रूपये का हुआ। इस योजना में राष्ट्रीय आय में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था जबकि वार्षिक वृद्धि योजना के प्रथम चार वर्षों में क्रमशः 2.5 प्रतिशत, 1.7 प्रतिशत, 4.9 प्रतिशत, और 7.6 प्रतिशत हुई किन्तु अन्तिम वर्ष (1965-66) में इसमें 3.9 प्रतिशत की गिरावट आयी। औद्योगिक विकास का लक्ष्य 11 प्रतिशत रखा गया था लेकिन वास्तविक वृद्धि दर 7.9 प्रतिशत वार्षिक रही। द्वितीय योजना की गलती से सीख लेते हुए नियोजकों ने तीसरी योजना में कृषि पर विशेष बल दिया। सिंचाई, शक्ति के साथ कृषि विकास को सर्वाधिक महत्व दिया गया जिसके लिए कुल व्यय का 36 प्रतिशत भाग आवंटित किया गया जो दूसरी योजना में 30 प्रतिशत था। तृतीय योजना का लक्ष्य निर्धारित किया गया कि कृषि उत्पादन में 30 प्रतिशत की वृद्धि होगी। तीव्र तथा आत्मनिर्भर विकास के लिए औद्योगिक क्षेत्र के विकास को अनिवार्यतः स्वीकारते हुए सुदृढ़ नींव प्रदान करने के लिए कोयला, तेल, स्टील, विद्युत शक्ति, मशीन निर्माण, रासायनिक आदि पर विशेष बल दिया गया। उत्पादकता का स्तर उठाने के लिए प्राविधिक विकास के ऊपर बल दिया गया।

तीसरी योजना को भारी विफलता सहन करनी पड़ी क्योंकि देश में योजना के अन्तिम वर्ष 1965-66 में गत 100 वर्षों के इतिहास में सबसे बड़े सूखे का सामना करना पड़ा। साथ ही साथ भारत को चीन और पाकिस्तान के साथ दो युद्ध करने पड़े और इस दौरान भारत को मुख्य सहायता

प्रदान करने वाले देशों ने धोखा दिया। तीसरी योजना की विफलता के कारण चौथी योजना को स्थगित करना पड़ा और अगले तीन वर्ष वार्षिक योजनाएं लागू रहीं जिसे योजनावकाश कहा गया।

10.3.4 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-1974)

इस योजना का प्रारूप योजना आयोग के उपाध्यक्ष डी0आर0 गाडगिल ने तैयार किया और मई में संसद में रखा किन्तु इसे 1969 से ही चालू माना गया। यह योजना अशोक रूद्र तथा एलन एस0 मात्रे द्वारा तैयार ओपेन कनसिसटेन्सी मॉडल पर आधारित था तथा इसमें 30 क्षेत्र लिये गये। इसका मुख्य उद्देश्य ''स्थिरता के साथ आर्थिक विकास और आत्मनिर्भरता की प्राप्ति था। चौथी योजना में व्यय 15900 करोड़ रूपये प्रस्तावित था किन्तु वास्तविक व्यय 15799 करोड़ ही हुआ। कृषि एवं सिंचाई को प्राथमिकता प्रदान की गई। इस योजना में विकास दर का लक्ष्य 5.7 प्रतिशत था किन्तु यह 3.2 प्रतिशत ही रही। प्रति व्यक्ति आय में केवल 3.2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर दर्ज की गयी। इसी योजना में 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण 1969, MRTP Act 1969 तथा बफर स्टाक की धारणा लागू हुई। योजना के पहले दो वर्ष बहुत ही सफल वर्ष थे जिनमें खाद्यान्नों का रिकार्ड उत्पादन हुआ औद्योगिक उत्पादन में भी वृद्धि हुई। पर अगले तीन वर्षों में मानसून की विफलता के कारण खाद्यान्न उत्पादन में गिरावट आयी और औद्योगिक क्षेत्र में पावर में विफलता, परिवहन सम्बन्धी अड़चने, औद्योगिक अशान्ति दृष्टिगोचर हुई। कृषि उत्पादन में प्रति वर्ष लगभग 5 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था लेकिन वास्तविक उपलब्धि 2.57 प्रतिशत रही। औद्योगिक उत्पादन में प्रति वर्ष 8 से 10 प्रतिशत वृद्धि की आशा की गई थी लेकिन वास्तविक उपलब्धि काफी कम रही।

इस योजना का आकार पिछली सभी पंचवर्षीय योजनाओं से बड़ा था। चतुर्थ योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का परिव्यय 15,779 करोड़ रूपये था जो पहली योजना का लगभग आठ गुना तथा तीसरी का लगभग दुगुना था। आकार में बड़ी होनी के बावजूद भी इसमें ''मूल्य की स्थिरता'' को बनाये रखने का प्रयास किया गया। मूल्य स्थिरता बनाये रखने के लिए योजना की वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति मुद्रा प्रसारीय स्रोतों से नहीं की गयी। ''घाटे की बजट'' की मात्रा को 850 करोड़ रूपये तक ही सीमित रखा गया जो तीसरी योजना में 1,133 करोड़ था। इस योजना में विदेशी सहायता पर अन्य योजनाओं की अपेक्षा निर्भरता कम रही जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को आत्म निर्भर बनाया जा सके। विदेशी सहायता की मात्रा दूसरी योजना में 23.7 प्रतिशत, तीसरी में 28.2 प्रतिशत, वार्षिक योजनाओं में 35.9 प्रतिशत थी वहाँ चौथी योजना में 16.4 प्रतिशत ही रही। योजना आयोग ने शिक्षा एवं अनुसंधान पर होने वाले व्यय के भाग को 6.5 प्रतिशत कर दिया जो तीसरी योजना में 5.2 प्रतिशत ही था।

10.3.5 पाँचवी पंचवर्षीय योजना (1974 से 1979)

यह योजना भी आगत-निर्गत मॉडल पर ही आधारित थी किन्तु अब इसमें 66 क्षेत्र लिये गये। इस योजना को जनता पार्टी की सरकार ने समय से एक वर्ष पूर्व ही समाप्त घोषित कर दिया और छठी योजना 1978-83 लागू किया जिसे ''अनवरत योजना '' का नाम दिया गया। इस योजना में सार्वजनिक व्यय 37250 करोड़ रूपये प्रस्तावित था पर वास्तविक व्यय 39426 करोड़ रूपये हुआ। 1975 में ही बीस सूत्रीय कार्यक्रम शुरू किया गया। न्यूनतम आवश्यकता के सम्बन्ध में राष्ट्रीय कार्यक्रम को इस योजना में शामिल कर उस पर 2083 करोड़ रूपया व्यय आवंटित किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य थे- (क) 14 वर्ष के बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने की व्यवस्था करना । (ख) सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराना। (ग) जिन गाँवों में पीने के पानी की काफी कमी हो या जहाँ पानी के स्रोत असुरक्षित हो, वहाँ पीने के पानी की व्यवस्था करना । (घ) 1500 से अधिक जनसंख्या वाले गाँवों में सभी मौसम योग्य सड़क या व्यवस्था (ड़) भूमिहीन श्रमिकों के लिए जमीन की व्यवस्था करना (च) ग्रामीण जनसंख्या के 30 से 40 प्रतिशत को बिजली उपलब्ध कराना। लक्षित विकास दर 4.4 प्रतिशत के विरूद्ध वास्तविक वृद्धि दर 4.8 प्रतिशत प्राप्त हई। प्रति व्यति आय की वृद्धि दर 3.1 प्रतिशत थी। 1975-76 में कृषि उत्पादन में 15.6 प्रतिशत की अप्रत्याशित वृद्धि हुई किन्तु 1978-79 में 7 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार इस योजना की विशेषता थी। हालाँकि उस समय प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने माना कि गरीबी को अचानक दूर नहीं किया जा सकता, इसका निवारण एक क्रमिक प्रक्रिया है । इस योजना के प्रपत्र में ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकार को जोतों की सीमा के निर्धारण में अधिक प्रयास करना होगा, ऐसे उद्योग जो सामान्य जनता के उपभोग की वस्तुएं बनायें उनको स्थापित करने तथा कृषि उत्पादन में अधिक तेजी से वृद्धि करने पर बल होगा।

10.3.6 छठी पंचवर्षीय योजना

जनता पार्टी सरकार ने पाँचवी योजना को समय से एक वर्ष पूर्व ही समाप्त घोषित कर दिया और छठी योजना (1978-83) लागू कर दी। जनता पार्टी की सरकार गिर गई और कांग्रेस ने पुनः छठी योजना को 1980-85 के लिए लागू किया। अतः 1 अपैल 1979 से 31 मार्च 1980 तक की अवधि को योजनावकाश माना गया। इस अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था ने सर्वांगीण प्रगति की और योजना आयोग द्वारा निर्धारित लगभग सभी लक्ष्य प्राप्त कर लिये गये। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का कुल परिव्यय 1,09,292 करोड़ रूपये था। इस योजना में फैक्टर लागत पर सकल घरेलू उत्पाद में 5.2 वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था और वास्तविक उपलब्धि 5.54 प्रतिशत रही। इस दौरान प्रति व्यक्ति आय में 3.2 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी। छठी योजना में गरीबी निवारण तथा रोजगार सृजन पर विशेष बल दिया गया। इससे सम्बन्धित सभी बड़े तथा महत्वपूर्ण कार्यक्रम इसी

योजना में शुरू हुए। इसी योजना से ''मानक व्यक्ति वर्ष '' (Standard Person Year) को रोजगार मापने के लिए अपनाया गया। यदि प्रत्येक दिन 8 घण्टे, 273 दिन तक रोजगार किसी व्यक्ति को उपलब्ध है तो उसे Standard Person Year की दृष्टि से रोजगार कहेंगे। योजना आयोग द्वारा 1977 में नियुक्त न्यूनतम आवश्यकता तथा प्रभावपूर्ण उपभोग मांग के सम्बन्ध में नियुक्त कार्यदल ने ''गरीबी निर्देशांक '' तैयार किया और ''गरीबी रेखा को ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी के रूप में परिभाषित किया। ग्रामीण निर्धनता को दूर करने के लिए छठी योजना में समन्वित विकास कार्यक्रम (IRDP) चालू किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य भूमिहीन श्रमिकों, सीमान्त किसानों, अनुसूचित जनजातियों, कारीगरों और आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के परिवारों की सहायता करना होगा। निर्धनता रेखा से नीचे रहने वालों को सेवा पहुंचाना।

राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम - ग्रामीण क्षेत्र में जिन लोगों के पास या तो सम्पत्ति है नहीं या पर्याप्त नहीं है, उन्हें मजदूरी रोजगार देना। केन्द्र एवं राज्यों की 50 : 50 की सहभागिता।

ग्रामीण बेरोजगार के उन्मूलन से सम्बन्धित कार्यक्रम IRDP, NREP, TRYSEM, DWACRA, RLEGP इसी योजना में लागू किये गये थे। यह योजना 15 वर्ष की दीर्घावधि को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। गरीबी निवारण, आर्थिक विकास, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक न्याय योजना के प्रमुख उद्देश्य थे। आधुनिकीकरण की इसी योजना से शुरूआत की गई।

10.3.7 सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-1990)

विकास के सन्दर्भ में दीर्घकालीन रणनीतियों को ध्यान में रखते हुए इस योजना में उदारीकरण पर बल दिया गया। सामाजिक न्याय के साथ आत्मनिर्भरता के विकास लक्ष्य को और गति प्रदान की गई। इस योजना के तीन प्रमुख उद्देश्य रहे- (1) खाद्यान्नों की वृद्धि दर को बढ़ाना (2) रोजगार का विस्तार करना (3) उत्पादिता को उन्नत करना।

योजना में 1,80,000 करोड़, रूपये का निवेश प्रस्तावित था परन्तु वास्तविक व्यय 2,18,730 करोड़ रूपये हो गया। 5 प्रतिशत लक्षित विकास दर की अपेक्षा 5.8 प्रतिशत वास्तविक वृद्धि हुई जबकि प्रति व्यक्ति आय में वृद्ध 3.6 प्रतिशत रही। इस योजना में सबसे अधिक महत्व ऊर्जा को दिया गया यह कुल परिव्यय का 30.5 प्रतिशत रहा। सामाजिक सेवाओं पर परिव्यय का दूसरा स्थान रहा यह कुल परिव्यय का 16.3 प्रतिशत था। सामाजिक सेवाओं के अन्तर्गत अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण सम्बन्धी कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया गया। सामाजिक सेवाओं में शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, आवास एवं नगर विकास और जल संभरण

एवं सफाई महत्वपूर्ण है । यह योजना कृषि एवं उद्योग पर समान बल देती है और कुल परिव्यय का 12.7 और 12.5 प्रतिशत व्यय आवंटित करती है ।

आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय की दृष्टि से नियोजकों ने रोटी, रोजगार और उत्पादकता को महत्व दिया। रोटी के लिए खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने पर विशेष बल दिया गया। रोजगार जनन की दिशा में 1989 में जवाहर रोजगार योजना चलाई गई। इस योजना में राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम को मिला दिया गया। जवाहर रोजगार योजना में इन कार्यक्रमों को सभी ग्राम पंचायतों तक पहुंचाने का लक्ष्य रखा गया। यह योजना ग्राम पंचायत स्तर से लागू की गई है और इस योजना के क्रियान्वयन में केन्द्र एवं राज्य सरकारों की 80 - 20 प्रतिशत की भागीदारी है । जितने भी प्रोग्राम ग्रामीण क्षेत्र के लिए चलाये गये वे गरीबों की सहायता तो करते हैं परन्तु वे स्थाई परिसम्पत्तियों का हस्तांतरण नहीं करते हैं साथ ही साथ शासन तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण अपव्यय होता है । उत्पादकता को बढ़ाने के लिए तकनालाजी के आयात एवं आधुनिकीकरण पर बल दिया गया। उत्पादकता बढ़ाने के लिए कृषि एवं उद्योगों में तकनीकी उन्नयन, आधुनिकीकरण और वैज्ञानिक विकास सहायक होते हैं । यह पूँजी प्रधान उत्पादन के साधन होते हैं और श्रम प्रधान तकनीकें गौण हो जाती हैं ।

10.3.8 आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

सातवीं पंचवर्षीय योजना 31 मार्च 1990 को समाप्त हुई और आठवीं योजना को 1 अप्रैल 1990 से लागू होना था लेकिन देश में राजनीतिक अस्थिरता और गम्भीर आर्थिक संकट के कारण यह समय से प्रारम्भ नहीं हो पायी और आठवीं योजना दो वर्ष विलम्ब से लागू की जा सकी। 1990-91 एवं 1991-92 योजना विहीन वर्ष घोषित हुआ किन्तु इस समय के लिए वार्षिक योजनाएं लागू की गयी। योजना पर 4,34,000 करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान था किन्तु वास्तविक व्यय 495670 करोड़ रूपये रहा । 5.6 प्रतिशत की वृद्धि पर लक्षित थी जबकि 6.86 प्रतिशत वृद्धि दर प्राप्त हुई। इस योजना में ‘‘मानव संसाधन विकास ’’ को मूलभूत उद्देश्य माना गया।

भारतीय अर्थव्यवस्था में जो समष्टि असन्तुलन आये उन्हें ध्यान में रखते हुए आठवीं पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार करना पड़ा। इसलिए यह जानना जरूरी हो जाता है कि आठवीं पंचवर्षीय योजना किस पृष्ठभूमि में तैयार की गयी। राजकोषीय घाटा 1990-91 में 8.4 प्रतिशत पहंच गया। जुलाई 1991 में विदेशी विनियम कोष लगभग 2500 करोड़ रूपये था जो आधा महीने की आयात आवश्यकता की पूर्ति से अधिक नहीं था। मुद्रा स्फीति की दर 16.7 प्रतिशत रही। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नये आर्थिक सुधार शुरू किये गये जो मुक्त बाजार शक्तियों और प्रतिस्पर्धा पर आधारित थे। इस योजना में भी पर्याप्त मात्रा में रोजगार के अवसरों के सृजन को

सर्वाधिक महत्व दिया गया। ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त गरीबी को दूर करने के लिए ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार सृजन तथा उत्पादकता की वृद्धि पर विशेष बल दिया गया। ग्रामीण क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया को तेज करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में अधोसंरचना के विकास पर विशेष बल दिया गया। 1991 से औद्योगिक लाइसेंसिंग समाप्त कर दी गयी जिसके परिणामस्वरूप एक ओर तो निजी क्षेत्र को और विकसित होने का मौका मिले और विदेशी साहसियों को भी देश में आने की छूट मिले। भारतीय उद्योगों के पुनर्गठन के लिए निम्नांकित दिशा में बल दिया गयाः-

(1) प्रतियोगितात्मकता पर अधिक बल होने के कारण भविष्य में उन्हीं उद्योगों का अधिक विकास होगा जिन्हें प्रतियोगितात्मक लाभ की स्थिति प्राप्त हो।
(2) व्यक्तिगत इकाईयाँ एकीकरण, विलयन तथा विस्तार के द्वारा आकार में बढ़ेगी।
(3) विदेशों में संयुक्त उद्यम होंगे जो देश तथा सम्बन्धित बाहरी देश में साधन भण्डार की पूरकरता का शोषण करेंगे।

इस योजना में दुर्बल वर्गों के कल्याण के सामाजिक दायित्व में बिना ढिलाई के बाजार अर्थ व्यवस्था में बदलने का लक्ष्य रखा गया। आर्थिक विकास के लिए बुनियादी ढाँचे का तीव्र विकास आवश्यक है इसलिए बिजली, परिवहन तथा संचार पर विशेष बल दिया गया। इस योजना में वित्तीय असन्तुलन दूर करने का प्रयास किया गया। मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था को 4.6 प्रतिशत तक सीमित रखा गया है । यह योजना निर्देशात्मक प्रकृति की है ।

छठी पंचवर्षीय योजना में भुगतान सन्तुलन के सम्बन्ध में चालू खाता का घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 1.8 प्रतिशत था, सातवीं योजना में यह 2.3 प्रतिशत था जबकि आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान चालू खाते का औसतन घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 1.2 प्रतिशत ही रहा। अतः इस अवधि में भुगतान सन्तुलन की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ।

10.3.9 नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002)

इस योजना में तीव्र आर्थिक संवृद्धि तथा जीवन की गुणवत्ता में सुधार के बीच सम्बन्ध माना गया। ऐसी नीतियों एवं कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर बल दिया गया जो गरीबों के पक्ष में हो और विषमताओं को दूर करने में सहायक हों। ''सामाजिक न्याय तथा समता '' के साथ आर्थिक विकास इस योजना का प्रमुख उद्देश्य है । नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान सरकार ने सामान्य न्यूनतम कार्यक्रम घोषित किया जिसके अनुरूप आर्थिक संवृद्धि दर 7 प्रतिशत स्वीकारी गयी। आर्थिक मन्दी के कारण पूरी योजनावधि के लिए आर्थिक विकास दर के लक्ष्य को 0.5 प्रतिशत कम करके 6.5 प्रतिशत निर्धारित किया गया। देश में व्याप्त मंदी के कारण कृषि व सम्बद्ध क्षेत्रों, खनन, बिजली, निर्माण, उत्पादन एवं व्यापार क्षेत्र के विकास लक्ष्य की दरों को भी घटा दिया गया। निजी क्षेत्र और

बाजार शक्तियों के महत्वपूर्ण कार्यभाग की परिकल्पना की गई और राज्य को सुविधाजनक का कार्यभाग अदा करने के लिए कहा गया। यह अपेक्षा की गई कि राज्य को निम्नांकित क्षेत्रों में अपने कार्यभाग को बढ़ाना होगा-

(1) देश की अधिकतर जनसंख्या विशेषकर ग्राम क्षेत्रों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य देखभाल और सुरक्षित पेय जल मुहैया कराना।
(2) आर्थिक आधार संरचना की व्यवस्था करना जैसे- सिंचाई, पावर, सड़कें, बन्दरगाहें, रेलवे, दूर-संचार आदि।

नौवीं योजना की निवेश आवश्यकताएं 21,70,000 करोड़ रूपये अनुमानित की गयीं, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र का भाग 7,26,000 करोड़ रूपये (33.4 प्रतिशत) और निजी क्षेत्र का 11,19,000 करोड़ रूपये (51.6 प्रतिशत) होगा। 3,25,000 करोड़ रूपये की कमी शेष रहती है और इसे पूरा करने के लिए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के लिए विनिवेश का सहारा लिया जाएगा। इस योजना से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यः

- प्रधानमंत्री की विशेष कार्ययोजना के मद में 22,300 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया। यह राशि सामाजिक व बुनियादी ढाँचे और सूचना तकनीक के विकास पर खर्च की जायेगी।
- पाँच क्षेत्रों में विशेष कार्ययोजनाओं के लिए 21,946 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया। विशेष कार्ययोजना के अन्तर्गत कृषि, पशुपालन और उससे सम्बद्ध क्षेत्रों, स्वास्थ्य, शिक्षा, महिला एवं बाल विकास, युवा मामलों और पेयजल एवं सफाई के साथ ग्रामीण व शहरी विकास पर मुख्य ध्यान दिया गया। कृषि व ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गयी।
- स्थिरता के साथ विकास - मूल्यों में स्थिरता बनाये रखते हुए आर्थिक विकास की गतितीव्र करना ।
- सभी के लिए विशेषकर समाज के कमजोर वर्गों के लिए भोजन और पोषण सुरक्षा निश्चित करना ।
- जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण।
- देश में क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने के लिए पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को तेज करने के साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और सहायक क्रियाओं के आधुनिकीकरण पर बल देना।

- आर्थिक और तकनीकी आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के प्रयासों को सुदृढ़ करना।
- पंचायत राज संस्थाओं, सहकारिताओं तथा स्वयंसेवी वर्गों को बढ़ावा देना।

10.3.10 दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-2007)

यह योजना जब लागू हुई उस समय आर्थिक सुधार अपने चरम पर थे और विश्व की सारी अर्थव्यवस्थाएं बाजारीकरण की दौड़ में दौड़ती जा रहीं थीं। इस योजना मे जी0डी0पी0 का वृद्धि लक्ष्य रखा गया जो पहुंचा नहीं जा सका किन्तु नौवीं योजना की तुलना में यह 5.5 प्रतिशत से बढ़कर 7.6 प्रतिशत हो गया। योजना के अन्तिम वर्ष में जी0डी0पी0 की वृद्धि दर 9.2 प्रतिशत के उच्च स्तर पर पहुंच गयी।

सकल देशीय बचत बाजार कीमतों पर जी0डी0पी0 के प्रतिशत के रूप में दसवीं योजना में 28.2 प्रतिशत थी जबकि यह नौवीं योजना में 23.1 प्रतिशत थी। 2005-06 में यह बढ़कर 32.4 प्रतिशत हो गयी। बचत बढ़ने से निवेश का स्तर ऊँचा उठता है और अर्थव्यवस्था तेजी से आगे बढ़ती है। एक मजबूत संकेतक के रूप में विदेशी मुद्रा रिजर्व फरवरी 2007 में 185 अरब यू0एस0 डालर हो गई। विदेशी मुद्रा अन्तर्प्रवाह 2005-06 में 20.2 अरब डालर हो गये 7.7 अरब डालर प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और 12.5 अरब डालर पोर्टफोलियो निवेश। हालाँकि प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कुल विदेशी निवेश अन्तर्प्रवाह का 35.6 प्रतिशत था जिसे बढ़ाने की आवश्यकता थी क्योंकि पोर्टफोलियो निवेश सट्टेबाजी क्रियाओं में लिप्त होने की वजह से चंचल एवं अस्थिर होता है। 2006-07 में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का कुल अन्तर्प्रवाह में प्रतिशत बढ़कर 76 प्रतिशत हो गया। इस योजना में नौवीं योजना की अपेक्षा समष्टि आर्थिक मूल तत्व मजबूत हुए।

इसयोजना में पर्यावरण संरक्षण पर जोर दिया गया और यह लक्षित किया गया 2007 तक वनों तथा वृक्षों के अन्तर्गत क्षेत्रफल को बढ़ाकर 25 प्रतिशत करना तथा सभी प्रदूषित नदियों की सफाई का कार्य पूरा करना। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में परिव्यय की राशि 15,92,300 करोड़ रूपये निश्चित की गई किन्तु वास्तविक व्यय 16,53,065 करोड़ रूपये हुआ यदि हम इस दौरान मुद्रास्फीति जो 5.1 प्रतिशत थी, को ध्यान रखें तो इस योजना का वास्तविक आकार कम आयेगा।

दसवीं योजना के दो आधारभूत तत्व है–

- अभी तक की उपलब्धियों को अक्षुण बनाए रखते हुए विकास करना
- अभी तक के विभिन्न क्षेत्रों के विकास में आई बाधाओं को दूर करना।

दसवीं पंचवर्षीय योजना में इस बात को माना गया कि हालाँकि उच्च आर्थिक संवृद्धि दर से गरीबी कम होती है पर भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना में व्याप्त कठोरतायें इस सम्बन्ध के प्रभाव को कम करती हैं। इसलिए विकास की रणनीति बनाते समय यह ध्यान रखना होगा कि ऐसी कार्ययोजना अपनायें जो समता तथा सामाजिक न्याय को स्थापित कर सके। इसके लिए 10वीं योजना में त्रिमुखी कार्यनीति (Three Pronged Strategy) अपनायी गयीः-

1. कृषि क्षेत्र के विकास को प्राथमिकता दी गई क्योंकि इसमें विकास के फैलाव की व्यापकता होती है और ग्रामीण गरीबों को लाभ पहुंचता है। इस योजना में यह माना गया कि आर्थिक सुधारों के प्रथम चरण में औद्योगिक अर्थव्यवस्था पर जोर दिया गया और कृषि क्षेत्र गौढ़ रहा इसलिए 10वीं योजना में सबसे ज्यादा बल कृषि विकास पर दिया गया किन्तु ऊर्जा पर सर्वाधिक व्यय किया गया।
2. ऐसे क्षेत्र जो लाभप्रद रोजगार के अवसर सृजित करते हैं उन्हें विकसित किया जाए जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार मिल सके।
3. ऐसे वर्ग जो संवृद्धि प्रक्रिया से लाभान्वित होने से रह गये हैं उनके लिए संवृद्धि लाभ के साथ पूरक कार्यक्रमों पर जोर दिया जाय।

दसवीं योजना में 2002-03 में 3.8 प्रतिशत, 2003-04 में 8.5 प्रतिशत, 2004-05 में 7.5 प्रतिशत, 2005-06 में 9.1 प्रतिशत तथा 2006-07 में 9.2 प्रतिशत की संवृद्धि दर रही जो औसतन 7.6 प्रतिशत रही। इस योजना में वर्द्धमान पूँजी उत्पाद अनुपात (प्ब्व्त्) 4.3 रहा। सबसे अधिक संवृद्धि दर दसवीं योजना में रही इसके बाद आठवी योजना रही। पूरे योजनाकाल में उच्च वास्तविक वृद्धि वाले वर्ष रहे - 1967-68 (8%), 1975-76 (9.1%), 1988-89 (10.1%), 1996-97 (8.2%), 2003-04 (8.7%), 2005-06 (9.0%), 2006-07 (8.1%)। पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में संवृद्धि दर के लक्ष्य राष्ट्रीय आय के सन्दर्भ में रखे गये थे, चौथी योजना में यह शुद्ध घरेलू उत्पाद था। बाद की सभी योजनाओं में यह साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद रहा।

यह अनुभव किया गया कि विकास के लाभ निचले स्तर पर रहने वाले गरीब और कमजोर वर्गों तक नहीं पहुंच पाएं और उच्च वर्ग और धनवान होता जा रहा है। इसलिए गरीबी अभी भी व्यापक रूप से फैली है और लोग भूख से मरते भी हैं। यह एक ऐसे देश के लिए शर्म की बात है, जहाँ आर्थिक संवृद्धि 9 प्रतिशत तक भी पहुंची। योजना आयोग के अनुमान के अनुसार 2004-05 में 30 करोड़ व्यक्ति (27.5 प्रतिशत) गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे थे। कृषि क्षेत्र में भयंकर विफलता हुई और वास्तविक औसत वार्षिक वृद्धि दर दसवीं योजना के 4 प्रतिशत के लक्ष्य के विरूद्ध 2.1 प्रतिशत ही रही। क्षेत्रीय असमानताओं में कोई कमी नहीं हुई। 5 गरीब राज्यों में (ठप्डात्न्) बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और उड़ीसा में कुल गरीबों की संख्या का 55

पंचवर्षीय योजनाओं में संवृद्धि दर प्रतिशत प्रति वर्ष

क्र0सं0	योजनाएं	लक्ष्य	वास्तविक
1-	प्रथम (1951-56)	2.1	3.60
2-	दूसरी (1956-61)	4.5	4.21
3-	तीसरी (1961-66)	5.6	2.72
4-	चौथी (1969-74)	5.7	2.05
5-	पाँचवी (1974-79)	4.4	4.83
6-	छठी (1980-85)	5.2	5.54
7-	सातवीं (1985-90)	5.0	6.02
8-	आठवीं (1992-97)	5.6	6.68
9-	नौवीं (1997-2002)	6.5	5.35
10-	दसवीं (2002-07)	8.0	7.6
11-	ग्यारहवीं (2007-12) संशोधित लक्ष्य	9.0 7.8	8.2

प्रतिशत निवास करता है । कुपोषण से ग्रस्त बाल जनसंख्या का अनुपात 2005-06 में 46 प्रतिशत के उच्च स्तर पर था।

10.3.11 ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12)

9 दिसम्बर 2006 को राष्ट्रीय विकास परिषद ने ग्यारहवीं योजना के दिशा निर्देश पत्र के दृष्टिकोण ‘‘अधिक तीव्र और समावेशी विकास की ओर ” को स्वीकृति दे दी। 19 दिसम्बर 2007 को राष्ट्रीय विकास परिषद की 54वीं बैठक में 11वीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप को भी स्वीकृति प्रदान कर दी गई। 11वीं पंचवर्षीय योजना में जी0डी0पी0 (सकल देशीय उत्पाद) को 9 प्रतिशत के उच्च स्तर पर ले जाने की परिकल्पना की गई। मन्दी के कारण इसे संशोधित कर 7.8 प्रतिशत कर दिया गया। इसके साथ यह भी माना गया कि इस योजना का लक्ष्य केवल तीव्र विकास नहीं बल्कि समावेशी विकास भी है जो लोगों के जीवन की गुणवत्ता, विशेषकर अनुसूचित जातियों,

जनजातियों, अन्य पिछड़ी जातियों और अल्पसंख्यकों की विस्तृत रूप में दशा में सुधार को सुनिश्चित करता है।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना की दृष्टि

1. तीव्र विकास जो गरीबी को कम करे और रोजगार के अवसर सृजित हों।
2. सभी तक विशेषकर गरीब वर्गों के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी अनिवार्य सेवाओं को पहुंचाना।
3. शिक्षा और कौशल के विकास द्वारा सशक्तिकरण।
4. राष्ट्रीय ग्राम रोजगार गारण्टी प्रोग्राम के प्रयोग से रोजगार का विस्तार करना।
5. पर्यावरण के टिकाऊपन को बढ़ावा देना।
6. लैंगिक असमानता को कम करना।
7. प्रशासन में सुधार करना।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के वृहत आर्थिक सूचक

		10वी योजना	11वी योजना
1	सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर जिसमें से	7.6	9.0
(क)	कृषि	2.13	4.1
(ख)	उद्योग	8.74	10.5
(ग)	सेवाएं	9.28	9.9
2	चालू खाते का घाटा (सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत)	0.2	- 2.8
3	सरकारी राजस्व अधिशेष (सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत)	- 4.4	- 0.2
4	सरकारी राजकोषीय अधिशेष (सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत)	- 8.0	- 6.0

कर ढाँचे में सुधार के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर को प्राप्त करना, विशेष आर्थिक क्षेत्र को बढ़ावा देना, उद्योगों का आधुनिकीकरण, निवेश के अनुकूल वातावरण, श्रम आधारित उत्पादन की इकाइयों की स्थापना, कुटीर उद्योगों की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन के अलावा कम्पनी अधिनियम में जरूरी बदलाव। समावेशी विकास के माप का सबसे प्रभावी तरीका देश की प्रगति को इसके सबसे गरीब हिस्से की प्रगति के सन्दर्भ में मापना अर्थात जनसंख्या के निचले 20 प्रतिशत हिस्से की प्रगति विकास की रणनीति में सम्मिलित करना होगा वंचितों, गरीबों का सशक्तिकरण, सर्वशिक्षा अभियान के लिए प्राथमिक शिक्षा का विस्तार, विकलांग छात्रों को आवश्यक सहायता

प्रदान करना, सैकेण्डरी शिक्षा को बढ़ावा देना, रोजगारपरक शिक्षा को बढ़ावा देना तथा वयस्क साक्षरता के अभियान को बढ़ावा देने के अलावा विज्ञान और तकनीक के आधार विकसित करना। ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य सुविधाओं का विस्तार राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के लक्ष्यों को पूरा करना, सभी को स्वच्छ जल उपलब्ध कराना तथा ग्रामीण स्वच्छता के लक्ष्यों को पूरा करना। भारत निर्माण कार्यक्रम के अनुरूप ग्रामीण आधारभूत संरचना को मजबूत करने की आवश्यकता है। इस योजना में पर्यावरण संरक्षण के अन्तर्गत वायु व जल की गुणवत्ता सुधारनी होगी, ठोस कूड़े का उचित प्रबन्धन करना होगा और वन्य तथा जैव विविधता को संरक्षित करने का लक्ष्य है।

11वीं योजना के दौरान कुल व्यय 36,44,718 करोड़ रूपये होने का प्रावधान है जिसमें केन्द्र की भागीदारी 21,56,571 करोड़ रूपया तथा राज्यों की भागीदारी 14,83,147 करोड़ रूपया होगी। 2016-17 तक प्रति व्यक्ति आय को दुगुना करने का लक्ष्य रखा गया। बेरोजगारी के अनुमान के सम्बन्ध में चालू दैनिक अवस्था को आधार मानते हुए यह लक्ष्य रखा गया कि 11वीं योजना के दौरान होने वाली श्रम शक्ति में वृद्धि को उच्च गुणवत्ता युक्त रोजगार उपलब्ध कराना। विनिर्माण में 4 प्रतिशत निर्माण में 8.2 प्रतिशत तथा यातायात तथा संवहन में 7.6 प्रतिशत की दर से रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना। रोजगार के 70 मिलियन नये अवसर सृजित करना तथा शैक्षिक बेरोजगारी को 5 प्रतिशत से नीचे लाना। 2001 से 2011 तक के दशक में जनसंख्या की दशकीय वृद्धि को घटा कर 16.2 प्रतिशत के स्तर पर लाना। साक्षरता की दर के सम्बन्ध में कम से कम 75 प्रतिशत के लक्ष्य को प्राप्त करना तथा साक्षरता में लिंगीय अन्तराल को 10 प्रतिशत तक लाना। शिशु मृत्यु दर को घटाकर 2012 तक 28 तथा मातृ मृत्यु दर को घटा कर 2010 तक 1 प्रति 1000 जीवित जन्म के स्तर तक लाना। 2012 तक सभी गाँवों में स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति आश्वासित करना। लिंगानुपात दर को सुधारते हुए वर्ष 2011-12 तक प्रति हजार 935 और वर्ष 2016-17 तक 950 प्रति हजार का लक्ष्य। वर्ष 2011-12 तक प्रत्येक गाँव को ब्रॉडबैण्ड से जोड़ना।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना लक्ष्य ''अधिक तीव्र एवं अधिक समावेशी विकास '' का लक्ष्य तो बहुत अच्छे इरादे बताता है किन्तु उच्च आर्थिक संवृद्धि के लिए ये योजना जो रास्ते अपनाती है जैसे ठेका खेती की वकालत करना यह पूँजी प्रधान है जबकि भारत में आवश्यकता है श्रम प्रधान तकनीक की जो अधिक से अधिक लोगों को रोजगार प्रदान कर सके। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डा0 एम0एस0 स्वामीनाथन की अध्यक्षता में नियुक्त किसानों पर राष्ट्रीय आयोग की सिफारिशें को शामिल नहीं करती। वे सिफारिशें थीं - फसलों को नुकसान द्वारा प्रभावित किसानों के

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक क्षेत्र का प्रस्तावित परिव्यय

क्र0सं0	मद	राशि	प्रतिशत
1-	कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र	1,36,831	3.7
2-	ग्रामीण विकास	3,01,069	8.3
3-	विशेष क्षेत्र कार्यक्रम	26,329	0.7
4-	सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण	2,10,326	5.8
5-	ऊर्जा	8,54,123	23.4
6-	उद्योग एवं खनिज	1,53,600	4.2
7-	परिवहन	5,72,443	15.7
8-	संचार	95,380	2.6
9-	विज्ञान तकनीकि एवं पर्यावरण	87,933	2.4
10-	सामान्य आर्थिक सेवायें	62,523	1.7
11-	सामाजिक सेवायें	11,02,327	30.2
12-	सामान्य सेवायें	42,283	1.2
योग		**36,44,718**	**100.0**

लिए राष्ट्रीय आपदा कोष की तर्ज पर एक कोष की स्थापना करना, किसानों को दिए गए ऋणों पर ब्याज की दर कम करके 4 प्रतिशत पर लाना, कृषि उत्पादों के आयात पर परिणामात्मक सीमा बन्धन लगाना। गरीबी दूर करने के लिए जो विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये हैं वे कितने कारगर होंगें गरीबी कम करने में यह निर्भर करेगा इनके कार्यान्वयन की प्रभाविता से। योजना आयोग कुछ मुद्दों पर मौन है जैसे खाद्य सुरक्षा, कीमत आलम्बन प्रणाली को मजबूत करना, कृषि के सब्सिडी प्राप्त आयतों के विरूद्ध किसानों का संरक्षण, फसल बीमा का सर्वव्यापीकरण और भू-सुधार। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मन्दी के प्रभाव से 9 प्रतिशत की आर्थिक संवृद्धि दर प्राप्त करना सम्भव नहीं है। समावेशी विकास निर्भर करेगा किस प्रकार संशोधित 7.8 प्रतिशत की विकास दर गरीब पक्षीय विकास को बढ़ावा देगी और ग्रामीण एवं शहरी विभाजन और अमीर-गरीब के विभाजन को कम कर सकेगी।

10.4 सारांश

आप को इस इकाई के अध्ययन के बाद यह जानकारी तो मिली होगी कि भारत में अब तक के योजनाकाल में जब 2012 में ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना पूरी होने वाली है भारतीय अर्थव्यवस्था में कई उतार चढ़ाव आये और हमारे नियोजकों ने परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न योजनाओं के

प्राथमिक लक्ष्यों को बदला, उसके लिए आवंटन किया और विभिन्न कार्यक्रम चलाये। अगर आज तक उन उद्देश्यों की पूर्ति में कुछ कमी रही है तो अन्य कारणों के साथ लक्षित लोगों तक आवंटित लाभ न पहुंच पाना प्रमुख है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश जहाँ आज भी करीब 60 प्रतिशत जनसंख्या किसी न किसी रूप में कृषि पर निर्भर हैं और ग्रामीण क्षेत्र में बसी है वहाँ विकास की रणनीति बनाते समय हमारे नियोजक पाश्चात्य विकास की रणनीति से अधिक प्रभावित नजर आते हैं। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में नियोजकों ने इस बात का संज्ञान लेते हुए कि विकास की प्रक्रिया सन्तुलित नहीं रही है और आय तथा सम्पत्ति का संकेन्द्रण होता जा रहा है समावेशी विकास पर जोर दिया। किन्तु इस योजना में खत्म होने में एक साल बचे हैं पर क्या हम सबको साथ लेकर आगे बढ़ पाये हैं? हर पग पर शहरों में व्यक्तियों के बीच, शहर और गाँवों, विभिन्न राज्यों, विभिन्न क्षेत्रों पर यदि हम दृष्टि डाले तो असमानता की खाई गहराती गई है। जहाँ उपभोक्तावाद चरम पर है वहीं लोग भूख से भी मर रहे हैं। इसलिए नियोजकों को विकसित देशों की रणनीति की दिशा नहीं अपनानी चाहिए और न ही किसी दबाव में देश के लिए रणनीति बनानी चाहिए। भले ही आर्थिक संवृद्धिकी दर थोड़ी धीमी रहे पर सन्तुलित विकास पर जोर देना चाहिए जिससे लोगों में असन्तोष न पैदा हो और नक्सलवाद जैसी समस्यायें अपना मुँह न फैलायें।

10.5 शब्दावली

- **असन्तुलित विकास रणनीति -** कुछ क्षेत्रों को चिन्हित कर उनमें अधिक निवेश करना जिससे प्रतिफल अधिक हो और क्षेत्र उसकी देखादेखी विकास की ओर बढ़े।
- **स्वयं स्फूर्ति -** अपने आप तेजी पकड़ना।
- **योजनावकाश** - जिन सालों में पंचवर्षीय योजना नहीं बन पाई और वार्षिक योजना बनाकर काम चलाना पड़ा।
- **बफर स्टाक** - खाद्यान्न को सरकार गोदामों में स्टोर करके रखती है जिससे अर्थव्यवस्था में जब खाद्यान्नों की कीमत बढ़े तो कीमत नियंत्रण के लिए खाद्यान्न आवश्यकतानुसार निकाल दे।
- **मुद्रा प्रसारीय स्रोत -** ऐसे स्रोत जिनसे मुद्रा की मात्रा अर्थव्यवस्था में बढ़े जैसे नये नोटों का निर्गमन (प्रिन्टिंग)।
- **घाटे का बजट** - सार्वजनिक व्यय जब सार्वजनिक आय से अधिक हो।
- **सर्वव्यापीकरण -** जिसका विस्तार सभी तक हो।
- **परिणामात्मक सीमा बन्धन** - मात्रा की लिमिट (सीमा) तय करना।

- **दशकीय वृद्धि** - दस साल में वृद्धि दर।
- **श्रम शक्ति** - 15-60 साल के बीच लोगों की संख्या जो काम करने योग्य हो।
- **चालू दैनिक अवस्था** - किसी सन्दर्भित दिन जो व्यक्ति काम करने का इच्छुक है उसे रोजगार दिलाना यदि उसे उस दिन काम नहीं मिलता तो वह दैनिक स्थिति बेरोजगार है।
- **NREP** - राष्ट्रीय ग्राम रोजगार कार्यक्रम
- **IRDP** - समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम
- **RLEGP** - ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम
- **TRYSEM** - ग्रामीण युवकों को स्वरोजगार के लिए किट देना।
- **DWACRA** - ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं एवं बच्चों के विकास के लिए कार्यक्रम

10.6 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित

10.6.1 रिक्त स्थान भरो-

1. भारत के योजनाकाल में 1966-69 का समय .... का रहा।
2. द्वितीय पंचवर्षीय योजना .... मॉडल पर आधारित थी।
3. .... योजना अशोक रूद्र तथा एलन एस0 मात्रे द्वारा तैयार ओपेन कनसिसटेन्सी मॉडल पर आधारित थी।
4. मानक व्यक्ति वर्ष .... मापने का तरीका है।
5. 1989 में .... योजना शुरू की गई।

10.6.2 सत्य/असत्य

1. तकनीकी उन्नयन, आधुनिकीकरण और वैज्ञानिक विकास श्रम प्रधान तकनीक है।
2. भारत में नये आर्थिक सुधार की शुरूआत 1991 में हुई।
3. दसवीं पंचवर्षीय योजना में 5 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर रही।
4. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य अधिक तीव्र एवं समावेशी आर्थिक विकास है।
5. अनवरत योजना जनता पार्टी ने 1978-83 में लागू की।

उत्तर: रिक्त स्थान भरो-	**सत्य/असत्य**
1. योजनावकाश	1. असत्य
2. पी.सी. महालनोबिस	2.सत्य
3. चतुर्थ पंचवर्षीय	3. असत्य

4. रोजगार 4.सत्य
5. जवाहर रोजगार योजना 5.सत्य

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली
2. लाल, एस.एन. एवं एस.के. लाल (2009), आर्थिक विकास आयोजन तथा पर्यावरण, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
3. लाल, एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010), भारतीय अर्थव्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद

10.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- भारतीय अर्थव्यवस्था (2010) प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, आगरा
- Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) problems of Indian Economy,Himalaya Publishing House.
- Tenth Five Year Plan (2002-2007), Planning Commission, Government of India, New Delhi.
- planningcommission.nic.in/plans/planrel/11thf.htm

10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्य और उपलब्धियाँ बताइये?
2. योजनाकाल में अभी तक की योजनाओं की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए ?

इकाई - 11 केन्द्र राज्य सम्बन्ध

इकाई संरचना

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 केन्द्र राज्य सम्बन्ध
11.3.1 कार्यों का बंटवारा
11.3.2 संसाधनों का बंटवारा
11.3.3 कर का बंटवारा
11.4 केन्द्र राज्य सम्बन्ध के तनाव क्षेत्र
11.4.1 राज्य का पक्ष
11.4.2 केन्द्र सरकार का तर्क
11.5 वित्त आयोग तथा वित्तीय हस्तान्तरण
11.6 साधन अंतरण के अन्त स्रोत
11.7 भारत में संघीय वित्त में सुधार हेतु सुझाव
11.8 सारांश
11.9 शब्दावली
11.10 अभ्यास प्रश्न
11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.13 निबन्धात्मकप्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम अध्ययन करेंगे कि भारत में संघीय व्यवस्था लागू है जिसके अन्तर्गत कौन से कार्य केन्द्र के हैं और कौन से राज्यों के। इसी प्रकार संसाधनों का बंटवारा केन्द्र और राज्य के बीच किस प्रकार से किया गया है । इस इकाई में हम यह भी देखेंगे कि कौन सी संस्थाएं केन्द्र से राज्यों की ओर हस्तांतरण करने में सहायक हैं । भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से केन्द्र और राज्यों के कार्यों और शक्तियों का बंटवारा किया गया है । संघीय वित्त व्यवस्था में कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है जैसे राजस्व के स्रोतों के विभाजन में इस बात का खास ध्यान रखना पड़ता है कि दोनों स्तर की सरकारों के साधन पर्याप्त हो जिससे वे अपने दायित्वों का अच्छी तरह निर्वहन कर सकें। अच्छी संघीय व्यवस्था में यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि सरकार के विभिन्न स्तरों के स्वतंत्र वित्तीय अधिकार हों जिससे वे स्वतंत्र रूप से कर लगा सकें, ऋण ले सकें और अपने दायित्वों की पूर्ति हेतु व्यय कर सकें। इस इकाई में हम यह जानने की कोशिश करेंगे कि भारत इन कसौटियों पर खरा है या नहीं। यदि नहीं तो किस प्रकार समायोजन किया जाता है जिससे विवाद को कम किया जा सके।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. इस इकाई में हम जानने की कोशिश करेंगे कि भारत में केन्द्र और राज्यों के बीच कार्यों का बंटवारा कैसे हुआ है ।
2. हम यह भी जानेंगे कि संसाधनों का बंटवारा केन्द्र और राज्यों के बीच कैसे हुआ है ।
3. केन्द्र और राज्य के बीच वित्तीय सम्बन्धों में तनाव क्षेत्र कौन से हैं ।
4. तनाव कम करने के लिए वित्तीय समायोजन कैसे किया जाता है ।
5. किन संस्थाओं और किन आधारों का सहारा लिया जाता है वित्तीय समायोजन करने में।

11.3 केन्द्र राज्य सम्बन्ध

भारतीय संविधान में भारत को संध देश के रूप में स्वीकारा गया। कार्यों के बंटवारे, पारस्परिक तथा वित्तीय सम्बन्धों के समाधान हेतु जो व्यवस्थाएं संविधान में की गई वे सभी उसी

प्रकार थीं जैसी 1935 में Government of India Act में थीं। कार्यों तथा वित्तीय स्रोतों का विभाजन केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच इस मंशा से किया गया कि प्रशासनिक तथा वित्तीय स्तर पर प्रशासनिक कुशलता प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं हो तथा वित्तीय साधनों के लगाने, वसूल करने तथा बंटवारे के सम्बन्ध में अतिव्याप्ति नहीं हो। केन्द्र सरकार को वे स्रोत जिनका राष्ट्रीय या अन्तर्राज्यीय आधार है दिये गये, जबकि स्थानीय आधार वाले राज्यीय सरकारों द्वारा लगाए जाते हैं। अवशिष्ट अधिकार संघीय सरकार को दिये गये।

11.3.1 कार्यों का बंटवारा - भारतीय संविधान की अनुसूची 7 में केन्द्र तथा राज्यों के बीच कार्यों के बंटवारे से सम्बन्धित तीन सूचियाँ हैं जिनमें दोनों के कार्यों को स्पष्टतः रेखांकित किया गया है जिससे कार्यों के सम्पादन में ''अति व्याप्ति'' न हो। ये अनुसूचियाँ हैं -

1. **संघीय सूची** - इसमें 97 मदें आती हैं। ये सभी राष्ट्रीय महत्व की हैं जैसे- सुरक्षा, परमाणु शक्ति, सुरक्षा उद्योग, विदेशी कार्य, रेलवे, पोस्ट एवं टेलीग्राफ, चलन तथा टक्साल, बैंकिंग, विनिमय, भारी तथा आधारभूत उद्योग आदि। ये सभी मदें केन्द्र के पास हैं।
2. **राज्य सूची** - इसमें 66 मदें आती हैं। ये सभी स्थानीय महत्व की मदें हैं जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण, कानून तथा व्यवस्था, न्यायिक प्रशासन, कृषि सिंचाई, ऊर्जा, मत्स्य, सहकारिता, ग्रामीण तथा सामुदायिक विकास, सामाजिक सेवायें आदि।
3. **समवर्ती सूची -** इसमें 52 मदें हैं। केन्द्र तथा राज्य दोनों कानून बना सकते हैं किन्तु अतिव्याप्तियाँ पारस्परिक संघर्ष की स्थिति में केन्द्र को वरीयता मिलेगी। इसमें औद्योगिक तथा व्यापारिक एकाधिकार, श्रम कल्याण तथा विवाद, सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक तथा सामाजिक नियोजन आदि मदें आती हैं।

11.3.2 संसाधनों का बंटवारा-

संघीय कर - ये भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में दिए गये हैं और ये अत्यधिक विस्तृत आर्थिक आधार वाले कर हैं, जिनकी आय या कर आधार के सम्बन्ध में लोचशीलता अधिक है। केन्द्र सरकार 13 आधारों पर कर लगा सकती हैः-

1. कृषि आय को छोड़कर आय पर कर
2. सीमा शुल्क
3. निम्नलिखित को छोड़कर भारत में उत्पादित या निर्मित वस्तुओं तथा तम्बाकू पर उत्पाद शुल्क

(क) मानवीय उपयोग के लिए एल्कोहलिक पेय

(ख) अफीम, गाँजा, मादक औषधि तथा मादक वस्तुएं

4. निगम कर

5. कृषि भूमि को छोड़ अन्य सम्पत्ति पर सम्पदा एवं उत्तराधिकार शुल्क

6. कृषि भूमि को छोड़कर सम्पत्तियों पर अस्ति कर

7. कृषि भूमि को छोड़कर सम्पत्तियों के उत्तराधिकार पर कर

8. रेलवे, समुद्र या वायु द्वारा पहुंचाई गई वस्तुओं या सवारियों पर चुंगी कर

9. रेलवे किराये पर कर

10. समाचार पत्रों के क्रय-विक्रय और उनमें दिए गए विज्ञापनों पर कर

11. स्टाक एक्सचेंज तथा भावी बाजार के व्यवहारों पर स्टाम्प ड्यूटी

12. वित्तीय प्रलेखों पर स्टाम्प जैसे विनिमय विपत्र चेक, प्रामिजरी नोट, साख पत्र, बीमा पालिसी, अंश पत्रों तथा ऋण पत्रों के हस्तांतरण पर स्टाम्प ड्यूटी।

13. अन्तर्राज्यीय व्यापार के दौरान वस्तुओं के क्रय या विक्रय पर कर

राज्यीय कर - भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची में दिए गये कर निम्नांकित हैं -

1. भू राजस्व

2. समाचार पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के विक्रय या क्रय पर कर

3. कृषि आय पर कर

4. भूमि तथा भवनों पर कर

5. कृषि भूमि पर सम्पदा व उत्तराधिकारी शुल्क

6. शराब तथा स्वापक औषधि पर उत्पाद शुल्क

7. किसी स्थानीय क्षेत्र में वस्तुओं के प्रवेश पर कर

8. धातु अधिकारों पर कर

9. बिजली के उपभोग तथा विक्रय पर कर

10. गाड़ियों, पशुओं तथा नौकाओं पर कर

11. वित्तीय प्रलेखों को छोड़कर अन्य प्रलेखों पर स्टाम्प शुल्क

12. सड़क या जल अन्तर्देशीय मार्गों द्वारा ढोई गई वस्तुओं एवं सवारियों पर कर

13. मनोरंजन तथा जुए पर कर

14. पथ कर

15. व्यवसाय, व्यापार, पेशे और रोजगार पर कर

16. प्रति व्यक्ति कर

17. समाचार पत्रों को छोड़ कर अन्य विज्ञापनों पर कर

जिन करों का उल्लेख राज्यीय या समवर्ती सूची में नहीं है, उन्हें केन्द्रीय सरकार को लगाने का अधिकार है। राज्यों की राजस्व व्यय तथा पूँजीगत व्यय सम्बन्धी आवश्यकता की आपूर्ति के स्रोत हैं –

(क) राज्यों के घरेलू संसाधन जिसमें करों की प्राप्तियों के अतिरिक्त राज्य द्वारा चलाये गये उद्यमों से प्राप्त आय भी शामिल है।

(ख) राजकोषीय हस्तान्तरण (वित्त आयोग द्वारा हस्तान्तरण)

(ग) योजना आयोग द्वारा हस्तान्तरण

(घ) सम्बद्ध मंत्रालय से हस्तान्तरण

(ङ) 293(2) के अन्तर्गत केन्द्र सरकार से ऋण तथा 293(3) के अन्तर्गत देश के भीतर ऋण ले सकती है किन्तु राज्य सरकार बिना केन्द्र सरकार की अनुमति के ऋण नहीं ले सकती अगर राज्य पर केन्द्र द्वारा दिया गया ऋण देय हो या कोई ऋण देय हो जिसकी गारण्टी केन्द्र सरकार ने ली हो।

भारतीय संविधान केन्द्र सरकार के अधिक पक्ष में है क्योंकि अधिकांश उत्पादक तथा लोचशील कर जिनसे आय अधिक होती है। केन्द्र सरकार के पास हैं, और राज्य के राजस्व के

स्रोतों से कम आय होती है। जबकि केन्द्र तथा राज्यों के बीच कार्यों का बंटवारा इस प्रकार है कि अधिक खर्चीले तथा प्रसरणीय कार्य राज्यों को सौंपे गये हैं, परिणामतः ऊर्ध्वाधर असन्तुलन की स्थिति है। इस असन्तुलन को दूर करने के लिए संविधान में वित्तीय संसाधन के हस्तांतरण का प्रावधान है। यह तीन रूप में हो सकता है:-

- कर का बंटवारा (वित्त आयोग की संस्तुतियों पर)
- सहायक अनुदान (वित्त आयोग एवं योजना आयोग दोनों की संस्तुति के आधार पर। वित्त आयोग के अन्तर्गत अनुच्छेद 275 तथा योजना आयोग के अन्तर्गत 282)
- ऋण

11.3.3 कर का बंटवारा

i. ऐसे कर जो केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित किये जाते हैं, एकत्रित किये जाते है तथा जिनसे प्राप्त राजस्व केन्द्र सरकार के ही पास रहती है जैसे निगम कर, कस्टम ड्यूटी, पूंजीकर

ii. वे कर जिन्हें केन्द्र सरकार के द्वारा आरोपित एवं एकत्रित किये जाते हैं और जिन्हें केन्द्र और राज्य के बीच बांटा जाता है (जैसे आयकर, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क)

iii. वे कर जिन्हें केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित और एकत्रित किया जाता है तथा एकत्रित राजस्व को राज्यों में विभाजित कर दिया जाता है। जैसे- जायदाद शुल्क, रेलवे किराये एवं मालभाड़े पर कर, समाचार पत्र के क्रय विक्रय पर कर एवं समाचार पत्र पर दिये गये विज्ञापन पर कर।

iv. वे कर जो केन्द्र सरकार के द्वारा आरोपित किये जाते हैं लेकिन जिसकी वसूली और विनियोजन राज्य सरकार के द्वारा किया जाता है जैसे स्टाम्प शुल्क, दवाइयों एवं मादक द्रव्य पर कर

v. वे कर जो राज्य सरकार द्वारा आरोपित, एकत्रित एवं विनियोजित किये जाते हैं जैसे बिक्री कर, कृषि आय पर कर, भूराजस्व, मोटर वाहन कर, व्यवसायिक कर, मनोरंजन कर आदि।

2 एवं 3 श्रेणी केन्द्र और राज्य वित्तीय सम्बन्ध को प्रभावित करता है। मई 2000 में संविधान में 89वाँ संशोधन किया गया जिसके अनुसार अब केन्द्र सरकार द्वारा एकत्रित सभी कर विभाजनशील कर का भाग होंगे। पहले केवल आयकर एवं केन्द्रीय उत्पाद शुल्क केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों के साथ बांटा जाता था। अर्थात 1 श्रेणी का भी विभाजन किया जायेगा। संविधान के अनुच्छेद 269 तथा 270 में संघ द्वारा आरोपित एवं संग्रहीत करों को केन्द्र तथा राज्यों के बीच वितरित करने का

प्रावधान है, लेकिन अनुच्छेद 271 केन्द्र को, अनुच्छेद 269 तथा 270 में वर्णित मदों पर अधिभार लगाने का अधिकार देता है, किन्तु अधिभार से अर्जित आय राज्यों में वितरित नहीं होती।

11.4 केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध के तनाव क्षेत्र

11.4.1 राज्य का पक्ष

1.राज्यों की यह शिकायत है केन्द्र सरकार के राजस्व स्रोत की प्रफुल्लता एवं लोचशीलता अधिक है।

प्रफुल्लता - यदि कर की दर में वृद्धि होती है एवं राजस्व की वसूली आनुपातिक या इससे अधिक होती है तो ऐसे कर को प्रफुल्लता की श्रेणी में रखा जाता है।

लोचशीलता - राष्ट्रीय आय बढ़ने पर राजस्व वसूली में भी आनुपातिक अथवा अनुपात से अधिक वृद्धि हो तो इसे लोचशील की श्रेणी में रखा जाता है। केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, निगम कर, आयकर, कस्टम शुल्क।

2.राज्य सरकारों की यह शिकायत थी कि निगम कर से प्राप्त राजस्व को राज्यों के साथ नहीं बांटा जाता है। 1959 तक निगम कर आयकर का ही भाग होता था लेकिन 1959 में केन्द्र सरकार द्वारा निगम कर को आयकर से पृथक कर दिया गया एवं इसे विभाजनशील कर में शामिल नहीं किया गया। राज्य सरकारों का मानना था कि निगम कर भी यदि आयकर का भाग होता तो उन्हें केन्द्र से अधिक वित्तीय सहायता प्राप्त होती।

3.राज्यों की यह भी शिकायत है केन्द्र सरकार ने अनुच्छेद 269 के अन्तर्गत कर जिनसे प्राप्त राजस्व राज्यों में विभाजित कर दिया जाता है, में बढ़ोत्तरी के लिए सार्थक प्रयास नहीं किया है।

4.राज्यों की यह भी शिकायत है कि केन्द्र सरकार आयकर पर समय-समय पर सरचार्ज (कर पर कर) अधिभार लगाती है जिससे प्राप्त वसूली राज्यों के साथ नहीं बांटी जाती है, इस तरह से उन्हें केन्द्रीय सहायता कम मिलती है।

5.1973 के केन्द्र के एक निर्णय के द्वारा रेलवे किराये कर को समाप्त कर दिया गया एवं इसके स्थान पर केन्द्र सरकार हर वर्ष राज्यों को सहायक अनुदान देती है जिसका निर्धारण वित्त आयोग द्वारा किया जाता है। राज्यों की यह शिकायत है कि रेलवे किराया कर के द्वारा उन्हें अधिक राजस्व की प्राप्ति होती थी अर्थात उन्हें सहायक अनुदान कम प्राप्त होता है।

6.राज्य सरकार के राजस्व का मुख्य स्रोत बिक्रीकर है जिससे लगभग 60 प्रतिशत राजस्व की प्राप्ति होती है केन्द्र सरकार बिक्री कर को मूल्यवर्धित कर में परिवर्तित करना चाहती है। कई राज्य सरकारें इस नई व्यवस्था के प्रति सशंकित है और वे बिक्री कर को ही बनाये रखना चाहती हैं।

7.केन्द्र सरकार द्वारा लागू कई केन्द्रीय प्रायोजित विकास कार्यक्रमों के कुल व्यय का एक निश्चित भाग राज्य सरकार द्वारा वहन करना पड़ता है। राज्यों की यह शिकायत है कि उनकी वित्तीय स्थिति पहले से ही खराब है और केन्द्रीय प्रायोजित कार्यक्रमों को लागू करने के कारण उन पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। उनकी यह मांग है कि केन्द्र द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए कुल व्यय केन्द्र सरकार द्वारा ही वहन किया जाना चाहिए।

8.राज्यों की यह भी शिकायत है कि कई बार केन्द्र सरकार की नीतियों के कारण उन्हें अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है। उदाहरण के लिए जब केन्द्र सरकार द्वारा वेतन आयोग की सिफारिश को स्वीकार किया जाता है तथा सरकारी स्टाफ के वेतनमान में संशोधित किया जाता है तो राज्यों पर भी यह दबाव पड़ता है कि वे अपने कर्मचारियों के वेतन में संशोधन करें। इसी तरह से जब केन्द्र सरकार द्वारा उनके कर्मचारियों के लिए अतिरिक्त महंगाई भत्ते की घोषणा की जाती है तो राज्यों को भी इसका अनुशरण करना पड़ता है। राज्यों की यह मांग है कि उपरोक्त के सम्बन्ध में केन्द्र सरकार के द्वारा राज्यों के साथ विचार विमर्श के बाद ही निर्णय लिया जाना चाहिए।

9.योजना के क्रियान्वयन के लिए राज्यों को जो केन्द्रीय सहायता प्राप्त होती है उसका 70 प्रतिशत भाग ऋण के रूप में 30 प्रतिशत भाग अनुदान के रूप में होता है। हर वर्ष केन्द्र से ऋण लेने के कारण राज्यों पर ब्याज अदायगी का दबाव बढ़ता जाता है जिससे उनकी वित्तीय स्थिति और भी खराब होती है। राज्यों की यह मांग है कि योजना के क्रियान्वयन के लिए जो केन्द्रीय सहायता उन्हें दी जाती है उसका अधिक से अधिक भाग अनुदान के रूप में दिया जाना चाहिए।

निष्कर्ष-उपरोक्त तनाव क्षेत्रों के बावजूद भारत में यह पाया गया है कि कालांतर में राज्य सरकार केन्द्र पर अधिक निर्भर होता जा रहा है। इस निर्भरता के निम्नलिखित दुष्परिणाम हैं -

1. केन्द्र सरकार इच्छानुसार विभिन्न राज्यों के साथ भिन्न-भिन्न बर्ताव कर सकता है।
2. राज्यों को बार-बार केन्द्र से सहायता मांगने में अपमान महसूस होता है।
3. केन्द्रीय सहायता की अनिश्चितता के कारण राज्य की बजट प्रक्रिया प्रभावित होती है।
4. राज्य सरकार मतदाताओं को वादे के अनुसार विकास कार्यक्रम लागू नहीं कर पाते।

5. राज्यों को बार-बार रिर्जव बैंक से ओवर ड्राफ्ट का सहारा लेना पड़ता है जिसकी सीमा निर्धारित है।

हाल के वर्षो में राज्य सरकार ने केन्द्र सरकार से निम्न मांग की है -

1. वित्त आयोग की संस्तुति के आधार पर अधिक संसाधन का हस्तांतरण किया जाना चाहिए।
2. राज्यों को पूंजी बाजार से एक सीमा तक संसाधन जुटाने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।
3. विकास से सम्बन्धित योजनायें तैयार करने की स्वतंत्रता राज्यों को दी जानी चाहिए तथा इन कार्यक्रमों का वित्त पोषण केन्द्र द्वारा किया जाना चाहिए। यदि केन्द्र द्वारा कोई विकास कार्यक्रम प्रायोजित किया जाता है तथा राज्यों में कोई क्रियान्वयन किया जाता है तो इसका शत प्रतिशत वित्त पोषण केन्द्र द्वारा किया जाना चाहिए।
4. केन्द्र सरकार को अपने कर्मचारी के वेतन महंगाई एवं भत्ते के सम्बन्ध में अपने निर्णय राज्यों के साथ विचार विमर्श करने के बाद ही लेना चाहिए।
5. वे केन्द्रीय लोक उपक्रम जो लाभांश देती है उनके लाभांश का एक हिस्सा राज्यों में भी बांटा जाना चाहिए।

11.4.2 केन्द्र सरकार का तर्क -

1. केन्द्र यह मानती है कि देश की एकता एवं अखण्डता के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्र सरकार वित्तीय रूप से मजबूत हो अन्यथा देश की अखण्डता को खतरा उत्पन्न हो सकता है।
2. यह कहना असत्य है कि राज्यों की दुर्बल वित्तीय स्थिति के लिए केन्द्र सरकार जिम्मेदार है। वास्तव में अपनी वित्तीय समस्या के लिए वे स्वयं ही जिम्मेदार हैं। राज्यों ने अपने स्तर पर अधिक से अधिक संसाधन जुटाने के लिए गम्भीर प्रयास नहीं किया है। उदाहरण के लिए राज्यों ने कृषि आय पर अभी तक आयकर नहीं लगाया है एवं कई राज्यों में व्यवसाय कर नहीं लगाया जाता है। इसी तरह से अधिकांश राज्यों में बिजली के उपभोग के लिए एवं सिंचाई सुविधा के लिए User Charges की वसूली नहीं की जाती।
3. राज्य सरकार के मुख्य राजस्व का स्रोत बिक्री कर है लेकिन बिक्री कर की वसूली में भी भ्रष्टाचार एवं चोरियाँ शामिल या व्याप्त हैं। इसी प्रकार से राज्य सरकारों ने अपने राजस्व को बढ़ाने के लिए गम्भीर प्रयास नहीं किया है। जैसे पर्यटन क्षेत्र का विकास किया जाये तो इससे राज्यों की आय बढ़ सकती है लेकिन बहुत कम राज्यों ने पर्यटन क्षेत्र का विकास

किया है। इसके अतिरिक्त राज्य सरकार में वित्तीय अनुशासन का अभाव पाया जाता है। सामान्यतः राज्य सरकारों का आकार बहुत बड़ा होता है एवं प्रशासनिक व्यय बहुत अधिक होता है। इन सभी कारणों से राज्य सरकार की वित्तीय स्थिति कमजोर होती है।

पश्चिम बंगाल सरकार का मसविदा (1978)

1. राज्य सरकार एवं केन्द्रसरकार की शक्तियों के बंटवारे का पुननिरीक्षण किया जाये,संशोधित किया जाये एवं यदि आवश्यक हो तो संविधान संशोधन के माध्यम से स्पष्ट रूप में परिभाषित किया जाये।
2. केन्द्र सरकार की शक्तियाँ केवल प्रतिरक्षा, विदेशी मामले, विदेशी व्यापार, संचार, मुद्रा एवं आर्थिक समन्वयन तक सीमित होना चाहिए। अन्य सभी शक्तियां राज्यों को स्थानांतरित कर देना चाहिए।
3. योजना आयोग एवं राष्ट्रीय विकास परिषद को संवैधानिक दर्जा दिया जाना चाहिए।
4. केन्द्र सरकार द्वारा वसूल किया गया कुल राजस्व का 75 प्रतिशत भाग स्वतः आधार पर राज्यों को हस्तांतरित किया जाना चाहिए।

सरकारिया आयोग का केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध के विषय में सुझाव

1. केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध के वर्तमान ढाँचे में किसी आमूल परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।
2. निगम कर को विभाजनशील कर में शामिल किया जाना चाहिए।
3. केन्द्र सरकार को आयकर पर अधिभार नहीं लगाना चाहिए क्योंकि इससे राज्यों को राजस्व हानि होती है।
4. योजना आयोग एवं वित्त आयोग के कार्य से सम्बन्धित वर्तमान व्यवस्था सही है एवं इसमें कोई परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।
5. राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्र सरकार वित्तीय रूप में मजबूत हो।

भारत में केन्द्र से राज्यों की ओर हस्तांतरण के तीन रास्ते हैं -

i. अनुच्छेद 280 में नियुक्त वित्त आयोग द्वारा किया जाने वाला संवैधानिक हस्तान्तरण तथा 275 के अन्तर्गत अनुदान
ii. योजना आयोग द्वारा योजनाओं के माध्यम से किया गया हस्तान्तरण (अनुच्छेद 282 के अन्तर्गत, 30 से 35 प्रतिशत हस्तांतरण)
iii. केन्द्र समर्थित स्कीम तथा स्वैच्छ हस्तांतरण

11.5 वित्त आयोग तथा वित्तीय हस्तान्तरण

संविधान के अनुच्छेद 280(1) में यह प्रावधान है कि राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक पाँच वर्ष के पश्चात या यदि आवश्यक हो तो पहले भी केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य वित्तीय सम्बन्धों की समीक्षा के लिए वित्त आयोग गठित किया जायेगा। 280(3) के अन्तर्गत वित्त आयोग निम्नांकित विषयों से सम्बन्धित संस्तुति राष्ट्रपति को देगा।

i. संविधान के अन्तर्गत केन्द्र तथा राज्यों के बीच वितरित किए जाने वाले या वितरित किये जा सकने वाले करों के निबल प्राप्ति के बंटवारे के सम्बन्ध में संस्तुति करना।
ii. भारतीय संचित निधि में से राज्यों को दिए जाने वाले सहायता अनुदान के सिद्धान्त को तय करना।
iii. वित्तीय सम्बन्धों के अन्य किसी मामलों में राष्ट्रपति को अपने सुझाव प्रस्तुत करना।

अब तक तेरह वित्त आयोगों की रिपोर्ट सरकार ने स्वीकार की है।

वित्त आयोग का नाम	**अध्यक्ष**	**रिपोर्ट प्रस्तुति का वर्ष**	**संस्तुति लागू होने की अवधि**
प्रथम वित्त आयोग	के.सी. नियोगी	1952	1952-57
द्वितीय वित्त आयोग	के. संथानम्	1957	1957-62
तृतीय वित्त आयोग	ए.के. चन्द्रा	1961	1962-66
चतुर्थ वित्त आयोग	पी.के. राजमन्नर	1965	1966-69
पंचम वित्त आयोग	महावीर त्यागी	1969	1969-74
छठाँ वित्त आयोग	के. ब्रह्मानन्द रेड्डी	1973	1974-79
सातवाँ वित्त आयोग	जे.एम. शेलट	1978	1979-84
आठवाँ वित्त आयोग	वाई.वी0. चाव्हाण	1984	1984-89
नवाँ वित्त आयोग	एन.के.पी. साल्वे	1988 1989	1989-90 1990-95
दसवाँ वित्त आयोग	के.सी. पन्त	1994	1995-00
ग्यारहवाँ वित्त आयोग	ए.एम. खुशरो	2000	2000-05
बारहवाँ वित्त आयोग	सी. रंगराजन	2004	2005-10
तेरहवाँ वित्त आयोग	विजय केलकर	2007	2010-15

वित्त आयोगों की सिफारिशों पर केन्द्र से राज्यों को अंतरण (करोड़ रूपये)

वित्त आयोग का नाम	**कर अंतरण**	**अनुदान**	**कुल**
प्रथम वित्त आयोग	371.30	50.00	421.30
द्वितीय वित्त आयोग	822.40	197.20	1,019.60
तृतीय वित्त आयोग	1,067.50	250.40	1,317.90
चतुर्थ वित्त आयोग	1,328.00	421.80	1,749.90
पंचम वित्त आयोग	4,643.00	710.70	5,353.80
छठाँ वित्त आयोग	8,250.60	2,509.60	10,760.20
सातवाँ वित्त आयोग	19,297.10	1,609.90	20,907.00
आठवाँ वित्त आयोग	35,683.00	3,769.00	39,452.00
नवाँ वित्त आयोग	11,785.64 87,882.00	1,876.78 18,154.43	13,662.42 1,06,036.43
दसवाँ वित्त आयोग	2,06,343.00	20,300.30	2,26,643.30
ग्यारहवाँ वित्त आयोग	3,76,318.01	58,587.39	4,34,905.40
बारहवाँ वित्त आयोग	6,43,112.02	1,12,639.60	7,55,751.62
तेरहवाँ वित्त आयोग	14,48,096.00	3,18,580.00	17,66,676.00

राज्यों के हिस्सा निर्धारण के सम्बन्ध में प्रयुक्त भार

कसौटी		**वित्त आयोग**	
	10वाँ	**11वाँ**	**12वाँ**
जनसंख्या	**20%**	**10%**	**25%**
आय की दूरी	**60%**	**62.5%**	**50%**
कर प्रयास	**10**	**5.0**	**7.5**
अवस्थापना	**5**	**7.5**	**.**
क्षेत्रफल	**5**	**7.5**	**10**
राजकोषीय अनुशासन	**.**	**7.5**	**7.5**

12वीं वित्त आयोग द्वारा प्रयुक्त प्रति व्यक्ति आय दूरी कसौटी जिसे प्रति व्यक्ति के आधार पर नापते हैं, 13वें आयोग के अनुसार वास्तव में विभिन्न राज्यों के बीच कर क्षमता में दूरी प्रदर्शित

करता है। वस्तुतः दोनों एक हैं। 13वें वित्त आयोग ने कर देय क्षमता अन्तर या राजकोषीय क्षमता अन्तर को कसौटी के रूप में लिया है।

13वें वित्त आयोग ने निम्नांकित कसौटी चुनी है

1.	राज्य जनसंख्या	25%
2.	राज्य क्षेत्रफल	10%
3.	राजकोषीय क्षमता दूरी	47.5%
4.	राजकोषीय अनुशासन	17.5%

दसवां वित्त आयोग तथा राजस्व प्राप्ति के बंटवारे की वैकल्पिक योजना

दसवें वित्त आयोग ने प्रस्तावित किया कि केन्द्र के कुल राजस्व का 29 प्रतिशत भाग राज्यों को दिया जाना चाहिए और इसके लिए यथोचित संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता है। 29 प्रतिशत करने का आधार है-

1. 1979-95 के बीच जो आयकर, उत्पाद शुल्क तथा रेलयात्री भाड़े कर के बदले अनुदान का भाग राज्यों को हस्तांतरित किया गया, कुल केन्द्रीय राजस्व प्राप्ति का करीब 24 प्रतिशत था।
2. अनुच्छेद 268 तथा 269 में संशोधन के परिणामस्वरूप कर वसूली क्षमता की वृद्धि को ध्यान में रखते हुए इसे 2 प्रतिशत और बढ़ाना युक्तिसंगत होगा (24+2=26)
3. 1979-95 के बीच अतिरिक्त उत्पादन शुल्क में राज्यों का हिस्सा केन्द्र की कुल राजस्व प्राप्ति का लगभग 3 प्रतिशत रहा (24+2+3=29)। अतः 29 प्रतिशत तक केन्द्रीय राजस्व प्राप्ति का राज्यों को हस्तान्तरण उचित है। केन्द्र सरकार ने वित्त आयोग की वैकल्पिक योजना को 1997 को स्वीकार कर लिया। आयोग ने यह माना कि वैकल्पिक योजना के लागू होने के बाद ऐसे करों की उत्प्लावकता के परिणामस्वरूप राज्य लाभान्वित होगें जो अब तक विभाजन योग्य नहीं थे। जैसे- निगम कर

11वें वित्त आयोग ने सिफारिश की कि 29.5% (28% + 1.5%) राज्यों के बीच आवंटित कर दिया जाय। पर आयोग ने यह भी संस्तुति की कि यदि कोई राज्य चीनी टेक्सटाइल तथा तम्बाकू पर बिक्री कर लगाता है तथा उसकी वसूली करता है तो उसे 1.5% में हिस्सा नहीं प्राप्त होगा। 11वें वित्त आयोग ने सुझाव दिया कि केन्द्रीय करों/शुल्कों, सहायता अनुदानों और योजना अनुदानों के

अन्तरण की कुल राशि की सांकेतिक सीमा, केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्त के 37.5 प्रतिशत पर निर्धारित होनी चाहिए। आयोग ने 35,359 करोड़ रूपये की सहायता अनुदान की सिफारिश की जो उन राज्यों को दिया जायेगा जहाँ केन्द्रीय कर राजस्व के अन्तरण के बाद भी योजनेत्तर राजस्व खाते में घाटा रह जाएगा।

12वें वित्त आयोग ने संस्तुति की कि केन्द्रीय करों की निबल प्राप्तियों में राज्यों का हिस्सा 30.5 प्रतिशत होगा। बिक्री कर के एवज में अतिरिक्त उत्पाद शुल्क को केन्द्रीय करों के सामान्य पूल के भाग के रूप में लिया जाए। ऐसे राज्य जो चीनी, वस्त्र एवं तम्बाकू पर बिक्री कर लगाये यह 30.5 प्रतिशत न होकर 29.5 प्रतिशत होगा। केन्द्र की सकल राजस्व प्राप्ति का अधिक से अधिक 38 प्रतिशत कुल हस्तान्तरण राज्यों को होगा।

आवंटनीय कर राजस्व पूल में सर्वाधिक हिस्सा पाने वाले राज्य क्रमशः हैं- उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा मध्य प्रदेश कुल हस्तान्तरण की दृष्टि से सर्वाधिक राशि पाने वाले राज्य हैं- उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश तथा मध्य प्रदेश समानीकरण अनुदान जिसको वित्त आयोग ने दो आधारभूत मेरिट वस्तुओं शिक्षा तथा स्वास्थ्य के सन्दर्भ में लिया है, मानक प्रत्यागम की दिशा में ठोस कदम है। यह धारणा आयोग ने आस्टेलियन फेडरेशन से लिया है। इससे ऐसे राज्य जो शिक्षा तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से राष्ट्रीय औसत से नीचे हैं, लाभान्वित होंगे। इससे पिछड़े राज्यों की ओर अन्तरण में वृद्धि आयी है। केन्द्र सरकार उन कमजोर राज्यों जो बाजार से निधियाँ उठाने में असमर्थ हैं, को छोड़कर राज्यों को भविष्य में उधार देने के लिए मध्यवर्ती के रूप में कार्य नहीं करेगी। राज्यों को विदेशी सहायता का अन्तरण उन्हीं शर्तों और निबन्धनों पर दिया जायेगा जो विदेशी एजेन्सियों द्वारा इसके लिए निर्धारित हैं। सभी राज्य ऋणों के परिशोधन के लिए ऋण शोधन निधियो की स्थापना करें। राज्यों के राजस्व घाटे कम करने से जुड़ी ऋण माफी योजना प्रारम्भ की जाये।

तेरहवें वित्त आयोग ने केन्द्रीय करों में से 32 प्रतिशत हस्तान्तरण की सिफारिश की है तथा केन्द्र सरकार के सकल राजस्व प्राप्ति से राज्यो को हस्तान्तरित किये जाने वाले राजस्व की ऊपरी सीमा को 39.5 प्रतिशत कर दिया गया। यह सोचा गया कि समानीकरण ग्रान्ट के अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य के अलावा कुछ और मद लिये जायेंगे जैसे अवस्थापना किन्तु 13वें वित्त आयोग ने ऐसा नहीं किया और उसे शिक्षा और स्वास्थ्य तक ही सीमित रखा। चक्रीय मध्यमकालीन राजकोषीय योजना 13वें वित्त आयोग की अपनी मौलिक उद्धावना है। सरकार मध्यमकालीन राजकोषीय योजना लाये जिसमें राजस्व तथा व्यय का आने वाले तीन वर्षों का अनुमान हो, जिसमें राजस्व तथा व्यय का आने वाले महत्वपूर्ण तथा बड़ी मदों का विस्तृत विवरण हो तथा इसका उल्लेख हो कि उनमें क्या-क्या चीजें आती हैं तथा उनके सम्बन्ध में दिया गया अनुमान किस प्रकार प्राप्त हुआ है। इसके बाद

सरकार हर अगले वर्ष में MTFP की समयावधि 1 वर्ष से बढ़ा सकती है तथा दूसरे वर्ष के लिए नये अनुमान दे सकती है। प्रथम वर्ष के अनुमान बजट अनुमान में परिवर्तित कर दिये जायेंगे। इस प्रकार सरकार भविष्य के लिए त्रिवर्षीय रोडमैप प्रस्तुत करेगी। इस प्रकार MTFP तथा वार्षिक बजट में समन्वय स्थापित रहेगा।

11.6 साधन अंतरण के अन्त स्रोत

वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र से राज्यों को साधन अंतरण के अलावा दो अन्य आधार हैं -

1. योजना आयोग की सिफारिशों पर योजना के लिए सहायता
2. केन्द्र से राज्यों को विवेकाधीन अनुदान

योजनाबद्ध सहायता बुनियादी तौर पर राज्यों को विभिनन परियोजनाओं को पूरा करने के लिए दी गई है। यद्यपि योजना आयोग के पास कोई सांवधिक अधिकार नहीं है जिसके अन्तर्गत वह केन्द्र से राज्यों को वित्तीय साधनों के अन्तरण की सिफारिश करे, लेकिन फिर भी वह वित्त आयोग की तरह कार्य करते हुए केन्द्र से राज्यों को साधन अंतरण के लिए निरन्तर सिफारिश करता रहा है। योजना आयोग की सिफारिशों के आधार पर, वित्त आयोग की तुलना में केन्द्र से राज्यों को साधनों का कहीं ज्यादा अंतरण हुआ है। आयोजन काल में केन्द्र से राज्यों को साधनों के अन्तरण में लगातार वृद्धि हुई है। राज्य सरकारों के कुल व्ययों में इन अन्तरणों का भाग प्रायः 35 से 45 प्रतिशत रहा है जो राज्यों की केन्द्र सरकार पर निर्भरता का द्योतक है।

आयोजन अनुदान किस आधार पर राज्यों के बीच बांटा जाय, इसके लिए चौथी पंचवर्षीय योजना में गाडगिल फार्मुला स्वीकार किया गया जिसके अनुसार-

1. 60 प्रतिशत राशि जनसंख्या के आधार पर
2. 10 प्रतिशत कर प्रयास के आधार पर
3. 10 प्रतिशत चलने वाली सिंचाई तथा पावर की परियोजनाओं के आधार पर
4. 10 प्रतिशत राज्यों की प्रति व्यक्ति आय के आधार पर जिसे उन राज्यों में वितरित किया जायेगा जिनकी प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से कम हो

5- 10 प्रतिशत राशि राज्यों में विशेष समस्याओं के आधार पर इस प्रकार हस्तान्तरण मुख्यतया पूंजीगत हस्तान्तरण होगा। इस फामूर्ले का प्रयोग चौथी तथा पाँचवी योजना में हुआ। 1980 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने एक परिवर्तित गाडगिल फार्मूला स्वीकार किया जिसके अनुसार उन राज्यों को जिनकी प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से कम है अन्तरण का हिस्सा 10 प्रतिशत से बढ़ा कर 20 प्रतिशत कर दिया गया। इसका प्रयोग राज्यों को छठी तथा सातवीं योजनाओं में तथा 1990-91 में योजना सहायता निर्धारित करने के लिए किया गया। 1990 में संशोधित फार्मूला स्वीकार किया गया। योजनाबद्ध सहायता का 55 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर, 25 प्रतिशत प्रति व्यक्ति आय के आधार पर, 5 प्रतिशत राजकोषीय प्रबन्धन के आधार पर तथा 15 प्रतिशत विशिष्ट विकास समस्याओं के आधार पर। इसका प्रयोग केवल 1991-92 में योजना सहायता के वितरण के लिए किया गया।

1991 में नया फार्मूला प्रणव मुखर्जी फार्मूला लागू किया गया जिसके अनुसार

1. 60 प्रतिशत 1991 की जनसंख्या के आधार पर
2. 25 प्रतिशत प्रतिव्यक्ति आय के आधार पर
3. 7.5 प्रतिशत कर प्रयासों तथा राजकोषीय प्रबन्धन के आधार पर
4. 7.5 प्रतिशत विशिष्ट समस्याओं के आधार पर आठवीं योजना में इसी आधार पर बंटवारा हुआ।

1996 में प्रणव मुखर्जी फार्मूला में संशोधिन किया गया

1. जनसंख्या के आधार पर 60 प्रतिशत
2. प्रति व्यक्ति आय आधार पर 20 प्रतिशत
3. कर प्रयास आधार पर 10 प्रतिशत
4. विशिष्ट समस्याओं के आधार पर 10 प्रतिशत यही फार्मूला वर्तमान में लागू है।

11.7 भारत में संघीय वित्त में सुधार हेतु सुझाव

विवेकाधीन अनुदानों से सम्बन्धित मनमाने ढंग से निर्णय लेने का केन्द्र का अधिकार समाप्त करना चाहिए जिससे केन्द्र के प्रति राज्यों का सन्देह कम हो सके।
कुछ राज्यों ने मांग की है कि वित्त आयोग पाँच वर्षों में एक बार गठित होने के बजाय स्थायी रूप से गठित होना चाहिए। हर पाँचवे साल गठित होने पर वित्त आयोग को हर बार नए सिरे से काम शुरू करना पड़ता है। आठवें और दसवें वित्त आयोग ने वित्त मंत्रालय के अधीन स्थायी वित्त आयोग विभाग बनाने का सुझाव दिया जिसके निम्नांकित कार्य हों-

- वित्त आयोग के सुझावों के कार्यान्वयन पर निगरानी रखना।

- राज्य सरकारों की प्राप्तियों और गैर-योजना व्यय पर नजर रखना।
- प्रशासन व्यवस्था में सुधार के लिए दिए गए अनुदानों के प्रयोग पर नजर रखना।
- राज्य वित्त पर अनुसंधान कराना तथा उनसे सम्बन्धित आंकड़ों को एकत्रित व प्रकाशित करना।
- पिछले वित्त आयोगों के रिकार्ड सम्भाल कर रखना और ऐसी जानकारी एकत्रित करना जो भविष्य के आयोगों के लिए उपयोगी हो।
- केन्द्र से राज्यों को साधन अन्तरण के लिए ऐसे मानदण्ड अपनाना जिससे पिछड़े राज्यों को ज्यादा साधन मिले।

11.8 सारांश

इस इकाई में हमने यह जाना कि भारत में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बनाया गया। केन्द्र सरकार को साधन के वे स्रोत दिये गये जिनकी लोचशीलता और प्रफुल्लता अधिक है जबकि राज्य सरकारों के कार्य ऐसे हैं कि जिनमें खर्च अधिक है। इस असंतुलन को दूर करने के लिए केन्द्र सरकार राज्यों को वित्त आयोग और योजना आयोग के माध्यम से अंतरण करती है। केन्द्र से राज्यों को कर-विभाजन के द्वारा साधन अन्तरण की व्यवस्था है इसके अलावा राज्यों के राजस्व और व्यय के बीच अन्तर को पूरा करने के लिए संविधान की धारा 275 और 282 के अन्तर्गत केन्द्र से राज्यों को सहायक अनुदान की व्यवस्था है। यदि कर विभाजन और सहायक अनुदान द्वारा भी राज्य सरकारें अपने व्यय और राजस्व के बीच अन्तर को पूरा नहीं कर पाती तो वे संविधान की धारा 293 के अन्तर्गत केन्द्र से ऋण ले सकती है। इन कारणों से राज्य सरकारों की केन्द्र सरकार पर निर्भरता अधिक है। अभी तक 12 वित्त आयोग काम कर चुके हैं इस समय तेरहवां वित्त आयोग की संस्तुतियों के आधार पर केन्द्र राज्य वित्तीय व्यवस्था चल रही है। दसवें वित्त आयोग ने राजस्व प्राप्ति के बंटवारे की वैकल्पिक योजना संस्तुति की थी जिसे केन्द्र सरकार ने स्वीकार कर ली और आगे के वित्त आयोग ने उसका ध्यान रखते हुए अंतरण किया है जिससे राज्यों के साधन उत्प्लावकता/प्रफुल्लता में वृद्धि हुई है क्योंकि राज्यों को ऐसे करों में भी हिस्सा मिल रहा है जो दसवें वित्त आयोग की सिफारिश से पहले विभाजन योग्य नहीं थे जैसे निगम कर। योजना आयोग के माध्यम से भी केन्द्र से राज्यों को साधन अन्तरण होता है, जो निरन्तर योजनाओं के साथ बढ़ता जा रहा है।

11.9 शब्दावली

- उत्पाद शुल्क- देश के अन्दर निर्मित वस्तुओं के उत्पादन बिन्दु पर ही लगाया गया कर उत्पाद शुल्क होता है।
- निगम कर- कम्पनियों के मुनाफे पर लगाया गया कर
- राजकोषीय अनुशासन- राजस्व की राशि को देखते हुए व्यय पर नियंत्रण
- योजना व्यय- वह सार्वजनिक व्यय जो विकास और निवेश के विभिन्न योजना प्रस्तावों के अनुसार किया जाता है।
- अधिभार- कर पर कर लगाना
- GDSP- Gross Domestic State Product सकल घरेलू राज्य उत्पाद
- ऋण शोधन- ऋण वापस करने का तरीका

11.10अभ्यास प्रश्न

11.10.1 सही उत्तर चुनो

1. भारत में किस प्रकार की व्यवस्था पाई जाती है?
   (क) संघीय वित्त व्यवस्था (ख) स्वतंत्र वित्त व्यवस्था
   (ग) स्थानीय वित्त व्यवस्था (घ) इनमें से कोई नहीं
2. वैधानिक हस्तांतरण में किन वित्तीय साधनों को सम्मिलित किया जाता है?
   (क) केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा (ख) राज्यों को दिये जाने वाले सहायतार्थ अनुदान
   (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. केन्द्र से राज्यों को वित्तीय साधनों का हस्तांतरण निम्नलिखित प्रकार का होता है?
   (क) वैधानिक हस्तान्तरण (ख) योजना हस्तान्तरण
   (ग) ऐच्छिक हस्तान्तरण (घ) उपर्युक्त सभी
4. योजना हस्तांतरण किसके द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं?
   (क) वित्त आयोग (ख) योजना आयोग
   (ग) उपर्युक्त दोनों (घ) इनमें से कोई नहीं
5. राज्यों के लिए राजस्व के मुख्य साधन क्या हैं?
   (क) राज्य सरकारों द्वारा लगाये गए कर एवं शुल्क (ख) केन्द्र सरकार द्वारा लगाये

गये करों में राज्यों का हिस्सा

(ग) केन्द्र से मिलने वाले अनुदान (घ) उपर्युक्त सभी

11.10.2 रिक्त स्थान भरो-

1.समानीकरण अनुदान वित्त आयोग ने दो मेरिट वस्तुओं .... और .... के सन्दर्भ में लिया है।

2.तेरहवें वित्त आयोग ने केन्द्र सरकार के सकल राजस्व प्राप्त से राज्यों को हस्तान्तरित किये जाने वाले राजस्व की ऊपरी सीमा .... प्रतिशत तय की है।

3.चक्रीय मध्यमकालीन राजकोषीय योजना .... वित्त आयोग की अपनी मौखिक उद्भावना है।

4.आयोजन अनुदान इस समय .... फार्मूला के आधार पर दिया जाता है।

5.वित्त आयोग के गठन का संविधान में प्रावधान अनुच्छेद .... के अन्तर्गत है।

सही उत्तर चुनो

1. क 2. क 3. घ 4. ख 5. घ

रिक्त स्थान भरो

1. शिक्षा, स्वास्थ्य 2. 39.5 3.तेरहवें 4. संशोधित प्रणव मुखर्जी 5. 280

11.11सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
2. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) लोक वित्त तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।
3. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।
4. मिश्र एस.के. एवं वी.के. पुरी (2008) भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस।

11.12सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- भारतीय अर्थव्यवस्था (2010) प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, आगरा
- Eleventh Five Year Plan (2007-2012), Planning Commission, Government of India, New Delhi.

- Report of Tenth Finance Commisison (1995) Government of India, New Delhi.
- Report of Eleventh Finance Commisison (2000) Government of India, New Delhi.
- Report of Twelfth Finance Commisison (2000) Government of India, New Delhi.

11.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्द्र राज्य वित्त सम्बन्धों के तनाव क्षेत्र की समीक्षा कीजिए?
2. भारत में केन्द्र से राज्यों की ओर हस्तान्तरण के क्या माध्यम हैं?

इकाई - 12 योजनाओं का वित्तीयन

इकाई संरचना

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 योजनाओं के वित्त के स्रोत
12.3.1 चालू राजस्व से अतिरेक अथवा चालू राजस्व का चालू व्यय पर अतिरेक
12.3.2 सरकारी उद्यमों का योगदान
12.3.3 गैर सरकारी देशीय बचत
12.3.4 अतिरिक्त साधन गतिमान
12.3.5 घाटे का वित्त प्रबन्धन/न्यून वित्त प्रबन्धन
12.3.6 विदेशी सहायता
12.3.7 नौवीं योजना का वित्त प्रबन्धन
12.3.8 दसवीं योजना वित्तीयन
12.3.9 ग्यारहवीं योजना का वित्त प्रबन्ध
12.3.9 ग्यारहवीं योजना का वित्त प्रबन्ध
12.4 योजना वित्त प्रबन्धन के विभिन्न स्रोतों के गुण एवं दोष
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्न
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

खण्ड 3 की आर्थिक नियोजन की इससे पहले की इकाईयों में हमने जानकारी पाई कि भारत में योजना का इतिहास क्या रहा, उसके प्रकार, नियोजन की प्रासंगिकता, योजना निर्माण प्रक्रिया, पहली से ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजनाओं तक की उपलब्धियां क्या रहीं। इकाई 11 में हमने केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों को समझा और जाना कि किस प्रकार केन्द्र सरकार असंतुलन को दूर करने के लिए वित्त आयोग की सिफारिशों और योजना आयोग से केन्द्र से राज्यों को अंतरण करती है और उसका आधार क्या हैं इस इकाई में हम यह जानने की कोशिश करेंगें कि योजनाओं के लिए विविध वित्तीय साधन कौन से उपलब्ध हैं और भारत सरकार ने योजनाकाल में किन साधनों का कब और कितनी मात्रा तक उपयोग किया। अन्त में आप जानेंगे कि विभिन्न वित्तीय स्रोतों के गुण एवं दोष क्या हैं । भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए विकास की काफी सम्भावनाएं रहती है, हमारे आयोजक आन्तरिक और वाह्य वित्तीय स्रोतों का इस्तेमाल कर विकासात्मक योजनागत व्यय करने की कोशिश करते हैं जिससे देश की अर्थव्यवस्था को धक्का दिया जा सके कि वह तेजी से विकास करे। किसी भी योजना की सफलता के लिए यह जरूरी है कि उसके लक्ष्यों और वित्तीय साधनों में तालमेल हो। सरकार को वित्तीय स्रोतों से उपलब्ध साधनों को ध्यान में रखते हुए ही योजना के लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। बिना तालमेल बिठाए लक्ष्य तय करने से सरकार को मुँह की खानी पड़ सकती है ।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- इस इकाई का उद्देश्य योजनाओं के लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक वित्त के स्रोतों को जानना।
- क्या ये वित्त के स्रोत पर्याप्त है विकास योजनाओं के लिए।
- हमारे आयोजक कहाँ तक सफल हुए है योजना के लिए वित्तीय प्रक्षेपण करने और उन्हें वास्तविकता में प्राप्त करने में।
- योजना वित्तीयन स्रोतों के गुण एवं दोष क्या है ।

12.3 योजनाओं के वित्त के स्रोत

देश में आर्थिक विकास के लिए ऊँचे लक्ष्यों के साथ उन तक पहुंचने के लिए सुदृढ़ वित्त व्यवस्था की आवश्यकता होती है। सरकार को उपलब्ध वित्त के साधन को तीन वर्गों में बांट सकते हैं -

1. देशी बजट के स्रोत
2. विदेशी सहायता
3. न्यून वित्त व्यवस्था (घाटे की वित्त व्यवस्था)

देशीय बजट के अन्तर्गत वे स्रोत आते हैं जो सरकार देश में ही एकत्र करती है।

12.3.1 चालू राजस्व से अतिरेक अथवा चालू राजस्व का चालू व्यय पर अतिरेक-

जब सरकार की चालू राजस्व प्राप्तियाँ चालू राजस्व व्यय से अधिक हो तो सरकार को चालू राजस्व में आधिक्य के रूप में वित्त साधन उपलब्ध होते हैं। यदि चालू प्राप्तियाँ उसके चालू व्यय से कम हो तो घाटा होगा और चालू राजस्व शेष ऋणात्मक होगा। सरकार की राजस्व प्राप्तियाँ कर और गैर-कर स्रोतों से होती है। कर के माध्यम से भारत की केन्द्र सरकार को 60 से 80 प्रतिशत प्राप्तियाँ उपलब्ध होती है। जैसे-जैसे देश में विकास प्रक्रिया गति पकड़ती है वैसे-वैसे लोक व्यय में बढ़ोत्तरी होती है यदि राजस्व प्राप्तियाँ उसी गति से नहीं बढ़ती जिस प्रकार से लोक व्यय बढ़ता है तो चालू खाते में घाटा आयेगा। पहली योजना में इस मद से 25 प्रतिशत की सीमा तक वित्तीय साधन जुटाए गए। परन्तु अगली तीन योजनाओं (दूसरी, तीसरी और चौथी) में इस मद से उपलब्धि ऋणात्मक रही। इससे यह जाहिर होता है कि सरकार व्यय को नियंत्रित नहीं कर पायी और चालू खाते में अतिरेक बनाये रखने के बजाय, सरकार शुद्ध घाटे का बजट बनाने लगी। चालू व्यय सीमित न कर पाने के प्रमुख कारण थे कीमतों की स्फीतिकारी वृद्धि परिणामतः महंगाई भत्ते और अन्य भुगतानों में वृद्धि। साथ ही साथ प्रतिरक्षा व्यय और ब्याज भुगतान में वृद्धि हुई। पाँचवी योजना में दिखाया गया अतिरेक वास्तविक अतिरेक नहीं था किन्तु वह प्रत्याशित अतिरेक था। छठीं योजना में चालू राजस्व से 14,480 करोड़ रूपये (14.9 प्रतिशत) प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया परन्तु इस स्रोत से केवल 1,890 करोड़ (1.7 प्रतिशत) प्राप्त हो सका। सातवीं और आठवीं योजना में इससे नकारात्मक अतिरेक मिला। इसकी वजह थी मंत्रालयों एवं विभागों में तेज वृद्धि एवं सरकारी कर्मचारियों की बेरोकटोक वृद्धि और उनके वेतन में काफी वृद्धि होना। नौंवी योजना में भी चालू राजस्व से प्राप्ति ऋणात्मक थी। केन्द्र की चालू राजस्व से प्राप्ति -1,56,790 करोड़ रूपये और राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशों की प्राप्ति -1,06,962 करोड़ रूपये रही अर्थात् कुल -2,63,752 करोड़ रूपये

(1996-97 की कीमतों पर) दसवीं योजना के लिए चालू राजस्व से अधिशेष केन्द्र -6,385 करोड़ रूपये अर्थात नकारात्मक होगा। राज्यों द्वारा चालू राजस्व में अधिशेष 26,578 करोड़ रूपये या कुल का 4.0 प्रतिशत प्राप्त होगा। यदि केन्द्र एवं राज्यों को जोड़ लें तो चालू राजस्व से अधिशेष 20,193 करोड़ रूपये या कुल का 1.3 प्रतिशत प्राप्त होगा किन्तु दसवीं योजना की प्राप्तियाँ चालू राजस्व अधिशेष से केन्द्र की -1,27,166 राज्यों का -31,723 और कुल -1,58,888 यानि नकारात्मक रहा। ग्यारहवीं योजना के प्रक्षेपण केन्द्र के लिए चालू राजस्व अधिशेष से 6,53,989, राज्यों से 3,85,050 और कुल 10,39,039 है।

12.3.2 सरकारी उद्यमों का योगदान-

इस मद से अधिक साधन नहीं प्राप्त हुए हैं किन्तु धीरे-धीरे सरकारी उद्यमों का योगदान बढ़ रहा है। सरकारी उद्यमों का योगदान योजना लक्ष्यों से हमेशा कम रहा है। कई सरकारी उद्यम घाटे पर चल रहे हैं और रेलवे, डाक एवं तार जैसे विभागीय उद्यमों का योगदान नाममात्र रहा है जो उद्यम सरकार को मुनाफा दे रहे हैं वे हैं रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया और अन्य बैंकिंग तथा वित्तीय संस्थान शामिल हैं और कुछ वाणिज्यिक उद्यम जैसे इण्डियन ऑयल कार्पोरेशन है। राज्यीय उद्यम पूरी योजनावधि में घाटे पर चल रहे हैं। जैसे- राज्य बिजली बोर्ड एवं राज्य परिवहन निगम और इनमें संचयी घाटे एकत्रित होते गए। पहली दूसरी योजना में 48 इकाईयाँ स्थापित हो चुकी थी और ये सब बड़ी एवं पूंजी प्रधान थीं। अतः पहली दो योजनाओं में इस स्रोत से धन प्राप्ति की आशा नहीं की गई। केवल रेलों से इस दौरान 382 करोड़ रूपये प्राप्त हुए। तीसरी योजना में रेलों से योगदान कम रहा। 1966-74 तक रेलों को 277 करोड़ रूपये का घाटा हुआ। इसमें लगातार घाटे का कारण है-

1.सड़क यातायात से उत्पन्न प्रतियोगिता की वजह से रेलों को आशा के अनुकूल टैफिक नहीं मिला।

2.कोयले की कीमतों में बढ़ोत्तरी और कर्मचारियों को अन्तरिम आर्थिक सहायता देने से रेलों का कार्य संचालन बढ़ गया। छठी योजना में थोड़ा सुधार हुआ और रेलों का घाटा कम होकर 274 करोड़ रूपये हो गया। रेलों के अलावा सार्वजनिक क्षेत्रों के अन्य उपक्रमों से पहली बार तीसरी पंचवर्षीय योजना के लिए पूंजी प्राप्त हुई। फिर भी सार्वजनिक उपक्रमों का आधिक्य आशा से कम रहा। पाँचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान भी सार्वजनिक उपक्रमों का आधिक्य थोड़ा ही था। योजना आयोग के अनुसार इसका कारण था इस्पात उर्वरक आदि उद्योगों की उत्पादन की दृष्टि से असफलता, मजदूरी, कच्चे माल और पूंजीगत उपकरणों की कीमतों में वृद्धि, श्रम विवाद, बिक्री में कमी के कारण तैयार माल के स्टाक में वृद्धि जिसके कारण सार्वजनिक उद्योगों से प्रत्याशित लाभ नहीं मिला। यू0 शंकर के मतानुसार सार्वजनिक उपक्रमों में लाभ की दर निम्न होने के कारण हैं -

(1) सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा उत्पादित माल के सन्दर्भ में सरकार की मूल्य नीति

(2) औद्योगिक क्षमता का पूरा उपयोग न हो पाना

(3) संगठनात्मक कार्यकुशलता का नीचा स्तर

पाँचवी पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक उपक्रमों के आधिक्य के रूप में केवल 6.3 प्रतिशत वित्तीय साधन उपलब्ध हुए जो छठी योजना में 5.2 प्रतिशत ही रहा। सातवीं पंचवर्षीय योजना में सार्वजनिक उपक्रमों की निष्पत्ति के बावजूद उनसे 35,485 करोड़ रूपये प्राप्त होने का लक्ष्य रखा गया किन्तु यह केवल 24,394 करोड़ रूपये रहा। आठवीं योजना में सार्वजनिक उपक्रमों का योगदान अच्छा रहा। इस स्रोत से आठवीं योजना के लिए 34.2 प्रतिशत वित्तीय साधनों की प्राप्ति हुई। नौंवी योजना में इस मद से 39.8 प्रतिशत वित्तीय साधनों की प्राप्ति हुई। केन्द्र से 2,28,795 यानि 56.3 प्रतिशत एवं राज्यों से 52,107 (17.4 प्रतिशत) दसवीं पंचवर्षीय योजना के प्रक्षेपण सार्वजनिक उपक्रमों से 5,98,240 (37.6 प्रतिशत) साधन जुटाये जा सकेंगें। केन्द्र के सन्दर्भ में यह राशि 5,15,556 करोड़ रूपये यानि 56.0 प्रतिशत और राज्यों से 82,684 करोड़ रूपये (12.3 प्रतिशत) साधन सार्वजनिक उपक्रमों से जुटाये जा सकेंगें। दसवीं योजना में सार्वजनिक उपक्रमों से प्राप्त कुल राशि 5,77,533 (34.9 प्रतिशत) रही। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के लिए यह 11,88,534 (32.6 प्रतिशत) प्रक्षेपित है।

12.3.3 गैर सरकारी देशीय बचत

विकास योजनाओं के लिए वित्तीय साधनों की व्यवस्था की दृष्टि से गैर सरकारी बचतों के दो अंगों बाजार ऋणों और छोटी बचतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पहली योजना में इससे कुल साधनों का एक तिहाई जुटाया जा सका किन्तु अगली दो योजनाओं में इसका महत्व थोड़ा कम हो गया और विदेशी सहायता तथा न्यून वित्त प्रबन्धन पर अधिक निर्भरता हो गई। चौथी योजना में इस स्रोत से कुल साधनों का 40 प्रतिशत प्राप्त किया जा सका। छठी योजना में सरकार 36,400 करोड़ रूपये के लक्ष्य के विपरीत 45,930 करोड़ रूपये इस मद से प्राप्त करने में सफल रही। सातवी और आठवीं योजना में योजना वित्त के इस स्रोत का महत्व बढ़ा क्योंकि सरकार को मजबूत बन्दी बाजार उपलब्ध है जो किसी भी हद तक की राशि राष्ट्रीयकृत बैंकों, सार्वजनिक क्षेत्र के वित्तीय संस्थानों, सार्वजनिक पूर्वोपायी कोष के रूप में किसी भी हद तक राशि की पूर्ति कर सकता है और राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय बढ़ने की वजह से जनता के सभी वर्गों में बचत करने की क्षमता और इच्छा दोनों बढ़ी हैं और सरकार विभिन्न माध्यमों से बचत की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। नौवीं योजना में उधार जिसमें शुद्ध विविध पूँजी प्राप्तियाँ शामिल है केन्द्र की वास्तविक प्राप्ति 4,55,624, राज्यों की 2,15,592 और कुल 6,71,216 करोड़ रूपये रहा। चालू राजस्व में गम्भीर घाटे के कारण सरकार

द्वारा बाजार उधार के रूप में 4,60,179 करोड़ के प्रक्षेपण के विरूद्ध 6,71,216 करोड़ रूपये का उधार लेना पड़ा जो कुल गतिमान किये गये संसाधनों का 95 प्रतिशत था। दसवीं योजनामें इस मद से कुल प्राप्तियाँ 12,22,161 करोड़ रूपये थीं। ग्यारहवीं योजना के प्रक्षेपण में 14,17,145 करोड़ प्राप्त होने का अनुमान है।

रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित वैधानिक तरलता अनुपात के अन्तर्गत सरकारी प्रतिभूतियों में निवेश और अन्य वित्तीय संस्थाओं के लिए इन प्रतिभूतियों में वैध रूप से आवश्यक निवेश भारत में सरकार द्वारा लिए जाने वाले ऋणों को प्रभावित करते हैं। इस विधि से साधन जुटाने का दोष है कि इन ऋणों का सेवाभार समय के साथ बढ़ता जाता है। फलस्वरूप बजट में भारी घाटे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अध्ययन बताते हैं कि बड़ी मात्रा में ऋण लिये जाने से राजकोषीय गड़बड़ी पैदा हो जाती है। सरकार बजट में उत्पन्न घाटे को पूरा करने के लिए रिजर्व बैंक से उधार लेती है। साथ ही साथ बाजार से भी ऋण लेती है जिसकी वजह से सरकार ऋण जाल की स्थिति में फंसती गई। सरकार को ऋण मुख्यतया व्यापारिक बैंकों, जीवन बीमा निगम और भविष्य निधि के माध्यम से प्राप्त होता है। इन संस्थाओं के वित्तीय साधनों में तीव्र वृद्धि हुई है। राजा जे. चिलैया के अनुसार वर्तमान राजकोषीय संकट का कारण चालू व्यय, चालू राजस्व से अधिक होने के साथ ऋण से किया जाने वाले पूँजीगत व्यय से पर्याप्त प्रतिफल नहीं मिला है अन्यथा प्रतिफल से ऋण सम्बन्धी दायित्वों की पूर्ति हो गई होती। दसवीं योजना में ऋण सकल बजट सहायता के 115 प्रतिशत थे अर्थात सकल बजट सहायता से भी अधिक।

अल्प विकसित देशों में लोगों की बचत करने की सामर्थ्य कम होती है क्योंकि उपयोग की सीमान्त प्रवृत्ति अधिक होती है। लोगों की जो अल्प बचतें होती हैं लोगों को उसे निवेश करने और सरकारी प्रतिभूति में लगा पाने की सामर्थ्य नहीं होती। सार्वजनिक वित्त संस्थाएं ही इन अल्प बचतों को लोगों से इकट्ठा कर विकास कार्यों के लिए सरकार को उपलब्ध कराती हैं।

12.3.4 अतिरिक्त साधन गतिमान

इसके अन्तर्गत मुख्यतया दो स्रोत हैं अतिरिक्त कराधान और सरकारी क्षेत्र के उद्यमों द्वारा उनकी कीमतें बढ़ाकर (वस्तुओं की प्रशासित कीमतें)। जबकि शहरी उपभोक्ताओं पर कर भार चरम सीमा तक पहुंच गया है किन्तु ग्रामीण क्षेत्र की आय पर अतिरिक्त कराधान की काफी गुंजाइश है। सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा उत्पन्न और बेची जाने वाली वस्तुओं जैसे पेट्रोल, कोयला, इस्पात आदि तथा सेवाओं की प्रशासित कीमतों को बढ़ाने का आसान तरीका अपनाया है।

विदेशी सहायता और न्यून वित्त व्यवस्था पर निर्भरता से गम्भीर दुष्परिणाम हो सकते हैं। इसलिए देशीय बजटीय स्रोतों पर निर्भरता बढ़ जाती है। देशीय बजटीय स्रोतों जैसे अतिरिक्त

कराधान, बाजार ऋणों और छोटी बचतों और सरकारी क्षेत्र के उद्यमों का विशेष महत्व है। देशीय बजटीय स्रोतों के प्रयोग बढ़ने से विदेशी सहायता और घाटे के वित्त प्रबन्धन पर निर्भरता कम हो जाती है।

12.3.5 घाटे का वित्त प्रबन्धन/न्यून वित्त प्रबन्धन

जब सार्वजनिक व्यय सार्वजनिक आय से अधिक होता है तो घाटा उत्पन्न होता है। सरकार इस घाटे को दो तरीके से पूरा कर सकती है - अपनी पहले से संचित धनराशि का प्रयोग करके या फिर केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर। सरकारों की प्रवृत्ति होती जा रही है कि वे केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर ही बजट सम्बन्धी घाटों को पूरा करती है। अल्प विकसित देशों में अक्सर ही घाटे के वित्त-प्रबन्धन द्वारा मुद्रा स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। योजनाओं को पूरा होने में समय लगता है और मुद्रा अल्पकाल में प्रचलन में आ जाती है जिससे विनियम के लिए नया माल जल्दी नहीं आ पाता है। पूर्ति की तुलना में मांग अधिक होती है जिससे मुद्रा स्फीति उत्पन्न हो जाती है और योजना के अनुमान अस्त व्यस्त हो जाते हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं में घाटे की वित्त प्रबन्ध पर काफी निर्भरता रही है। पहली पंचवर्षीय योजना के लिए 333 करोड़ रूपये का घाटे का वित्त प्रबन्धन किया गया। यह पहली योजना पर कुल व्यय का 17 प्रतिशत था। दूसरी पंचवर्षीय योजना में 954 करोड़ रूपये के वित्तीय साधन घाटे के वित्त प्रबन्धन से सृजित किये गये जो कुल साधन का 20.4 प्रतिशत था। तीसरी और चौथी योजना में मात्रा की दृष्टि से ज्यादा इस स्रोत से साधन जुटाए गए, 1,133 एवं 2,060 करोड़ रूपये किन्तु कुल साधन के प्रतिशत के रूप में यह कम रहा 13.2 प्रतिशत और 12.8 प्रतिशत यानि इस स्रोत के महत्व में कमी आई।

पाँचवीं योजना में 3,560 करोड़ रूपये घाटे का वित्त प्रबन्धन हुआ जो इस योजना में जुटाए गए साधनों का 8.8 प्रतिशत था। 1979-80 से यह बहुत बढ़ गया। छठी योजना में प्रक्षेपित 5,000 करोड़ रूपये की अपेक्षा 15,684 करोड़ रूपये घाटे का वित्त प्रबन्धन हुआ। सातवीं योजना में भी यह 14,000 करोड़ रूपये की अपेक्षा 34,669 करोड़ रूपये हुआ जो स्फीतिकारी सिद्ध हुआ। आठवीं पंचवर्षीय योजना में 1991-92 की कीमतों पर 20,000 करोड़ रूपये घाटे के वित्त प्रबन्धन का प्रावधान था जो 33,037 करोड़ रूपये रहा। यह कुल साधन का 9 प्रतिशत था।

12.3.6 विदेशी सहायता

आयोजन काल में 1989-90 तक भारत को अधिकृत विदेशी सहायता की राशि 83,729 करोड़ रूपये थी। अधिकृत विदेशी सहायता में 85 प्रतिशत ऋणों के रूप में 10 प्रतिशत अनुदान के

रूप में और 5 प्रतिशत पी0एल0 480/665 के रूप में थी। लगभग आधी विदेशी सहायता का इस्तेमाल औद्योगिक विकास के लिए हुआ। अन्य प्रमुख क्षेत्र जिन्हें विदेशी सहायता से लाभ हआ वे हैं रेल, बिजली परियोजनाएं और कृषि। विदेशी सहायता से 189 करोड़ रूपये पहली योजना के लिए मिला जो कुल व्यय का 9.5 प्रतिशत थी। दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास पर जोर था और इसके लिए पूँजीगत वस्तुओं और मशीनों का भारी मात्रा में आयात करना जरूरी था। इस वजह से इस योजना में विदेशी पूँजी पर निर्भरता बढ़ी। दूसरी योजना में 1,090 करोड़ रूपये की विदेशी सहायता मिली जो इस योजना पर होने वाले कुल व्यय की 24 प्रतिशत थी। तीसरी योजना में इस स्रोत से कुल वित्तीय साधनों का 28 प्रतिशत था। चौथी पंचवर्षीय योजना में आत्मनिर्भरता पर जोर रहा परिणामतः विदेशी सहायता पर निर्भरता में कमी हुई और इस योजना में कुल वित्तीय साधनों का 13 प्रतिशत इस स्रोत से जुटाया गया। पाँचवीं योजना में कुल वित्तीय सहायता की राशि 5,830 करोड़ थी जो कुल वित्तीय साधनों का 15 प्रतिशत था। विदेशी सहायता से छठी योजना में 8,530 करोड़ रूपये मिले जो कुल वित्तीय साधन का 8 प्रतिशत था। सातवीं योजना में इस स्रोत से 16,120 करोड़ रूपये जो कुल वित्तीय साधन का 9 प्रतिशत था। आठवीं योजना में यह 19,230 करोड़ रूपये था जो कुल वित्तीय साधन का 5 प्रतिशत था। नौवीं योजना में विदेशों से शुद्ध प्राप्ति 17,452 (2.5 प्रतिशत) थी। दसवीं योजना में विदेश से अंतर्प्रवाह 16,121 करोड़ रूपये था जो 1.0 प्रतिशत रहा। समय के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी ऋणों का भार बढ़ता चला गया है। कुल प्राप्त विदेशी सहायता का लगभग 50 प्रतिशत ऋण सेवा प्रभार के रूप में खर्च होता रहा है।

12.3.7 नौवीं योजना का वित्त प्रबन्धन

इस योजना में घाटे का वित्त प्रबन्धन जिसे मुद्रीकृत घाटे (डवदमजपेमक क्मपिबपज) के रूप में परिभाषित किया गया इसकी कोई व्यवस्था नहीं की गई जबकि आठवीं योजना में केन्द्र के संसाधनों का यह 6 प्रतिशत था। इस योजना का वित्तीयन ढांचा पहले की योजनाओं से अलग है क्योंकि इसमें न्यून वित्त प्रबन्ध/घाटे का वित्त प्रबन्ध के स्तर को शून्य रखा गया और चालू राजस्व से अतिरेक को नकारात्मक माना गया। राज्यों को मिलने वाली केन्द्रीय सहायता में वृद्धि के बावजूद उनसे यह आशा की गई कि वे बजटीय उपायों के द्वारा एवं राज्य के उद्यमों में सुधार के लिए जोरदार प्रयास किया जायेगा। इस योजना में यह आवश्यकता समझी गई कि गैर योजना व्यय और कर एवं गैर कर राजस्व की वृद्धि पर कड़ा अनुशासन लगाना होगा। कर सकल देशीय उत्पाद अनुपात (ज्ंग ळक्च् तंजपव) जो केन्द्र के लिए 1997-98 में 10.3 प्रतिशत था को बढ़ाकर योजना के अन्तिम वर्ष तक 11.5 प्रतिशत करना होगा। गैर योजना राजस्व व्यय में सकल देशी उत्पाद के अनुपात में 10.0 प्रतिशत से घटकर 9.5 प्रतिशत पहुंचना सम्भावित किया गया। इस योजना में सार्वजनिक उपक्रमों से 3,40,049 करोड़ रूपये प्राप्त होने की व्यवस्था की गई। अतः यह आवश्यक हो गया कि

सार्वजनिक उपक्रमों की उत्पादकता बढ़ाई जाए और लागत बढ़ने के साथ कीमतों में परिवर्तन किया जाए और पूँजी बाजार से संसाधन गतिमान किये जाय। केन्द्र के सार्वजनिक उपक्रमों के छः क्षेत्र जैसे पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस, टेलीसंचार, पावर, रेलवे, इस्पात और कोयला से कुल साधनों का 77 प्रतिशत अनुमानित किया गया।

राज्यों से भी आशा की गई कि वे राजकोषीय अनुशासन का पालन करेंगे और उसके लिए कर सुधार और कर ढांचे के युक्तिकरण पर बल हो साथ ही गैर कर राजस्व के रूप में बड़ी मात्रा में संसाधन जुटाएं। राज्य बिजली बोर्डों को पुनर्गठित करना, टैरिफ दरों में संशोधन और संचालन कुशलता को बढ़ाना। राज्य परिवहन निगमों को लाभकारी बनाने की कोशिश करना । जल दर प्रशासन को प्रभावी बनाने की जरूरत है।

इस योजना हेतु 1996-97 कीमत पर केन्द्र एवं राज्यों द्वारा 8,59,200 करोड़ रूपये के संसाधन गतिमान करने का लक्ष्य था किन्तु वास्तविक प्राप्ति 7,05,818 करोड़ रूपये थी, प्रक्षेपण का लगभग 82 प्रतिशत। अतः सार्वजनिक क्षेत्र की योजना में 18 प्रतिशत की कटौती करनी पड़ी। चालू राजस्व अधिशेष से कुल गतिमान किए गए साधनों के घाटे को -0.2 प्रतिशत तक सीमित रखने के लक्ष्य के विपरीत -37.4 प्रतिशत हो गया। इस वजह से नौवीं योजना के वित्त प्रबन्ध का समग्र ढाँचा अस्त व्यस्त हो गया। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों से भी 3,40,409 करोड़ रूपये के विपरीत वास्तविक प्राप्ति 2,89,902 करोड़ रूपये रही अर्थात 59,507 करोड़ रूपये कम। विदेशों से शुद्ध प्राप्ति भी लक्ष्य से कम रही यानि 60,018 करोड़ रूपये के अनुमान के विपरीत 17,452 करोड़ रूपये सरकार को 6,71, 216 करोड़ रूपये बाजार से उधार लेने पड़े जो कुल गतिमान किये गये संसाधनों का 95 प्रतिशत था। उधार पर अधिक निर्भरता से ब्याज दर का भार बढ़ता है जो राजकीय राजस्व सही दिशा में लगने नहीं देता।

12.3.8 दसवीं योजना वित्तीयन

इस योजना में चालू राजस्व से 1.3 प्रतिशत की प्राप्ति की आशा की गयी किन्तु इसमें 9.6 प्रतिशत का नकारात्मक अधिशेष होगा। सार्वजनिक उपक्रमों से 37.6 प्रतिशत साधन जुटाए जाने की अपेक्षा वास्तविक प्राप्ति 34.9 प्रतिशत हुई। विदेशों से शुद्ध अन्तर्प्रवाह से 1.7 प्रतिशत की अपेक्षा 0.8 प्रतिशत योगदान प्राप्त हुआ। बाजार उधार 73.9 प्रतिशत यानि 12,22,161 करोड़ रूपये रहा। बाजार उधार की भारी राशि से सरकार पर ब्याज के रूप में दायित्व का भार बढ़ता जा रहा है।

12.3.9 ग्यारहवीं योजना का वित्त प्रबन्ध

दसवीं योजनाकाल में सरकारी क्षेत्र की कुल प्राप्तियों के लिए 16,53,865 करोड़ रूपये (73.9 प्रतिशत) बाजार उधार से प्राप्त किये गए और 34.9 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों का योगदान रहा। चालू राजस्व से अधिशेष कुल योजना संसाधनों के 9.6 प्रतिशत तक नकारात्मक रहा इसके बावजूद ग्यारहवीं योजना में इस स्रोत से 10,39,039 करोड़ रूपये (28.5 प्रतिशत) मिलने की उम्मीद लगाई गई है। योजना आयोग में उल्लेखित है कि ''यह परिणाम राजकोषीय उत्तरदायित्व ढाँचे द्वारा कड़े राजकोषीय अनुशासन का परिणाम है जो कि केन्द्र एवं राज्यों पर लागू किया गया। यह आशावादी दृष्टि दसवीं योजना के अन्तिम तीन वर्षों के दौरान राजस्व संग्रहण में भारी वृद्धि अर्थव्यवस्था के मजबूत निष्पादन को प्रतिबिम्बित करती है।'' इस आशावादी दृष्टिकोण को और झटका लग सकता है छठे वेतन आयोग की सिफारिशों के प्रभाव और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पेट्रोलियम की कीमतों को बढ़ाने का दबाव के कारण। आयोजकों को योजना के आकार में या तो कटौती करनी पड़ सकती है या बाजार उधार का अधिक प्रयोग करना पड़ सकता है।

सार्वजनिक उपक्रमों के अतिरेक में निरन्तर वृद्धि हो रही है और ये योजना का एक-तिहाई वित्त उपलब्ध कराते हैं। इन उपक्रमों से प्राप्ति पर दो घटक प्रभाव डाल सकते हैं -

(1) तेल की अन्तर्राष्ट्रीय कीमतें

(2) पेट्रोलियम अर्थसाहाय्यों से सम्बन्धित केन्द्र सरकार की नीति

यदि इस योजनाकाल में सार्वजनिक उपक्रमों से प्राप्तियों में कमी आयेगी तो सरकार को योजना के वित्तीयन के लिए बाजार उधार पर अधिक निर्भर रहना पड़ेगा।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान भी सरकार ने आशावादी दृष्टिकोण अपनाया था किन्तु वित्तीय ढाँचा अस्त व्यस्त हो गया था। इसी तरह ग्यारहवीं योजना की वास्तविक प्रवृत्तियों की तस्वीर अनुमानों से भिन्न हो सकती है।

12.4योजना वित्त प्रबन्धन के विभिन्न स्रोतों के गुण एवं दोष

भारत में कराधान से प्राप्ति राशि को विकास के कार्यों में लगने से दो लाभ प्राप्त हो सकते हैं-

1. भारत जैसे देश में जहाँ उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति अधिक होती है और बचत की सीमान्त प्रवृत्ति कम, कराधान एक अच्छा माध्यम है बचत की दर बढ़ाने के लिए। यह कम आय वर्ग वाले लोगों को अनिवार्य बचत के लिए बाध्य कर सकता है और साथ ही साथ

प्रोत्साहन, कर अवकाश आदि के माध्यम से उच्च आय वर्गों में स्वैच्छिक बचत में सहायता दे सकता है।

2. ग्रामीण क्षेत्र में अतिरिक्त कराधान की काफी गुंजाइश है खासतौर से समृद्ध किसानों के सन्दर्भ में जिन्होंने कृषि क्षेत्र के लिए किए गये सरकारी प्रयासों का भरपूर लाभ उठाकर अधिक आय तो अर्जित की है किन्तु उन्हें कुछ अदा नहीं करना पड़ा है।

प्रत्यक्ष कर जैसे आयकर, धन कर, सम्पदा शुल्क और उपहार कर प्रगतिशील होते हैं क्योंकि ये उच्च आय वर्ग पर भारी बोझ डालते हैं किन्तु प्रत्यक्ष करों का उत्पादन और रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए सरकार ने उचित कर, राहतें एवं रियायतें दी हैं जिससे प्रत्यक्ष करों के प्रतिकूल प्रभाव को कम किया जा सके। हमारे आयोजकों ने प्रत्यक्ष करों के माध्यम से आय की असमानता को कम करने का प्रयास किया है। उच्च प्रत्यक्ष कर जनता की क्रय शक्ति कम करके वस्तुओं और सेवाओं की मांग को कम करते हैं। प्रत्यक्ष कर मुद्रा स्फीति को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। प्रत्यक्ष कर की दर अधिक होने पर कर वंचन की प्रवृत्ति बढ़ती है जिससे काले धन की मात्रा बढ़ती है।

अप्रत्यक्ष कर के माध्यम से निम्न आय वर्ग और गरीब व्यक्ति की विकास में योगदान देने के लिए मजबूर किये जा सकते हैं। भारत में कराधान से आर्थिक विकास के लिए वित्त उपलब्धता महत्वपूर्ण नहीं रहा है क्योंकि

1. सरकार बढ़ते हुए व्यय को रोकने में सफल नहीं हो पायी है।
2. कर राजस्व से प्राप्त राशि चालू व्यय की पूर्ति के लिए अपर्याप्त रही है।
3. सरकार को भारी राजस्व घाटे का सामना करना पड़ा है।

सार्वजनिक उपक्रमों के लाभ

सार्वजनिक उद्यमों के विस्तार के लिए शुद्ध लाभ का प्रयोग किया जा सकता है। कुछ उपक्रमों को छोड़ कई उपक्रम नुकसान में रहे और इन घाटों की पूर्ति सामान्य कर राजस्व से की गई। सार्वजनिक उपक्रमों के लाभ आर्थिक विकास के लिए वित्त प्रबन्ध के लिए अतिरेक उत्पन्न करें। राजकीय सार्वजनिक उपक्रमों की हालत तो और खराब रही है। जैसे- राज्य बिजली बोर्ड और राज्य परिवहन निगम सिर्फ 3.5 प्रतिशत आन्तरिक साधन जुटा पाए बाकी उन्हें विकास व्यय के लिए बजट पर ही निर्भर रहना पड़ा। योजनाओं के लिए वित्त उपलब्ध कराने की दृष्टि से सार्वजनिक उपक्रमों से बहुत आशा नहीं की जा सकती। सरकार या तो इन उद्यमों को अच्छे प्रबन्धन से इनकी सामर्थ्य में सुधार

कर लाभ कमाने के लिए प्रेरित करे या फिर नुकसान में जा रही कम्पनियों को निजी क्षेत्र को सौंपने के लिए तैयार होना पड़ेगा।

बाजार उधार और छोटी बचतें

बाजार उधार लोगों की इच्छा पर निर्भर करता है इसलिए लोगों द्वारा इसका विरोध नहीं किया जाता। भारतीय जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, राष्ट्रीयकृत वाणिज्य बैंक, भारतीय इकाई न्यास जैसी बंदी संस्थाएं सरकार को ऋण उपलब्ध कराते हैं। विकास कार्यों के लिए संस्थान काफी मात्रा में छोटी बचतों यानि डाकखाना बचत खातों, राष्ट्रीय बचत प्रमाण पत्रों आदि से उपलब्ध होते हैं। सार्वजनिक बचत के माध्यम से विकास के लिए संसाधन उपलब्ध कराना कुछ मायने में कराधान से बेहतर होता है बस इसमें सरकार को भविश्य में ब्याज और मूलधन देना पड़ता है।

विदेशी सहायता

भारत जैसे विकासशील देशों में आयात कम करने से आर्थिक संवृद्धि दर कम हो जाती है क्योंकि उच्च तकनीकों के इस्तेमाल के लिए काफी हद तक विदेशों पर निर्भर रहते हैं और इनके लिए अपने निर्यात के बाजार को विस्तृत करना चुनौतीपूर्ण एवं मुश्किल होता है। इसलिए आन्तरिक स्रोतों से प्राप्त पूँजी की कमी को पूरा करने के लिए विदेशी ऋण एवं अनुदान पर निर्भरता बढ़ जाती है। भारत श्रम प्रधान देश है क्योंकि यहाँ विशाल जनसंख्या निवास करती है किन्तु इनको जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को उपलब्ध कराने एवं इनके जीवन स्तर को सुधारने में आन्तरिक पूँजी का काफी हिस्सा इस्तेमाल हो जाता है इसलिए विकास आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पूँजी के अभाव को बाह्य स्रोतों से पूरा करना पड़ता है। अतः विदेशी ऋण एव अनुदान आर्थिक विकास के लिए वित्त प्रबन्धन का महत्वपूर्ण स्रोत है। किन्तु इसका दुष्प्रभाव है कि भविष्य में ब्याज एवं मूलधन चुकाने का दायित्व बना रहता है यदि इन ऋणों को उत्पादक कार्यों में लगाकर लाभ कमाया जा सके तब तो इनकी वापसी सरल हो जाती है किन्तु इस पूँजी का अनुकूलतम प्रयोग न कर पाने और भ्रष्टाचार के चलते ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है कि वार्षिक ब्याज चुकाने के लिए भी ऋण लेना पडे जिसे ऋण जाल की स्थिति कहते हैं। जिससे भारत को अपने आप को बचाने की जरूरत है। उधार देने वाले संस्था या देश भारत पर विभिन्न प्रकार के दबाव डाल सकते हैं जिसके चलते हमें ऐसी नीतियों का अनुसरण करना पड़ सकता है जिनका हमारे देश के सन्दर्भ में अधिक औचित्य न हो।

न्यून वित्त प्रबन्ध/घाटे की वित्त व्यवस्था

सभी स्रोतों से पर्याप्त वित्त उपलब्ध न हो पाने पर सरकार इसका सहारा लेती है। विकासशील देशों के लिए कम मात्रा में इसका प्रयोग लाभकारी हो सकता है और विकास प्रक्रिया को तेज कर सकता

है क्योंकि मुद्रा की मात्रा बढ़ने से लोगों की क्रयशक्ति बढ़ती है जो वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग को बढ़ा देती है जिससे मूल्य बढ़ते हैं साहसियों को लाभ होता है और वे और विनियोग करते हैं। किन्तु इससे सम्बन्धित दुष्प्रभाव है कि यदि इसे एक बार अपना लिया जाता है तो यह संचयी बन जाता है और यह साल दर साल बढ़ता जाता है। एक सीमा के बाद मुद्रा प्रसार बढ़ने से मुद्रास्फीति बढ़ती है। भारत में स्फीतीकारी दबाव घाटे की वित्त व्यवस्था का दुष्परिणाम है।

निष्कर्षत: सरकार को न्यून वित्त व्यवस्था एवं विदेशी सहायता पर कम निर्भर रहना चाहिए और अधिकतर देशीय बजटीय संसाधनों से योजनाओं का वित्तीयन करना चाहिए। आन्तरिक ऋणों से भी भावी पीढ़ियों के लिए ऋण का बोझ बढ़ता है और ब्याज तथा मूलधन वापस करने का उत्तरदायित्व रहता है। इसलिए अच्छा होगा कि सरकार अपने चालू खर्चें नियंत्रित कर ले और अतिरेक उत्पन्न करने की कोशिश करे। साथ ही सार्वजनिक उपक्रमों को कुशल प्रशासन से व्यवस्थित कर लाभ अर्जित करे जो योजनाओं के वित्त प्रबन्धन में काम आये।

12.5 सारांश

विकास की योजनाओं को पूरा करने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है और यह हमारे आयोजकों को विभिन्न स्रोतों से मिल सकते हैं। आन्तरिक या घरेलू साधनों की श्रेणी में उपलब्ध स्रोत है बजट आधिक्य, अतिरिक्त कराधान, सार्वजनिक उपक्रमों से आय, सार्वजनिक ऋण, छोटी बचत तथा घाटे की वित्त व्यवस्था। विदेशी स्रोत हैं- वित्त प्रदान करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं जैसे विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास बैंक आदि और विकसित देश। विभिन्न स्रोतों का किस प्रकार प्रयोग हमारे आयोजकों ने योजना काल में किया इस इकाई से हम जान चुके हैं। भारत को यदि दीर्घकालीन आर्थिक संवृद्धि और विकास को बनाये रखना है तो उसे अपने घरेलू संसाधनों को ध्यान में रखते हुए ही लक्ष्य निर्धारित करने चाहिए। यह तरीका अपनाने से शुरू में तो विकास की दर थोड़ी नीचे हो सकती है किन्तु प्रति व्यक्ति आय के स्तर में बढ़ोत्तरी से बड़े पैमाने पर पूँजी निर्माण हो सकेगा जिससे विकास प्रक्रिया को गति मिलेगी। विकास परियोजनाओं के लिए अधिक मात्रा में विदेशी ऋण पर निर्भर रहने से शुरू में विकास की दर तेजी के साथ बढ़ती है किन्तु इसका पूर्ण लाभ देश को नहीं मिल पाता क्योंकि विदेशी पूँजी पर ब्याज तथा दूसरे सेवा व्यय देने पड़ते हैं और भविष्य में ऋण को लौटाने का दायित्व भी रहता है जिससे देश के संसाधन बाहर की तरफ जाने लगते हैं। इस सबके बावजूद भारत को विकास योजनाओं को पूरा करने के लिए विकसित देशों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का मुँह ताकना पड़ता है क्योंकि हमारे आन्तरिक साधन पर्याप्त नहीं होते। देश में लोगों की प्रतिव्यक्ति आय कम होती है आर्थिक विषमताएं भारी मात्रा में व्याप्त है। इसकी वजह से कर देय क्षमता और स्वैच्छिक बचतें कम हैं। सम्पन्न वर्ग जिनकी करदेय क्षमता अधिक होती हैं

वे भी आर्थिक आधिक्य को विकास कार्यों में नहीं लगाते और वे पश्चिम देशों की नकल में प्रदर्शन प्रभाव के कारण फिजूल खर्ची करते हैं परिणामतः स्वैच्छिक बचत कम होती है । भारत में सार्वजनिक उपक्रमों से भी काफी घाटा सहना पड़ा है जिसको पूरा करने के लिए सरकार ऋण लेती गई और लाभ के अभाव में ब्याज एवं ऋण का बोझ बढ़ता गया। फलस्वरूप चालू राजस्व शेष भी कम होता गया। सभी प्रकार के वित्तीय स्रोतों की उपलब्धता और प्रभाव को देखते हुए उचित संसाधनों का प्रयोग करना चाहिए जिससे विकास दर दीर्घकाल तक प्रभावी रहे।

12.6 शब्दावली

न्यून वित्त व्यवस्था- सार्वजनिक व्यय सार्वजनिक आय से अधिक होने पर घाटा उत्पन्न होता है यदि इसे अन्य आन्तरिक स्रोतों से पूरा नहीं किया जा सकता तो सरकार केन्द्रीय बैंक से ऋण लेती है इससे अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा बढ़ती है ।

राजस्व प्राप्तियाँ- कर और गैर कर स्रोतों से सृजित आय।

सार्वजनिक उपक्रम- सरकारी उद्यम, जिनका प्रबन्धन स्वामित्व सरकार के पास होता है ।

वैधानिक तरलता अनुपात- बैंकिंग विनियमन की धारा 24 के अन्तर्गत सभी बैंकों को अनिवार्य होता है कि वे अपनी जमा राशि का कम से कम 25 प्रतिशत बराबर धन प्रतिभूतियों के रूप में रखें इससे बैंकों की साख देने की क्षमता को रिजर्व बैंक नियंत्रित करता है ।

प्रतिभूति- जब सरकार या कम्पनी जनता से ऋण लेती है तब ऋण के बदले जनता को दिए गये धन वापसी के प्रतिज्ञा पत्र को प्रतिभूति कहा जाता है । प्रतिभूति धारक को पूर्व निश्चित दर पर ब्याज मिलता है ।

सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति- अतिरिक्त आय में से उपभोग पर व्यय की प्रवृत्ति ।

सीमान्त बचत प्रवृत्ति- आय में परिवर्तन होने से बचत में परिवर्तन ।

योजना व्यय- वह सार्वजनिक व्यय जो विकास और निवेश के विभिन्न योजना प्रस्तावों के अनुसार किया जाय।

12.7 अभ्यास प्रश्न/उत्तर सहित

12.7.1 सही उत्तर चुनो-

1. भारत में हीनार्थ प्रबन्धन किस रूप में किया जाता है?

(क) सरकार द्वारा रिजर्व बैंक में जमा अपने नकद कोषों में से धन आहरण

(ख) रिजर्व बैंक से ऋण लेकर

(ग) नए नोट छापकर

(घ) उपर्युक्त सभी

2. मुद्रास्फीति में

(क) कुल आपूर्ति, कुल मांग से ज्यादा होती है।

(ख) कुल आपूर्ति, कुल मांग से कम होती है।

(ग) कुल आपूर्ति, कुल मांग के बराबर होती है।

(घ) उपर्युक्त में से कोई भी नहीं।

3. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का कुल परिव्यय कितना निर्धारित किया गया?

(क) 36,44,718 करोड़ रूपये

(ख) 15,92,000 करोड़ रूपये

(ग) 12,75,000 करोड़ रूपये

(घ) 9,45,000 करोड़ रूपये

4. भारत जैसे अल्पविकसित देशों में

(क) प्रति व्यक्ति आय कम होती है।

(ख) करदेय क्षमता कम होती है।

(ग) स्वैच्छिक बचत कम होती है।

(घ) उपर्युक्त सभी

5. भारत में

(क) उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति कम है।

(ख) उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति अधिक है।

(ग) बचत की सीमान्त प्रवृत्ति कम है।

(घ) ख और ग

12.7.2 रिक्त स्थान भरो-

1. दसवीं योजना में चालू राजस्व पर अधिशेष .... प्रतिशत .... है।
2. नौवीं योजना में घाटे की वित्त प्रबन्ध के स्तर को .... रखा गया।
3. समय के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था पर ऋणों का भार .... चला गया।
4. घाटे के वित्त प्रबन्धन द्वारा .... की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
5. बड़ी मात्रा में ऋण लेने से गड़बड़ी हो सकती है।

सही उत्तर चुनो-

(1) घ (2) ख (3) क (4) घ (5) घ

रिक्त स्थान भरो-

1. 9.6, नकारात्मक 2. शून्य 3. बढ़ता 4. मुद्रास्फीति

5. राजकोषीय

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।

2. लाल, एस.एन. एवं एस.के. लाल (2009) आर्थिक विकास आयोजन तथा पर्यावरण, शिव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद।

3. मिश्र, एस.के. एवं वी.के. पुरी (2008) भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाउस।

12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- भारतीय अर्थव्यवस्था (2010) प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, आगरा
- Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy, Academic Foundation.
- Tenth Five Year Plan (2002-07), Planning Commission, Government of Indian, New Delhi.
- planningcommission.nic.in/plans/planrel/11thf.htm

12.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में योजनाओं के वित्तीय स्रोतों की व्याख्या कीजिए।
2. भारत में योजनाओं के वित्तीय स्रोतों की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

इकाई - 13 भारत में कृषि की प्रकृति, महत्व, एवं नवीन व्यूह रचना

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 कृषि की प्रकृति
13.4 कृषि का महत्व
13.5 नवीन कृषि रणनीति
13.6 सारांश
13.7 शब्दावली
13.8 अभ्यास प्रश्न, उत्तर सहित
13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

पिछले दो दशकों से अधिक अवधि में औद्योगीकरण के संगठित प्रयास के बावजूद कृषि का अपना विशेष स्थान है क्योंकि खाद्य आपूर्ति किसी भी समाज और सरकार का प्रथम लक्ष्य होता है। माल्थस के अनुसार जनसंख्या में वृद्धि ज्यामिती माला 2,4,8,16,32 में होती है, जबकि खाद्यान्न में वृद्धि अंकगणितीय माला 1,2,3,4, में होती हैं। फलस्वरूप जनसंख्या नियंत्रण के साथ-साथ कृषि उत्पादन की नवीन तकनीकों को अपनाकर उत्पादकता तथा उत्पादन में वृद्धि नितान्त आवश्यक हो जाता है। कृषि देश की 59 प्रतिशत जनता को जीविका प्रदान करता है। अतः यह भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। एक समय था जब राष्ट्रीय आय में कृषि तथा सम्बद्ध उद्योगों का हिस्सा काफी अधिक था परन्तु विकास के साथ राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। खाद्य सामग्री के बढ़ते मूल्यों ने सरकार को चुनौती दी है कि कहीं न कहीं नियोजन में चूक हुई है जिसने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की, इसलिए यह जरूरी है कि उत्पादन तथा विपणन में साम्य बनाये रखे। इस इकाई में इन बातों को ध्यान में रखते हुए भारतीय कृषि की प्रकृति, उसके महत्व और नई रणनीति की चर्चा करेगें।

13.2 उद्देश्य:-

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- भारतीय कृषि की प्रकृति को जानना जैसे फसल मौसम, फसलों का वर्गीकरण, प्रमुख कृषि आगत।
- भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की भूमिका को रेखांकित करना।
- कृषि क्षेत्र में अपनायी गई रणनीति की विवेचना।

13.3 कृषि की प्रकृति:-

13.3.1 भारत में मुख्य रूप से तीन फसल मौसम हैं -

खरीफ, रबी, तथा जायद, पर मुख्य फसलें खरीफ तथा रबी हैं। खरीफ की फसल जुलाई में बोई जाती है और सितम्बर के अन्त तथा अक्टूबर में काटी जाती है। खरीफ की फसल के अन्तर्गत चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, तिल, गन्ना, सोयाबीन, मूँगफली की फसलें प्रमुख है। रबी

की फसल अक्टूबर में बोयी जाती है और अप्रैल में काटी जाती हैं। गेंहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों इत्यादि रबी की प्रमुख फसलें हैं। जायद फसल कुछ स्थानों पर होती हैं जिसकी अवधि मार्च से जून होती है। इसके अन्तर्गत खरबूज, तरबूज, ककड़ी एवं सब्जियां आती है।

13.3.2 फसलें दो भाग में बांटी जा सकती है: -

1. खाद्य फसलें जैसे गेंहूँ, चावल, चना, मटर आदि जो सामान्यतया स्थानीय उपभोग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए उगायी जाती है।
2. अखाद्य फसलें जो स्थानीय उपयोग तक सीमित नहीं रहती बल्कि बेच करके आय अर्जित करने के उद्देश्य से उगायी जाती हैं। ये फसलें कच्चे रूप में या अर्ध विधायित रूप में बेच दी जाती है। सरसों, तिल, अलसी, मूँगफली, रेड़ी, सूरजमुखी, गन्ना, जूट, सनई, चाय, रबड़ आदि व्यापारिक फसलों में शामिल हैं। फसल उगाये जाने वाले क्षेत्र के लगभग 18% भाग पर हो व्यापारिक फसलें उगायी जाती हैं पर इसे प्राप्त होने वाले उत्पादन का मूल्य कुल कृषि उत्पादन के मूल्य के 40% से अधिक है। व्यापारिक फसलों के दो रूप हो सकते हैं--

(क) बागान फसलें जो पौधों तथा वृक्षों के रूप में की जाती हैं जैसे- काफी, रबड़, चाय, नारियल आदि।

(ख) खेत की फसल जो खेतों में की जाती हैं जैसे- कपास, जूट, गन्ना, तिलहन, तम्बाकू, अफीम तथा कुछ मसाले।

वणिज्य फसलों और खाद्य फसलों में पारम्परिक भेद अब अपना महत्व खोता चला जा रहा है। खाद्यान्न फसलों की खेती भी अब नयी टकनालाजी के प्रभावधीर अधिक लाभदायक बन गई है।

फसल वितरण का स्वरूप (प्रतिशत में)

फसल	1950-51	1970-71	1980-81	2005-06
सभी फसलें	100	100	100	100
खाद्य फसलें	74	78	80	74
अखाद्य फसलें	26	22	20	26

खाद्यान्न के सम्बन्ध में, क्षेत्र में सबसे अधिक वृद्धि गेहूँ में रिकार्ड की गई (अर्थात 150 प्रतिशत) जबकि चावल के आधीन क्षेत्रफल में मर्यादित वृद्धि हुई (अर्थात 36 प्रतिशत), मोटे अनाजों में नाम मात्र की वृद्धि हुई। फसल प्रतिरूप छोटी फसलों की तुलना में मुख्य फसलों की और परिवर्तित हुआ है। पारम्परिक वाणिज्यिक फसलों अर्थात तिलहनों, रूई, पटसन, गन्ना, आदि के क्षेत्र में प्रभावशील

वृद्धि हुई जो कि खाद्य फसलों (केवल गेहूँ को छोड़कर) में वृद्धि से अधिक थी। इनमें से सबसे आश्चर्यजनक वृद्धि आलू के आधीन क्षेत्रफल में हुई अर्थात 1951 और 2004 के बीच 300 प्रतिशत। आर्थिक अभिप्रेरणाओं द्वारा फसलों के ढाचे को बदला जा सकता है।

13.3.3 प्रमुख कृषि आगत:-

1. **भूमि का उपयोग**- 1950-51 से 1994-95 की अवधि में बोई गई भूमि का क्षेत्रफल 1287.5 लाख हेक्टेअर से बढ़कर 1428.2 लाख हेक्टेअर हो गया।
2. **बीज-** विभिन्न फसलों के प्रमाणित बीजों के उत्पादन तथा वितरण को प्रोत्साहित करने के लिए भारत सरकार ने 1963 में राष्ट्रीय बीज निगम तथा 1969 में स्टेट फार्मर्स कारपोरेशन आफ इण्डिया की स्थापना की।

    (क) प्रजनक बीज- बीज उत्पादन में यह प्रथम चरण है और इसका उत्पादन इण्डियन कौसिल आफ एग्रीकलचरल रिसर्च (I C A R) तथा भारतीय कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा होता है।

    (ख) फाउण्डेशन बीज-इसका उत्पादन प्रजनक बीजों द्वारा किया जाता है। इस बीज का उत्पादन राष्ट्रीय बीज निगम, स्टेट फार्म कारपोरेशन आफ इण्डिया, कृषि विश्वविद्यालयों तथा उन राज्यों में जहाँ बीज निगम नहीं, वहाँ कृषि विभाग द्वारा किया जाता है।

    (ग) प्रमाणित बीज -ये फाउण्डेशन बीज के प्राजेनी होते है।

    (घ) क्वालिटी बीज-ये प्रमाणित बीज के स्टैण्डर्ड के होते है पर इनका उत्पादन फाउण्डेशन बीजों द्वारा नहीं किया जाता है।

    (ङ) जेनेंटिकली माडी फाइड बीज - कृषि पौधे के प्राकृतिक जीन में कृत्रिम उपायों द्वारा उसकी मूल संरचना में परिवर्तन करके ये बीज तैयार किये जाते हैं। विभिन्न लाभों के अलावा इन फसलों के साथ जोखिम तथा हानियाँ भी जुड़ी है, जिनका परीक्षण करके ही इनका इस्तेमाल करना चाहिए।

3.उर्वरक- भारत उर्वरकों के उत्पादन तथा खपत में चीन तथा यू0एस0ए0 के बाद विश्व का तीसरा देश है। भारत यूरिया के उत्पादन में अधिकांशतया 100 प्रतिशत तथा डी0ए0पी0 के उत्पादन में लगभग 90 प्रतिशत आत्मनिर्भर है। भारत में यूरिया सर्वाधिक उपयोग में आने वाला उर्वरक है, जिसके बाद नाइट्रोजन तथा डी0ए0पी0 आते हैं।

जैविक उर्वरक- ये पर्यावरण मैत्री होते हैं, जिसके प्रोत्साहन के लिए नेशनल बायो फर्टिलाइजर डेवलपमेन्ट सेन्टर खोला गया जिसे 2004 में नेशनल सेन्टर आफ आर्गेनिक फार्मिंग में परिवर्तित कर दिया गया।

4. सिंचाई - भारत में सिंचाई के स्रोतों में नहर, कुआँ तथा तालाब प्रमुख हैं। कुल सिंचित क्षेत्र का लगभग 35 प्रतिशत भाग नहर द्वारा सींचा जाता है । तालाबों द्वारा सिंचाई अधिकांशतया तमिलनाडू, आन्ध्र प्रदेश, बिहार तथा पश्चिमी बंगाल के कुछ भागों में की जाती है। 1978-79 के बाद से योजना आयोग ने परियोजनाओं को तीन भागों में बांटा है-

1.बड़ी सिंचाई परियोजनाएं - 10,000 हेक्टेयर से अधिक खेती योग्य क्षेत्रफल हो।

2.मध्यम सिंचाई योजनाएं - जिनके नियंत्रणाधीन 2,000 से 10,000 हेक्टेयर कृषि योग्य क्षेत्रफल हो।

3.छोटी सिंचाई योजनाएं - जिनके नियंत्रणाधीन 2,000 हेक्टेयर तक क्षेत्रफल हो।

कमाण्ड एरिया डेवलपमेन्ट कार्यक्रम केन्द्र द्वारा समर्थित 1974-75 में चालू किया गया। यह चुने हुए वृहद तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाओं की सिंचाई क्षमता का तीव्र तथा उत्तम प्रयोग करता है । इसके अन्तर्गत फार्म पर किये जाने वाले अनेक विकास कार्यक्रम आते हैं जैसे खेतों पर नहर तथा नालियों का निर्माण, जमीन की सतह बराबर करना, खेतों की सड़कें, जोतों की चकबन्दी, बाउण्ड्री का निर्माण, बाराबण्डी या पानी की आवर्ती पूर्ति की व्यवस्था।

कमाण्ड क्षेत्र विकास और जल प्रबन्धन कार्यक्रम अप्रैल 2004 से शुरू इस कार्यक्रम का उद्देश्य बेहतर जल प्रबन्धन पद्धतियाँ तैयार करना तथा सिंचाई जल का कुशलतम प्रयोग करना है। सुपुर्दगी प्रणालियों में सुधार के साथ निर्माण कार्य की लागत बांटने में जल उपयोगकर्ताओं की भागीदारी सुनिश्चित करना।

ड्रिप सिंचाई प्रणाली में पाइपों का नेटवर्क बिछा दिया जाता है और सिंचाई ऊपर से छिड़काव द्वारा होती है। इससे पानी की बचत के साथ-साथ प्रति हेक्टेयर अधिक उपज प्राप्त होती है।

फर्टीगेशन फसलों को दिये जाने वाले पोषक तत्व सिंचाई के माध्यम से दिए जाते हैं। इससे उर्वरक की 25 प्रतिशत की होती है और पोषक तत्वों का पूर्ण उपयोग होता है।

प्लास्टिक मल्विंग विधि में दो पौधों के बीच की जमीन को काली प्लास्टिक या पॉलीथीन से ढक दिया जाता है ताकि पोषक तत्वों को संरक्षित किया जा सके।

5.कृषि का यन्त्रीकरण - जहाँ भी सम्भव हो पशु तथा मानव शक्ति को मशीनरी द्वारा प्रतिस्थापित किया जाय। इससे बंजर भूमि को भी काश्त योग्य बनाया जा सकता है। कृषि विकास की प्रक्रिया यन्त्रीकरण के माध्यम से तेज की जा सकती है।

13.4 कृषि का महत्व

कृषि आर्थिक विकास का आधार है। औद्योगिक विकास के लिए कृषि क्षेत्र का विकसित होना एक आवश्यक शर्त है। विकासशील देशों में आज भी जहाँ कृषि का प्रभुत्व है, कृषि वहाँ के आर्थिक विकास में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृषि क्षेत्र में कोई भी परिवर्तन सकारात्मक या नकारात्मक अर्थव्यवस्था पर गुणक प्रभाव डालता है। कृषि क्षेत्र खाद्य सुरक्षा बनाए रखने में मुख्य योगदान करता है। परिस्थितिकीय सन्तुलन को बनाये रखने के लिए, कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों का पोषणीय एवं सन्तुलन विकास आवश्यक है। दुर्भाग्यवश हमारी अधिकतर पंचवर्षीय योजनाएं कृषि के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रहीं हैं। कृषि को सापेक्षतः कम महत्व दिया गया है और उद्योगों एवं सेवाओं को अधिक प्राथमिकता दी गई। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के लिए यह चिन्ता का विषय है। कृषि में प्रति व्यक्ति उत्पादकता उद्योगों की तुलना में कम है। कृषि आर्थिक विकास में छः प्रकार से योगदान कर सकता है -

(क) खाद्यान्न तथा कच्चा माल पैदा करके

(ख) औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उत्पादित उपभोग तथा पूंजीगत वस्तुओं के विक्रय के लिए बाजार पैदा करके

(ग) औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम उपलब्ध कराके

(घ) विदेशी मुद्रा अर्जित करके

(ड़.) बढ़ते हुए बेरोजगारों के लिए शरणार्थी गृह के रूप में कार्य करके।

13.4.1 खाद्यान्न तथा कच्चा माल द्वारा योगदान-

किसानों द्वारा उत्पादित खाद्यान्न, माँस, दूध आदि उनके अपने भरण पोषण तथा पूरे देश की जनसंख्या के भरण पोषण का आधार है। पशुओं को जीवित रखने का चारा भी कृषि से प्राप्त होता है। शहरी जनसंख्या भी कृषि क्षेत्र के अतिरेक पर निर्भर है। उपभोक्ताओं की उपभोग टोकरी कितनी पोषक है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि कृषि क्षेत्र विभिन्न पोषक तत्वों युक्त खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उत्पादित करे और उचित विपणन व्यवस्था द्वारा वह लोगों को उचित मूल्यों पर उपलब्ध हो। कृषि से हमारे प्रमुख उद्योगों को कच्चा माल मिलता है। कपड़ा, चीनी, जूट, चाय, वनस्पति, तेल, बागान उद्योग तथा अनेक प्रकार के प्रक्रियन उद्योग सीधे कृषि से प्राप्त कच्चे माल पर आधारित है। हथकरघा बुनाई, तेल निकालना, चावल कूटना आदि बहुत से लघु और कुटीर उद्योगों को भी कृषि से कच्चा माल मिलता है। बड़े उद्योगों के बहुत उप-उद्योग हैं जैसे चीनी उद्योग पर

आधारित कछ रसायन उद्योग जो अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आधारित हैं। विभिन्न विकसित देशों के इतिहास पर दृष्टि डाले तो पायेंगे कि वहाँ कृषि की प्रगति ने औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया। भारत में भी आर्थिक विकास की गति को तीव्र करने के लिए एक बार पुनः कृषि पर विशेष बल दिया जा रहा है तथा पंचवर्षीय योजनाओं में इसकी प्राथमिकता में प्रखरता लायी जा रही है। वर्तमान में खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों का विकास महत्वपूर्ण रूप धारण कर रहा है, जिसके कारण आय जनन और रोजगार जनन में वृद्धि हो रही है।

13.4.2 औद्योगीकरण का कृषि में योगदान

औद्योगीकरण से लोगों को रोजगार मिलता है फलतः आय बढ़ने से भोजन की मांग बढ़ती है और खाद्य सामग्री के उत्पादन में उत्साहवर्धक वृद्धि होती है। कृषि में अनेक प्रकार के विस्तार होते हैं तथा कृषक खाद्य फसलों का उत्पादन ही न करके नकदी फसलों का उत्पादन भी प्रारम्भ कर देते हैं। औद्योगिक क्षेत्र कृषि क्षेत्र को अनेक उपभोग वस्तुएं उपलब्ध कराता है तथा ग्रामीण क्षेत्र का जीवन स्तर ऊँचा उठता है जिससे उनकी उत्पादन क्षमता में और भी वृद्धि होती है। औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार से कृषि क्षेत्र के समस्त उत्पादों की मांग बढ़ जाती है। औद्योगिक क्षेत्र कृषि क्षेत्र को पूंजीगत वस्तुएं भी प्रदान करता है जैसे टैक्टर, ट्यूबवेल मशीन, कम्बाइन मशीन आदि याँत्रिक उपकरण जो उत्पादन तथा उत्पादकता बढ़ाने में सहायक है और लम्बे समय तक काम आते हैं।

13.4.3 कृषि एवं रोजगार का ढाँचा

भारतीय कार्यकारी जन संख्या का बहुत बड़ा भाग 2001 जनगणना के अनुसार 59 प्रतिशत रोजगार के लिए कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। 1951-2001 के दौरान कृषि श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि हुई है और यह 20 प्रतिशत से बढ़कर 27 प्रतिशत हो गया है। जबकि कृषकों की मात्रा 50 प्रतिशत से कम होकर 32 प्रतिशत हो गई। यह चिन्ता का विषय है और इन श्रमिकों को गैर कृषि रोजगारों में लगाना होगा। इसके लिए ग्रामीण क्षेत्र में ही गैर कृषि उद्योगों का विस्तार करना होगा, जिससे माइग्रेशन की समस्या से निपटा जा सके। हालाँकि औद्योगिक क्षेत्र की ऊँची मजदूरी से आकर्षित होकर जो श्रमिक कृषि छोड़कर शहरों में जाते हैं उनकी आय पहले से बढ़ जाती है परन्तु साथ ही साथ जीवन की लागत भी शहरों में बढ़ जाती है। दोनों ही तरीकों से कृषि भूमि पर श्रमशक्ति का दबाव कम होता है जिससे अदृश्य बेरोजगारी को कम करने में सहायता मिलती है।

2005-06 में जबकि कृषि में श्रम शक्ति का 57 प्रतिशत रोजगार प्राप्त करता है। यह सकल देशीय उत्पाद में केवल 27 प्रतिशत योगदान देती है। अर्थात कृषि में काम करने वाले श्रमिकों का प्रति व्यक्ति जी0डी0पी0 गैर कृषि व्यवसायों में काम करने वाले श्रमिकों की तुलना में केवल पाँचवा भाग

है और इसमें लगातार गिरावट आ रही है। कृषि और गैर कृषि व्यवसायों में काम करने वाले श्रमिकों की औसत आय में अन्तर बढ़ता जाता है।

13.4.4 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और कृषि

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भारतीय कृषि क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत प्राथमिक वस्तुओं जिनमें मुख्य कृषि वस्तुएं जैसे चाय तम्बाकू, तेल निकालने के बीज, गर्म मसाले आदि का बड़ा निर्यातक है। स्थूल रूप में कुल निर्यात में कृषि वस्तुओं का अनुपात 1950-51 में लगभग 50 प्रतिशत था और इनमें कृषि से बनी वस्तुएं भी शामिल थीं। हालाँकि पिछले दो दशकों के दौरान निर्यात के विविधिकरण के कारण कृषि का भाग निर्यात में कम हो गया है। दसवीं योजना के अनुसार कृषि हमारे निर्यात में अब 15 प्रतिशत योगदान देती है। कुल निर्यात में कृषि निर्यात का प्रतिशत 2003-04 में 12.4, 2005-06 में 10.2 तथा 2008-09 में 10.2 प्रतिशत रहा।

13.4.5 कृषि क्षेत्र एवं खाद्य सुरक्षा

कृषि क्षेत्र से जुड़ा एक महत्वपूर्ण मुद्दा है खाद्य सुरक्षा जिसे खाद्य एवं कृषि संस्था (FAO) ने परिभाषित किया कि ''सभी व्यक्तियों को सभी समय पर उनके लिए आवश्यक बुनियादी भोजन के लिए भौतिक एवं आर्थिक दोनों रूप में उपलब्धि के आश्वासन के रूप में की है।'' इस परिभाषा से कुछ बातें उभर कर आती हैं, किसी देश की समग्र जनसंख्या को खाद्य की भौतिक उपलब्धिआवश्यक है। पर्याप्त खाद्य उपलब्धता के लिए पर्याप्त क्रय शक्ति होना चाहिए जिससे खाद्य पदार्थ हासिल कर सकें। स्वस्थ जीवन के लिए उपलब्ध खाद्य, गुणवत्ता और मात्रा दोनों दृष्टिकोण से पोषण सम्बन्धी आवश्यकता को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। खाद्य सुरक्षा के लक्ष्य को मजबूत करने के लिए खाद्य उत्पादन में स्वावलम्बिता दीर्घकालीन होनी चाहिए। किसी भी राष्ट्र को खाद्य संभरण की इतनी वृद्धि दर आश्वस्त करनी होगी जिससे न केवल जनसंख्या की वृद्धि का ध्यान रखा जा सके अपितु साथ-साथ लोगों की आय में वृद्धि के परिणामस्वरूप खाद्य की मांग में वृद्धि की भी पूर्ति की जा सके।

13.5 नवीन व्यूह रचना

कृषि क्षेत्र के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में विभिन्न कार्यक्रमों जैसे- सामुदायिक विकास प्रोग्राम और कृषि विस्तार सेवाओं को देश भर में प्रसारित करना, सिंचाई सुविधाओं, उर्वरकों, कीटनाशकों, कृषि-मशीनरी, अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों का विस्तार। साथ ही साथ परिवहन, पावर, विपणन और संस्थानात्मक उधार को भी विस्तृत किया गया।

भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम करने के लिए योजना आयोग ने ग्राम विकास की रणनीति अपनायी। फलस्वरूप ग्राम क्षेत्रों में कृषि आधारित उद्योग और हस्तशिल्प स्थापित किए गए। गाँवों में समानता और न्याय के दृष्टिकोण से भू-सुधारों को अपनाया गया, जिसके अन्तर्गत जमींदारों जैसे बिचौलियों को समाप्त किया गया, काश्तकारों की सुरक्षा के लिए काश्तकारी कानून बनाया गया और जोत की अधिकतम सीमा को लागू करने के उपरान्त प्राप्त अतिरिक्त भूमि भूमिहीन श्रमिकों, छोटे तथा सीमान्त किसानों में बांटी गयी। हालाँकि कुछ कमियों के कारण यह पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सके।

पारम्परिक कृषि अधिकतर देशीय आदानों पर निर्भर करती है जैसे कार्बनिक खादों, साधारण हलों एवं अन्य आदि कालीन कृषि औजारों बेतों आदि। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण खाद्य मांग वृद्धि और पारम्परिक तरीके से खेती द्वारा उत्पादित पूर्ति असन्तुलन पैदा करती है। खाद्य स्वावलम्बिता के लिए तीसरी पंचवर्षीय योजना के शुरू से चौथी योजना के बीच आठ वर्ष (1961-69) भारतीय कृषि के इतिहास में महत्वपूर्ण वर्ष रहे जिसमें पारम्परिक कृषि व्यवहारों का प्रतिस्थापन आधुनिक टेक्नोलॉजी एवं फार्म व्यवहारों से किया गया। फलतः भारत में कृषि क्रान्ति प्रारम्भ हुई। इस नयी कृषि रणनीति का प्रयोग पाइलट प्रोजेक्ट के रूप में सात जिलों में प्रयोग किया गया तथा इसे गहन कृषि जिला कार्यक्रम की संज्ञा दी गयी। इससे लाभकारी चक्र गतिशील हो सकेगा। आधुनिक टेक्नोलॉजी के प्रयोग को लागू किया गया जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, बीजों की उन्नत किस्मों (संकर बीज भी) कृषि मशीनरी, विस्तृत सिंचाई, डीजल और विद्युत शक्ति आदि का प्रयोग शामिल है। फार्म यंत्रीकरण और सिंचाई के महान प्रोग्रामों के कारण ग्राम-क्षेत्रों में बिजली और डीजल के उपभोग में वृद्धि हुई है। इस तकनीकी के प्रयोग से कुल उत्पादन और उत्पादिता एवं रोजगार में वृद्धि हुई और कृषि एवं उद्योग के परस्पर सम्बन्धों अग्रगामी एवं प्रतिगामी सम्बन्ध मजबूत हुए हैं।

इस रणनीति को हरितक्रान्ति नाम देने का श्रेय विलियम गैड को जाता है पर इसके जन्मदाता बोरलॉग ही हैं। भारत में नयी कृषि रणनीति 1966 में खरीफ फसल से प्रारम्भ हुई अर्थात चावल तथा मक्का से इसकी शुरूआत हुई। (HYVP High Yielding Variety Seeds) मुख्य रूप से 5 फसलों- गेहूँ, धान, ज्वार, बाजरा तथा मक्का तक सीमित था, पर अधिक प्रभाव गेहूँ के उत्पादन पर देखा गया। 1960-61 से 1997-98 अवधि में गेहूँ का उत्पादन 11 मिलीयन टन से बढ़ कर 66 मिलियन हो गया। तिलहन, कपास तथा जूट के सम्बन्ध में इसका प्रभाव कम देखा गया।

तालिका 2- खाद्यान्नों के उत्पादन की प्रगति (लाख टन)

	1990-71	1990-91	2007-08
चावल	350	750	960
गेहूँ	110	550	780
मोटे अनाज	230	320	410
1. कुल अनाज	690	1620	2160
2. कुल दालें	130	140	150
3. कुल खाद्यान्न (1+2)	820	176	2310

स्रोत-आर्थिक समीक्षा 2007-08,Agricultural Statistics at a Glance, 2008.

इस नीति के द्वारा अल्पकाल में अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता से खाद्य आयात पर निर्भरता कम हो जाती है, फलतः दुलर्भ विदेशी मुद्रा की बचत होती है, जिसका उपयोग अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के लिए किया जा सकता है।

13.5.1 नयी कृषि रणनीति की कमजोरियाँ

1. **पूँजीवादी खेती का विकास-** अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों से अधिक उत्पादन पाने के लिए उर्वरकों और सिंचाई पर भारी निवेश करना पड़ता है, जो छोटे और मध्यम श्रेणी के कृषकों की क्षमता के बाहर है। 6 प्रतिशत बड़े कृषकों के पास कुल भूमि का 40 प्रतिशत है और वे ही नयी कृषि नीति पर भारी निवेश करते हैं। बड़े फार्मो पर प्रति एकड़ अधिक पूँजी व्यय किया जाता है।
2. **नयी कृषि रणनीति-** कृषि में संस्थानात्मक सुधारों की आवश्यकता को नहीं स्वीकारती। उर्वरक प्रयोग के विस्तार में काश्तकारी खेती बड़ी बाधा है। पूँजीवादिता का महत्वपूर्ण आधार है अधिकतम लाभ कमाना। इससे यह स्पष्ट है कि काश्तकारों की अपेक्षा भू-स्वामी पूँजी सघन तकनीकी का उच्चतम प्रयोग कर सकेंगें। अतः यह आवश्यक है कि भारतीय कृषि में भू-सुधारों को सुदृढ़ किया जाय।
3. **आय असामनता बढ़ना-** यद्यपि नई तकनीकी का लाभ सभी किसानों को मिला है परन्तु विभिन्न क्षेत्रों, छोटे और बड़े फार्मों और भूस्वामियों के बीच आय की असमानताएं बढ़ी हैं, भूमिहीन मजदूरों और मुजारों में खाई और चौड़ी हो गयी है। बहुत से छोटे किसानों को

अपने काश्तकारी अधिकार छोड़ने पड़े हैं और ग्राम क्षेत्रों में सामाजिक एवं आर्थिक तनाव बढ़े हैं । डॉ0 डी0पी0 चौधरी ने हरित क्रान्ति के सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है- ''भू-सुधार के साथ पूँजी बाजार एवं ग्राम संस्थानों में उचित परिवर्तन द्वारा उत्पादन एवं उत्पादिता को अधिकतम करना सम्भव होगा और यह वितरण की असमानताओं को कम करने के साथ पूर्णतया संगत होगा ''।

4. **श्रम विस्थापन की समस्या**- हरित क्रान्ति के जैविकीय प्रभाव जो उत्पादन एवं उत्पादिता को प्रत्यक्ष रूप से बढ़ाते हैं जैसे उन्नत किस्म के बीज, खादों का प्रयोग तो यह रोजगार में महत्वपूर्ण गुणात्मक प्रभाव देते हैं । परन्तु यदि यांत्रिक नवाचारों जैसे टैक्टर, हार्वेस्ट कम्बाइन का शुद्ध रोजगार प्रभाव आंके तो यह नकारात्मक हो सकता है।
5. **मोटे अनाजों के अधीन क्षेत्रफल में कमी और उत्पादन में नाम मात्र वृद्धि।**
6. **दालों के उत्पादन में वृद्धि सन्तोषजनक नहीं है**। 1964-65 में दालों का उत्पादन 120 लाख टन था। 1990-91 में जो कि खाद्यान्न उत्पादन का सर्वोच्च वर्ष था, दालों का उत्पादन 143 लाख टन था अर्थात 20 वर्षों में केवल 21 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 2007-08 तक यह 150 लाख टन ही बढ़ पाया। सबसे ज्यादा चिन्ता की बात है कि दालों के प्रति व्यक्ति उपभोग में कमी आई है । 1971 में 69 ग्राम प्रतिदिन से 2006 में 32.5 ग्राम प्रतिदिन विशेषतया गरीब वर्गो के लिए जिनके लिए दालें प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं। अरहर और चना मिलकर दालों के कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत उपलब्ध कराते हैं। यदि इनके उत्पादन को बढ़ाने के प्रयास को फोकस किया जाय, तो दालों के उत्पादन बढ़ने में काफी सम्भावना है।
7. **भारत खाद्य तेलों के उत्पादन में आत्मनिर्भर नहीं है ।** 1970-71 में खाद्य तेलों का आयात केवल 23 करोड़ रूपये था, परन्तु मांग बढ़ने के साथ 2004-05 में, 11,770 करोड़ रूपये के खाद्य तेलों का आयात किया गया। इससे दो मुख्य समस्याओं का सामना करना पड़ रहा हैः-
8. खाद्य तेल आयात द्वारा विदेशी मुद्रा का निकास
9. भारत एक महत्वपूर्ण खाद्य पदार्थ के लिए विश्व के अन्य देशों पर निर्भर है।
10. पाँच दशकों के आयोजन के बावजूद भारतीय कृषि अभी भी मानसून में जुआ ही है। कहीं मानसून की विफलता से सूखा पड़ जाता है और किसी अन्य भाग में अतिवृष्टि के कारण बाढ़ से फसल बर्बाद हो जाती है। किसी भी योजना में सिंचाई सम्बन्धी लक्ष्य पूरे नहीं किये जा सके हैं।

13.5.2 कृषि विकास में भावी सम्भावनाएँ -

उपेक्षित कृषि खाद्य पदार्थों पर संकेन्द्रित होकर उनके उत्पादन एवं उत्पादिता को बढ़ाना और नई तकनीकों को अनुसंधान से नवचरित करना । एम0एस0 स्वामीनाथन की अध्यक्षता में वर्ष 2004 में राष्ट्रीय कृषक आयोग का गठन किया गया। आयोग ने दिसम्बर 2005 से अक्टूबर 2006 के बीच 5 रिपोर्ट सरकार को सौंपी जिसके आधार पर कृषक राष्ट्रीय नीति 2007 घोषित की गई जिसकी प्रमुख संस्तुतियाँ सन्दर्भित हैं- भूमि, जल, पशुधन, बायो-संसाधन, सूचना तथा ज्ञान, गाँवों का जुड़ाव, ऋण, बीमा, आश्वस्त तथा प्रतिफल युक्त विपणन आदि। न्यूनतम समर्थित मूल्य को लागत से कम से कम 50 प्रतिशत अधिक निर्धारित किया जाना चाहिए।

प्रत्येक गाँव में ज्ञान केन्द्र ''**रूरल नॉलेज सेन्टर** '' खोला जाये जो आधुनिक सूचना तथा संवहन टेक्नोलॉजी का प्रयोग करें। कृषि श्रमिकों को फार्म विज्ञान प्रबन्धकों के रूप में व्यवस्थित करना । भूमि स्वास्थ्य सुधार के लिए भूमि में समष्टि एवं व्यष्टि पोषकों द्वारा भूमि की भौतिकी एवं सूक्ष्म जैविकी उन्नत करना । जल संरक्षण द्वारा पानी की सुरक्षा करना और खुष्क खेती की ओर अधिक ध्यान देकर सुविधाजनक बनाना। ऋण सुधारों के साथ उधार एवं बीमा साक्षरता को बढ़ावा देना, उधार वितरण प्रणाली को स्त्रियों के प्रति संवेदनशील बनाना। निम्न आर्थिक जोखिम, उच्च साधन उत्पादित और पारिस्थितिकी नुकसान से बचाव सभी कृषि अनुसंधान और विकास रणनीतियों का मूल तत्व होना चाहिए। ग्रामीण उत्पादक को प्राप्ति और उपभोक्ता द्वारा दिये गये मूल्य में अन्तर को जहाँ तक सम्भव हो, कम करना चाहिए।

पोषणीय कृषि - यह 1991 में प्रचलन में आई इसका अर्थ है पर्यावरण पर बिना प्रतिकूल प्रभाव डाले हुए पोषक चक्र नाइट्रोजन स्थिरीकरण के द्वारा ''कृषि विकास'' आर्गेनिक कृषि या ऐसी कृषि प्रणाली का विकास जिससे ऐसे आगतों का न्यूनतम प्रयोग हो जो पर्यावरण, किसानों तथा उपभोक्ताओं को हानि पहुंचाते हों। आर्गेनिक फार्मिंग में रसायनिक खादों तथा कीटनाशक दवाइयों के स्थान पर जैविकीय खाद या प्राकृतिक खादों का प्रयोग। जैव तकनीक एवं अनुवांशिक इंजीनियरिंग के अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि बैक्टीरिया और नीले हरे शैवाल नाइट्रोजन निश्चक के रूप में पौधों के पोषण में सहायक हैं । बायो फर्टिलाइजर का सर्वाधिक प्रयोग धान की खेती में करते हैं । यह अधिक पर्यावरण मैत्री तथा अधिक स्वास्थ्य मैत्री खेती है । अतः इसके प्रयोग पर बल दिया जा रहा है किन्तु प्रति हैक्टेयर उत्पादकता कम होने और अधिक लागत के कारण इससे उपजे खाद्यान्नों की कीमत अधिक होती है । अक्टूबर 2004 में '' नेशनल प्रोजेक्ट ऑन डेवलपमेन्ट एण्ड व्यूज़ ऑफ बायोफर्टिलाइजर '' को नेशनल प्रोजेक्ट ऑन आर्गेनिक फार्मिंग में मिला दिया गया

और राष्ट्रीय जैविकीय विकास केन्द्र का नाम बदलकर नेशनल सेन्टर फॉर आर्गेनिक फार्मिंग कर दिया गया। इसके प्रमुख कार्य हैं -

I. आर्गेनिक उत्पादों का प्रमाणीकरण की प्रणाली विकसित करना।
II. सेवा आपूर्ति के द्वारा क्षमता निर्माण।
III. आर्गेनिक आगतों जैसे फल तथा सब्जियों के वेस्ट कम्पोस्ट इकाइयों तथा जैविकीय उर्वरकों की उत्पादक इकाइयों को वित्तीय सहायता प्रदान करना।
IV. आर्गेनिक फार्मिंग के विस्तार प्रोत्साहन तथा विपणन विकास को बढ़ावा देना।

शोध विस्तार, प्रमाणीकरण तथा विपणन के पर्याप्त संस्थागत समर्थन न मिलने से भारत में आर्गेनिक खेती का विकास अवरोधित हुआ है। कृषि विज्ञान केन्द्र आर्गेनिक खेती के सन्दर्भ में किसानों को प्रशिक्षित करेंगे तथा प्रमाणीकरण प्रक्रिया कृषक मैत्री तथा वहनीय बनायी जायेगी। देश में आर्गेनिक जोन्स की पहचान की जायेगी। जैसे पर्वतीय प्रदेश, आइलैण्ड्स जहाँ रसायनिक खादों का प्रयोग अत्यन्त कम होता है तथा औषधीय प्लाण्ट के लिए कीटनाशक दवाइयों तथा रसायनिक खादों के प्रयोग की राय नहीं दी जाती।

हरित (ग्रीन) कृषि - हरित कृषि में खनिज उर्वरकों तथा रसायनिक कीटनाशकों के सुरक्षित तथा आवश्यक न्यूनतम प्रयोग की अनुमति रहती है। यह एक ऐसी कृषि प्रणाली है जिसमें संयोजित पेस्ट कन्ट्रोल प्रबन्धन, फसल के पोषणीय तत्व की आपूर्ति तथा प्राकृतिक संसाधनों के एकीकृत प्रबन्धन का मिश्रण हो। यह जेनेटिक समायोजन द्वारा विकसित फसल की किस्मों के प्रयोग की भी स्वीकृति देता है। राष्ट्रीय कृषि नीति 2007 में आर्गेनिक फार्मिंग फसलों की स्पष्ट लेबलिंग तथा प्रमाणीकरण की तरह हरित कृषि उत्पादों को भी प्रोत्साहित करना।

संरक्षित (हरित गृह कृषि) - यह वह संरक्षित निर्मित दायरा या घर है जिसके भीतर तापमान, आर्द्रता तथा नमी के स्तर को इस प्रकार कायम रखा जाता है जिससे वांछनीय सब्जी, फल, फूल (गैर मौसमी) आदि उगाये जा सकें। इसके अन्तर्गत जल तथा उर्वरक के प्रयोग के मितव्ययिता पूर्ण तरीके जैसे फर्टीगेशन ड्रिप सिंचाई को बढ़ावा देना।

सूक्ष्म (प्रेसेज़न फार्मिंग) - यह एक समन्वित कृषि प्रबन्धन प्रणाली है। इसके अन्तर्गत किसी खेत के भीतर फसल के सम्बन्ध में तथा मिट्टी के सम्बन्ध में होने वाली विभिन्नताओं को चिन्हित किया जाता है। उनकी मैपिंग की जाती है और फिर प्रबन्धकीय व्यवस्था की जाती है तथा इनके सम्बन्ध में होने वाली विभिन्नता का स्थायी आंकलन किया जाता है और उसमें आवश्यक सुधार किया जाता है। टेक्नोलॉजी संयत्र जो इसके अन्तर्गत प्रयुक्त होते हैं, वे हैं- ग्लोबल पोजिसनिंग सिस्टम जो

सेटेलाइट नेटवर्क है। भौगोलकीय सूचना प्रणाली उत्पादकता मानीटर वैरियेबिल रेट टेक्नोलॉजी तथा रिमोट सेन्सिंग। यह मितव्ययितापूर्ण तथा पर्यावरण मैत्री है। फसल की स्वस्थता की मानीटरिंग विजातीय घासों की पहचान करना तथा उनका प्रबन्धन, कीटों की पहचान, प्लाटों के पोषणीय तत्व की पहचान, उत्पादन प्रक्षेपण जैसी अनेक वैज्ञानिक विधियों का इस्तेमाल किया जाता है। इसके परिणाम आशा से कहीं अधिक सन्तोषजनक रहे हैं। भारत में इस तकनीक का प्रयोग तमिलनाडू सरकार सब्जियों के उत्पादन के सम्बन्ध में कर रही है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन - इसका प्रारम्भ रबी मौसम 2007-08 से केन्द्र प्रायोजित योजना के रूप में हुआ। इसका उद्देश्य 11वीं योजना (2007-12) के अन्त तक चावल, गेहूँ और दलहनों का उत्पादन क्रमशः 10, 8 और 2 मिलियन टन करना, रोजगार सृजन तथा किसानों के विश्वास की बहाली।

- यह योजना कृषि एवं सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय द्वारा संचालित होती है।
- वर्तमान में यह देश के 17 राज्यों के 476 चिन्हित जिलों में कार्यान्वित की जा रही है।
- इस मिशन के तीन प्रमुख संघटक हैं- एन.एफ.एस.एम.-चावल, एन.एफ.एस.एम.-गेहूँ तथा एन.एफ.एस.एम.-दलहन।
- इसके तहत क्षेत्र विस्तार और उत्पादकता संवर्द्धन, मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता की वापसी, रोजगार अवसरों के सृजन, किसानों में आत्मविश्वास की वापसी तथा कृषि स्तर की मितव्ययिता के संवर्धन के जरिए उत्पादन वृद्धि के प्रयास किये जा रहे हैं।
- 2010-11 से नई पहल के रूप में ए3पी एन.एफ.एस.एम.-दालों के भाग के रूप में शुरू हुआ। इसके तहत तूर, उड़द, मूंग, चना और मसूर सहित सम्भावित दलहन क्षेत्र का 1 मिलियन हेक्टेयर सघन खण्डों में तकनीकी के बड़े स्तर पर प्रदर्शन के लिए लिया गया है।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना - इसका आरम्भ अगस्त 2007 में हुआ। इसका उद्देश्य कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का सम्पूर्ण विकास सुनिश्चित करके 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 4.0 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में प्राप्त करना। इस योजना के प्रमुख बिन्दु हैं -

1. कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में गिरते हुए निवेश, जी0डी0पी0 में कृषि के गिरते हुए अंश तथा किसानों की आय में वृद्धि लाना है तथा कृषि और कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों में विकास को प्रेरित करना है।
2. केन्द्र समर्थित स्कीम है जिसके लिए केन्द्र सरकार से 100 प्रतिशत अनुदान प्राप्त होता है।
3. राज्य योजना के अन्तर्गत चलने वाली स्कीम है। इस योजना के तहत सहायता की अर्हता राज्य योजना में कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों के लिए व्यवस्था इसके अलावा राज्य सरकार द्वारा कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्र पर बेसलाइन व्यय पर निर्भर करेगी।
4. कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों के अन्तर्गत क्राप हसबैण्ड्री जिसमें हार्टीकल्चर सम्मिलित है, पशुपालन, कृषि शोध तथा शिक्षा, कृषि विपणन, खाद्य भण्डारण, मृदा तथा जल संरक्षण, कृषि वित्तीय संस्थायें तथा कृषि कार्यक्रम तथा सहकारिता सम्मिलित है।
5. राज्य की इसके अन्तर्गत अर्हता तथा उसको फण्ड का आवंटन योजना आयोग द्वारा होगा।
6. इसके अन्तर्गत संसाधनों का आवंटन तीन कसौटियों पर निर्भर करता है।
   i. सिंचित क्षेत्रफल की असिंचित क्षेत्रफल में अनुपात - 20 प्रतिशत
   ii. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक सकल राज्य घरेलू उत्पाद की प्रक्षेपित वृद्धि पर - 30 प्रतिशत
   iii. कृषि तथा सम्बद्ध में कुल योजनान्तर्गत व्यय में वृद्धि - 50 प्रतिशत।
7. राज्य कृषि विभाग नोडल विभाग के रूप में कार्य करेगा।

2010-11 में आर0के0वी0वाई0 के तहत प्रारम्भ निम्नलिखित तीन नई पहलों के लिए विशिष्ट आवंटनः-

1. अनुशंसित कृषि प्रौद्योगिकियों के माध्यम से गहन खेती के द्वारा क्षेत्र की फसल उत्पादकता वृद्धि हेतु असम, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, ओडिशा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल सहित देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र तक हरित क्रान्ति का विस्तार करना।
2. चिन्हित वाटर शेडो में 60,000 दलहन और तिलहन गाँवों का आयोजन कर शुष्क भूमि क्षेत्रों में दलहनों और तिलहनों के लिए विशेष पहल।
3. राष्ट्रीय केसर मिशन कार्यान्वयन (2010-11) के दौरान जम्मू एवं कश्मीर केसर क्षेत्र का आर्थिक पुनरूत्थान।

आइसोपॉम योजना

- कृषि मंत्रालय ने तिलहन, दलहन, ऑयल पाम और मक्का विकास कार्यक्रम को नये सिरे से केन्द्र प्रायोजित ‘‘तिलहन, दलहन, ऑयल पाम और मक्के की एकीकृत योजना ।’’ आइसोपाम के रूप में संरचित किया है।
- इस योजना का क्रियान्वयन, तिलहन और दलहन के लिए 14 प्रमुख राज्यों, मक्के के लिए 15 राज्यों और ऑयल पाम के लिए 10 राज्यों में किया जा रहा है।
- योजना के तहत ऑयल पाम विकास कार्यक्रम आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू, गुजरात, गोवा, ओडिशा, केरल, त्रिपुरा, असम और मिजोरम राज्यों में किया जा रहा है।

भारत में कृषि क्षेत्र की कुछ क्रान्तियाँ

हरित क्रान्ति	-	खाद्यान्न उत्पादन (गेहूँ, मक्का, धान)
श्वेत क्रान्ति	-	दुग्ध उत्पादन
भूरी क्रान्ति	-	उर्वरक उत्पादन
पीली क्रान्ति	-	सरसों
लाल क्रान्ति	-	मांस/टमाटर
सुनहरी क्रान्ति	-	बागवानी
गुलाबी क्रान्ति	-	झींगा उत्पादन
नीली क्रान्ति	-	मत्स्य उत्पादन
रजत क्रान्ति	-	अण्डा एवं मुर्गी उत्पादन
गोल क्रान्ति	-	आलू उत्पादन
ब्लैक क्रान्ति	-	वैकल्पिक ऊर्जा
बादामी क्रान्ति	-	मसालों का उत्पादन
इन्द्रधनुषी क्रान्ति	-	दूसरी कृषि नीति 2000

13.6 सारांश -

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान गये हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में भारतीय कृषि की प्रकृति, उसके महत्व और नवीन व्यूह रचना की विस्तृत चर्चा की। कृषि की प्रकृति के अन्तर्गत तीन फसल मौसम रबी, खरीफ, जायद की बोवाई तथा कटाई और उनमें वर्गीकृत होने वाली फसलों के बारे में इंगित किया गया। कृषि में प्रयुक्त सभी आदानों जैसे- भूमि, बीज, उर्वरक, सिंचाई, यंत्रों आदि की जानकारी दी गई। इनमें पारम्परिक तरीकों के साथ-साथ नवीन तरीकों को भी सम्मिलित किया गया। कृषि के महत्व को भारतीय परिदृश्य में रेखांकित किया गया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि उद्योग तथा कृषि एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करेंगे तभी तीव्र विकास होगा और गरीबी, बेरोजगारी की समस्या से निपटा जा सकेगा। कृषि के आगत जो हरित क्रान्ति प्रारम्भ होने के बाद इस्तेमाल हो रहे हैं हमें उद्योगों से मिलते हैं और कृषि के निर्गत उद्योगों में आगत के रूप में इस्तेमाल होते हैं । अन्त में हमने चर्चा की कि नवीन व्यूह रचना है क्या, उसके क्या प्रभाव हुए और कृषि विकास में भावी सम्भावनाओं के रूप में कौन-कौन से प्रोग्राम चल रहे हैं ।

13.7 शब्दावली

1. कृषि आगत - फसल उगाने के लिए जरूरी प्राकृतिक एवं मानव निर्मित उपाय।
2. कुशलतम प्रयोग - न्यूनतम नुकसान पर अधिकतम इस्तेमाल द्वारा उत्पादन
3. जोतों की चकबन्दी - छोटे तथा छिटके खेतों को एक जगह उपलब्ध करवाना।
4. काश्तयोग्य - खेती योग्य
5. यंत्रीकरण - मशीनों का प्रयोग
6. पोषणीय विकास - साधनों का इस प्रकार दोहन करना कि भावी पीढ़ी भी संसाधनों का लाभ उठा सके।
7. माइग्रेशन - एक जगह से दूसरी जगह जाकर रहने लगना।
8. अदृश्य बेरोजगारी - खेतों पर से यदि अतिरिक्त लोगों को हटा लिया जाय और उत्पादन में कमी न आये।
9. बिचौलिये - मध्यस्थ
10. क्रय शक्ति - खरीदने की क्षमता
11. आइसोपॉम- तिलहन, दलहन, ऑयल पाम और मक्के की एकीकृत योजना।
12. अनुदान - वित्तीय सहायता जिसके बदले कुछ लिया नहीं जाता।
13. आर.के.वी.आई. - राष्ट्रीय कृषि विकास योजना
14. एन.एफ.एस.एम. - राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन

13.8 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित

रिक्त स्थान भरो-

1. राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा .... होता जा रहा है।
2. जायद फसलों की अवधि .... से .... होती है।
3. हरित क्रान्ति के अन्तर्गत सबसे अधिक वृद्धि .... में दर्ज हुई।
4. औद्योगिक क्षेत्र के विस्तार से कृषि क्षेत्र के उत्पादों की मांग .... जाती है।
5. हरित क्रान्ति नाम देने का श्रेय .... को जाता है।

मेल करिए

1.	श्वेत क्रान्ति	(क)	मसाला का उत्पादन
2.	सुनहरी क्रान्ति	(ख)	दुग्ध उत्पादन
3.	बादामी क्रान्ति	(ग)	बागवानी
4.	गुलाबी क्रान्ति	(घ)	माँस/टमाटर
5.	लाल क्रान्ति	(ड़)	झींगा उत्पादन

उत्तर

रिक्त स्थान भरिए

1. कम 2. मार्च , जून 3. गेहूँ 4. बढ़ 5. विलियम गैड

मेल करिए

1. ख 2. ग 3. क 4. ड़ 5. घ

13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation
3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.

4. Rao, Hanumantha C.H. (2006) Agriculture, Food Security Poverty and Environment, Oxford University Press.
5. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
6. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।
7. मुज़म्मिल, मोहम्मद (1997), कृषि अर्थशास्त्र, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

13.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
2. www.economywatch.com/database/agriculture.
3. business.gov.in/indian_economy/agriculture
4. Economic Survey 2010-11, Ministry of Finance, Government of India.

13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय कृषि में प्रयुक्त विभिन्न आगतों की विस्तृत चर्चा कीजिए?
2. भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में कृषि की भूमिका की विवेचना कीजिए?
3. नवीन कृषि रणनीति के उद्विकास पर प्रकाश डालिए?
4. हरित क्रान्ति की कमजोरियों की व्याख्या कीजिए?

इकाई - 14 भारत में कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ

इकाई संरचना

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक एवं प्रवृत्तियाँ
14.4 पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन कृषि की प्रगति
14.5 न्यून कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कारण
14.6 निम्न उत्पादकता को दूर करने के प्रयास
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित
14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में यह जानने की चेष्टा करेंगे कि भारतीय कृषि क्षेत्र में उत्पादन तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्व क्या हैं और आँकड़े क्या प्रवृत्तियाँ दर्शाते हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्य जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक है कि कृषि वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक रहे। नवीन कृषि रणनीति सुधारों के साथ साठ के दशक से प्रयोग में है किन्तु अभी भी कृषि मानसून में जुआ ही है। ज्यादातर किसान जीवन यापन कृषि से करते हैं, उनके पास जोतों का आकार छोटा है। भू-सुधार लागू होने के बाद भूमि का पुनर्वितरण कुछ हद तक हुआ किन्तु भू-सुधार की कमियाँ सीमान्त तथा भूमिहीन कृषकों की दशा सुधारने में बहुत सफल नहीं हो पाये। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं की समीक्षा से यह ज्ञात होता है कि उतार चढ़ाव के बावजूद उत्पादन बढ़ा है, जिन वर्षों में मौसम अनुकूल रहा है उस साल उत्पादन अच्छा रहा है और प्रतिकूल प्राकृतिक दशाओं से कृषि उत्पादन में गिरावट आई है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

उत्पादन तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारण।

- भारतीय कृषि में उत्पादन तथा उत्पादकता की प्रवृत्ति जानना।
- निम्न उत्पादकता के कारणों की जाँच।
- विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में उद्देश्यों एवं उपलब्धियों की समीक्षा।

14.3 कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता को प्रभावित करने वाले कारक एवं प्रवृत्तियाँ

कृषि उत्पादन में वृद्धि दो कारणों से मुख्यता सम्भव है:-

(क) जोत में आने वाली भूमि के क्षेत्रफल में वृद्धि (क्षैतिजीय विस्तार) द्वारा

(ख) उत्पादकता में वृद्धि जिसे ऊर्ध्वाधर विस्तार कहते हैं, उत्पादकता में वृद्धि भूमि तथा कृषि श्रमिक दोनों की उत्पादकता में वृद्धि से सम्बन्धित है।

कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए जोत में आने वाली भूमि की वृद्धि दो प्रकार से की जा सकती है- दोहरी या बहुफसल उगाकर तथा जोत में न आयी बंजर या पानी से भरी जमीन को जोत में लाकर।

1950-51 में आयोजन के शुरूआत से अब तक की तस्वीर यह है कि-

I. कृषि आधीन क्षेत्रफल में लगातार वृद्धि हुई।
II. प्रति हेक्टेयर उत्पादन (कृषि उत्पादिता) में भी लगातार वृद्धि हुई।
III. क्षेत्रफल में वृद्धि के साथ-साथ प्रति हेक्टेयर उत्पादन में भी वृद्धि दर्ज हुई फलस्वरूप सभी फसलों के कुल उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति पाई गई।

खाद्यान्नों और वाणिज्यिक दोनों फसलों के सन्दर्भ में कृषि क्षेत्रफल में वृद्धि हुई है किन्तु वाणिज्यिक फसलों के जोत क्षेत्रफल में अधिक वृद्धि आयी है। भारत कृषि योग्य भूमि की उपलब्धता की दृष्टि से काफी धनी देश है। यहाँ कुल क्षेत्रफल का लगभग 47 प्रतिशत भाग शुद्ध बोया गया क्षेत्र है। भारत की जलवायु विशेषकर तापमान, वर्ष भर कृषि उत्पादन के अनुकूल रहता है। जलवायु की विविधता के कारण भारत में उष्ण, उपोष्ण व शीतोष्ण सभी फसलें उगाई जाती हैं। भारत में कुल कृषित भूमि के लगभग 75 प्रतिशत भाग पर खाद्यान्न फसलें उगाई जाती हैं। शेष 25 प्रतिशत भाग वाणिज्यिक फसलों के अधीन है। भारत में खेतों का औसत आकार काफी छोटा है लगभग (1.7 हेक्टेयर) है। 1985-86 में देश में जब जोतों का औसत आकार 1.69 हेक्टेयर था, तब राजस्थान में यह सर्वाधिक 4.34 हेक्टेयर था। उसके बाद पंजाब में यह 3.77 हेक्टेयर था। इसके विपरीत केरल में जोतों का औसत आकार न्यूनतम 0.36 हेक्टेयर था।

1949-50 के पश्चात् क्षेत्रफल में वृद्धि हुई। नई कृषि रणनीति अपनाने के पहले अतिरिक्त भूमि काश्त में लाई गई और सिंचाई सुविधाओं के विस्तार द्वारा बंजर भूमि में भी खेती की जाने लगी। कुछ परिस्थितियों में व्यर्थ भूमियों और वन आधीन भूमियों को भी बढ़ाया गया। आलू की खेती में इस अवधि में सबसे अधिक क्षेत्र वृद्धि हुई अर्थात् 4.4 प्रतिशत प्रति वर्ष, फिर रूई 3.3 प्रतिशत प्रति वर्ष। गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में 1.7 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि रिकार्ड की गई। हरित क्रान्ति के बाद की अवधि (1965-2002) में, क्षेत्रफल में वार्षिक वृद्धि दर काफी कम थी। सभी फसलों में 0.1 प्रतिशत, खाद्यान्नों में 0.1 प्रतिशत और अखाद्य फसलों में 0.3 प्रतिशत। इस अवधि में केवल चावल की फसल के आधीन क्षेत्रफल में 22 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि गेहूँ के आधीन क्षेत्रफल में 92 प्रतिशत वृद्धि हुई। इस कारण चावल के आधीन क्षेत्रफल की वार्षिक वृद्धि दर केवल 0.6 प्रतिशत थी। खाद्य भिन्न फसलों में आलू के आधीन क्षेत्रफल में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई (वार्षिक वृद्धि दर 3.5 प्रतिशत) और बागान फसलों में यह वृद्धि 67 प्रतिशत थी।

प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि-

कृषि उत्पादकता हम दो तरीकों से माप सकते हैं- प्रति हेक्टेयर कृषि उपज से और प्रति व्यक्ति उपज के मूल्य से। प्रति हेक्टेयर कृषि उपज से अभिप्राय एक हेक्टेयर में कितना उत्पादन होता है। इसे खेत की उत्पादकता कहते हैं। प्रति श्रमिक उपज से अभिप्राय है एक खेत की कुल उपज के मूल्य में उसमें कार्य करने वाले श्रमिकों का भाग देकर जो फल आता है। यह खेत की प्रति श्रमिक उत्पादकता है। भारत में उत्पादकता प्रति हेक्टेयर तथा प्रति श्रमिक दोनों ही दृष्टि से कम है। निम्न आंकड़े इस तथ्य को सिद्ध करते हैं -

''भारत में गेहूँ का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2,671 किलोग्राम है सापेक्षतया ब्रिटेन में 7,468 किलोग्राम व फ्रांस में 6,632 किलोग्राम है। भारत में चावल व धान का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2,127 किलोग्राम है, जबकि मिश्र में 8,567 किलोग्राम, जापान में 6,416 किलोग्राम, अमरीका में 6,609 किलोग्राम व चीन में 6,331 किलोग्राम है। सम्पूर्ण भारत में प्रति श्रमिक उत्पादकता 1,213 रूपये प्रति हेक्टेयर है किन्तु क्षेत्रीय दृष्टि से भारत में कृषि उत्पादकता में समानता नहीं देखने को मिलती। भारत में जलवायु एवं भूमि की उर्वरकता अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न है तथा अन्य अवस्थापना सुविधाएं जैसे- सिंचाई, बिजली, यातायात की सुविधायें आदि में भी काफी असमानता देखने को मिलती हैं। जहाँ ये सारी सुविधायें उपलब्ध हैं और जहाँ नकद फसलें अधिक होती हैं वहाँ प्रति हेक्टेयर उत्पादन का मूल्य अधिक है जैसे केरल रू0 2,072, पंजाब रू0 3,195, हरियाणा रू0 2,922, गुजरात रू0 1,457, उत्तर प्रदेश रू0 1,236 तथा मध्य प्रदेश में रू0 859 है।

भारतीय कृषि में अन्य देशों की तुलना में श्रम उत्पादकता कम है जो डालरों में 395 डॉलर है, जबकि आस्टेलिया में 31,432 डॉलर, ब्रिटेन में 34,730 डॉलर व जापान में 30,620 डॉलर है।

स्वतंत्रता पूर्व जो कृषि क्षेत्र में निम्न उत्पादकता थी उसको आयोजन शुरू होने के बाद बढ़ाने का प्रयास किया गया। सिंचाई में विस्तार और कृषि सघन प्रणाली के उपयोग और आधुनिक कृषि रणनीति द्वारा सभी फसलों के प्रति हेक्टेयर उत्पादन में धीरे-धीरे निरन्तर वृद्धि पाई गई। हरित क्रान्ति से पूर्व की अवधि के दौरान चावल की उत्पादकता में काफी प्रभावी वृद्धि दरें रिकार्ड की गयीं- 1949-50 में 7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर से 1964-65 में लगभग 11 क्विंटल तक। वार्षिक वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत रिकार्ड की गई। इसी अवधि में गेहूँ की वृद्धि दर मर्यादित थी। गेहूँ की प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 1949-50 में 6.6 क्विंटल से बढ़कर 1964-65 में 9.1 क्विंटल हो गई। खाद्य भिन्न फसलों, रूई एवं गन्ने की उत्पादिता में भी मर्यादित वृद्धि रिकार्ड हुई। दूसरी अवधि यानि हरित क्रान्ति के पश्चात 1964-65 से 2007-08 में गेहूँ में सबसे अप्रत्याशित वृद्धि दर (2.63 प्रतिशत) और आलू में 3.1 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि दर प्राप्त की गई। गेहूँ का प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2007-

08 में 27.85 क्विंटल और 2008-09 में 28.06 क्विंटल था किन्तु यह चावल में 2007-08 में 22.03 क्विंटल और 2008-09 में 21.77 क्विंटल प्रति हेक्टेयर रहा। 1964-65 में 2007-08 में चावल में 1.67 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त की गई। अन्य सभी फसलों में प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि या तो मर्यादित थी, या बहुत कम। **निष्कर्षतः** नयी जीव रसायन टेक्नोलॉजी गेहूँ के उत्पादन के लिए विशेष रूप में उचित थी किन्तु यह अन्य फसलों के सन्दर्भ में प्रभावी नहीं थी।

कुछ कृषि अर्थशास्त्री इस बात को लेकर सन्देह में हैं भारत की उत्पादकता ठण्डे देशों के स्तर तक पहुंच पायेगी। उत्पादकता में कुछ हद तक बढ़ोत्तरी की जा सकती है किन्तु 3 से 5 गुना बढ़ाना व्यवहारिक नहीं है क्योंकि भारत में गेहूँ सम्बन्धी अर्द्ध बौनी अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों की अवधि 140 दिन है, जबकि ठण्डे देशों में 10 महीने की गेहूँ की फसल से उच्च उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है । अतः भारत में किसान एक फसल की अपेक्षा बहु फसल प्रणाली की ओर परिवर्तित होने के कारण पूरे वर्ष भर की उत्पादकता बढ़ा सकता है, न कि किसी एक फसल से प्राप्त प्रति हेक्टेयर उत्पादकता।

भारत में उपज प्रति हेक्टेयर (कि0ग्रा0)

क्र0सं0	फसल	2008-09
1.	कुल खाद्यान्न	1,857
2.	दालें	617
3.	चावल	2,177
4.	गेहूँ	2,806
5.	मक्का	2,302
6.	तिलहन	1,016
7.	मूंगफली	1,169
8.	रेपसीड एवं सरसों	1,155
9.	गन्ना (टन/हेक्टेयर)	66
10.	कपास	418
11.	जूट	2,168
12.	मेस्ता	1,175

खाद्यान्न उत्पादन (मिलियन टन में)

फसल	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09
चावल	88.5	83.1	91.8	93.4	96.7	99.4
गेहूँ	72.2	68.6	69.4	75.8	78.6	77.6
मोटा अनाज	37.6	33.5	34.1	33.9	40.8	38.7
दालें	14.9	13.1	13.4	14.2	14.8	14.2
खाद्यान्न	213.2	198.4	208.6	217.3	230.8	229.9

खाद्यान्नों का कुल उत्पादन कुछ उतार चढ़ाव के बावजूद नई प्रौद्योगीकियों के इस्तेमाल और अच्छे मानसून से बढ़ा है। चावल और गेहूँ में अच्छी बढ़ोत्तरी हुई किन्तु दालों का उत्पादन स्थिर है।

वाणिज्यिक फसल उत्पादन (मिलियन टन में)

फसल	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09
मूंगफली	8.1	6.8	8.0	4.9	9.2	7.3
रेपसीड/ सरसों	6.3	7.6	8.1	1.6	5.8	7.3
कुल नौ तिलहन	25.2	24.4	28.0	24.3	29.8	28.1
कपास*	13.7	16.4	18.5	22.6	25.9	23.3
जूट और मेस्ता**	11.2	10.3	10.8	11.3	11.2	10.3
गन्ना	233.9	237.1	270.0	355.5	348.2	289.2

*170 किलोग्राम की मिलियन गांठें

**प्रत्येक 180 किलोग्राम की मिलियन गांठें

प्रमुख बागवानी फसल उत्पादन (मिलियन टन में)

फसल	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08
फल	49.8	50.8	55.4	59.6	63.5
सब्जियाँ	101.4	101.2	110.1	115.1	125.9
मसाले	4.0	4.0	3.9	3.9	4.1
बागान फसलें	9.4	9.8	11.2	12.1	12.1
फूल	0.6	0.1	0.7	0.9	0.9
जोड़	165.5	167.0	181.8	191.6	206.5

बागवानी फसलों के कुल उत्पादन में निरन्तर मार्यादित वृद्धि हो रही है। फूलों का उत्पादन काफी कम है इसमें उत्पादन बढ़ाने की सम्भावनाएं अधिक हैं। यदि लोगों को पोषणयुक्त आहार उपलब्ध कराना चाहते हैं तो फलों और सब्जियों का भी उत्पादन तीव्रता से बढ़ाना होगा, जिससे यह अभी के मुकाबले कम मूल्य पर उपलब्ध हों जिससे गरीब जनता भी इनका सेवन कर सकें।

क्षेत्र, उत्पादन तथा उपज की योगिक विकास दर

आधार वर्ष 1981-82 = 100 सहित प्रतिशत प्रति वर्ष अनुसार

फसल	1980-81 से 1989-90			2000-01 से 2009-10		
	क्षेत्र	उत्पादन	उपज	क्षेत्र	उत्पादन	उपज
चावल	0.41	3.62	3.19	- 0.03	1.59	1.61
गेहूँ	0.46	3.57	3.10	1.21	1.89	0.68
ज्वार	- 0.99	0.28	1.29	- 3.19	- 0.07	3.23
बाजरा	- 1.05	0.03	1.09	- 0.42	1.68	2.11
मक्का	- 0.20	1.89	2.09	2.98	5.27	2.23
रागी	- 1.23	- 0.10	1.14	- 3.03	- 1.52	1.57
कोदो	- 4.32	- 3.23	1.14	- 5.28	- 3.58	1.78
जौ	- 6.03	- 3.48	2.72	- 1.41	- 0.25	1.17
कुल मोटा अनाज	- 1.34	0.40	1.62	- 0.76	2.46	3.97
कुल अनाज	- 0.26	3.03	2.90	0.09	1.88	3.19
चना	- 1.41	- 0.81	0.61	4.34	5.89	1.48
तुअर	2.30	2.87	0.56	0.26	1.82	1.56
अन्य दालें	0.02	3.05	3.03	- 0.34	- 0.32	0.02
कुल दालें	- 0.09	1.52	1.61	1.17	2.61	1.64
कुल खाद्यान्न	- 0.23	2.85	2.74	0.29	1.96	2.94
गन्ना	1.44	2.70	1.24	0.77	0.93	0.16
तिलहन	1.51	5.20	2.43	2.26	4.82	3.79
कपास	- 1.25	2.80	4.10	2.13	13.58	11.22

(1980-81 से 1989-90) से (2000-01 से 2009-10) में चावल, ज्वार, रागी, कोदों, तुअर, अन्य दालें, गन्ना के अन्तर्गत क्षेत्र में वृद्धि दर कम हुई है बाकी फसलों में क्षेत्र वृद्धि दर में सुधार हुआ है। चावल, गेहूँ, ज्वार, रागी, कोदों, कुल अनाज, तुअर, अन्य दालें, कुल खाद्यान्न, गन्ना, तिलहन के उत्पादन के योगिक प्रतिशत में कमी आई है। बाकी फसलों की वृद्धि दर बढ़ी है, कपास के उत्पादन में वृद्धि दर सबसे अधिक रही है (2.80-13.58)

चावल, गेहूँ, जौ, अन्य दालें, गन्ना को छोड़ उपज के सन्दर्भ में बाकी सभी फसलों के योगिक प्रतिशत में सुधार हुआ है। खास तौर से कपास (4.10-11.22)

फसल उत्पादन- 2005-06 से 2008-09 के निरन्तर चार वर्षों के लिए खाद्यान्न उत्पादन में चढ़ाव की प्रवृत्ति देखी गई और 2008-09 में यह 234.47 मिलियन टन के रिकार्ड स्तर पर पहंुच गया। 2009 में देश के विभिन्न भागों में दीर्घकाल तक सूखा पड़ने की वजह से 2009-10 (अन्तिम अनुमान) के दौरान खाद्यान्न का उत्पादन घट कर 218.11 मिलियन टन हो गया। लगभग सभी फसलों की उत्पादकता में भारी गिरावट देखी गयी, जिसके फलस्वरूप 2009 में उनके उत्पादन में गिरावट दर्ज हुई।

चावल तथा गेहूँ- अस्सी के दशक के दौरान चावल के क्षेत्र में 0.41 प्रतिशत की मामूली बढ़त देखी गई लेकिन उत्पादन तथा उपज में वृद्धि 3 प्रतिशत से ऊपर रही। 2000-01 से 2009-10 के दौरान स्थिति में परिवर्तन हुआ जबकि क्षेत्र में वृद्धि नकारात्मक हो गयी और उत्पादन तथा उपज क्रमशः 1.59 प्रतिशत तथा 1.61 प्रतिशत रहा। गेहूँ के सम्बन्ध में भी अस्सी के दशक के दौरान क्षेत्र में वृद्धि 0.46 प्रतिशत पर मामूली थी लेकिन उत्पादन तथा उपज में यह 3 प्रतिशत से अधिक थी। 2000-01 से 2009-10 के दौरान गेहूँ के क्षेत्र वृद्धि 1.21 प्रतिशत तथा उत्पादन और उपज में क्रमशः 1.89 प्रतिशत तथा 0.68 प्रतिशत थी। इन दो फसलों में उपज का स्तर स्थिर रहा और उत्पादन तथा उत्पादकता में बढ़ोत्तरी हेतु नये सिरे से अनुसंधान करने की आवश्यकता है। क्षेत्र विस्तार की अड़चनों को देखते हुए, कोई अन्य विकल्प नहीं है। सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र दोनों में निवेश को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

मोटा अनाज- चूँकि इन फसलों के सम्बन्ध में कोई प्रौद्योगिकीय प्रगति नहीं हुई, इसलिए कुल मोटे अनाजों के क्षेत्र में विकास दर दोनों अवधियों (1980-81 से 1989-90) से (2000-01 से 2009-10) नकारात्मक रहीं। मक्का के सन्दर्भ में 2000-01 से 2009-10 की अवधि में 2.98 प्रतिशत की रिकार्ड वृद्धि दर्ज हुई। मोटा अनाज के सम्बन्ध में उत्पादन तथा उपज की वृद्धि जो अस्सी के दशक में क्रमशः 0.40 प्रतिशत तथा 1.62 प्रतिशत थी, उसमें 2000-01 से 2009-10 की अवधि में

क्रमशः 2.46 प्रतिशत और 3.97 प्रतिशत का सुधार दिखा। यह वृद्धि मक्का तथा बाजरा के कारण थी।

दाल- अस्सी के दशक के दौरान, दालों के अन्तर्गत कुल क्षेत्र में नकारात्मक वृद्धि देखी गयी और इसके उत्पादन तथा उपज में वृद्धि क्रमशः 1.52 प्रतिशत तथा 1.61 प्रतिशत थी। 2000-01 से 2009-10 के दौरान, जबकि क्षेत्र तथा उत्पादन में क्रमशः 1.17 प्रतिशत तथा 2.61 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जबकि 1.64 प्रतिशत पर उपज में वृद्धि लगभग उसी स्तर पर बनी रही। अतः उत्पादन में वृद्धि क्षेत्र में वृद्धि के कारण थी।

गन्ना- 2000-01 से 2009-10 के दौरान गन्ने के क्षेत्र, उत्पादन तथा उपज की यौगिक वृद्धि दर अस्सी के दशक की तुलना में घटी।

तिलहन- 2000-01 से 2009-10 के दौरान तिहनों के अन्तर्गत उपज तथा क्षेत्र की वार्षिक वृद्धि सूचकों में अस्सी के दशक की तुलना में महत्वपूर्ण सुधार देखा गया जिसके परिणामस्वरूप तिलहनों के उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी हुई। भारत अभी भी खाद्य तेलों की अपनी आवश्यकताओं के एक बड़े भाग की पूर्ति आयात से करता है।

कपास- कपास उपज में महत्वपूर्ण वृद्धि के फलस्वरूप इसमें अस्सी के दशक के दौरान के 2.80 प्रतिशत का उत्पादन से बढ़ोत्तरी होकर यह 2000-10 के दौरान प्रति वर्ष 13.58 प्रतिशत हो गया।

महत्वपूर्ण बिन्दु-

- हरित क्रान्ति के पहले की अवधि में क्षेत्र विस्तार के कारण कृषि उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा। 1965 के बाद की अवधि में कृषि उत्पादकता में वृद्धि कृषि उत्पादन में वृद्धि का मुख्य कारण थी।
- अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों के तहत क्षेत्रफल में विस्तार के कारण 1980-81 के बाद चावल के उत्पादन में वृद्धि हुई।
- नवीन कृषि टेक्नोलॉजी अपनाने के बावजूद गेहूँ को छोड़ कर बाकी फसलों की वृद्धि दर कायम नहीं रखी जा सकी।
- आधुनिक टेक्नोलॉजी को अच्छी वर्षा वाले क्षेत्रों या उचित सिंचित क्षेत्रों में लागू किया गया और तिलहनों, मोटे अनाजों और दालों का उत्पादन निम्न कोटि की भूमि पर किया जाने लगा। परिणामतः इन फसलों की उत्पादकता और कुल उत्पादन में अधिक वृद्धि नहीं हासिल हो सकी।

- कृषि उत्पादन में उत्साहवर्धक वृद्धि हुई है पर फसलों के उत्पादन में साल दर साल उतार चढ़ाव होते रहते हैं। 2001-02 से 2007-08 की अवधि में खाद्यान्नों के उत्पादन की वृद्धि दर गिरकर 1.74 प्रतिशत हो गयी जो जनसंख्या की 1.8 प्रतिशत की वृद्धि दर से भी कम थी।
- राज्यों के फसल प्रतिरूप में कुछ महत्वपूर्ण बदलाव हुए। जैसे- देश के पूर्वी क्षेत्र (पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा, बिहार, असम और उत्तर पूर्वीय राज्यों) का चावल में भाग 38 प्रतिशत से कम होकर 28 प्रतिशत हो गया। इसके विपरीत उत्तरी क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश) का भाग 10 प्रतिशत से बढ़कर 23 प्रतिशत हो गया।

प्रमुख खाद्यान्न एवं कृषि उत्पादों में भारत का विश्व में स्थान

जिंस	**विश्व में स्थान**	**जिंस**	**विश्व में स्थान**
दूध	1	सूरजमुखी	2
केला	1	गन्ना	2
ताजे फल	1	ताजी सब्जियाँ	2
जूट	1	नारियल	3
आम	1	कपास	3
मिलेट	1	आलू	3
दाल	1	काजू	3
मसाले	1	सोरघम	3
चाय	1	तंबाकू	3
चावल	2	रबड़	4
गेहूँ	2	संतरा	4
मूंगफली	2		

केन्दीय सांख्यिकी कार्यालय (सी.एस.ओ.) द्वारा जारी 2010-11 के अग्रिम अनुमानों के अनुसार, कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र का हिस्सा 2005 की स्थिर कीमतों पर सफल घरेलू उत्पाद (सघड़) का 14.2 प्रतिशत था। कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों के लिए 2009-10 में सघड़ के 14.6 प्रतिशत के कुल भाग में से कृषि का हिस्सा अकेले 12.3 प्रतिशत है, उसके बाद वानिकी एवं वृक्ष से कटाई का हिस्सा 1.5 प्रतिशत तथा मत्स्यिकी का 0.8 प्रतिशत है।

कृषि क्षेत्र: मुख्य संकेतक (प्रतिशत)

क्र0सं0	मद	2008	2009	2010-11 अग्रिम अनुमान
1-	सघउ हिस्सा तथा वृद्धि (2004-05 कीमतों पर) कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों में सघउ में वृद्धि सघउ में हिस्सा कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्र कृषि वानिकी तथा वृक्ष कटाई मात्स्यिकी	−0.1 15.7 13.3 1.6 0.8	0.4 14-6 12.3 1.5 0.8	5.4 14.2
2-	देश में कुल सकल पूंजी निर्माण में हिस्सा (2004-05) कीमतों पर कुल सकल पूंजी निर्माण में कृषि तथा सम्बन्ध क्षेत्रों का हिस्सा कृषि वानिकी तथा वृक्ष कटाई मात्स्यिकी	8.3 7.7 0.07 0.56	7.7 7.1 0.06 0.54	
3-	कृषि आयात तथा निर्यात (मौजूदा कीमतों पर) राष्ट्रीय आयात की तुलना में कृषि आयात राष्ट्रीय निर्यात की तुलना में कृषि निर्यात	2.71 10.22	4.38 10.59	
4-	2001 की जनगणना के अनुसार कुल कामगारों के भाग के रूप में कृषि क्षेत्र में रोजगार	58.2		

स्रोतः केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय तथा कृषि और सहकारिता विभाग।

14.4 पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन कृषि की प्रगति

पहली योजना के समय भारत में खाद्य संकट से निपटने के लिए और कच्चे माल की आपूर्ति के लिए कृषि विशेषकर खाद्यान्न उत्पादन को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। कुल योजना परिव्यय का 31 प्रतिशत व्यय कृषि क्षेत्र को आवंटित किया गया। फलस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन 620 लाख टन के लक्ष्य की अपेक्षा बढ़ाकर 670 लाख टन हो गया। अन्य वस्तुओं जैसे- खाद्य तेलों के लक्ष्य लगभग पूरे कर लिये गये और गन्ने, रूई एवं पटसन में लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाये।

दूसरी योजना में औद्योगिकीकरण मुख्य लक्ष्य रहा कृषि पर व्यय कम कर दिया गया और यह कुल योजना परिव्यय का 20 प्रतिशत रह गया। कटौती के बावजूद कृषि क्षेत्र में प्रगति अच्छी

रही हालाँकि सभी वस्तुओं का उत्पादन निर्धारित लक्ष्य की तुलना में कम रहा, केवल गन्ने की फसल में वृद्धि हुई।

सरकार ने यह महसूस किया कि योजना के सफल होने के लिए कृषि क्षेत्र की सफलता नितान्त आवश्यक है। नई कृषि टेक्नोलॉजी के उपयोग के बावजूद विस्तृत एवं गम्भीर सूखे के कारण कृषि उत्पादन पर बुरा असर हुआ। सरकार को काफी आयात करना पड़ा और तीन साल के लिए योजना अवकाश माना गया। योजना आयोग ने यह स्वीकारते हुए कि कृषि क्षेत्र की प्रगति आर्थिक नियोजन की सफलता के लिए आवश्यक शर्त है, आगे की योजनाओं में कृषि को प्राथमिकता दी। चौथी योजना में कृषि क्षेत्र पर फोकस के बावजूद निर्धारित लक्ष्य पूरे नहीं किये जा सके। पाँचवी योजना में भी कुल योजना परिव्यय का 22 प्रतिशत व्यय किया गया किन्तु 1973-74 की गम्भीर स्फीतिक दशा के कारण योजना के आकलनों में उलट फेर हो गया। 1975 के बाद कृषि क्षेत्र में सुधार के साथ योजना लक्ष्य पूरे कर लिये गये।

छठी योजना में कृषि क्षेत्र की वार्षिक वृद्धि दर 4.3 प्रतिशत रही। इसे दूसरी हरी क्रान्ति माना गया। पहली हरी क्रान्ति अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों के कारण हुई किन्तु दूसरी हरी क्रान्ति - अच्छे आदानों के साथ कृषि विस्तार सेवाओं की सफलता थी। पहली हरी क्रान्ति पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तक सीमाबाधित रही किन्तु दूसरी हरी क्रान्ति के क्षेत्र में विस्तार हुआ और वह पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और पूर्वीय उत्तर प्रदेश तक फैल गई और काफी सफलता हासिल की। तिलहनों को छोड़ बाकी कृषि उत्पादों में निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किये जा सके।

सातवीं योजना और आठवीं योजना में विशेष प्रोजेक्ट्स जैसे पूर्वीय क्षेत्र में चावल का उत्पादन, वर्षा पोषित कृषि, वाटरशेड कार्यक्रम, राष्ट्रीय तिलहन विकास प्रोजेक्ट, सामाजिक वानिकी आदि पर जोर दिया गया। सातवीं योजना में रूई के अलावा अन्य सभी क्षेत्रों में निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किये जा सके। सातवीं योजना के अन्त में उत्पादन स्तर में सुधार आया।

आठवीं योजना में मौसम और जलवायु की परिस्थितियों के अनुकूल रहने से ज्यादातर लक्ष्य प्राप्त कर लिये गये। तिलहन, गन्ने, रूई और पटसन में निर्धारित लक्ष्य से अधिक उत्पादन रहा। खाद्यान्न उत्पादन में निर्धारित लक्ष्य 2,100 लाख टन से कम 1,990 लाख टन प्राप्त किया जा सका। नौवीं योजना कृषि लक्ष्यों को नहीं प्राप्त कर सकी। 2001-02 तक लक्षित 2340 लाख टन की अपेक्षा 2100 लाख टन ही खाद्यान्न उत्पादन रहा।

दसवीं योजना में कृषि विकास में पिछली योजनाओं की सफलताओं और विफलताओं का विश्लेषण किया गया और राष्ट्रीय कृषि नीति 2000 पर बल दिया गया। दसवीं योजना में क्षेत्र विभेदक रणनीति अपनायी गई और ऐसे विकास को अपनाया गया जो टेक्नोलॉजी पर्यावरणीय एवं आर्थिक दृष्टि से टिकाऊ हो। कृषि क्षेत्र के लिए 4 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया। फसल विविधीकरण पर बल दिया गया और उच्च कीमत वाली और अधिक लाभदायक फसलों को प्रोत्साहित किया गया। जैव खेतों, आधारभूत संरचना में मजबूती, सिंचाई की नई प्रणालियों का प्रयोग आदि पर विशेष जोर दिया गया।

ग्यारहवीं योजना का भी लक्ष्य कृषि वृद्धि दर 4 प्रतिशत रखा गया है। निगम क्षेत्र को बढ़ावा दिया जा रहा है जिससे वे संविदा खेती द्वारा फलों, सब्जियों एवं अन्य फसलों का उत्पादन बढ़ायें। किसानों को बीज उर्वरक और आश्वस्त विपणन का प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

योजनाकाल में कृषि की संवृद्धि दर

	योजना	**संवृद्धि दर**
1.	प्रथम योजना (1951-56)	2.71
2.	द्वितीय योजना (1956-61)	3.15
3.	तृतीय योजना (1961-66)	- 0.73
4.	चतुर्थ योजना (1969-74)	2.57
5.	पाँचवी योजना (1974-79)	3.28
6.	छठी योजना (1980-85)	2.52
7.	सातवीं योजना (1985-90)	3.47
8.	आठवीं योजना (1992-97)	4.72
9.	नौवीं योजना (1997-2002)	2.44
10.	दसवीं योजना (2002-07)	2.30
11.	ग्यारहवीं योजना (लक्ष्य) 2007-12	4.00

स्रोत-ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) Vol.I, P.25

मौजूदा पंचवर्षीय योजना (2007-12) के दौरान कृषि क्षेत्र निष्पादन

मौजूदा पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्षों के दौरान कृषि क्षेत्र (सम्बद्ध गतिविधियों सहित) ने प्रति वर्ष 4 प्रतिशत के योजना लक्ष्य की तुलना में 2.03 प्रतिशत की औसत विकास दर दर्ज की। 2007-08 में कृषि क्षेत्र ने 5.8 प्रतिशत की शानदार विकास दर प्राप्त की किन्तु इसे कायम नहीं रखा जा सका तथा कृषि क्षेत्र का विकास घटकर 2008-09 में -0.1 प्रतिशत के नकारात्मक जोन में जा पहुंचा, यद्यपि यह वर्ष 234.47 मिलियन टन खाद्य उत्पादन का रिकार्ड वर्ष था। कृषि सकल घरेलू उत्पाद (सघउ) के विकास में गिरावट मुख्यतः कृषि फसलों जैसे तिलहन, कपास, जूट तथा मेस्ता और गन्ने के उत्पादन में कमी के कारण हुई। 2009-10 में खराब दक्षिण-पश्चिम मानसून के कारण खरीफ फसल में गिरावट दर्ज हुई पर अच्छी रबी फसल के कारण इसमें 0.4 प्रतिशत का मामूली सुधार हुआ। योजना के पहले चार वर्षों में कृषि क्षेत्र का विकास 2.87 प्रतिशत अनुमानित है।

14.4.1 कृषि क्षेत्र में निवेश का ढाँचा

पहली तीन योजनाओं में ''कृषि क्षेत्र'' के अन्तर्गत सम्मिलित थे कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र (उद्यान, कृषि, पशुपालन और मत्स्य) एवं सिंचाई तथा बाढ़, नियंत्रण। आगे की योजनाओं में ''ग्रामीण विकास और विशेष क्षेत्र कार्यक्रम '' शामिल किये गये और सिंचाई तथा बाढ़ नियंत्रण को छोड़ दिया गया। प्रत्येक योजना में कुल परिव्यय में बढ़ोत्तरी हुई साथ ही साथ कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों पर परिव्यय में भी वृद्धि हुई किन्तु कुल योजना परिव्यय के प्रतिशत के रूप में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों का प्रतिशत प्रथम योजना से दसवीं योजना के दौरान 31 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के मध्य रहा।

योजना आयोग ने कृषि उत्पादन को बढ़ाने हेतु कई प्रोग्राम शुरू किये थे- सिंचाई, भू-संरक्षण, शुष्क खेती, भूउद्धरण, उर्वरकों एवं खादों का संभरण और देश भर में कृषि विस्तार सेवाएं, भू-सुधार, परिवहन, पावर, विपणन और अन्य बुनियादी सुविधाओं का विस्तार, सहकारी कृषि, वित्त आदि। तीसरी योजना के बाद हरित क्रान्ति लागू होने के बाद सिंचाई, उर्वरक, बीज, टेक्नोलॉजी प्रयोग में है।

अगर सिंचाई एवं बाढ़ नियंत्रण और ग्रामीण विकास को शामिल कर लें तो कृषि पर व्यय कुल योजना परिव्यय के 20 से 24 प्रतिशत के बीच रहा। पहली योजना में यह 31 प्रतिशत था।

कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में सरकारी परिव्यय का ढाँचा (करोड़ रूपये)

योजना	अवधि	कुल योजना परिव्यय	कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र	कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों का कुल परिव्यय में प्रतिशत
प्रथम योजना	1951-56	1,960	600	31
दूसरी योजना	1956-61	4,670	950	20
तीसरी योजना	1961-66	8,580	1,750	21
चौथी योजना	1969-74	15,800	3,670	24
पाँचवी योजना	1974-79	39,430	8,740	22
छठी योजना	1980-85	1,09,300	26,100	24
सातवीं योजना	1985-90	2,18,730	47,100	23
आठवीं योजना	1992-97	4,75,480	1,01,599	21
नौवीं योजना	1997-02	8,17,000	1,61,880	20
दसवीं योजना	2002-07	15,25,640	3,05,055	20
ग्यारहवीं योजना के प्रक्षेपन	2007-12	36,44,718	6,74,105	18.5

14.5 न्यून कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता के कारण

14.5.1 मिट्टी में दोष- भारतीय मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी, भूमि का कटाव, पानी का भरना आदि पाया जाता है।

14.5.2 कृषि पर जनसंख्या वृद्धि का बढ़ता हुआ दबाव

भारतीय कृषि पर जनसंख्या का दबाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। 1901 की जनगणना के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति क्षेत्रफल 0.43 हेक्टेयर था जो 2001 में घटकर 0.20 हेक्टेयर रह गया है। जनसंख्या में हुई वृद्धि को उद्योगों में खपाया नहीं जा पाया है। पारम्परिक दस्तकारियों में लगे हुए व्यक्तियों ने भी उन्हें छोड़कर कृषि को आजीविका के साधन के रूप में अपना लिया है। परिणामतः खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गये, प्रति व्यक्ति भूमि की मात्रा कम हो गई और कृषि में अदृश्य बेरोजगारों की संख्या बढ़ गई। जनसंख्या के इस दबाव को जब तक कृषि भूमि से अन्य क्षेत्रों में प्रतिस्थापित नहीं किया जाता तब तक कृषि विकास में ज्यादा सफलता नहीं मिल सकती।

14.5.3 फार्म भिन्न सेवाओं की कमी

वित्त एवं विपणन व्यवस्था अपर्याप्त है। ये सुविधाएं या तो उपलब्ध नहीं हैं या बहुत महंगी हैं। निरन्तर सुधार के बावजूद अभी भी काफी सम्भावनाएं बाकी हैं। भारतीय कृषकों के सदा ही ऋणों से दबे होने के कारण वे अपने कृषि व्यवसाय में उत्पादन वृद्धि के लिए धन का विनियोजन करने में असमर्थ रहते हैं। जब कृषि में आधारभूत आदानों की कमी रहती है तो उत्पादन भी कम होता है। ऋण लेकर नई प्रकार के जेनेटिकली मॉडीफाइड बीजों के इस्तेमाल करने और फसलों के असफल होने पर ऋणों की अदायगी न कर पाने के कारण कितने ही किसानों ने आत्महत्या कर ली। विपणन व्यवस्था की भी दशा बहुत अच्छी नहीं है इसलिए किसानों को अपनी उपज का अच्छा मूल्य नहीं मिल पाता। वेयरहाउसिंग और भण्डारण की सुविधाएं अभी भी अपर्याप्त हैं। फसलों की सुरक्षा का अभाव है।

14.5.4 जोतों का आकार छोटा होना

भारत में जोत का औसत आकार बहुत छोटा है अर्थात पाँच एकड़ से भी कम। ये जोतें छोटी होने के साथ छोटे टुकड़ों में बंटी हैं।

भारत में कृषि जोतों का आकार- आकर के आधार पर जोतों को 4 वर्गों में रखा जा सकता है-

सीमांत जोतें- ऐसी जोतें जो 1 हेक्टेयर से कम होती हैं। इनका भाग कुल क्षेत्रफल का 15 प्रतिशत है।

सीमान्त जोतों का औसत आकार केवल 0.40 हेक्टेयर है।

छोटी जोतें-1 से 4 हेक्टेयर की सीमा में आने वाली जोतें शामिल की जाती हैं। 1990-91 में इस वर्ग में जोतों की संख्या 340 लाख और इनके आधीन क्षेत्रफल बढ़कर 670 लाख हेक्टेयर अर्थात कुल क्षेत्रफल का 41 प्रतिशत हो गया।

मध्यम जोतें-इसके अन्तर्गत 4 से 10 हेक्टयर की सीमा में आने वाली जोतों को शामिल किया जाता है। 1990-91 में मध्यम जोतों की मात्रा 80 लाख थी जो कुल जोतों का 7 प्रतिशत थी। मध्यम जोतों के अधीन 450 लाख हेक्टेयर क्षेत्र है जो कुल क्षेत्र का 27 प्रतिशत है। इन जोतों का औसत आकार 5.6 हेक्टेयर है।

बड़ी जोतें- इसके अन्तर्गत 10 हेक्टेयर या इससे अधिक आकार वाली जोते शामिल की जाती है। 1990-91 की गणना के अनुसार ऐसी जोतों की संख्या 2 प्रतिशत है तथा इनका क्षेत्रफल कुल क्षेत्र का 17 प्रतिशत है। भारत में जोतों का औसत आकार 1.41 हेक्टेयर है, जबकि अन्य देशों में औसत आकार बहुत

अधिक है, जैसे आस्टेलिया में 1,993, अर्जेण्टीना में 270, कनाडा में 188 व अमरीका में 158 हेक्टेयर है। खेतों के छोटा होने के कारण वैज्ञानिक विधि से खेतीबाड़ी सम्भव नहीं है। फलस्वरूप समय, श्रम और पशुशक्ति का भारत अपव्यय होता है। सिंचाई सुविधाओं के उचित उपयोग में कठिनाई होती है। खेतों का छोटा आकार भारतीय कृषि की निम्न उत्पादिता का एक प्रमुख कारण है।

14.5.5 भू-पट्टेदारी का ढाँचा

जमींदारी तथा भू-स्वामित्व की प्रणालियों के अन्तर्गत कृषक उस जमीन का स्वामी नहीं होता था जिसे वह जोतता है। भारत में यद्यपि जमींदारी प्रथा समाप्त हो चुकी है तथा भूमि सुधार लागू हैं फिर भी अनेक क्षेत्रों में वास्तविक रूप में कृषकों को भूमि उपलब्ध नहीं हो पायी है। जिन व्यक्तियों के पास बड़े-बड़े खेत हैं वे अपने खेतों को पट्टेदारी व आध-बंटाई पर दे देते हैं। इस प्रकार जो व्यक्ति खेतों की जुताई आदि कार्य करते हैं वे भूमि के स्वामी न होने के कारण कृषि क्रियाओं पर उचित ध्यान नहीं देते हैं जिसके कारण उत्पादन कम मात्रा में होता है।

14.5.6 तकनालाजीय कारण

बिना कृषि रणनीति अपनाने के बावजूद भारत में खेती के काम में आने वाले उपकरणों में इन उन्नत उपकरणों की मात्रा अभी बहुत कम है। कृषि में उत्पत्ति का ह्रास नियम लागू होता है लगातार खेतीबाड़ी करने से भूमि पूर्णतः निःसत्व हो चुकी है। उर्वरता को पुनः उन्नत करने और परती भूमि को उपयोग में लाने के लिए सभी प्रकार की खादों के प्रयोग की आवश्यकता है। भारत में गोबर की खाद, रासायनिक उर्वरक, जैव तकनीक की कमी है। कृषि अनुसंधान के परिणाम कृषकों तक नहीं पहुंच पाते हैं और इस प्रकार वे नयी तकनीक का लाभ नहीं उठा पाते।

14.5.7अपर्याप्त सिंचाई सुविधाएं

भूमि, बीज, खाद अनुकूलतम प्रयोग उत्पादन बढ़ाने में तभी किया जा सकता है जब इन सबके पूरक के रूप में उचित और नियमित व्यवस्था की जाए। भारत में कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर कम है क्योंकि देश के अधिकांश किसान वर्षा पर निर्भर है और कृत्रिम सिंचाई की सुविधाएं बहुत कम हैं। योजनाकाल में बड़ी और छोटी सिंचाई योजनाओं के प्रबल विकास के बावजूद कुल खेती योग्य भूमि के केवल 33 प्रतिशत में ही सिंचाई व्यवस्था का लाभ उठाया जाता है।

14.6 निम्न उत्पादकता को दूर करने के प्रयास

कृषि क्षेत्र में सुधार हेतु निम्न उत्पादकता के कारणों में सुधार हेतु बहुत सम्भावनांए हैं। ग्रामीण जनसंख्या के लिए वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराए जाएं जिससे कृषि पर निर्भर रहने वाले लोगों के प्रतिशत में कमी आए क्योंकि अभी भी 57 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है जबकि इस क्षेत्र का कुल राष्ट्रीय आय (सघउ) में योगदान घटता जा रहा है (14.2 प्रतिशत वर्तमान में)। इससे ज्ञात होता है कि अदृश्य बेरोजगारों की संख्या कृषि क्षेत्र में काफी अधिक है और वहाँ से लोगों को स्थानान्तरित करना आवश्यक है। उन्नत बीज उपलब्ध कराने के लिए राष्ट्रीय बीज निगम व बड़े-बड़े फार्मों की स्थापना की गई है। किसानों को उन्नत उपकरणों, बीजों, रासायनिक खादों आदि के लाभों से कृषकों को परिचित कराना तथा उनका प्रयोग करने की दिशा में प्रेरित करना। भिन्न-भिन्न स्थानों पर रासायनिक खाद बनाने के कारखाने भारतीय खाद्य निगम व अन्य संस्थाओं की स्थापना की जा रही है। फसलों को कीटाणुओं व रोगों से बचाने के लिए केन्द्रीय कृषि मंत्रालय ने अलग से एक सैल की स्थापना की है जो आवश्यकता के समय हेलीकॉप्टर से कीट या रोगनाशक दवाइयों का छिड़काव करता है। भू-सुधार को लागू किया गया किन्तु इसकी कमियों को दूर कर इसको और सृदृढ़ बनाने की आवश्यकता है। कृषकों को नवीन तकनीकी में प्रशिक्षित करने की सुविधाएं उपलब्ध हैं इसको और विस्तृत करने की आवश्यकता है क्योंकि किसान उनके लिए चलाये गये प्रोग्रामों से अपरिचित हैं। कृषि मूल्यों में स्थायित्व लाने के लिए कृषि लागत एवं मूल्य आयोग की स्थापना। ग्रामीण बैंकिंग सुविधाओं के विस्तार हेतु बैंकों को ग्रामीण शाखाएं खोलने के लिए निर्देशित किया जा रहा है। कृषि अनुसंधान एवं विकास के लिए कई विश्वविद्यालय खोले गये हैं। कई बीमा योजनाएं किसानों के लिए चलाई जा रही हैं। कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार करने के लिए विनियमित बाजारों, सहकारी समितियों, भण्डारगृहों, शीत गोदामों, विभिन्न निगमों की स्थापना की गई है। नीतियों और प्रोग्रामों की कमी नहीं है, जरूरत है दृढ़ इच्छाशक्ति और ईमानदारी से उन्हें सफल बनाने की।

14.7 सारांश

कृषि उत्पादन में वृद्धि दो तरीकों से की जा सकती है क्षेत्रफल में वृद्धि एवं उत्पादकता में वृद्धि (भूमि तथा कृषि श्रमिक)। योजनाकाल की शुरूआत से अब तक कुछ उतार चढ़ाव के बावजूद कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों में सुधार आया है। कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र के परिव्यय में बढ़ोत्तरी हुई है, यदि कुल योजना परिव्यय के प्रतिशत के रूप में देखें तो पहली योजना को छोड़, बाकी योजनाओं में यह प्रतिशत 20 से 24 प्रतिशत के बीच रहा है। भारत में कम उत्पादन एवं उत्पादकता का कारण है मिट्टी के दोष, कृषि पर जनसंख्या वृद्धि का बढ़ता हुआ दबाव, फार्म भिन्न सेवाओं की

कमी, जोतों का आकार छोटा होना, भू-पट्टेदारी का ढाँचा और तकनालाजीय कारण है। सरकार ने विभिन्न योजनाओं और बजटों में कृषि क्षेत्र के लिए विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा सुधार हेतु प्रयासरत हैं। कृषि फसलों के विविधीकरण के साथ खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने पर जोर।

14.8 शब्दावली

1. बहुफसल- एक साल में कई फसलें उगाना। यह कम अवधि के उन्नतशील बीजों का प्रयोग करके किया जा सकता है।
2. वाणिज्यिक फसलें- यह स्थानीय उपभोग के लिए नहीं उगायी जाती हैं बल्कि बेच करके आय अर्जित करने के उद्देश्य से उगायी जाती है।
3. आयात - विदेशों से सामान खरीदना।
4. योजना अवकाश - योजना शुरू होने से अब तक जब योजना अवधि में ब्रेक हुआ। इस दौरान पंचवर्षीय योजना नहीं बनी बल्कि वार्षिक योजनाएं बनायी गयी।
5. स्फीतक दशा - मूल्यों का लगातार बढ़ना।
6. फसल विविधीकरण - तरह-तरह की फसलें उगाना।
7. जोत- खेती करने योग्य भूमि।

14.9 अभ्यास प्रश्न उत्तर सहित

रिक्त स्थान भरिए-

1. कृषि उत्पादन में वृद्धि सम्भव है ....विस्तार एवं .... विस्तार द्वारा।
2. उत्पादकता में वृद्धि .... तथा .... दोनों की उत्पादकता की वृद्धि से सम्बन्धित है।
3. भारत में गेहूँ सम्बन्धी अर्द्ध बौनी अधिक उपजाऊ किस्म के बीजों की अवधि ......दिन है।
4. चावल और गेहूँ के उत्पादन में अच्छी बढ़ोत्तरी हुई किन्तु .... का उत्पादन स्थित है।
5. छठी योजना में कृषि क्षेत्र की वार्षिक वृद्धि दर .... प्रतिशत रही।
6. पहली योजना में कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्र पर परिव्यय कुल योजना परिव्यय का .... प्रतिशत रहा।

उत्तर-

1. क्षैतिजीय, ऊर्ध्वाधर 2. भूमि, कृषि श्रमिक 3. 140 4. दालों 5. 4.3 6. 31

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation
3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
4. Rao, Hanumantha C.H. (2006) Agriculture, Food Security Poverty and Environment, Oxford University Press.
5. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
6. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।
7. आर्थिक समीक्षा (2010-11), वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।

14.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अर्थव्यवस्था, अवलोकन (मई 2011), धनकड़ पब्लिकेशंस, मेरठ।
2. कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
3. योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था (2010) प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, आगरा
5. आर्थिकी 2011 भारत एवं विश्व, सम सामयिक घटना चक्र प्रकाशन, इलाहाबाद
6. www.ibef.org/economy/agriculture.aspx
7. www.economywatch.com/database/agriculture

14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता की प्रवृत्तियाँ क्या हैं?
2. भारत में निम्न उत्पादकता के क्या कारण हैं?
3. निम्न उत्पादकता को दूर करने के सरकारी प्रयासों की व्याख्या कीजिए?
4. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अधीन कृषि प्रगति की क्या दिशा रही है?

इकाई - 15 कृषि साख एवं कृषि विपणन

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 कृषि साख का वर्गीकरण
15.4 कृषि साख के संस्थागत स्रोत
15.5 कृषि वित्त नीति
15.6 कृषि विपणन व्यवस्था
15.7 कृषि विपणन को सुधारने के सरकारी प्रयास
15.8 कृषि विपणन में नये आयाम
15.9 सारांश
15.10 शब्दावली
15.11 अभ्यास प्रश्न
15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.14 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम दो मुख्य खण्डों पर चर्चा करेंगे कृषि साख एवं कृषि विपणन। कृषि साख के अन्तर्गत इसका विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण, संस्थानात्मक स्रोतों की विस्तृत चर्चा और नये परिदृश्य में विभिनन कृषि वित्त के आयामों पर चर्चा करेंगे। कृषि साख सम्पूर्ण ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक उत्प्रेरक का कार्य करती है । नवीन व्यूह रणनीति में हमने देखा कि वह पूंजी सघन व्यवस्था है । इस रणनीति को अपनाने के लिए मूलभूत आवश्यकता है पूंजी, जिसका अधिकतर किसानों के पास अभाव होता है । इसलिए वे ग्रामीण क्षेत्र में उपलब्ध कृषि वित्त के विभिन्न स्रोतों पर निर्भर होते हैं । कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए आवश्यक है उचित ब्याज दर एवं उचित समय पर ऋण की उपलब्धता। गैर संस्थागत स्रोतों में साहूकार और व्यापारियों द्वारा शोषण से बचाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी बढ़ जाती है । किन्तु उत्पादन में अनिश्चितता के कारण कृषि को वाणिज्य बैंकों एवं बीमा कम्पनियों के लिए एक जोखिमपूर्ण व्यवसाय माना जाता है ।

दूसरे खण्ड कृषि विपणन में विपणन व्यवस्था की कमजोरियों और इन दोषों को दूर करने के विभिन्न सरकारी नीतियों की चर्चा की जायेगी। किसानों की स्थिति सुधारने के लिए कृषि के उन्नत तरीकों से उत्पादन बढ़ाने के साथ यह आवश्यक है कि उनके द्वारा उत्पादित अतिरेक को बाजार में उचित मूल्य दिलाया जाए जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो और वे उधार को वापस कर सके। इस दृष्टि से कृषि वित्त और कृषि विपणन में घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. कृषि साख के विभिन्न स्रोतों की जानकारी।
2. कृषि वित्त नीति के मुख्य उद्देश्य समझना।
3. ऋण के संस्थानात्मक स्रोतों की विशेष रूप से चर्चा।
4. कृषि विपणन की भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्थिति एवं उसको सुधारने के उपायों की विवेचना।

15.3 कृषि साख का वर्गीकरण

15.3.1 उद्देश्य के अनुसार ऋण

मोटे तौर पर ऋण को दो वर्गों में बांटा जाता हैः-

(क) **उत्पादक उद्देश्य** - ये चालू एवं पूंजी व्यय के रूप में फार्म एवं गैर-फार्म कार्यों के हेतु लिए जाते हैं। ये ऋण परिवार की आर्थिक क्रिया को बढ़ाने के साथ परिवार के कल्याण को प्रोन्नति करते हैं। उत्पादक ऋण का बड़ा हिस्सा आर्थिक उन्नति की ओर संकेत करता है।

(ख) **अनुत्पादक ऋण** - ये ऋण परिवार के खर्च को पूरा करने, मुकदमेबाजी की लागत को पूरा करने एवं कई प्रकार की व्यक्तिगत जरूरतों के लिए प्राप्त किए जाते हैं। इनसे उत्पादन में वृद्धि नहीं होती। यदि इन्हें बार-बार लिया जाता है तो आय सृजन के आभाव में वापस न कर पाने के कारण परिवार तंग-हाल हो सकता है।

15.3.2 स्रोत के आधार पर वर्गीकरण

I. गैर-संस्थानात्मक स्रोत

1.गाँवों में दो प्रकार के साहूकार होते हैं -

(क)जिनका व्यवसाय कुछ और होता है परन्तु वे सहायक व्यवसाय के रूप में उधार देते हैं। जैसे कृषक साहूकार व दुकानदार साहूकार

(ख)दूसरे प्रकार के साहूकार जिनका व्यवसाय प्रमुखतया रूपया उधार देना होता है।

साहूकारों का महत्व आज के सन्दर्भ में कम हो गया है फिर भी गाँवों में साहूकारों के अस्तित्व के अनेक कारण हैं-

i. साहूकार, उत्पादक और अनुत्पादक दोनों प्रकार के प्रयोजनों के लिए तथा अल्पावधि औरदीर्घावधि दोनों प्रकार की आवश्कताओं के लिए किसान को खुले रूप में ऋण देता है।

ii. साहूकार कृषक को आसानी से उपलब्ध होता है कुछ परिवारों में वे पीढ़ियों से जुड़े रहते हैं।

iii. लेन-देन के तरीके सरल और लचीले होते हैं।

iv. ऋण वापसी सामान्यतया किसी न किसी तरह से कर लेते हैं।

2.व्यापारी एवं कमीशन एजेण्ट भी साहूकारों की तरह होते हैं क्योंकि इनकी ब्याज दरें अधिक होती हैं। ये फसल के पकने से पहले ही उत्पादक उद्देश्यों के लिए ऋण उपलब्ध कराते हैं और किसानों पर दबाव डालते हैं कि वे कम कीमत पर फसल बेचें। फलतः उन्हें भारी कमीशन वसूलने का मौका मिल जाता है।

3.सम्बन्धी - ये अनौपचारिक रूप में लिए जाते हैं। इन पर या तो ब्याज लिया नहीं जाता या इनकी दर बहुत कम होती है, सामान्यतया ये फसल कटने के बाद लौटा दिये जाते हैं किन्तु ये स्रोत अनिश्चित एवं अपर्याप्त हैं।

4.भू-स्वामी एवं अन्य - छोटे किसान एवं काश्तकार, भू-स्वामियों एवं अन्य पर अपनी आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहते हैं। इस वित्त के माध्यम से छल द्वारा छोटे किसानों की भूमि हड़प ली जाती है और भूमिहीन श्रमिकों को बन्धुआ मजदूर बनने पर मजबूर कर दिया जाता है।

गैर संस्थागत स्रोतों के दोष -

ऊँची ब्याज दर के कारण कभी-कभी किसान मूलधन एवं ब्याज लौटाने में असमर्थ होते हैं, छोटे किसानों को आसानी से ऋण नहीं मिल पाता और इन ऋणों का प्रयोग मुख्यतया अनुत्पादक उपभोग कार्यो के लिए होता है।

संस्थागत स्रोत जिसमें सहकारी समितियाँ, व्यापारिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, भूमि विकास बैंक, नाबार्ड आदि आते हैं। ये सभी प्रकार के किसानों को ऋण उपलब्ध कराते हैं और इनकी ब्याज दर उचित और कम होती है। किसान शोषण से बच जाते हैं। विस्तृत चर्चा आगे की जायेगी।

15.3.3 अवधि के आधार पर ये तीन भागों में विभक्त किये जाते हैं-

(क)अल्प कालीन ऋण-जो 15 महीने से कम अवधि के लिए होते हैं और कृषक कृषि सम्बन्धी अल्पकालीन आवश्यकता जैसे बीज, खाद, जानवरों के लिए चारा आदि तथा गृहकार्य के लिए लेता है। ये ऋण अल्पावधि ऋण होते हैं जो साधारणतया फसल काटने पर चुका दिये जाते हैं।

(ख)मध्यम कालीन ऋण- जो 15 महीने से अधिक तथा 5 वर्ष से कम अवधि के लिए होते हैं और सामान्यतया पशु खरीदने, खेत पर कुछ सुधार लाने, छोटे मोटे औजार खरीदने के लिए किये जाते हैं। अल्पावधि ऋणों की तुलना में ये ऋण अधिक मात्रा में होते हैं और इन्हें अपेक्षाकृत अधिक समय बाद ही चुकाया जा सकता है।

(ग)दीर्घकालीन ऋण - यदि अतिरिक्त भूमि खरीदने, भूमि में स्थायी सुधार करने ऋण अदा करने तथा महंगी मशीन खरीदने आदि के लिए लिये जाते हैं तथा जिनकी अवधि 5 वर्ष से ऊपर की होती है।

15.4 कृषि साख के संस्थागत स्रोत

संस्थानात्मक ऋण की आवश्यकता निजी ऋण के दोषों को दूर करने के लिए होती है। निजी ऋण के मुख्य दोष हैं-

1. निजी ऋण लाभ से प्रेरित होने के कारण शोषणात्मक होता है।
2. महंगा होने के साथ भूमि की उत्पादकता से इसका सम्बन्ध नहीं होता।
3. कृषि सुधारों के लिए लम्बे समय के लिए यह ऋण उपलब्ध नहीं होता अतः कृषि उत्पादन में विशेष प्रगति नहीं की जा पाती।
4. ये कृषकों की अन्य आवश्यकताओं के साथ समन्वयित नहीं होते।
5. वांछनीय दिशाओं में प्रवाहित नहीं हो पाता और जरूरतमन्दों को नहीं मिल पाता है।

15.4.1 सहकारी ऋण समितियाँ

सहकारी वित्त प्रबन्ध ग्राम ऋण का सबसे सस्ता स्रोत होता है और इसमें किसानों के शोषण का भय नहीं होता। सक्रिय प्राथमिक उधार समितियाँ 86 प्रतिशत गाँवों में विस्तारित हैं। फिर भी किसानों की सभी ऋण सम्बन्धी आवश्यकताएं सहकारी समितियों द्वारा पूरी नहीं हो पायी हैं। पश्चिमी बंगाल, बिहार, उड़िसा और राजस्थान में यह सफल नहीं हो पाया। यह भी देखा गया कि जरूरतमन्द किसानों को सहकारिता के लाभ नहीं मिल पाये हैं।

15.4.2 भूमि विकास बैंक

ये बैंक किसान की भूमि बन्धक रखकर दीर्घकालीन ऋण प्रदान करते हैं। यह सस्ता होने के साथ लम्बे समय में अदा किया जाता है। पिछली ऋण अदायगी, नई जमीन खरीदने, ट्यूबवेल लगवाने, भूमि पर स्थायी सुधार हेतु इन बैंकों से ऋण लेना सुविधाजनक होता है। कुछ राज्यों में केन्द्रीय तथा प्राथमिक भूमि विकास बैंक होते हैं पर कुछ राज्यों में जहाँ प्राथमिक भूमि विकास बैंक नहीं हैं, वहाँ केन्द्रीय भूमि विकास बैंक की शाखाएं हैं। भूमि विकास बैंकों की पूँजी अंशपूंजी, जमा, ऋण पत्रों के निर्गमन आदि से प्राप्त होती है। इन बैंकों की ऋण देने की क्षमता में नाबार्ड द्वारा पुनर्वित्त की सुविधा के माध्यम से वृद्धि हुई है किन्तु बहुत से किसान इसकी लाभदायकता से परिचित नहीं हैं। ये बैंक

भूमि की प्रतिभूति के विरूद्ध ऋण देते हैं, इस कारण बड़े भूस्वामियों ने इनका लाभ उठाया है परन्तु छोटे किसान इसके लाभों से वंचित रह गये हैं।

15.4.3 वाणिज्य बैंक

1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद वाणिज्यिक बैंकों को कृषि क्षेत्र की ओर ध्यान देने के लिए बाध्य किया गया, जून 1969 में अनुसूचित बैंकों ने 44 करोड़ रूपये का वित्त उपलब्ध कराया। निरन्तर विस्तार के साथ 2008-09 में 2,02,856 करोड़ रूपया (76.5ः) ऋण उपलब्ध कराया।

15.4.4 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

2 अक्टूबर 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना हुई। देश के सार्वजनिक क्षेत्र में बैंकों को उनकी पूंजी में भागीदारी तथा प्रारम्भिक अवस्था में संगठनात्मक सहयोग द्वारा प्रवर्तित करें। नाबार्ड के माध्यम से केन्द्र सरकार इनकी पूंजी में 50 प्रतिशत लगाती है और राज्य सरकार का 15 प्रतिशत हिस्सा होता है। ये प्रायः, जिन क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधा का अभाव हो, वहाँ खोले जाते हैं। इनका कार्यक्षेत्र सामान्यतया जिलों का समूह होता है। इनके प्रमुख उद्देश्य हैं -

1. समाज के कमजोर वर्गों को ऋण प्रदान करना।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में शीघ्र बैंकिंग सुविधाये स्थापित करना
3. ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की उपलब्धता।

2006-07 तक 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक संस्थापित हो चुके थे और वे ग्रामीण जनता को लगभग 20,440 करोड़ रूपये वार्षिक उधार के रूप में उपलब्ध कराते रहे हैं। इन बैंकों के ऋणों का 90 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गों को दिया जाता है।

15.4.5 सरकार द्वारा ग्रामीण उधार

सरकार किसानों को सामान्यतः आपातकाल में जैसे अकाल, बाढ़ आदि में कम ब्याज पर (6 प्रतिशत के करीब) दिये जाते हैं। ये ऋण आसान किस्तों में भू-कर के साथ लौटाए जाते हैं। परन्तु इनकी स्थिति काफी असन्तोषजनक रही है क्योंकि किसान तक्कावी ऋणों को प्राप्त करने में बहुत कठिनाई महसूस करते हैं और भ्रष्टाचार के फलते कभी-कभी अफसरों से ऋण स्वीकृत कराने के लिए रिश्वत भी देनी पड़ती है।

15.4.6 नाबार्ड

12 जुलाई 1982 में कृषि तथा ग्रामीण विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक नाबार्ड की स्थापना शिवरमन कमेटी की संस्तुति पर हुई। इसका मुख्यालय मुम्बई में है। रिजर्व बैंक ने इसकी हिस्सा पूंजी के आधे के बराबर योगदान दिया है और शेष आधा भाग भारत सरकार द्वारा जुटाया गया है। रिजर्व बैंक को नाबार्ड के निदेशक मण्डल पर अपने तीन केन्द्रीय बोर्ड के निदेशकों को मनोनीत करने और अपने एक उप-गर्वनर को नाबार्ड का अध्यक्ष नियुक्त करने का अधिकार है। इसकी अधिकृत पूँजी 500 करोड़ रूपये है और चुकती पूंजी 1999-00 में 100 करोड़ रूपये से बढ़ाकर 2,000 करोड़ रूपये कर दी गई है। यह भारत सरकार, विश्व बैंक तथा अन्य एजेंसियों से राशियाँ प्राप्त करता है। यह बाजार से भी निधियाँ प्राप्त करता है, और राष्ट्रीय कृषि निधि के संसाधनों का प्रयोग करता है। नाबार्ड अल्पकालीन सार्वजनिक जमा स्वीकार नहीं कर सकता इसलिए भारतीय रिजर्व बैंक से प्राप्त साधनों द्वारा नाबार्ड अल्पकालीन उधार और कार्यकारी पूंजी की आवश्यकताओं को पूरा करता है। नाबार्ड के संसाधनों का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत ग्रामीण आधार संरचना में निवेश की कमी की क्षतिपूर्ति के लिए केन्द्रीय बजट 1995-96 में 2,000 करोड़ की राशि द्वारा स्थापित किया गया। उत्तरोत्तर बजटों में भारत सरकार ने आर0आई0डी0एफ0 को जारी रखा है। इसकी स्थापना राज्य सरकारों के ग्राम आधार संरचना सम्बन्धी प्रोजेक्ट्स जो राशि के अभाव के कारण रूके थे उन्हें कार्यान्वित करना था। अब राज्य सरकारों के अलावा कई संस्थान एवं समूह जैसे पंचायती राज संस्थान, स्वयं सहायता समूह, गैर सरकारी संस्थाएं भी इन प्रोजेक्ट्स को कर सकते हैं।

नाबार्ड ग्रामीण क्षेत्र के बैंक उधार को सही दिशा प्रदान करता है, पुनः वित्त की सुविधा उपलब्ध कराता है, ग्रामीण क्षेत्र में उधार उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं के संसाधन आधार में वृद्धि करता है और ग्रामीण सहकारी बैंकों के कार्य का पर्यवेक्षण करता है।

15.5 कृषि वित्त नीति

किसानों को सस्ता और पर्याप्त उधार उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से बहु एजेन्सी प्रणाली अपनायी गयी। कृषि वित्त नीति के मुख्य उद्देश्य है-

(क) ग्रामीण क्षेत्र में अधिक मात्रा और समयानुसार ऋण की उपलब्धता बनाये रखना।

(ख) साहूकारों के महत्व को क्रमशः कम करते हुए समाप्त करना।

(ग) ऋण के उचित वितरण के माध्यम से क्षेत्रीय असन्तुलनों को कम करना।

(घ) विशिष्ट प्रोगोमों के लिए आवश्यक ऋण सहायता उपलब्ध कराना।

1951-52 के दौरान ए0डी0 गोरवाला की अध्यक्षता में रिजर्व बैंक ने अखिल भारतीय ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति गठित की जिसकी संस्तुतियों के आधार पर सहकारी समितियों को मजबूत बनाने पर बल दिया गया। 1955 में ग्रामीण साख योजना की प्रमुख संस्था के रूप में स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना हुई। अखिल भारतीय ग्राम सर्वेक्षण समिति (1969) ने बहु एजेन्सी प्रणाली द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में ऋण उपलब्ध कराने की बात कही। सरकार ने स्वीकारा कि सिर्फ सहकारी समितियाँ ग्राम ऋण की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकती और वाणिज्य बैंकों की भागीदारी सुनिश्चित करनी होगी। इसी दिशा में सरकार ने 1969 में 20 बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। इसके बाद क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक स्थापित किए गये। बहु एजेन्सी प्रणाली के अन्तर्गत एक विशेष बैंकिंग संस्था की आवश्यकता महसूस की गई जो इन सबकों समन्वयित कर सके। इस कारण कृषि ग्राम विकास के लिए राष्ट्रीय बैंक की स्थापना 1982 में हुई।

बी. वैंकेटैया की अध्यक्षता में रिजर्व बैंक ने अखिल भारतीय ग्रामीण साख समीक्षा समिति गठित की जिसने अपनी रिपोर्ट जुलाई 1969 में दीः-

(क) रिजर्व बैंक के ग्राम साख व्यवस्था को पुनर्गठित करने, रिजर्व बैंक में कृषि साख बोर्ड की स्थापना।

(ख) लघु किसान विकास एजेन्सी की स्थापना तथा

(ग) कृषि वित्त की अधिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए ''कृषि पुनर्वित्त निगम '' की सिफारिश की, जो बाद में नाबार्ड में मिल गयी। कृषि के लिए संस्थानात्मक ऋण का हिस्सा लगातार बढ़ता जा रहा है, किन्तु-

(1) ग्राम ऋण में सहकारी बैंकों का योगदान प्रतिशत रूप में घटता जा रहा है, 1984-85 में 55 प्रतिशत से 2005-06 में 22 प्रतिशत

(2) क्षेत्रीय ग्राम बैंकों का भाग महत्वहीन है - 6 प्रतिशत से 8 प्रतिशत के बीच

(3) वाणिज्य बैंकों के भाग में लगातार वृद्धि हुई है - 45 प्रतिशत से 2005-06 में 70 प्रतिशत तकए0एम0 खुशरो की अध्यक्षता में रिजर्व बैंक ने अखिल भारतीय ग्रामीण साख समीक्षा समिति गठित की जिसने अपनी रिपोर्ट 1989 में दी। इसकी प्रमुख सिफारिशें थीं -

(क) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को उनके प्रवर्तक बैंकों के साथ मिला देना।

(ख) कृषि क्षेत्र के ऋणों के सम्बन्ध में दो ब्याज दरों की सिफारिश लघु तथा सीमान्त कृषकों के लिए व्यापारिक बैंकों द्वारा जमाओं पर दिए जाने वाले ब्याज से 1.5 प्रतिशत अधिक ब्याज दर पर ऋण, दूसरे अन्य कार्यों के लिए ऊँची दर पर ऋण पर ब्याज दर 15.5 प्रतिशत से अधिक न हो।

1969 में रिजर्व बैंक द्वारा नियुक्त नारीमन समिति ने बैंकों के लिए 'क्षेत्रवार दृष्टिकोण' स्वीकार किया और इसे व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए लीड बैंकिंग स्कीम का सुझाव दिया। रिजर्व बैंक द्वारा इसे स्वीकार कर लिया गया और 1969 के अन्त में देश के सभी 380 जिलों में इसे लागू कर दिया गया। प्रत्येक बैंक को एक जिला आवंटित कर दिया गया और उसे वहाँ कृषि वित्त में अग्रणी भूमिका (लीडिंग रोल) निभाने को निर्देशित किया गया। सरकार और रिजर्व बैंक दोनों इस स्कीम को अधिक महत्व देते हैं। लगभग सभी जिलों में यह स्कीम लागू है।

ग्रामीण साख के सम्बन्ध में 1988 से सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है जिसमें प्रत्येक व्यापारिक बैंकों की ग्रामीण तथा अर्धनगरी शाखा को ''गाँवों के समूह'' या एक विशेष क्षेत्र को सौंपा जाता है, जिसके अन्दर वे कार्य करते हैं और विकास के लिए नियोजित रास्ता अपनाते हैं। रिजर्व बैंक द्वारा गठित वी0एस0 व्यास सलाहकार समिति ने अपनी रिपोर्ट 30 जून 2004 को दी। सरकार द्वारा मानी गई इसकी प्रमुख सिफारिशें हैं - फसल ऋणों के लिए 5,000 रूपये तक तथा कृषि व्यवसाय और कृषि चिकित्सालयों के ऋणों के लिए 5 लाख रूपये तक मार्जिन में छूट और सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण के प्रतिबन्धात्मक प्रतिबन्धों से मुक्ति।

अल्पकालीन एवं मध्यकालीन उत्पादक उधार का लगभग 80 प्रतिशत संस्थानिक स्रोतों से उपलब्ध कराया जाता है। सहकारी उधार पर आने वाले वर्षों में अधिक फोकस किया जायेगा। इसके लिए वाणिज्य बैंक प्रत्यक्ष उधार देने की अपेक्षा अल्पकालीन उत्पादक उधार के लिए सहकारी प्रणाली का अधिकाधिक प्रयोग करने लगेंगें। नाबार्ड ने ''स्वयं सहायता समूहों'' को बैंकों के साथ जोड़ने की पहल को गति प्रदान की है। कृषि साख की दिशा में हाल ही के वर्षों में व्याष्टि वित्त ''गरीबों के साथ बैंकिंग'' की एक नयी पद्धति है और इसमें निम्न सौदा लागत के साथ वसूली के ऊँचे अनुपात को सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है। स्वयं सहायता समूह बैंक संयोजन प्रोग्राम वाणिज्य बैंकों, ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों और सहकारी बैंकों की 30,000 शाखाओं द्वारा 30 राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों के 520 जिलों में बड़ी तेजी के साथ लागू किया जा रहा है। व्याष्टि वित्त को अतिरिक्त रोजगार बढ़ाने और गरीबी दूर करने का सबसे कारगर उपाय समझा गया है। ग्राम क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों की सफलता का गरीबी दूर करने पर सकारात्मक प्रभाव ही होगा।

15.5.1 किसान क्रेडिट कार्ड

इसकी शुरूआत अगस्त 1998 में की गयी जिससे किसानों को व्यापारिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से ऋण लेने में सुविधा हो सके। नाबार्ड क्रेडिट कार्ड की प्रबन्धक इकाई है जबकि सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा वाणिज्यिक बैंक इसे किसानों को बांटने की वितरक एजेन्सीज हैं। शुरू से लेकर अब तक बांटे गये कार्डों में सर्वाधिक अंश व्यापारिक बैंकों का रहा है। इसके प्राप्तकर्ताओं का वैयक्तिक दुर्घटना के विरूद्ध 5,000 रूपये का बीमा और मृत्यु के विरूद्ध या स्थायी अयोग्यता के विरूद्ध 25,000 रूपये का बीमा भी किया जाता है।

15.5.2 किसानों के लिए ऋण माफी योजना

2008-09 बजट में घोषित यह योजना मुख्यतया छोटे तथा सीमान्त किसानों द्वारा 31 मार्च 1997 से 31 मार्च 2007 के बीच लिए गये ऋण से सम्बन्धित हैं। पूर्ण ऋण माफी उन्हीं किसानों को दी जायेगी जिनका जोत 2 हेक्टेयर (5 एकड़) से कम है। बड़े किसानों को यह छूट दी गयी कि यदि वे जून 2009 तक अपने ऋणों का भुगतान अधिक से अधिक तीन किश्तों में कर दें तो इन्हें 25 प्रतिशत की छूट प्राप्त होगी। सूखा के कारण केन्द्रीय बजट 2009-10 में इसे अक्टूबर 2009 तक बढ़ा दिया गया है। इसके क्रियान्वयन के सम्बन्ध में व्यापारिक तथा सहकारी बैंकों के सम्बन्ध में नोडल एजेन्सी रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा ग्रामीण संस्थाओं की नोडल एजेन्सी नाबार्ड है।

15.5.3 कृषि बीमा योजनाएं

प्रयोगिक फसल बीमा योजना - 1974-75 में आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडू में कपास, गेहूं एवं मूंगफली की फसलों के लिए शुरू की गई। केन्द्र प्रायोजित तथा सभी प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं से आर्थिक सुरक्षा।

पायलट फसल बीमा योजना - 1979 में राज्यों के सहयोग से 9 राज्यों आन्ध्र प्रदेश, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, उड़िसा, तमिलनाडू, पं बंगाल तथा मध्य प्रदेश में कार्यान्वित की गई। कपास, मूंगफली, मक्का तथा ज्वार/बाजरा।

व्यापक फसल बीमा योजना - 1985 में कुछ क्षेत्रों में शुरू होकर पूरे देश में लागू कर दी गई। उद्देश्य प्रतिकूल अवस्थाओं में होने वाली क्षति से सुरक्षा।

राष्ट्रीय बीमा योजना - 1999 में पूरे देश में लागू उद्देश्य प्राकृतिक तथा स्थानीय आपदाओं से कृषकों को आर्थिक सुरक्षा। केन्द्र प्रायोजित किन्तु व्यय राशि केन्द्र तथा राज्य समान रूप से वहन

करेंगें। दलहन, तिलहन, मोटे अनाजों से शुरू हो गन्ना, कपास, आलू, बागवानी तथा वाणिज्यिक फसलों को भी शामिल किया गया।

कृषि आय बीमा योजना - 2003-04, किसानों को उनकी उपज का कुल मूल्य न्यूनतम समर्थन मूल्य पर आधारित मिलने की गारण्टी। इसके पूरी तरह से लागू होने पर राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना समाप्त।

वर्षा बीमा योजना - भारतीय कृषि बीमा निगम लिमिटेड द्वारा दक्षिण-पश्चिम मानसून की अवधि 2004 में शुरू की गई।

15.6 कृषि विपणन व्यवस्था

किसानों की स्थिति में सुधार हेतु उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ उसका उचित विपणन आवश्यक है जिससे उनको अपने उत्पादों का उचित मूल्य मिल सके और वे पूँजी सघन उन्नत उत्पादन की तकनीकों में निवेश कर सकें। अतिरिक्त उत्पादन का विक्रय किसान तीन तरीके से करते हैं -

i. अतिरिक्त फसल ग्राम के साहूकार या महाजन एवं व्यापारी को बेच देना। व्यापारी स्वयं के लिए कृषि उत्पादन क्रय कर सकता है अथवा किसी बड़ी वाणिज्यिक फर्म या बड़े व्यापारी का अभिकर्ता (एजेन्ट) बनकर फसल खरीद सकता है।
ii. किसान अपने उत्पादन को साप्ताहिक या अर्ध साप्ताहिक ग्राम बाजारों (हाट) में बेच सकता है। मेलों में अपने उत्पादन और पशुओं को बेच सकते हैं।
iii. उत्पादन मण्डियों में बेच सकते हैं। यह उत्पादन केन्द्रों से दूर हो सकती है, यातायात की सुविधाओं के आभाव में कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। दलालों के माध्यम से किसान आढ़तियों (थोक व्यापारियों) को अपना उत्पादन बेचते हैं।

भारत में कृषि विपणन अत्यन्त ही दोषपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण है जिससे किसानों को अपने उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता। ज्यादातर भारतीय कृषक गरीब तथा अशिक्षित हैं इसलिए वह अपने हित और बाजार में व्यापारियों एवं दलालों की कुटिलताओं को समझ नहीं पातें। व्यापारी किसानों की गरीबी का नाजायज फायदा उठाते हैं और उन्हें बाध्य करते हैं कि किसान अपनी फसल खलिहान से ही कम दाम पर उन्हें बेच दें। संग्रह के लिए गाँवों में गोदामों की उचित सुविधा न होने से उनकी 10 से 20 प्रतिशत उपज चूहे, चीटियाँ आदि नष्ट कर देते हैं। अतः अपने उत्पादन को रोक

कर रखने की क्षमता कम होती और वे ऊँचा मूल्य मिलने का इंतजार नहीं कर सकते। किसानों की निर्धनता और ऋण ग्रस्तता उन्हें अपने उत्पादों का बाध्य विक्रय, महाजनों और व्यापारियों को करने पर विवश कर देती है। परिणामतः उनकी कमजोर स्थिति और कमजोर हो जाती है। गाँवों से मण्डी तक ले जाने के लिए उचित यातायात सुविधाएं नहीं हैं, बहुत सी कच्ची सड़कें बरसात में इस्तेमाल नहीं की जा सकतीं। इस कारण समृद्ध किसान जिनके पास काफी अतिरेक उपलब्ध होता है मण्डियों में नहीं जाना चाहते। किसानों को मण्डियों में अपनी फसल बेचने के लिए काफी प्रतीक्षा करनी पड़ती है। किसान का कोई संघ नहीं होता जबकि मण्डी के व्यापारियों का संघ होता है। इस कारण उनकी सौदा शक्ति अधिक होती है। किसान दलालों के माध्यम से आढ़तियों को अपनी फसल बेंचता है जिनकी आम तौर पर मिलीभगत होती है, फलस्वरूप जो कीमत निर्धारित होती है वह आढ़तियों के पक्ष में होती है न कि किसानों के। इसके अतिरिक्त माप और तौल के गलत बट्टों द्वारा किसानों को लूटा जाता है। किसान अपने उत्पादन का ग्रेडेशन भी नहीं कर पाता। इसलिए उसकी फसल को घटिया किस्म की बताकर उसका उचित मूल्य नहीं मिल पाता। किसान और अन्तिम उपभोक्ता के बीच बिचौलियों की अधिक संख्या के कारण उपज का काफी भाग हड़प उठता है। किसानों को बड़ी-बड़ी मण्डियों में प्रचलित कीमतों की सही जानकारी न होने की वजह से भी दलालों और आढ़तियों द्वारा तय कीमत स्वीकारनी पड़ती है।

15.7 कृषि विपणन को सुधारने के सरकारी प्रयास

सरकार ने कृषि विपणन को उन्नतशील करने के लिए कई उपाय किये हैं। अखिल भारतीय भण्डारागार निगम की स्थापना जो कस्बों तथा मण्डियों में गोदामों को स्थापित तथा प्रबन्धित करता है। किसानों की उपज का क्रय-विक्रय हेतु सहकारी विपणन एवं विधायन समितियों की स्थापना की गई है। ग्रामीण यातायात सुविधाओं को विकसित किया जा रहा है। विनियमित मण्डियों के माध्यम से किसानों के हितों की रक्षा करना। बाजार सम्बन्धी सूचनाओं को प्रसारित करने के लिए विभिन्न साधन अपनाये जा रहे हैं। कृषि वस्तुओं की कीमतें सरकार द्वारा कृषि कीमत आयोग की सिफारिशों के आधार पर निश्चित की जाती हैं।

15.7.1 विनियमित मण्डियाँ

कृषि विपणन के अस्वस्थ बाजार व्यवहारों को दूर करने और किसानों को उनके उत्पादों का उचित मूल्य दिलाने के लिए विनियमित मण्डियों की स्थापना की जाती है। यह राज्य या स्थानीय सरकार द्वारा बनाये गये कानून के अन्तर्गत स्थापित बाजार हैं। जहाँ व्यापारिक व्यवहार निश्चित नियमों तथा नियंत्रणें के अन्तर्गत होते हैं। ये बाजार कुछ वस्तुओं या किसी एक विशिष्ट वस्तु के लिए बनाये जा सकते हैं। ये बाजार समिति द्वारा प्रबन्धित होते हैं। इस प्रबन्ध समिति में राज्य सरकार (स्थानीय

सरकार), किसानों, कमीशन एजेण्टों या दलालों के प्रतिनिधि होते हैं। इस समिति को एक निश्चित अवधि के लिए सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है। समिति मण्डियों में वसूल किये जाने वाले कमीशन को निश्चित करती है। मण्डी समिति यह भी देखती है कि दलाल, क्रेता और विक्रेता दोनों के लिए निष्पक्ष रूप से कार्य करें, जिससे किसानों को मिलने वाली कीमतों से अनाधिकृत कटौतियाँ समाप्त की जा सकें। सही माप और तौल के बट्टों का प्रयोग सुनिश्चित करती है। समिति झगड़ों का मध्यस्थ निर्णय भी करती है। नियमित बाजार प्रायः उन क्षेत्रों में अधिक खोले जाते हैं जहाँ कपास, तम्बाकू, गैर परम्परांगत वाणिज्यिक फसलें बोयी जाती हैं तथा साप्ताहिक बाजारों तथा हाट में बेची जाती हैं। इन मण्डियों का कार्यक्षेत्र सभी मुख्य फसलों तक फैलाना होगा। पशुधन, मछलियों, फलों तथा सब्जियों के लिए अलग मण्डियाँ कायम करनी होगी।

15.7.2 सहकारी विपणन

कृषि विपणन व्यवस्था में सहकारी विपणन समितियाँ बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं। 10 या 10 से अधिक किसान मिलकर अपने उत्पादों को बेचने के उद्देश्य से सहकारी विपणन समितियों का निर्माण करते हैं। 1954 से पहले सहकारी साख समितियाँ तथा सहकारी विपणन समितियाँ अलग-अलग बनायी जाती थी पर 1954 के बाद बहुउद्देश्यीय समितियों का गठन शुरू हुआ। समिति के सदस्य अपनी अतिरिक्त उपज समिति को बेचने के लिए तैयार हो जाते हैं। जब सदस्य अपना उत्पाद समिति को देते हैं उसके बदले उन्हें कुछ अग्रिम मिल जाता है। समिति सदस्यों तथा गैर सदस्यों के उत्पाद अपने पास एकत्र करती है, उनका विधायन तथा ग्रेडिंग कर उन्हें बेचने की व्यवस्था करती है। यदि बाजार मूल्य नीचा होता है तो वह कुछ दिन इंतजार करके उसे बेचती है। उपज बिकते ही किसानों को उपज की शेष कीमत भी अदा कर दी जाती है। व्ययों को काटने के बाद यदि समिति को लाभ होता है तो वह लाभांश के रूप में सदस्यों के बीच बांट दिया जाता है। विपणन समितियाँ किसानों के संघ के रूप में कार्य करती हैं जिससे उन्हें अपने उत्पादन का उचित मूल्य सुनिश्चित हो सके। इसका प्रबन्धन वैतनिक कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। एक समिति के अधीन कई गाँव होते हैं।

सहकारी विपणन समितियों के लाभः

i. सहकारी विपणन प्रणाली सामूहिक सौदा शक्ति प्रदान कर निर्बल किसानों को मजबूती और न्याय देती है।
ii. अग्रिम मिलने के कारण किसानों की प्रतीक्षा करने की शक्ति बढ़ती है और उनके दैनिक क्रिया-कलापों में बाधा नहीं आती।

iii. समिति के भण्डार गृहों की वजह से उत्पाद चूहों, चींटियों आदि से सुरक्षित रहते हैं। समिति या तो यातायात के लिए खुद के या फिर सस्ते परिवहन की व्यवस्था करती है।

iv. यह किसानों को अपने उत्पादों की गुणवत्ता सुधारने के लिए प्रेरित करती है और उन्हें मिलावट करने से रोकती है।

v. संभरण (पूर्ति) को नियंत्रित कर कीमतों को प्रभावित करती है।

vi. बिचौलियों को प्रतिस्थापित कर किसानों के लाभ को बढ़ाती है।

  I. विपणन के अतिरिक्त गुणवत्तापूर्ण आदानों की व्यवस्था करवाती है।

  II. विपणन समितियों के अतिरिक्त कृषि विधायन समितियाँ भी बनायी जा सकती हैजो कृषि विपणन में सहायक है।

भारत सरकार और रिजर्व बैंक के सक्रिय प्रोत्साहन के अधीन सहकारी विपणन ने महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडू, उत्तर प्रदेश और बिहार में भारी प्रगति की है। अखिल भारतीय ग्राम साख सर्वेक्षण समिति की सिफारिशों के आधार पर सहकारी विपणन और सहकारी साख के बीच सम्बन्धों को प्रोत्साहित किया जा रहा है।

सहकारी विधायन समितियाँ जिनकी संख्या 1962-63 में 326 थी आज के सन्दर्भ में लगभग 2,500 है। चीनी उत्पादन के 58 प्रतिशत भाग के लिए सहकारी समितियाँ जिम्मेदार हैं। सहकारी चीनी कारखाने, चीनी प्राप्ति, क्षमता उपयोग और उप-उत्पादों के प्रयोग में सक्षम हैं। इन समितियों ने सामाजिक सेवाओं, कृषि विस्तार, शिक्षा संस्थाएं और अस्पताल स्थापित करने में विशेष योगदान किया है। यह समितियां नान-फार्म क्रियाओं को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में प्रभावित कर ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन में भी सहायक हो रहीं हैं।

राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन भारतीय संघ -

यह राष्ट्रीय स्तर पर एक शीर्ष सहकारी संगठन है। कृषि वस्तुओं की प्राप्ति, वितरण, निर्यात तथा आयात में इसकी प्रमुख भूमिका है। यह आवश्यक कृषि वस्तुओं को अतिरेक वाले क्षेत्रों से कमी वाली क्षेत्रों में ले जाने में सहायक है। नैफेड (छ।थ्म्क्) ने मूल्य स्तर के स्थिरीकरण तथा बाजार में उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम यह 1963 में स्थापित हुआ। प्रमुखतः यह सहकारी समितियों के माध्यम से कृषि वस्तुओं तथा अन्य चयनित वस्तुओं के उत्पादन, विधायन, भण्डारण तथा विपणन सम्बन्धी कार्यक्रमों को आयोजित तथा परिवर्तित करता है।

भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास परिषद यह 1987 में जनजातियों को व्यापारियों के शोषण से बचाने तथा उनके द्वारा उत्पादित और निर्मित वस्तुओं के उचित मूल्य निश्चित कराने के उद्देश्य से शुरू हुआ।

15.7.3 भण्डारण तथा वेयर हाउसिंग

कृषि वित्त उपसमिति ने 1945 और ग्राम बैंकिंग जाँच समिति ने 1950 में भारत में ग्रामीण वित्त प्रबन्ध के लिए भण्डागार के विकास पर बल दिया। अखिल भारत ग्राम उधार सर्वेक्षण समिति 1954 ने देशव्यापी भण्डागारों के विकास के लिए प्रोग्राम में तीन स्तरीय प्रणाली की सिफारिश की- राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर तथा जिला स्तर और ग्रामीण स्तर पर। संस्तुतियों के अनुसार भारतीय खाद्य निगम तथा केन्द्रीय वेयर हाउससिंग निगम को राष्ट्रीय स्तर पर सभी महत्वपूर्ण केन्द्रों पर भण्डारण सुविधा की व्यवस्था करने का निर्देश हुआ। राज्य और राज्य वेयर हाउसिंग निगम राज्य तथा जिला स्तर पर तथा ग्रामीण स्तर पर सहकारी समितियाँ भण्डारण की व्यवस्था करेंगी। समिति की संस्तुतियों को स्वीकृत करते हुए राष्ट्रीय सहकारी विकास तथा वेयर हाउसिंग बोर्ड (1956) तथा केन्द्रीय वेयर हाउसिंग निगम (1957) तत्पश्चात राज्य स्तर पर राज्य वेयर हाउसिंग निगमों की स्थापना हुई। भारतीय खाद्य निगम के अपने गोदाम हैं और यह अन्य स्रोतों से भी किराये पर गोदाम लेता है। केन्द्रीय भण्डागार निगम और राज्यीय भण्डागार निगमों को मुख्य कार्य उचित स्थानों पर गोदाम कायम करना है और उनका कृषि-उत्पाद, उर्वरकों आदि के संग्रहण के लिए प्रयोग करना है। राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम की सहायता से प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों अधिकतर विपणन सहकारी समितियों द्वारा देश में अपने गोदाम कायम किये गये हैं। नाशवान वस्तुओं जैसे- फल, सब्जियाँ, मछली, दुग्ध पदार्थ आदि के लिए शीत गोदाम भी बनाये गये हैं जिससे आपद विक्रय न करना पड़े। ग्रामीण क्षेत्रों में वैज्ञानिक भण्डागारों के निर्माण के लिए 2001 से केन्द्रीय क्षेत्र की योजना के अन्तर्गत ग्रामीण गोदामों का निर्माण किया जा रहा है जिससे किसान खेत के पास ही वस्तुओं को स्टोर कर लें और इनके रेहन के विरूद्ध बैंकों से ऋण प्राप्त कर लें जिससे कटाई के तुरन्त बाद जब ऊँची कीमत नहीं मिलती उन्हें बेचना न पड़े। कृषि विपणन व्यवस्था को और सक्षम तथा प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए अन्तर मंत्रालय कार्य बल ने जून 2002 में अपनी रिपोर्ट में अनेक सिफारिशें दीं -

1. प्रत्यक्ष विपणन तथा संविदाकारी कृषि को प्रोत्साहित करना।
2. निजी एवं सहकारी क्षेत्रों में कृषि बाजारों का विकास करना।
3. सभी कृषि बाजारों में वायदा व्यापार का विस्तार।
4. परक्रायम भण्डागार रसीद प्रणाली को चालू करना।

5. रेहन वित्त पोषण में तेजी
6. किसानों के लिए बाजार प्रेरित विस्तार सेवायें उपलब्ध कराने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग।

भारत सरकार ने कृषि विपणन के लिए एक मॉडल कानून तैयार किया है जिसके प्रमुख बिन्दु हैं -

1. उपभोक्ताओं को सीधी बिक्री हेतु प्रत्यक्ष क्रय केन्द्रों और कृषक बाजारों की स्थापना।
2. मूल्य निर्धारण व्यवस्था में पूर्ण पारदर्शिता
3. किसानों को त्वरित भुगतान
4. उत्पाद की ग्रेडिंग तथा गुणवत्ता प्रमाणन की व्यवस्था।
5. वर्तमान बाजारों में व्यवसायिक प्रबन्धन के लिए सार्वजनिक निजी भागीदारी।
6. मानकीकरण को प्रोत्साहित करने के लिए बाजार ब्यूरो की स्थापना।

जनवरी 2004 को सम्पन्न कृषि विपणन तथा भूमि सुधार सम्बन्धी राज्य मंत्रियों के सम्मेलन में मॉडल अधिनियम को अंगीकृत करने की दिशा में आम सहमति हो गई। अधिकांश राज्यों द्वारा सुधार प्रक्रिया आरम्भ कर दी गई है । इस अधिनियमके क्रियान्वयन से कृषि विपणन व्यवस्था में व्याप्त सभी दोषों का निराकरण होगा।

15.8 कृषि विपणन में नये आयाम

- 31 मार्च 2010 तक देश में 7,157 नियमित बाजार तथा 21,221 ग्रामीण आवधिक बाजार हैं।
- 2005-06 में विस्तार सुधारों के लिए राज्य विस्तार कार्यक्रम सहायता प्रारम्भ किया गया जिसका उद्देश्य जिला स्तर पर ''कृषि तकनीकी प्रबन्धन एजेंसी'' (आत्मा) के रूप में तकनीकी प्रसार की नई संस्थानिक व्यवस्थाओं के द्वारा किसान संचालित और किसान जवाबदेह विस्तार प्रणाली का निर्माण करना है।
- अक्टूबर 2010 तक 591 जिला स्तर की आत्मा स्थापित की गई है।
- पूरे देश में ग्यारह, अंकीय कॉमन नम्बर 1800-180-1551 किसान कॉल सेन्टर के लिए आवंटित है।

- कृषि क्लीनिक और कृषि व्यवसाय केन्द्र योजना 2002 में शुरू हुई थी, जो भुगतान आधार पर कृषि स्नातकों के माध्यम से किसानों को सेवा देती है।
- भारत सरकार की विदेश व्यापार नीति (2004-09) में कृषि निर्यात पर बल देने के लिए ''विशेष कृषि उत्पाद योजना ''चालू की गयी ताकि फलों, सब्जियों, फूलों और छोटे वन उत्पाद के निर्यात को बढ़ावा मिले। कृषि निर्यात क्षेत्रों के स्थापना को स्वीकृत कर दिया गया और उन क्षेत्रों की पहचान की गयी, जो किसी न किसी विशिष्ट कृषि उपज के निर्यात के लिए अधिक उपयुक्त थे।
- सरकार ने कृषि वस्तुओं के वर्ग-विभाजन तथा मानकीकरण के लिए कृषि उपज (वर्ग, विभाजन एवं विपणन) अधिनियम के आधीन घी, आटा, अण्डे आदि वस्तुओं के लिए वर्ग-विभाजन केन्द्र स्थापित किए हैं। कृषि विपणन विभाग द्वारा वर्ग-विभाजित वस्तुओं पर ''एगमार्क'' की मुहर लगा दी जाती है। फलस्वरूप इन वस्तुओं के बाजार का विस्तार होता है और उनकी अच्छी कीमत प्राप्त होती है। नागपुर में केन्द्रीय कोटि नियंत्रण प्रयोगशाला संस्थापित है। इसी प्रकार देश के विभिन्न हिस्सों में आठ प्रादेशिक प्रयोगशालाएं स्थापित हैं। इन सभी प्रयोगशालाओं का उद्देश्य कृषि वस्तुओं की किस्म एवं शुद्धता का परीक्षण करना है।
- कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद-निर्यात विकास प्राधिकरण - यह कृषि निर्यात क्षेत्रों के सम्बन्ध में केन्द्रसरकार की शीर्ष एजेन्सी है। कृषि निर्यात क्षेत्रों में प्रमुख हैं - उत्तराखण्ड में बासमती चावल, मध्य प्रदेश में मसाला, तमिलनाडू में आम, महाराष्ट्र में प्याज, झारखण्ड में सब्जी तथा उड़ीसा में अदरक तथा हल्दी आदि के कृषि निर्यात क्षेत्र।

15.9 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि किसानों की प्राप्त बचत कम होने की वजह से और तकनीकी विकास की पद्धतियों के लिए धन पर्याप्त नहीं होता। इस कारण किसानों को विभिन्न गैर संस्थानात्मक और संस्थानात्मक स्रोतों से ऋण लेना पड़ता है। सरकारी प्रयासों और विभिन्न संस्थाओं के योगदान की विस्तृत चर्चा की गई है। अन्य व्यवसायों की तरह कृषि व्यवसाय की सफलता का मापदण्ड भी व्यवसाय से प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करता है। कृषकों की आय कृषि उत्पादन की मात्रा और उन्हें बेचने पर प्राप्त कीमतों पर निर्भर करेगा। कृषि उत्पादन नवीन कृषि रणनीति, आगातों में परिवर्तन तथा कृषि साख से बढ़ सकता है। उत्पादों के उचित मूल्य के लिए कृषि विपणन व्यवस्था के दोषों को दूर करके विभिन्न सरकारी प्रयासों, नीतियों एवं संस्थाओं द्वारा कृषकों को बिचौलियों के छल से

बचाना जरूरी है। इन सभी आयामों की विस्तृत चर्चा की गई। किसानों की दशा सुधारने के लिए कृषि साख एवं कृषि विपणन का महत्वपूर्ण स्थान है।

15.10 शब्दावली

1. एगमार्क (AGMARK) कृषि विपणन विभाग द्वारा वर्ग विभाजित वस्तुओं पर मुहर।
2. AEZ - कृषि निर्यात क्षेत्र
3. नेफेड (NAFED) - राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ
4. NCDC - राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम
5. आढतिये - मण्डी में व्यापारी जो किसान से उसके उत्पाद खरीदते हैं।
6. हाट - गाँव की बाजार, साप्ताहिक या अर्द्धसाप्ताहिक
7. आर.आई.डी.एफ. -ग्राम आधार संरचना विकास निधि
8. नाबार्ड - ग्राम विकास राष्ट्रीय बैंक, कृषि वित्त की शीर्षतम संस्था
9. बहु एजेन्सी प्रणाली - कई संस्थाएं एक दिशा में कार्य करें।

15.11अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरिए-

1. महाजनों द्वारा ऋण .... स्रोत है।
2. कृषि वित्त से सम्बन्धित शीर्षतम संस्था .... है।
3. मध्यम कालीन ऋण .... से अधिक तथा .... से कम अवधि के लिए होते हैं।
4. वाणिज्य बैंकों का राष्ट्रीयकरण .... में किया गया।
5. नाबार्ड की स्थापना .... में .... कमेटी की संस्तुति के आधार पर हुई।

6. किसानों के लिए ऋण माफी योजना .... बजट में की गई।

7. बहुउद्देशीय सहकारी समितियों का गठन .... में हुआ।

8. विदेश व्यापार नीति 2004-09 में कृषि निर्यात पर बल देने हेतु .... शुरू की गई।

9. कृषि विपणन विभाग द्वारा वर्ग-विभाजित वस्तुओं पर .... की मुहर लगा दी जाती है।

10. .... में नाशवान वस्तुओं जैसे आलू, फल, मांस आदि का भण्डारण किया जाता है।

उत्तर-

1.गैर-संस्थानात्मक 2. नाबार्ड 3. 15 महीने, 5 वर्ष 4.1969 5. 1982, शिवरमन

6.2008-09 7. 1954 8.विशेष कृषि उत्पाद योजना 9. एगमार्क(AGMARK)

10. शीत गोदामों

15.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kapila, Uma (2008-09), India's Economic Development Since 1947, Academic Foundation.
2. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation
3. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
4. Rao, Hanumantha C.H. (2006) Agriculture, Food Security Poverty and Environment, Oxford University Press.
5. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।

6. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

15.13सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अर्थव्यवस्था अवलोकन (मई 2011), धनकड़ पब्लिकेशंस, मेरठ
2. कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
3. योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

15.14निबन्धात्मक प्रश्न

1. कृषि साख व्यवस्था को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत करिए?
2. कृषि वित्त की प्रमुख संस्थाओं की विवेचना करिए?
3. भारतीय कृषि विपणन व्यवस्था के दोष बताइये?
4. कृषि विपणन व्यवस्था में सुधार हेतु सरकारी प्रयासों पर चर्चा कीजिए?
5. सहकारी विपणन समितियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं?

इकाई 16 औद्योगिक नीति एवं उदारीकरण

इकाई संरचना

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 औद्योगिक नीति का अर्थ
16.4 1991 से पूर्व औद्योगिक नीति
16.4.1औद्योगिक नीति 1948
16.4.2औद्योगिक नीति 1956
16.4.3उद्योग विकास एवं नियमन अधिनियम, 1951
16.5 1991 से पूर्व औद्योगिक नीति की समीक्षा
16.6 औद्योगिक नीति और उदारीकरण
16.7 नयी औद्योगिक नीति 1991
16.8 नयी औद्योगिक नीति का मूल्यांकन
16.9 नयी औद्योगिक नीति की आलोचनाएं
16.10 नयी औद्योगिक नीति और उदारीकण के मापन
16.11 सारांश
16.12 शब्दावली
16.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.15 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
16.16 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले की इकाईयों में भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना के अन्तर्गत उद्योग क्या है तथा इसका महत्व देश के विकास में क्या है को बता सकते है। इस इकाई में अध्ययन करेगें कि किसी भी देश का औद्योगिक विकास उसका नियमन एवं नियंत्रण औद्योगिक नीति के द्वारा किया जाता है। इसके अभाव में भारतीय अर्थव्यवस्था आधुनिक युग की आर्थिक चुनौतियों का सामना नहीं कर सकती है।

आप यह समझा सकेंगें कि स्वतंत्रता के बाद से अब तक औद्योगिक नीति में समय व परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन, परिवर्द्धन होता रहा है। इसके अध्ययन के बाद निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के विकास में सरकार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग की इच्छा एवं प्रयासों के स्वरूप का ज्ञान हो सकेगा।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- 1981 से वर्तमान तक औद्योगिक नीति को जान सकेंगें।
- नयी औद्योगिक नीति 1991 का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगें।
- औद्योगिक नीति 1991 और उदारीकण के सम्बन्ध का अध्ययन कर सकेंगें।

16.3 औद्योगिक नीति का अर्थ

औद्योगिक नीति का तात्पर्य सरकार द्वारा की जाने वाली ऐसी औपचारिक घोशणा से है जिसके द्वारा सरकार उद्योगों के प्रति अपनायी जाने वाली सामान्य नीतियों का उल्लेख करती है किसी भी औद्योगिक नीति के मुख्य रूप से दो भाग हैं- प्रथम, सरकार की विचारधारा जो औद्योगीकरण का स्वरूप निश्चित करती है तथा द्वितीय इसको कार्यान्वित करने वाले नियम तथा सिद्धान्त जो इस नीति के पीछे विद्यमान विचारधारा को निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार औद्योगिक नीति एक व्यापक विचारधारा है। जो उद्योगों की स्थापना और कार्यप्रणाली के लिए नीति संबंधी ढाँचा और मार्गदर्शन प्रदान करती है।

16.4 1991 से पूर्व औद्योगिक नीति

भारत सरकार ने औद्योगिक क्षेत्र के विकास के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण सर्वप्रथम 1948 में जारी औद्योगिक नीति प्रस्ताव में स्पष्ट किया। 1956 में दूसरी औद्योगिक नीति प्रस्ताव पेष किया गया। इन दोनों प्रस्तावों के मध्य सरकार ने निजी क्षेत्र के उद्योगों के नियमन-1 व नियंत्रण के लिए औद्योगिक विकास एवं नियमन अधिनियम (डत्ज्च्) 1951 लागू किया। इन नीति की अर्थशास्त्रियों का कड़ी आलोचना की गयी। इसलिए सरकार ने 1970 तथा 1980 के दशक में औद्योगिक नीति के उदारीकरण की दिशा में कई कदम उठाए। इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन 1991 में किया गया जब नयी औद्योगिक नीति की घोषणा की गई व लाईसेंसिंग व अन्य प्रतिबन्धों को अत्यधिक कम कर दिया गया।

16.4.1 औद्योगिक नीति 1948

पहली औद्योगिक नीति 6 अप्रैल 1948 को घोशित की गयी। इस नीति में मिश्रित अर्थव्यवस्था को कायम करने का सुझाव दिया। सरकार ने स्पष्ट किया कि आगामी कुछ वर्शों में राज्य विद्यमान उत्पादन इकाइयों का राष्ट्रीयकरण करने के स्थान पर अपने कार्यक्षेत्र में नई उत्पादन इकाईयां स्थापित करेगा। इस प्रकार औद्योगिक नीति के अनुसार निजी क्षेत्र तथा सरकार क्षेत्र साथ साथ कार्य करेंगे। महत्वपूर्ण बात यह है कि निजी क्षेत्र को देश की सामान्य औद्योगिक नीति के आधीन कार्य करना होगा।

सरकार ने भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगीकरण की गति बढ़ाने एवं बेहतर औद्योगिक तकनीक तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिए विदेशी पूँजी व उद्यम की सहायता प्राप्त करनी आवश्यक समझी। परन्तु विदेशी पूँजी के भाग लेने पर भारतीय हितों की दृष्टि से सावधानीपूर्वक नियमन रखना चाहिए। 1948 की औद्योगिक नीति की मुख्य सफलता मिश्रित अर्थव्यवस्था है जिससे सरकारी व निजी क्षेत्र मिलकर कार्य कर सके, जिससे तेजी से औद्योगिक विकास सम्भव हो सके।

16.4.2 औद्योगिक नीति 1956

1956 में औद्योगिक नीति को तीन वर्गों में बांटा गया।

क.राज्य सरकार का एकाधिकार क्षेत्र

वे उद्योग जिन्हें नीति प्रस्ताव की '**अ**' अनुसूची में रखा गया। इनकी संख्या 17 थी। इनमें चार अस्त्र शस्त्र उद्योग, परमाणु ऊर्जा, रेलवे तथा वायु परिवहन पर सरकारी एकाधिकार की व्यवस्था की गयी।

बाकी 13 उद्योगों में नई इकाइयाँ सरकार द्वारा स्थापित की जायेंगी तथापि निजी क्षेत्र में कार्यरत इकाईयों को काम करते रहने की अनुमति दी गई।

ख.सार्वजनिक व निजी उद्योगों के मिश्रित क्षेत्र

वे उद्योग जिन्हें **'ब'** अनुसूची में रखा गया इनकी संख्या 12 थी। यह कहा गया कि इनके भावी विकास की दिशा में राज्य प्रयास करेगा परन्तु निजी उद्यमकर्ताओं को स्वतंत्र रूप से अथवा राज्य के साथ सहयोग करते हुए नई इकाईयों में स्थापना के अवसर प्रदान किये जायेगें।

ग.निजी उद्योग का क्षेत्र

वे उद्योग जिसकी स्थापना निजी उद्यमकर्ताओं द्वारा की जायेगी। इस वर्ग में अनुसूची **'अ'** व **'ब'** में आने वाले उद्योगों को छोड़कर सभी उद्योग थे। सरकार इन उद्योगों की स्थापना में सामान्यतः प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेंगी। सरकार द्वारा इन उद्योगों की स्थापना के सम्बन्ध में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं रखा गया।

1956 की नीति में निजी व सार्वजनिक क्षेत्रों के मध्य उद्योगों का वर्गीकरण बेलोच नहीं था इस नीति में लघु व कुटीर उद्योगों के महत्व को भी स्वीकार किया गया। क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने की बात की गई। इस दिशा में सफलता प्राप्त करने के लिए पिछड़े क्षेत्रों में शक्ति के साधनों और परिवहन सुविधाओं के विस्तार को आवश्यक बताया। 1956 की नीति में सुरक्षा संबंधी उपकरणों से सबंधित उद्योगों, परमाणु शक्ति के निर्माण और रेल परिवहन के अतिरिक्त 14 अन्य बुनियादी उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र की श्रेणी में रखा गया इन्हें **'अ'** अनुसूची में तथा 12 उद्योगों को **'ब'** अनुसूची में रखा गया जिनसे राज्य बढ़ते हुए पैमाने पर नई इकाईयों की स्थापना कर सकता था।

16.4.3 उद्योग विकास एवं नियमन अधिनियम 1951

देश में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया नियंत्रण रखने व उसका नियमन करने के दृष्टिकोण से अक्टूबर 1951 में संसद ने एक अधिनियम पास किया। यह अधिनियम 8 मई, 1952 को लागू किया गया। यद्यपि इस अधिनियम का लक्ष्य निजी क्षेत्र का विकास व नियमन था तथापि इसमें अधिकतर नियमन पर जोर दिया गया। इस अधिनियम के निम्न उद्देष्य थे -

1. योजनाओं की प्राथमिकताओं एवं लक्ष्यों के अनुरूप औद्योगिक निवेष व उत्पादन का नियमन करना।
2. छोटे उद्योगपतियों की बडे उद्योगपतियों के साथ स्पर्धा से रक्षा करना।

3. उद्योगों के स्वामित्व में एकाधिकार व संकेन्द्रण को रोकना।

4. देश के विभिन्न क्षेत्रों के विकास स्तरों में अन्तरों को कम करना ताकि संतुलित क्षेत्रीय विकास प्राप्त किया जा सके।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने यह अधिकार प्राप्त किये कि वह नए उद्योगों की स्थापना, पुराने उद्योगों के विस्तार, मौजूदा उद्योगों द्वारा नई वस्तुओं के उत्पादन, या फिर उद्योगों द्वारा स्थान परिवर्तन के लिए लाईसेंस जारी करेगी।

आरम्भिक चरणों में 37 उद्योगों पर अधिनियम लागू किया गया। बाद में इनकी संख्या 70 कर दी गई। 1960 में एक और परिवर्तन किया गया और उन सब औद्योगिक इकाइयों को जिनमें 10 लाख रूपये से कम निवेश था, लाईसेंसिंग से मुक्त कर दिया गया। इस सीमा को 1963 में 25 लाख और 1970 में (कुछ शर्तो के तहत) 1 करोड़ रूपये कर दिया गया। मार्च 1978 में औद्योगिक लाईसेसिंग नीति को और उदार बन पाया गया और लाईसेसिंग से छूट की सीमा बढ़ाकर 3 करोड़ रूपये कर दी गई। इस सीमा को बाद में 5 करोड़ रूपये कर दिया गया। 1988-89 में सरकार ने औद्योगिक लाईसेंसिग नीति को और उदार बनाते हुए लाईसेसिंग से छूट की सीमा गैर-पिछड़े क्षेत्रों के लिए 15 करोड़ रूपये और पिछड़े क्षेत्रों के लिए 50 करोड़ रूपये कर दी।

16.5 1991 से पूर्व औद्योगिक नीति की समीक्षा

औद्योगिक नीति (और खासतौर पर औद्योगिक लाईसेंसिंग नीति) का व्यवहार में पालन काफी विवाद और आलोचना का विषय रहा है। लाईसेंसिंग समिति द्वारा औद्योगिक इकाईयों की स्थापना अथवा उनके विस्तार आदि के लिए कोई सुनिश्चित आधार नहीं अपनाया जाता था। औद्योगिक लाईसेंसिंग के लिए आवेदन पत्रों पर निर्णय लेने से पूर्व डायरेक्ट्रेट जनरल आफ टैक्नीकल डेवलपमेंट को प्रत्येक प्रस्तावित इकाई की स्थापना अथवा वर्तमान इकाई के विस्तार के बारे में जिस प्रकार का 'तकनीकी आर्थिक परीक्षण' करना चाहिए था, वैसा परीक्षण प्रायः नहीं किया जाता था। इसके अलावा, परीक्षण व सुझाव देने में D.G.T.D बहुत समय लगाता था। कार्यान्वियन की व्यावहारिक कठिनाइयों के अतिरिक्त, ऐसा देखा गया कि औद्योगिक लाईसेंसिंग नीति अपने उद्देष्यों के विपरीत काम करती रही।

इन कमियों व आलोचनाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने अप्रैल 1964 में एकाधिकारी जांच समिति का गठन किया और 1965 में डा. आर.के.हजारी को उद्योग (विकास व नियमन) अधिनियम, 1951 का आलोचनात्मक अध्ययन करने को कहा गया। जुलाई 1967 में डा. सुबिमल

दत्त की अध्यक्षता में एक और समिति का गठन किया गया। इस समिति ने जुलाई, 1969 में अपनी रिपोर्ट पेश की।

16.5.1 **लाईसेंस लेकर उनका प्रयोग न करना**

लाईसेसिंग से यह आशा की जाती थी कि योजनाओं की प्राथमिकताओं व लक्ष्यों के अनुसार वह क्षमताओं का निर्माण कर सकेगी।परन्तु निजी क्षेत्र के लिए योजनाओं में कोई स्पष्ट प्राथमिकताओं का उल्लेख नहीं किया गया था, इसलिए निजी क्षेत्र ने उन्हीं उद्योगों को चुना जिनमें अधिक लाभ होने की उम्मीद थी। कई बार ये उद्योग विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योग होते थे,और DTDG की तकनीकी षर्तों को भी पूरा करते थे। इसलिए इन उद्योगों को लाईसेंस मिल जाते थे और आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों की अवहेलना होती थी।

जो लोग लाईसेंस लेकर क्षमता की स्थापना नहीं करते थे उनसे कई वर्षों बाद ही सरकार लाईसेंस वापिस ले पाती थी। इस कारण कई बार स्वीकृत क्षमता से कम क्षमता स्थापित की जाती थी। कई बड़े औद्योगिक घराने जान-बूझकर यह काम करते थे ताकि उत्पादन सीमित रखकर कीमतों को बढ़ाया जा सके।

16.5.2 लाईसेंस नीति और औद्योगिक शक्ति का केन्द्रीकरण

लाईसेंसिंग नीति का उद्देश्य आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को रोकना था परन्तु व्यवहार में इसके ठीक उल्टा हुआ। इस नीति के परिणामस्वरूप बड़े औद्योगिक घरानों के हाथ में आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण बढ़ा। यद्यपि देखने में यह सिद्धान्त न्यायोचित लगता था परन्तु वास्तव में इसके बुरे परिणाम हुए। बड़े औद्योगिक घरानों के सम्पर्क अधिकारी आवेदन पत्र पर की गई कार्यवाही पर पूरी नजर रखते थे। इतना ही नहीं, बड़े औद्योगिक घराने एक ही उद्योग के लिए अनेक आवेदन पत्र देते थे।

16.5.3 एकाधिकार जमाने के अन्य तरीके

लाईसेंसिंग क्षमता पर एकाधिकार जमाने की दृष्टि से बड़े औद्योगिक घरानों ने कई और तरीके भी अपनाए। उदाहरण के लिए - क. एक ही वस्तु के उत्पादन के लिए विभिन्न पिछड़े क्षेत्रों में ’नई इकाई’ की स्थापना के लिए एक ही साथ कई आवेदन पत्र दे देना, ख. कई उद्योगों में इकाईयां स्थापित करने के लिए एक ही साथ आवेदन पत्र दे देना, तथा ग. ’नई इकाई की स्थापना का लाईसेंस प्राप्त होने के जल्द बाद ही क्षमता के विस्तार के लिए आवेदन पत्र दे देना ताकि अन्य उद्योगपतियों के प्रवेश को रोका जा सके।

16.5.4 लाईसेंसिंग और क्षेत्रीय असमानताएं

औद्योगिक लाईसेसिंग नीति का एक मुख्य उद्देष्य क्षेत्रीय असमानताओं को कम करना था। परन्तु इस नीति के परिणामस्वरूप ठीक उल्टा हुआ अर्थात् क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि हुई। दत्त समिति के अनुसार, चार विकसित राज्यों महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु को 1955-56 के बीच दिए गए कुल लाईसेंसों में से 62.42 प्रतिशत लाईसेंस प्राप्त हुए। दूसरी ओर गरीब राज्यों बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश को कुल लाईसेंसों में से केवल 15.5 प्रतिषत लाईसेंस प्राप्त हुए। यह प्रवृत्ति बाद में भी बनी रही।

16.6 औद्योगिक नीति और उदारीकण

औद्योगिक लाईसेंसिंग नीति की अपरलिखित आलोचनाओं के कारण सरकार ने 1970, 1973 तथा 1978 में इस नीति के उदारीकरण की दिषय में कई कदम उठाए। जुलाई 1980 में सरकार ने औद्योगिक नीति वक्तव्य की घोषणा की जिसके आधार पर 1980 के दशक में उदारीकण के लिए कई कदम उठाए गए। कुछ प्रमुख कदमों का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है:-

16.6.1 लाईसेंसिंग से छूट

लाईसेंसिंग से छूट की सीमा को लगातार बढ़ाया गया। मार्च 1978 में यह सीमा 3 करोड़ रूपये रखी गई थी जिसे 1980 के दषक में पहले 1983 में 5 करोड़ रूपये तथा बाद में 1988-89 में कुछ शर्तों के अधीन, पिछड़े क्षेत्रों के लिए 50 करोड़ रूपये तथा अन्य क्षेत्रों के लिए 15 करोड़ रूपये कर दिया गया।

16.6.2 MRTP. FERA कम्पनियों को रियायतें

औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि तथा निर्यातों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से एकाधिकार और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP Act) तथा विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम (FERA Act) के अधीन आने वाली कम्पनियों को कई रियायतें दी गई। उदाहरण के लिए MRTP अधिनियम के अधीन आने वाली कम्पनियों की निम्नतम परिसम्पत्ति सीमा मार्च 1985 में 100 करोड़ रूपये कर दी गई पहले यह सीमा 20 करोड़ रूपये थी)। मई 1983 में सरकार ने एकाधिकार और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अधीन आने वाली कम्पनियों को उच्च राष्ट्रीय महत्व के अथवा आयात प्रतिस्थापन में सहायक अथवा जटिल तकनीक वाले उद्योगों में नए उद्योग स्थापित करने की अनुमति दे दी। अर्थात् इन उद्योगों में स्थापित इकाइयों के लिए अब सरकारी अनुमति की आवश्यकता नहीं रही। 24 दिसम्बर, 1985 को सरकार ने 21 उच्च तकनीक वाले उत्पादन क्षेत्रों में बड़े व्यवसायिक घरानों और विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम कम्पनियों

को इकाइयां स्थापित करने की खुली छूट दे दी। इसके साथ ही 83 वस्तुओं के उत्पादन के द्वार एकाधिकार और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम और विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम के अधीन आने वाली कम्पनियों के लिए खुल गए। इसके अलावा एकाधिकार और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम और विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम के अधीन आने वाली कम्पनियों को कई और छूटें दी गई। जैसे अतिरिक्त स्थापित क्षमता को स्वीकृति देना, क्षमता का पुनः अनुमोदन करना, पिछड़े इलाकों में उद्योग स्थापित करने की सुविधाएं देना इत्यादि।

16.6.3 लाईसेसिंग से मुक्ति

उत्पादन को प्रोत्साहित करने के दृष्टिकोण से सरकार ने उद्योगों के 28 व्यापक वर्गों तथा 82 बड़ी औषधियों को लाईसेंसिंग से मुक्त कर दिया। इन उद्योगों के लिए लाईसेंस लेने की जरूरत नहीं रही। केवल सैक्रेटैरियट फार इंडस्ट्रियल के साथ पंजीकरण आवश्यक रखा गया। इस सुविधा से लाभ उठाने की शर्त केवल यह रखी गई कि औद्योगिक इकाई एकाधिकार और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम या विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम के अधीन न आती हो, उसके द्वारा उत्पादित वस्तु लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित न हो, तथा इकाई निर्धारित शहरी क्षेत्रों की सीमाओं के अंदर न हो। 1989-90 में कुछ और उद्योगों को लाईसेसिंग से मुक्त कर दिया गया।

16.6.4 क्षमता का पुनः अनुमोदन

1986 में इस योजना को उदार करके उन इकाइयों के लिए भी लागू कर दिया गया जिनमें 80 प्रतिशत क्षमता का उपयोग हुआ था। (पहले इस योजना का लाभ उठाने के लिए 94 प्रतिशत क्षमता का उपयोग होना आवश्यक था) पुनः अनुमोदित क्षमता ज्ञात करने के लिए पिछले पांच वर्षों में प्राप्त की गई अधिकतम उत्पादन सीमा में एक-तिहाई उत्पादन को जोड़ने की व्यवस्था की गई। जो इकाईयां पुनः अनुमोदित क्षमता के बराबर क्षमता उपयोग कर पाने में सफल होती है उनके लिए क्षमता को उस स्तर पर पुनः अनुमोदित करने की व्यवस्था थी जिस स्तर को वह आगे आने वाले वर्षों में प्राप्त करने में सफल होती है।

सरकार ने 7 अप्रैल, 1988 को एक नई योजना की घोषणा की। 1 अप्रैल 1988 से लागू इस योजना में यह व्यवस्था की गई कि 1 अप्रैल, 1988 से 31 मार्च, 1990 के बीच किसी औद्योगिक इकाई द्वारा जितना अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जायेगा उसी स्तर पर क्षमता का पुनः अनुमोदन कर दिया जायेगा। इस योजना पर कोई पाबन्दी नहीं थी सिवा इसके कि यह लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित मदों पर लागू नहीं थी। कुछ शर्तों के साथ इस योजना का लाभ एकाधिकारी प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम तथा विदेशी विनिमय नियंत्रण अधिनियम के अधीन आने वाली फर्मों को भी प्रदान किया गया। इस योजना को स्थानिक प्रतिबन्धों से मुक्त रखा गया। आधुनिकीकरण,

पुनः स्थापना तथा नवीकरण को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सरकार ने 1986 में लाईसेंसिंग क्षमता से 49 प्रतिशत अधिक क्षमता प्रसार की छूट दे दी।

16.6.5 उद्योगों का व्यापक समूहीकरण

इस नीति के अन्तर्गत कई एक जैसी वस्तुओं को एक ही जाति वर्ग में रखा गया। और किसी भी वस्तु के उत्पादक को यह स्वतंत्रता दी गई कि वह बिना अधिक प्रशासनिक कार्यवाहियों में से गुजरे हुए (अर्थात् बिना अधिक कठिनाई उठाए हुए) उसी जाति वर्ग की अन्य वस्तुओं का भी उत्पादन कर सकता है। इस 'व्यापक समूहीकरण' नीति का धीरे धीरे विस्तार किया गया और इसके अधीन 45 व्यापक औद्योगिक समूहों को शामिल किया गया। इन समूहों में दो पहियों पर चलने वाले वाहन (मोपेड, स्कूटर, मोटरसाइकिल इत्यादि) चार पहियों पर चलने वाले वाहन, टैक्टर, उर्वरकों की मषीनरी, औषधियां, कागज व लुगदी आदि शामिल हैं।

16.6.6 न्यूनतम आर्थिक क्षमताओं का निर्धारण

औद्योगिक लाईसेंसिंग प्रणाली के क्षेत्र में एक अन्य महत्वपूर्ण अवधारणा न्यूनतम आर्थिक क्षमताओं के निर्धारण से संबंधित है। इस नीति के अन्तर्गत उद्योगों को पैमाने की बचत उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से विद्यमान स्थापित क्षमता को परिचालन के न्यूनतम स्तर तक पहुंचाने की स्वीकृति दी गई। 1989 तक इस नीति के अन्तर्गत 108 उद्योगों के लिए न्यूनतम आर्थिक क्षमताएं निर्धारित की जा चुकी थी। 1989-90 में कुछ और वस्तुओं के लिए भी न्यूनतम आर्थिक क्षमताएं निर्धारित की गई।

16.6.7 निर्यात उत्पादन के लिए प्रेरणा

केवल निर्यात के उद्देश्य से किए जाने वाले उत्पादन का लाईसेंस में दी गई क्षमता से अधिक विस्तार करने के लिए 1981 के बाद से छूटें दी गई और इस विस्तार के लिए अतिरिक्त लाईसेंस लेने की आवष्यकता नहीं रही, बशर्तें यह वस्तु लघु क्षेत्र के लिए आरक्षित न हो। इसके अलावा, लाईसेंस में दी गई क्षमता से अधिक उत्पादन करने के लिए प्लांट व मषीनरी में और अतिरिक्त निवेश करने की भी जरूरत नहीं रही। यह सब व्यवस्था निर्यात-संवर्द्धन के उद्देश्य से की गई।

16.7 नई औद्योगिक नीति 1991

वर्तमान औद्योगिक नीति जुलाई 1991 में लागू की गई। इसका प्रतिपादन दो चरणों में किया गया। एक तो 24 जुलाई 1991 जिसका सम्बन्ध बड़े उद्योगों से था दूसरा 6 अगस्त, जो लघु उद्योगों से सम्बन्धित है । इस औद्योगिक नीति का मुख्य उद्देष्य भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था को

अनावश्यक नियंत्रणों से मुक्त करना, भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण लागू करना था ताकि विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण किया जा सके। प्रत्यक्ष विनियोग पर लगे हुए प्रतिबन्धों को हटाना था और देशी उद्यमकर्त्ताओं को 'एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार कानून द्वारा लगायी गयी रूकावटों से मुक्त करना था तथा ऐसे सार्वजनिक उद्यम जो घाटे पर चल रहे थे उनके भार से मुक्त होना था। यह नीति अब तक की सभी नीतियों से हटकर है इसलिए इसे खुली उदार तथा क्रान्तिकारी नीति कहा गया है। इस नीति की मुख्य बातें निम्न हैं -

क. औद्योगिक लाईसेंस व्यवस्था समाप्त -

5 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं के लिए लाईसेंसिंग व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है। जिन उद्योगों को लाईसेंस लेना है उन्हें परिशिष्ट 11 में रखा गया है। ये उद्योग हैं - शराब, सिगरेट, खतरनाक रसायन, सुरक्षा का सामान तथा औद्योगिक विस्फोटक।

ख. सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका -

नई औद्योगिक नीति में सार्वजनिक क्षेत्र की औद्योगिक नीति को सीमित करने का प्रयास किया गया है। नई नीति में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित 17 उद्योगों की संख्या घटाकर 8 कर दी गई। बाद में 5 और उद्योगों को आरक्षण से मुक्त कर दिया गया है। अब सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योग हैं - परमाणु, ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा से संबंधित खनिज तथा रेल परिवहन। इस नीति में सरकारी क्षेत्र के कुछ उद्यमों में सरकारी अंश के एक हिस्से को म्युचुअल फण्डों, वित्तीय संस्थाओं, आम जनता तथा कर्मचारियों को बेच दिया जायेगा ताकि ये उद्योग साधन जुटा सकें तथा इनकी गतिविधियों में ये लोग भाग ले सकें। सार्वजनिक क्षेत्र की निरन्तर घाटे में चल रही बीमार इकाइयों के लिए "औद्योगिक व वित्तीय पुर्ननिर्माण बोर्ड" (Board for Industrial and Financial Reconstruction) से सलाह ली जायेगी तथा जो इकाइंया दुबारा स्वस्थ नहीं हो सकती उन्हें बंद कर दिया जा सकता है।

ग. एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम में संशोधन

डत्ज्च् के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियों की परिसम्पत्ति सीमा को समाप्त कर दिया गया है। इसलिए अब नयी इकाईयों को स्थापित करने, एक कम्पनी का दूसरी में विलय करने, दो कम्पनियों का आपसी मिलान करने, एक कम्पनी का दूसरी कम्पनी को खरीदने तथा कुछ परिस्थितियों में कम्पनी निदेशकों की नियुक्ति करने के लिए केन्द्र सरकार की पूर्व अनुमति की आवष्यकता नहीं होगी।

घ. स्थानीयकरण नीति का उदारीकण

दस लाख से कम जनसंख्या वाले नगरों में अनिवार्य लाईसेंसिंग वाले उद्योगों को छोड़कर शेष उद्योगों के स्थानीयकरण के लिए केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है। प्रदूषण न फैलाने वाले (जैसे - इलैक्ट्रानिक्स, कम्प्यूटर, साफ्टवेयर, प्रिन्टिंग आदि) उद्योग को दस लाख से कम जनसंख्या वाले नगरों की परिधि से 25 किमी. की दूरी पर स्थापित करना होगा। नयी नीति औद्योगिक विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा देती है।

ड. विदेशी निवेश व विदेशी प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन

भारतीय फर्मों द्वारा विदेशी प्रौद्योगिकी की खरीद या विदेशी निवेश को हर परियोजना के लिए सरकारी अनुमति लेना अनिवार्य था। इस नई नीति में उच्च-प्रौद्योगिकी व उच्च निवेश के आधार पर कुछ प्राथमिक उद्योगों की सूची बनाई गई है इन उद्योगों में बिना सरकार की अनुमति लिए 51 प्रतिशत तक विदेशी इक्विटी की छूट दी गई। जिन उद्योगों में स्वतः अनुमोदन की सुविधा दी गई उनमें बहुत से पूंजीगत वस्तु उद्योग, धातु कर्म उद्योग, उपभोक्ता मनोरंजन उद्योग, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग शामिल हैं। इनमें वे उद्योग भी शामिल किये गये हैं जो अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त उन सेवा क्षेत्र के उद्योगों को भी शामिल लिया गया है। जिनमें निर्यात की काफी संभावनाएं हैं। बाद में इनमें से अधिकतर उद्योगों के लिए इक्विटी की सीमा 74 प्रतिशत और फिर 100 प्रतिशत कर दिया गया।

16.7 नई औद्योगिक नीति का मूल्यांकन

16.8.1 औद्योगिक लाईसेंसिंग नीति

विदेशी निवेश नीति, विदेशी प्राद्यौगिकी समझौतों तथा एकाधिकारी और प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम डत्ज्च् ।बज में कई ऐसे परिवर्तन किये गये हैं ताकि सरकार से पूर्व अनुमोदन (या स्वीकृति) लेने की जरूरत न पड़े। इससे योजनाओं को बनाने व लागू करने में होने वाली देरी कम हो सकेगी। जिन लोगों व साधनों को सरकारी अधिकारियों के साथ सम्पर्क बनाये रखने के लिए इस्तेमाल करना पड़ता था अब उनका इस्तेमाल उत्पादक गतिविधियों के लिए किया जा सकेगा।

16.8.2 विदेशी निवेश तथा विदेशी प्रौद्योगिकी समझौतों में किए गए परिवर्तनों से विदशों से पूंजी, प्रौद्योगिकी तथा प्रबंध-क्षमता का आयात हो सकेगा। इससे इन संसाधनों की देश में कमी दूर हो सकेगी तथा उत्पादन की क्षमता का स्तर ऊपर उठ सकेगा।

16.8.3 सार्वजनिक क्षेत्र में किए जाने वाले सुधारों से उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। इन सुधारों के तहत सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों को निजी क्षेत्र के हाथ बेचने की व्यवस्था है। क्योंकि निजी क्षेत्र की कार्यदक्षता बेहतर है इसलिए इस बिक्री से उत्पादन बढ़ेगा। दूसरी ओर, अक्षम व कमजोर सार्वजनिक इकाइयों को बंद करने से इनमें लगे संसाधन बेहतर उपयोग के लिए इस्तेमाल किए जा सकेंगें। निजीकरण के परिणामस्वरूप, स्टाक एक्सचेंज पर सार्वजनिक इकाइयों के शेयरों की खरीद-बिक्री बढ़ेगी जिससे इनके दक्षता स्तरों में सुधार होगा।

16.8.4 MRTP आयोग का ध्यान अब औद्योगिक इकाइयों के आकार को सीमित करने पर न होकर एकाधिकारी, प्रतिबंधक व अनुचित व्यापार व्यवहार को रोकने पर होगा। इससे एकाधिकारी तथा अल्प-अधिकारिक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने में सहायता मिलेगी और प्रतिस्पर्धात्मक षक्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा जिससे औद्योगिक उत्पादन व उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। परन्तु कई अर्थशस्त्रियों ने 1991 की नई औद्योगिक नीति की कटु आलोचना की है।

16.9 नई औद्योगिक नीति की आलोचनाएँ

16.9.1 औद्योगिक विकास में अस्थिरता तथा उच्चावचन

नई औद्योगिक नीति में घरेलू एवं विदेशी निवेशकों को कई प्रोत्साहन दिए गए हैं। यह दावा किया गया है कि इससे अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धातक माहौल बनेगा और यह माहौल अपने आप औद्योगिक क्षेत्र की संवृद्धि दर को बढाने में सफल होगा। परन्तु इस नीति का औद्योगिक विकास की दर पर कोई विशेष सकारात्मक प्रभाव नजर नहीं आता। वस्तुत 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में तो औद्योगिक संवृद्धि दर में गिरावट दिखाई देती है। उदाहरण के लिए नौबी पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर मात्र 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जबकि सुधारों से पूर्व के दशक (1980-81 से 1991-92) में औद्योगिक उत्पादन की औसत संवृद्धि दर 8.3 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। परन्तु इस योजना में निर्धारित लक्ष्य 10 प्रतिषत प्रति वर्ष की तुलना में वास्तविक वृद्धि दर अभी भी कम है। इससे यह सिद्ध होता है कि ''उदारीकरण अपने आप निवेश और उत्पादक गतिविधि को प्रोत्साहित करने में असमर्थ रहा।

16.9.2 उत्पादन संरचना में विसंगतियां

देश के दीर्घकालीन औद्योगिक विकास के दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्योग समूह पूंजीगत वस्तु उद्योगों का समूह है। परन्तु इस उद्योग-समूह की वार्षिक संवृद्धि दर जो 1980 के दषक में 9.4 प्रतिषत थी नौवीं योजना की अवधि में कम होकर मात्र 4.7 प्रतिशत प्रति वर्ष रह गई। यह प्रवृत्ति सुधार-उपरांत औद्योगिक उत्पादन संरचना में होने वाली विसंगतियों की द्योतक है।

16.9.3 विदेशी प्रतिस्पर्धा से खतरा

उदारीकरण की शुरू की अवधि में निजी क्षेत्र के उद्योगपतियों ने जोर षोर से 1991 की नई औद्योगिक नीति का स्वागत किया । परन्तु शीघ्र ही उन्हें यह अहसास हो गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी प्रतिस्पर्धा के लिए खोलने का अर्थ है - अधिक व सस्ते आयात, अधिक विदेशी निवेश, बहुराष्ट्रीय निगमों को देश में प्रवेश करने तथा घरेलू उद्योगों को हथियाने की स्वतंत्रता तथा निजी उद्यमियों की कमजोर आर्थिक षक्ति के कारण बहुराष्ट्रीय निगमों से जूझने की अक्षमता। 1991 की नई औद्योगिक नीति के परिणामस्वरूप देश में जो उदारीकृत वातावरण बना है उसमें भारतीय उद्योगपति बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ 'असमान प्रतिस्पर्धा ' करने के लिए विवश हैं। भारतीय उद्यम 'आकार' में बहुराष्ट्रीय निगमों की तुलना में बहुत छोटे हैं काफी समय तक भारतीय उद्योगपति एक संरक्षणात्मक वातावरण में काम करते रहे हैं जिससे उत्पादन में अदक्षताएं बढ़ी हैं, भारतीय उद्योगपतियों के लिए पूंजी की लागत बहुराष्ट्रीय निगमों की तुलना में बहुत अधिक है। बहुराष्ट्रीय निगमों की तुलना में भारतीय उद्योगपतियों की वित्तीय स्थिति बहुत कमजोर है, विदेशों से आयातों पर कई छूटें दी जा रही हैं जबकि भारतीय उद्योगों के उत्पादन पर तरह तरह के कर लगाए गए हैं जिससे भारतीय वस्तुओं को लिए आयातों के साथ स्पर्धा करना मुश्किल हो गया है, इत्यादि।

16.9.4 व्यावसायिक उपनिवेशवाद का खतरा

हाल के वर्षों में औद्योगिक नीति के अन्तर्गत विदेशी निवेश को (विशेष रूप से बहुराष्ट्रीय निगमों को) प्रोत्साहित करने के लिए जो छूटें व रियायतें दी गई हैं उनसे बहुराष्ट्रीय निगमों को भारत में घुसने के तथा भारतीय उद्योगों को खरीदने के अवसर प्राप्त हो गए हैं। विभिन्न आलोचनाओं के बाबजूद यह नीति एक बहुत सुदृढ़ एवं सही दिशा में उठाया गया कदम है । इससे भारतीय अर्थव्यवस्था स्वतंत्र रूप से अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के समानान्तर विकास कर लेंगी । अब उद्योग प्रतिस्पर्धी बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप विकास कर एवं आधुनिकीकरण कर सकेंगें। किन्तु इस नीति की सफलता अब उद्योगपतियों की योग्यता एवं प्रयासों पर निर्भर करेगी।

16.10 नयी औद्योगिक नीति और उदारीकरण के मापन

जून 1998 तक इस नीति में भी कुछ संशोधन करके उदारीकरण पर बल दिया गया है इसके प्रमुख संशोधन निम्नानुसार हैं-

1. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों की संख्या 8 से घटाकर 4 कर दी गई। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित खनिजों में से 13 खनिजों को भी निजी क्षेत्र के लिए

खोल दिया गया है। खनिज, ऊर्जा, आधारभूत दूरसंचार तथा रक्षा उत्पादन क्षेत्र में प्रवेश के लिए भी देशी व विदेशी निवेशकों को छूट दी गई है।

2. निजी क्षेत्र के लिए आरक्षित 18 उद्योग वर्गों के लिए लाईसेंसिंग को घटाकर 6 कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त लगभग सभी औषधियों के लिए लाईसेंस प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है।
3. विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए विदेशी निवेशक संवर्द्धन बोर्ड का पुर्नगठन किया गया है तथा विदेशी निवेश संवर्द्धन परिषद का गठन किया गया है।
4. विदेशी निवेशक क्रियान्वयन प्राधिकरण की स्थापना कर दी गई है जो विदेशी निवेशक तथा सरकार के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क बनाये रखेगा तथा विदेशी निवेश को प्रोत्साहन देगी।
5. सौ प्रतिशत तथा विदेशी पूँजी निवेश की स्वतः अनुमोदन वाली 35 उद्योगों की सूची में बढ़ाकर 48 उद्योग कर दिया गया है।
6. बीमा क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के एकाधिकार को समाप्त कर इसे निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है। बीमा क्षेत्र की कम्पनियों की अंश पूँजी में 26 प्रतिशत तक पूँजी निवेश करने की छूट विदेशी संस्थाओं को दी गई है। बैंकों को अन्य संस्थाओं की भागीदार के साथ बीमा क्षेत्र में प्रवेश की छूट दी गई है।
7. निजी क्षेत्र में 'साफ्टवेयर पार्क' स्थापित करने की छूट दे दी गई है।
8. ई -काँमर्स को बढ़ावा देने के लिए देश की संसद ने सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम पारित कर दिया है।
9. तेल शोधन एवं इलैक्ट्रोनिक्स वाणिज्य E-Commerce के क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दी गई है।
10. 'विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम'के स्थान पर 'विदेशी मुद्रा प्रबन्ध अधिनियम' (FEMA) पारित कर दिया गया है। इससे देश में विदेशी मुद्रा का उदार बाजार विकसित होगा।
11. आधारभूत उद्योगों के लिए 15 वर्ष का कर अवकाश घोषित किया गया है।
12. आधारभूत दूरसंचार सेवाओं के सभी क्षेत्रों को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया है इस क्षेत्र में विदेशी निवेश की सीमा 49 प्रतिशत से बढ़ाकर 74 प्रतिशत कर दिया गया है।
13. कुरियर सेवा, होटल तथा पर्यटन, नागरिक विकास, हवाई अड्डे तथा महानगरों में त्वरित परिवहन प्रणाली में 100 प्रतिश्त विदेशी निवेश की छूट दी गई है।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न -

01. नयी औद्योगिक नीति 1991 की प्रमुख आलोचनाएं बताइये ?

02. नयी आर्थिक नीति में उदारीकरण पर अत्यधिक जोर दिया गया है, वर्णन कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

01. भारत में वर्तमान औद्योगिक नीति लागू है -
क. 1949 ख. 1956 ग. 1991 द. 1977

02. वर्तमान में जिन सार्वजनिक उद्योगों के लिए लाईसेंस लेना अनिवार्य है उनकी संख्या है -
अ. 4 ब. 8 स. 23 द. 24

03. उद्योग (विकास एवं नियमन) अधिनियम लागू किया गया -
अ. 1951 ब. 1952 स. 1992 द. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

04. औद्योगिक लाईसेसिंग प्रणाली को अपनाया गया -
अ. औद्योगिक नीति प्रस्ताव को क्रियान्वित करने के लिए
ब. एकाधिकार को प्रतिबन्धित करने के लिए।
स. विदेशी व्यापार को नियंत्रित करने के लिए
द. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

16.12 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान गये हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में स्वततंत्रता के पश्चात् कई औद्योगिक नीतियाँ बनायी गयीं। इनमें सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण औद्योगिक नीति 1991 की रही है। यह नीति बहुत खुली और उदार है। इसमें घरेलू और विदेशी निवेशकों को कई प्रोत्साहन दिये गये हैं परन्तु इस नीति का बहुत अधिक सकारात्मक प्रभाव न पड़ने के कारण इसमें संशोधन भी किया गया और उदारीकरण पर जोर दिया गया। इस इकाई के विवेचना से यह ज्ञात होता है कि भारतीय औद्योगिक क्षेत्र को कुशल एवं प्रतिस्पर्धात्मक बनाने के लिए औद्योगिक नीति में व्यापक उदारीकरण किया गया है।

16.13 शब्दावली

संरक्षण -विदेशी प्रतिस्पर्धा से घरेलू उद्योगों को बचाने के लिए आयात व्यापार प्रतिबंध लगाना।

एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापारिक व्यवहार अधिनियम -

आर्थिक शाक्ति के केन्द्रीयकरण को रोकना, एकाधिकार पर नियंत्रण रखना, प्रतिबन्धात्मक व अनुचित व्यापार को रोकने के लिए 1969 में बनाया गया अधिनियम है।

सार्वजनिक क्षेत्र -जिन उपक्रमों का उद्योगों पर सरकार का अथवा सरकारी संस्थाओं का स्वामित्व तथा प्रबन्ध होता है उसे सार्वजनिक क्षेत्र कहा जाता है।

ई-कॉमर्स -व्यापार और वाणिज्य की ऑन लाइन लेन-देन की कुशल प्रक्रिया है।

अंश-पत्र **(Share)** किसी कम्पनी की पूँजी में हिस्से का प्रमाण-पत्र है।

औद्योगिक लाईसेंस -एक लिखित अनुमति है जो किसी औद्योगिक इकाई को सरकार से मिलती है।

16.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग 1 16.5 देखिये।

भाग 2 16.7 देखिये।

भाग 3 16.8 देखिये।

वस्तु निष्ठ प्रश्नों के उत्तर-

1. ग 2. अ. 3. अ. 4. अ

16.15 संदर्भ ग्रन्थ

1. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
2. Rakesh Mohan 'Industrial Policy & Controls' in Bimal Jalan (ed) Indian Economy : Problems & Prospects 1992, Viking Penguin India.
3. Datt Ruddar (1997) Economic Reforms in India (A Unit).
4. Government of India, Hand Book of Industrial Policy and Statistics, 2001, P.10

16.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 1991 से पूर्व की औद्योगिक नीति की समीक्षा कीजिये।
2. सन् 1991 में औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताओं की समीक्षा समीक्षा कीजिये ?
3. औद्योगिक नीति 1991 आर्थिक उदारीकरण के परिप्रेक्ष्य में वर्णन कीजिये।

इकाई -17: औद्योगिक संरचना एवं उपलब्धियाँ

इकाई संरचना

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 औद्योगिक संरचना का अर्थ
17.4 1950 से पूर्व भारत की औद्योगिक संरचना
17.5 1951 के बाद भारत की औद्योगिक संरचना
17.5.1 असंतुलित औद्योगिक संरचना
17.5.2 पूँजी की तीव्रता
17.5.3 विनिर्माण वस्तु उत्पादन में पूँजी वस्तु की प्रधानता
17.6 पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास
17.7 औद्योगिक विकास और उपलब्धियाँ
17.7.1 उच्च विकास का चरण 1951-65 तक
17.7.2 निम्न विकास का चरण 1966-1980 तक
17.7.3 औद्योगिक पुनरूत्थान का चरण 1981 से 1990 तक
17.7.4 औद्योगिक सुधार का चरण 1991 के बाद की अवधि
17.8 योजनाकाल में औद्योगिक संरचना में परिवर्तन
17.9 1990 के बाद औद्योगिक संरचना में परिवर्तन
17.10 सारांश
17.11 शब्दावली
17.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.14 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

इस इकाई ''औद्योगिक संरचना एवं उपलब्धियाँ से पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में उद्योगों के विकास के लिए किस तरह की नीतियाँ अपनायी गयी तथा इनमें अनेक परिवर्तन भी किये हैं।

इस इकाई में आप इस बात का विस्तार से अध्ययन करेगे कि भारत में योजना काल में पूर्व तथा बाद में औद्योगिक संरचना किस प्रकार की रही है। क्या योजनाओं के दौरान औद्यानिक विकास की दर पर्याप्त है। औद्यागिक सुधारकाल में उपबब्धियाँ किस प्रकार की रही है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेगे कि भारत के औद्यागिक विकास के लिए औद्यागिक संरचना में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे है तथा इन परिवर्तनों का प्रभाव औद्यागिक विकास पर पड़ा है।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- भारतीय औद्योगिक संरचना का अध्ययन कर सकेंगें।
- विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं औद्योगिक विकास का अध्ययन कर सकेंगें।
- 1991 के बाद औद्योगिक संरचना में हुए परिवर्तनों को स्पष्ट कर सकेंगें।
- विभिन्न योजनाकाल में औद्योगिक उपलब्धियों को स्पष्ट कर सकेंगें।

17.3 औद्योगिक संरचना का अर्थ

औद्योगिक संरचना से अर्थ उद्योगों के ढाँचे या स्वरूप से लगाया जाता है। जो एक देश में एक समय में विद्यमान है यह स्वरूप स्थिर नहीं होता है इसमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। जैसे जैसे किसी देश में शक्ति, नवीन तकनीकी व यंत्रों का विकास होता जाता है। वैसे ही वैसे उस देश के उद्योगों की संरचना बदलती जाती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत की औद्योगिक संरचना इतनी अच्छी नहीं थी जितनी की आज है।

17.4 1950 से पूर्व भारत में औद्योगिक संरचना

आधुनिक औद्योगिक संरचना के विकास से पहले भारतीय निर्मित वस्तुओं का विश्वव्यापी बाजार था। भारतीय कपड़े (मलमल व छींट) की माँग पूरे विश्व में की जाती थी। भारतीय उद्योग न केवल स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करते थे अपितु वे निर्यात भी करते थे। निर्यात की वस्तुओं में रूई तथा सिल्क, छीट के कपड़े, बर्तन व ऊनी कपड़े प्रमुख थे।

इंग्लैण्ड से सम्बन्ध होने के कारण औद्योगिक क्रान्ति की शुरूआत हुई और भारत के हस्तशिल्प उद्योगों का पतन हुआ। इसके पतन से उत्पन्न रिक्त स्थान की पूर्ति आधुनिक उद्योग कायम करके नहीं की गई क्योंकि ब्रिटिश सरकार की भारत में निर्मित वस्तुओं के आयात तथा भारत के कच्चे माल के निर्यात को प्रोत्साहन देने की थी।

1918 के औद्योगिक आयोग की रिपोर्ट के बाद भारत में कुछ चुने हुए उद्योगों को विभेदकारी संरक्षण प्रदान किया गया। फिर भी कुछ उद्योग जैसे - सूत्री वस्त्र, चीनी, कागज, दियासलाई और कुछ हद तक लौह तथा इस्पात उद्योग ने प्रगति की। परन्तु ब्रिटिश शासनकाल में पूँजी वस्तु उद्योगों के विकास का कोई प्रयास नहीं किया गया वरन् इनकी उपेक्षा की गई।

17.5 1951 के बाद भारत में औद्योगिक संरचना

आजादी के समय भारत को कमजोर औद्योगिक आधार, अर्द्धविकसित और गतिहीन अर्थव्यवस्था विरासत में मिली थी। सरकार ने दिसम्बर 1947 में एक उद्योग सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन में केन्द्र व प्रान्तीय सरकारों के, उद्योगपतियों के तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसके अलावा औद्योगिक विकास में सहयोग प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने 1948-49 के बजट में उद्योगों को कुछ कर सम्बन्धी छूट दी और संविधान सभा द्वारा औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना का निर्णय लिया। सरकार ने औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में अपनी नीति का स्पष्टीकरण देने के उद्देश्य से 1948 में संसद में औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताव पास किया। भारत सरकार की कोशिशों का औद्योगिक संरचना पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

17.5.1 असंतुलित औद्योगिक संरचना

1956 तक औद्योगिक ढाँचा औद्योगिक इकाईयों की दृष्टि से असंतुलित था। 1956 के मध्य में विनिर्माण में लगभग 150 लाख व्यक्ति रोजगार प्राप्त थे। इसमें से 39 लाख व्यक्ति कारखाने में काम करते थे। (कारखाने की परिभाषा अधिनियम में किसी ऐसी उत्पादन इकाई के रूप में की गई है

जिसमें 10 या 10 से अधिक व्यक्ति काम करते हों) 111 लाख व्यक्ति ऐसे घरेलू उद्योगों व प्रयोगशालाओं में काम करते थे जो 10 से कम व्यक्तियों को रोजगार देते थे।

औद्योगिक रोजगार का आकारानुसार ढाँचा 1956

क्र.सं.	विवरण	रोजगार प्राप्त व्यक्तियोंकी संख्या	औसत दैनिक सं. (लाखों में)	उत्पादन इकाईयों की संख्या रोजगार
01.	घरेलू उद्योग व प्रयोगशालाएं	10 व्यक्तियों से कम	111	5130000
02.	छोटे कारखाने	10 से 49 व्यक्ति	12	61000
03.	मध्यम कारखाने	50 से 499 व्यक्ति	10	8050
04.	बड़े कारखाने	500 से अधिक	17	1050

भारत में औद्योगिक संरचना की विशिष्टता इस बात में है कि या तो घरेलू उद्योगों और प्रयोगशालाओं में रोजगार का सकेन्द्र अधिक है या फिर बड़े कारखानों में। इसका कारण था विदेशियों और बड़े-बड़े उद्योगपतियों द्वारा चालू की गई बड़ी कम्पनियाँ थीं और दूसरी ओर छोटे पैमाने पर चालू किये गये घरेलू उद्योग थे।

17.5.2 पूँजी की कम तीव्रता

औद्योगिक संरचना की एक और विशेषता थी पूँजी की अपेक्षाकृत कम तीव्रता। इसके दो करण थे - क. भारत में मजदूरी का स्तर निम्न था। ख. प्रति व्यक्ति आय कम थी जिससे बाजार का आकार छोटा था। परिणामतः तकनीकी का पिछड़ापन था।

पूँजी की तीव्रता केवल उपभोग वस्तु के उद्योगों अर्थात् कपड़ा, चीनी आदि में ही कम नहीं थी, बल्कि पूँजी वस्तु उद्योगों अर्थात् लौह तथा इस्पात में भी कम थी।

17.5.3 विनिर्माण वस्तु उत्पादन में पूँजी वस्तु उद्योगों के उत्पादन की प्रधानता

संयुक्त राष्ट्र के एक अनुमान के अनुसार 1953 में उपभोग वस्तु उद्योगों और पूँजी वस्तु उद्योगों के उत्पादन का अनुमान 62.38 था। यद्यपि भारत औद्योगिक विकास की ओर बढ़ रहा था किन्तु

इसमें पूँजी वस्तु क्षेत्र अभी तक कम विकसित हुआ और भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास एवं आत्मनिर्भर बनाने के लिए इस क्षेत्र का विकास आवश्यक था।

17.6 पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास

17.6.1 पहली पंचवर्षीय योजना -

पहली पंचवर्षीय योजना के आरम्भ होने के समय भारत का औद्योगिक आधार बहुत सीमित था। औद्योगिक विकास मुख्य रूप से उपभोक्ता वस्तु उद्योगों तक सीमित था और इनमें महत्वपूर्ण उद्योग थे - सूत्री वस्त्र, चीनी, नमक, साबुन, चमड़े का सामान तथा कागज उद्योग। कोयला, सीमेंट, इस्पात, ऊर्जा शक्ति, अलौह धातुएं, रसायन इत्यादि मध्यवर्ती उद्योग भी थे परन्तु उनका उत्पादन कम था क्योंकि उनकी उत्पादन क्षमता (सीमेंट को छोड़कर) आवश्यकता से काफी कम थी।

पहली योजना कोई खास महत्वपूर्ण योजना नहीं थी। इस योजना में कुल व्यय 1960 करोड़ रूपये था जिसमें से केवल 55 करोड़ रूपये औद्योगिक क्षेत्र के लिए रखे गये (जो कुल व्यय का मात्र 2.8 प्रतिशत बैठता है) परन्तु महत्वपूर्ण बात यह है कि पहली योजना में कई उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किए गए और कई उद्योगों ने उत्पादन आरम्भ किया। बड़े विनिर्माण क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य 7 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 6 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।

17.6.2 दूसरी पंचवर्षीय योजना -

दूसरी योजना के अन्तर्गत प्राथमिकता क्रम में औद्योगीकरण को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। महलानोबिस मॉडल पर आधारित इस योजना में सरकार ने बड़े पैमाने पर मूल व पूँजीगत वस्तु उद्योगों की स्थापना का लक्ष्य रखा ताकि भविष्य में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किया जा सके। यही कारण है कि उन उद्योगों को औद्योगिक क्षेत्र के कार्यक्रमों में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई।

दूसरी योजना में कुल व्यय 4,672 करोड़ रूपये था इसमें से 938 करोड़ रूपये (अर्थात् 20.1 प्रतिशत) उद्योगों पर खर्च किए गए। सबसे महत्वूपर्ण उपलब्धि सार्वजनिक क्षेत्र में तीन बड़े इस्पात कारखानों की स्थापना थी । (यह स्थापना भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में की गई)। भारत के औद्योगिक ढांचे में कमियों को पूरा करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र ने लोहा व इस्पात, लिग्नाईट, उर्वरकों, रेलवे इंजन व डिब्बे, मशीन टूल्स, भारी रसायन, जहाज निर्माण एंटिबायोटिक्स इत्यादि का उत्पादन शुरू कर दिया। दूसरी योजना में पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिक विकास के लिए भी कदम

उठाए गए। वास्तव में तीनों इस्पात कारखाने पिछडे क्षेत्रों (भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर) में स्थापित किए गए।

17.6.3 तीसरी पंचवर्षीय योजना -

जब दूसरी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास का आधार बनाने का लक्ष्य रखा गया वहां तीसरी पंचवर्षीय योजना में इस आधार को और मजबूत बनाने और इसका आगे विस्तार करने का लक्ष्य रखा गया। मूलभूत व पूंजीगत उद्योगों के और विकास पर जोर दिया गया ताकि आने वाली योजनाओं में औद्योगिक विकास निर्बाध गति से चलता रह सके। विभिन्न उद्योगों की वस्तुओं का देश में अभाव न होने पाए इसलिए वस्त्र, चीनी, कपड़ा, वनस्पति तेल, भवन निर्माण के लिए आवश्यक पदार्थों और औषधियों आदि से संबंधित उद्योगों के उत्पादन में वृद्धि की ओर भी ध्यान दिया गया।

तीसरी योजना में कुल औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि लक्ष्य की तुलना में 30 प्रतिशत कम थी। परन्तु कई उद्योगों जैसे - अल्युमीनियम, आटोमोबाइल्स, बिजली के ट्रांसफार्मर्स, मशीन टूल्स, डीजल इंजन, वस्त्र उद्योग के लिए आवश्यक मशीनरी, बालबियरिंग्स, रोलर बियरिंग्स इत्यादि में 15 प्रतिशत प्रति वर्ष से भी अधिक संवृद्धि दरें प्राप्त करने में सफलता मिली।

17.6.4 चौथी पंचवर्षीय योजना -

चौथी पंचवर्षीय योजना को 1969 में लागू किया। इस योजना में कुल निवेश 15,779 करोड़ रूपये था जिसमें से औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 2,864 करोड़ रूपये (18.2 प्रतिशत) था।

चौथी पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में मात्र 3.9 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई जबतिक लक्ष्य 8-10 प्रतिशत प्रति वर्ष्ा था। इस धीमे विकास के लिए कई कारण जिम्मेदार थे जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं - 1. मांग की कमी, 2. आधारभूत कच्चे माल की कमी, 3. मजदूरों में बढ़ती हुई कीमतों के कारण असंतोष, 4. परिवहन संबंधी कठिनाईयां जिनके कारण भारी वस्तुएं जैसे कोयला, सीमेंट, इस्पात, कच्चा लोहा इत्यादि लाने ले जाने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। 5. कोयला तथा बिजली की कमी जिसके कारण कई महत्वूपर्ण उद्योगों जैसे इस्पात, सूती वस्त्र, सीमेंट, उर्वरक, रसायन, अल्युमीनियम इत्यादि में उत्पादन में कमी आई तथा 6. कई उद्योगों में क्षमता उपयोग का कम स्तर और क्षमता सृजन में देरी।

17.6.5 पांचवीं पंचवर्षीय योजना -

पांचवीं योजना के औद्योगिक कार्यक्रम इस प्रकार से तैयार किए गए थे जिसमें आत्म-निर्भरता तथा संवृद्धि के साथ सामाजिक न्याय के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। निवेश और उत्पादन के निम्न पैटर्न की संकल्पना की गई। 1. प्रमुख क्षेत्र उद्योगों का तेज विकास क्योंकि ये उद्योग दीर्घकालिक आर्थिक विकास की दृष्टि से विशेष महत्व रखते हैं इसलिए इस्पात, अलौह धातुओं, उर्वरकों, खनिज तेलों, कोयला और मशीन निर्माण उद्योगों में विस्तार को उच्च प्राथमिकता दी गई। 2. निर्यात-उत्पादक उद्योगों का तेज विविधीकरण और विकास, 3. कपड़ा, खाद्य तेल व वनस्पति, चीनी, दवाईयां, साईकिल इत्यादि। आवश्यक उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में व्यापक विस्तार, तथा 4. अनावश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर रोक। पांचवी योजना में कुल व्यय 39,426 करोड़ रूपये था जिसमें औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 8989 करोड़ रूपये (22.8 प्रतिशत) था। औद्योगिक संवृद्धि का लक्ष्य 7 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि उपलब्धि 5.9 प्रतिशत प्रति वर्ष रही।

17.6.6 छठी पंचवर्षीय योजना -

छठी योजना में कुल 1,09,292 करोड़ रूपये का व्यय किया गया जिसमें औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 15002 करोड़ रूपये (13.7 प्रतिशत) था। छठी योजना की अवधि में सरकार ने औद्योगिक नीति में व्यापक परिवर्तनों की घोषणा की। औद्योगिक नियन्त्रणों में काफी ढील दी गई और औद्योगिक नीति एवं आयात नीति को पहले की तुलना में, बहुत उदार कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप, औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि होने लगी। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के उत्पादन में तथा रसायन, पेट्रो-रसायन व सहायक उद्योगों के उत्पदन में तेज वृद्धि हुई। ये उत्पादन क्षेत्र काफी बड़ी मात्रा में आयातित माल का प्रयोग करते हैं। इसके विपरीत, अन्य उत्पादन क्षेत्रों में विकास कम गति से हुआ।

17.6.7 सांतवी पंचवर्षीय योजना -

सांतवी योजना में संवृद्धि के साथ विकास तथा उत्पादकता में सुधार को विशेष महत्व दिया गया इन बातों को ध्यान में रखते हुए, औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए निम्नलिखित उद्देश्य रखे गये - 1. उचित कीमतों तथा सही क्वालिटी की आम उपभोग वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति बनाए रखना। 2. उपलब्ध सुविधाओं के बेहतर उपयोग को उत्पादकता में सुधार लाकर तथा अच्छी तकनीक का प्रयोग करके संभव बनाना, 3. व्यापक घरेलू बाजार तथा निर्यात संभाव्यता वाले उद्योगों के विकास पर जोर देना, 4. इलैक्ट्रोनिक्स व कम्प्यूटर उद्योगों का विकास करना तथा 4. आत्म-निर्भरता की दिशा में एकीकृत नीति अपनाना और प्रशिक्षित व कौशल प्राप्त लोगों के लिए रोजगार के अवसर पैदा करना। सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक कार्यक्रमों के लिए 19,663 करोड़

रूपये का परिव्यय रखा गया जबकि वास्तविक व्यय 25,271 करोड़ रूपये था जो कि सातवीं योजना में कुल व्यय 2,18,730 करोड़ रूपये का 11.9 प्रतिशत था) औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का लक्ष्य 8.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया जबकि सातवीं योजना में वास्तविक संवृद्धि दर 8.5 प्रतिशत रही। इस प्रकार, औद्योगिक क्षेत्र में संवृद्धि लक्ष्य के अनुरूप रही।

17.6.8 आठवीं पंचवर्षीय योजना -

आठवीं योजना में औद्योगिक क्षेत्र का परिव्यय 40,588 करोड़ रूपये रखा गया जो कुल 4,34,100 करोड़ रूपये परिव्यय का मात्र 9.3 प्रतिशत था। सार्वजनिक क्षेत्र अब अधिकाधिक रूप से मूलभूत तथा कोर उद्योगों तक ही केन्द्रित कर दिया जायेगा। आठवीं योजना में, उद्योगों पर वास्तविक व्यय 40,623 करोड़ रूपये रहा जो कुल वास्तविक व्यय 4,85,457 करोड़ रूपये का मात्र 8.5 प्रतिशत था।

औद्योगिक नीति के उदारीकरण के अनुरूप, आठवीं योजना में मात्रात्मक लक्ष्यों पर कम जोर दिया गया। विभिन्न क्षेत्रों में वांछित संवृद्धि प्राप्त करने के लिए इस योजना में औद्योगिक, व्यापार तथा राजकोषीय नीतियों में आवश्यक फेरबदल तथा करो व शुल्कों में परिवर्तनों का सहारा लेनें की बात की गई न कि आयातों/निर्यातों पर मात्रात्मक प्रतिबंध अथवा लाईसेसिंग पद्धति का सहारा। औद्योगिक क्षेत्र के लिए आठवीं योजना में 7.3 प्रतिशत प्रति वर्ष संवृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि उपलब्धि 7.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रही। इस प्रकार लक्ष्य को प्राप्त कर लिया गया।

17.6.9 नौवीं पंचवर्षीय योजना -

नौवीं पंचवर्षीय योजना में उद्योग और खनन के लिए 65,148 करोड़ रूपये का परिव्यय रखा गया। (इसमें ध्यान रखने की बात यह है कि इस योजना में मुख्य क्षेत्र-अनुसार परिव्यय दिया गया है, इसलिए उद्योग पर परिव्यय में लघु एवं कुटीर उद्योगों पर परिव्यय भी शामिल है)। यह कुल योजना परिव्यय 8,59,200 करोड़ रूपये का 7.6 प्रतिशत था। परन्तु नौवी योजना में उद्योग और खनन पर वास्तविक व्यय केवल 40,341 करोड़ रूपये था जो योजना में किए गए कुल व्यय का मात्र 5.0 प्रतिशत है। नौवी योजना में औद्योगिक संवृद्धि का लक्ष्य 8.2 प्रतिशत प्रति वर्ष रखा गया।

17.6.10 दसवीं पंचवर्षीय योजना -

दसवीं पंचवर्षीय योजना में उद्योग और खनन के लिए 58,939 करोड़ रूपये का परिव्यय रखा गया है जो कुल योजना परिव्यय 15,25,639 करोड़ रूपये का मात्र 3.9 प्रतिशत है। उद्योग क्षेत्र के लिए 8.9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का लक्ष्य था इस क्षेत्र ने 9.17 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त की।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में उद्योगों व सेवाओं में 9 से 11 प्रतिशत वार्षिक की दर से वृद्धि का लक्ष्य रखा गया है।

17.7 औद्योगिक विकास और उपलब्धियाँ

औद्योगिक विकास और उपलब्धियाँ को चार चरणों में रखते हैं

17.7.1 उच्च विकास का चरण (1951-1965)

यह चरण अत्यन्त महत्वपूर्ण था क्योंकि इसमें भविष्य में औद्योगिक विकास के लिए मजबूत आधार तैयार किया गया। महलानोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना में पूँजीगत वस्तु उद्योगों तथा मूलभूत उद्योगों के विकास पर विषेश जोर दिया गया। यही कारण है कि लोहा व इस्पात, भारी इंजीनियरिंग तथा मशीन निर्माण उद्योगों में भारी निवेश किया गया।पहली तीन योजनाओं में औद्योगिक उत्पादन की वार्षिक वृद्धि दर में बढ़ोत्तरी हुई और यह दर पहली योजना में 5.7 प्रतिषत से बढ़कर दूसरी योजना में 7.2 प्रतिषत तथा तीसरी योजना में 9.0 प्रतिषत हो गई। जैसाकि सारणी 1 से स्पश्ट है, इस वर्ग की वार्षिक संवृद्धि दर जो पहली योजना में 4.7 प्रतिशत थी दूसरी योजना में बढ़कर 12.1 प्रतिशत तथा तीसरी योजना में 10.4 प्रतिशत हो गई। इससे यह सिद्ध होता है कि पहली तीन योजनाओं में औद्योगिक विकास का मजबूत आधार तैयार करने की दिशा में महत्वपूर्ण काम हुआ। इसका श्रेय निःसंदेह सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश के व्यापक विस्तार को जाता है।

सारणी 1: औद्योगिक उत्पादन के सूचकांकों में वार्षिक संवृद्धि दरें

औद्योगिक वर्ग	1951 से 1955 (4 वर्ष)	1955 से 1960	1960 से 1965	1965 से 1970	1974 से 1979(पांचवी योजना की औसत)	1979-80
1. मूल उद्योग	4.7	12.1	10.4	6.5	8.4	-0.5
2.पूंजीगत वस्तु उद्योग	9.8	13.1	19.6	2.6	5.7	-2.3
3. मध्यवर्ती वस्तु उद्योग	7.8	6.3	6.9	3.0	4.3	1.9
4. उपभोक्ता वस्तु उद्योग	4.8	4.4	4.9	3.4	5.5	-4.4
क .उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं	-	-	-	6.2	6.8	5.6
ख .उपभोक्ता गैर टिकाऊ वस्तुएं	-	-	-	2.8	5.4	6.1
5. सामान्य सूचकांक	5.7	7.2	9.0	4.1	6.1	-1.6

17.7.2 निम्न विकास का चरण (1966-1980) -

जैसा कि सारणी 1 से स्पष्ट है कि 1965 से 1976 के बीच औद्योगिक संवृद्धि में तेज गिरावट आई। औद्योगिक संवृद्धि की दर जो तीसरी योजना में 9.0 प्रतिशत थी, 1965 से 1976 की अवधि में गिरकर मात्र 4.1 प्रतिशत प्रति वर्ष रह गई। वास्तव मं यह कम संवृद्धि दर भी सही स्थिति नहीं दिखाती क्योंकि वर्श 1976-77 में औद्योगिक उत्पादन में 10.6 प्रतिशत की तेज वृद्धि हुई थी। यदि इस वर्ष को छोड़ दिया जाये तो 1965 से 1975 के बीच के दस वर्षों में औद्योगिक संवृद्धि की दर मात्र 3.7 प्रतिशत प्रति वर्ष रह जाती है। पांचवीं पंचवर्शीय योजना में औद्योगिक उत्पादन में संवृद्धि की दर 6.1 प्रतिशत प्रति वर्ष प्रति वर्ष रही। इसका भी मुख्य कारण 1976-77 में होने वाली 10.6 प्रतिशत वृद्धि था।

औद्योगिक संवृद्धि में गतिहीनता के साथ साथ सारणी में संरचनात्मक प्रतिगमन की प्रवृत्ति भी स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि दीर्घकालीन औद्योगिक विकास की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है पूँजीगत वस्तु उद्योगों का समूह। इस समूह (या वर्ग) की संवृद्धि दर जो पहली योजना में 9.8 प्रतिशत प्रति वर्ष थी, दूसरी योजना में 13.1 प्रतिशत प्रति वर्ष तथा तीसरी योजना में 19.6 प्रतिशत प्रति वर्ष तक पहुंच गई। निश्चय ही यह एक अत्यन्त उत्साहवर्धक निश्पत्ति थी। परन्तु उससे आगे के ग्यारह वर्शों (1965 से 1976) में पूंजीगत वस्तु उद्योगों के समूह की वार्षिक संवृद्धि की दर मात्र 2.6 प्रतिशत प्रति वर्ष थी। यदि हम केवल पांचवी योजना की अवधि पर विचार करें तो इस योजना में संवृद्धि 5.7 प्रतिशत प्रति वर्ष आती है परन्तु यह भी पहली तीन योजनाओं में प्राप्त संवृद्धि दरों की तुलना में बहुत कम है मूल उद्योगों में भी यही स्थिति पाई़ जाती है।

1965 से 1980 की अवधि में पूँजीगत वस्तु उद्योगों तथा मूल उद्योगों की संवृद्धि दरों में गिरावट इस बात का प्रमाण है कि इस अवधि में संरचनात्मक प्रतिगमन हुआ था।

17.7.3 औद्योगिक पुनरूत्थान का चरण (1981-1990):

1980 के दशक को मोटे रूप में औद्योगिक पुनरूस्थान का काल कहा जाता है। यह बात औद्योगिक उत्पादन के संशोधित सूचकांक (जिसका आधार वर्ष 1980-81 = 100), है से पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है। इस सूचकांक पर आधारित औद्योगिक संवृद्धि दरें सारणी 2 में दी गई है -

सारणी 2: 1980 के दशक में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर

(प्रतिशत प्रति वर्ष)

क्र.सं.	औद्योगिक समूह	1981-85	1985-90	1990-91
01.	मूल उद्योग	8.7	7.4	3.8
02.	पूंजीगत वस्तु उद्योग	6.2	14.8	17.4
03.	मध्यवर्ती वस्तु उद्योग	6.0	6.4	6.1
04.	उपभोक्ता वस्तु उद्योग	5.1	7.3	10.4
क.	उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं	14.3	11.6	14.8
ख.	उपभोक्ता गैर टिकाऊ वस्तुंए	3.8	6.4	9.4

स्रोत - Government of India, Hand Book of Industrial Statistics, 1992

1981-85 में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 6.4 प्रतिशत प्रति वर्ष थी जो सातवीं योजना में बढ़कर 8.5 प्रतिशत प्रति वर्ष तथा 1990-91 में 8.3 प्रतिशत हो गई। विजय केलकर और संजीव कुमार के अनुसार, ''यह संवृद्धि दरें सातवें दशक के उत्तरार्द्ध और आठवें दशक में प्राप्त 4 प्रतिशत प्रति वर्ष की संवृद्धि दरों की तुलना में कहीं ज्यादा है।

औद्योगिक पुनरूत्थान की इस प्रवृत्ति की ओर अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी ध्यान आकर्षित किया है। आहलूवालिया के अनुसार 1980 के दशक में औद्योगिक पुनरूस्थान की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है उसकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि वह बेहतर उत्पादकता का परिणाम थी। जहां 1966-67 से 1979-80 के बीच कुल साधन उत्पादकता में कोई वृद्धि नहीं हुई (वस्तुतः उसमें 0.2 से 0.3 प्रतिशत प्रति वर्ष की गिरावट आई), वहां 1980 के दशक के पूर्वार्द्ध में उसमें 3.4 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई।

1980 के दशक में आधरिक संरचना में निवेश में काफी वृद्धि हई। 1965-66 से 1975-76 के बीच आधारिक संरचना में निवेश की वृद्धि मात्र 4.2 प्रतिशत प्रति वर्ष थी जो 1979-80 से 1984-85 के बीच बढ़कर 9.7 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। 1985-86 में आधारिक संरचना में निवेष 16.0 प्रतिशत तथा 1986-87 में 18.3 प्रतिशत और बढ़ गया। आहलूवालिया के अनुसार, अस्सी के दशक में आधारिक संरचना में निवेश में इस वृद्धि के साथ साथ दक्षता में भी बहुत सुधार हुआ।

17.7.4 औद्योगिक सुधार का चरण 1991 से बाद की अवधि

1991 से आर्थिक उदारीकरण के एक नए युग की शुरूआत हुई। औद्यानिक क्षेत्र के निशपादन को प्रभावित करने वाली नई उदारीकृत नीतियां थीं- औद्यानिक लाइसेंसिंग में व्यापक उदारीकरण व लाइसेंसिंग से अधिकतर उद्योगों की मुक्ति, कार्यकारी नियमों व नियंत्रणों में सरलीकरण, सार्वजनिक

क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों में कमी तथा निजी क्षेत्र के लिए अधिकतर उद्योगों के द्वार खोलना, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में विनिवेष, धरेलू औद्यानिक क्षेत्र में विदेशी भागीदारी को बढ़ावा, व्यापार व विनिमय दर नीतियों में उदारीकरण, सीमा षुल्कों, उत्पादन शुल्कों, आय कर तथा निगम कर की दरों में कमी, इत्यादि।

उदारीकरण के पूर्व के दशक तथा बाद की अवधि में औद्यानिक उत्पाद की औसत वार्षिक संवृद्धि दर

क्र. सं	औद्योगिक समूह	80-81 से 91-92	आठवी योजना 92-93 से 96-97	नौवी योजना 97-98 से 01-02	छठवीं योजना 02-03 से 06-07	06-07	07-08	08-09
1.	मूल उद्योग	7.4	6.8	4.1	6.6	10.3	7.0	2.6
2.	पूँजीगत वस्तु उद्योग	9.4	8.9	4.7	14.4	18.2	18.0	7.3
3.	मध्यवर्ती वस्तु उद्योग	4.9	8.5	5.8	6.2	12.0	8.9	-1.9
4.	उपभोक्ता वस्तु उद्योग	6.0	6.6	5.5	9.6	10.1	6.1	4.7
क.	उपभोक्ताटिकाऊ वस्तुएं	10.8	13.4	10.7	8.8	9.2	-1.0	4.5
ख.	उपभोक्ता गैर टिकाऊ वस्तुएं	5.3	4.8	3.8	10.0	10.4	8.5	4.8
	सामान्य सूचकांक	7.8	7.4	5.0	8.2	11.5	8.5	2.7

स्रोतः Reserve Bank of India, Handi Book of Statistics on Indian Economy, 2008-009

उदारीकरण के बाद की अवधि में औद्योगिक संवृद्धि के बारे में महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं -

01.आठवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि 7.4 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जो लक्षित दर के बराबर थी। इसलिए इस आधार पर औद्योगिक निशपादन संतोषजनक था।

02.नौवीं पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर केवल 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष रही जो लक्षित 8.2 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बहुत कम थी। इसलिए 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक क्षेत्र का निष्पादन अत्यन्त असंतोषजनक था।

03.नौवी पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्श 2001-02 में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर मात्र 2.7 थी। यह 1992-93 से 2001-02 के पूरे दशक के दौरान सबसे खराब औद्योगिक प्रदर्शन था।

1992-93 के वर्ष को छोड़कर जब औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 2.3 प्रतिशत थी। दसवीं योजना के प्रथम चार वर्षों 2002-03, 2003-04, 2004-05 तथ 2005-06 में औद्योगिक संवृद्धि दर बढ़कर क्रमश 5.7 प्रतिशत, 7.0 प्रतिशत, 8.4 प्रतिशत तथा 8.2 प्रतिशत हो गई। इन चार वर्शों में पूंजीगत वस्तु उद्योगों का निष्पादन अच्छा था। 2002-03 में उपभोक्ता गैर-टिकाऊ वस्तुओं, 2003-04 में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं तथा 2004-05 एवं 2005-06 में सभी उपभोक्ता वस्तुओं (टिकाऊ एवं गैर-टिकाऊ) का प्रदर्शन भी अच्छा रहा।

04.जहाँ तक विभिन्न औद्योगिक समूहों का संबंध है, सारणी से यह बात स्पष्ट होती है कि, 1980 के दशक की तुलना में, 1990 के दशक में पूंजीगत वस्तु उद्योगों और मूल वस्तु उद्योगों का निष्पादन खराब रहा, खासतौर पर 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में। उदाहरण के लिए, 1980 के दशक में पूंजीगत वस्त उद्योग की औसत वार्षिरक संवृद्धि दर 9.4 प्रतिशत रही जो आठवीं योजना में कम होकर 8.9 प्रतिशत तथा नौवीं योजना में और कम होकर केवल 4.7 प्रतिशत रह गई। मूल वस्तु उद्योग में भी इसी प्रकार की स्थिति रही।

05.उदारीकरण के पूर्व के दशक की तुलना, में, उदारीकरण के बाद के दशक में मध्यवर्ती वस्तु उद्योग तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योग का निष्पादन बेहतर रहा। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं का निष्पादन विशेष तौर पर अच्छा रहा। वस्तुतः यही एक ऐसा उद्योग-वर्ग है जिसकी औसत संवृद्धि दर 1980 के दशक तथा 1990 के दशक दोनों में ही प्रतिशत प्रति वर्ष से अधिक रहीं (हालांकि 2002-03 में इस उद्योग-वर्ग का निष्पादन खराब रहा)।

ये प्रवृत्तियां सरकारी नीति के अनुरूप हैं जिसमें उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के विकास को अधिक प्रोत्साहन दिया गया है संभवतः यह सोचते हुए कि यह क्षेत्र संवृद्धि का स्रोत बन सकता है। उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं को खरीदने के लिए वित्तीय सुविधाओं का व्यापक प्रसार इसी नीति का एक अंग माना जाना चाहिए।

17.8 योजना काल में औद्योगिक ढांचे में परिवर्तन

01.औद्योगिक आधारिक संरचना का निर्माण

आधुनिक औद्योगिक विकास अर्थव्यवस्था की आधारिक संरचना में व्यापक विस्तार के बिना संभव नहीं है। इसमें बिजली, कोयला, इस्पात, क्रूड पेट्रोलियम तथा पेट्रोलियम रिफाइनरी सम्मिलित हैं। ये उद्योग कुल औद्योगिक उत्पादन का 26.7 भाग उत्पादन करते हैं विद्युत उत्पादन व्यवसायिक ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। 1951 में 5.1 विलियन KWH विद्युत ऊर्जा का उत्पादन हुआ जो बढ़कर 2008-09 में 723.8 मिलियन KWH हो गया। कोयला उत्पादन में भारत का

विश्व में चौथा स्थान है। भारत में कोयले का उत्पादन 1950-51 में 32.3 मिलियन टन था। 2008-09 में 493.3 मिलियन टन हो गया है। 2004-05 से 2008-09 के दौरान कच्चे तेल की घरेलू आपूर्ति लगभग 34 मिलियन मी. टन रही है। 2009-10 के दौरान कच्चे तेल का उत्पादन 36.71 मिलियन टन है जो 1950-51 में केवल .3 मिलियन टन था। 2009 में भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा इस्पात उत्पादक देश हो गया है इसमें पहला और दूसरा स्थान क्रमशः चीन व जापान का है। इस उद्योग में 90,000 करोड़ रू. की पूँजी लगी हुई है तथा 5 लाख से अधिक लोगों को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार मिला हुआ है। वर्ष 1950-51 में तैयार स्टील का उत्पादन 1.0 मिलियन टन था जो बढ़कर 2008-09 में 57.16 मिलियन टन हो गया। सीमेंट उद्योग का स्थान देश में सबसे उन्नत उद्योगों में है नवम्बर 2008 के अंत में देश में 159 बड़े सीमेंट संयंत्र थे तथा देश में 332 लघु सीमेंट संयंत्र भी हैं। वश्र 1950-51 में सीमेंट का उत्पादन 2.7 मिलियन टन था। वर्ष 2008-09 में 181.4 मिलियन टन हो गया। सीमेंट उद्योग ने टैक्नोलॉजी के विकास और आधुनिकीकरण के साथ पूरा तालमेल रखा है। वर्ष 2007-08 में सीमेंट और ईंट का निर्यात 60.2 लाख टन रहा।

2.सकल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र के हिस्से में वृद्धि

योजनाकाल में सकल घरेलू उत्पाद में औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा धीरे-धीरे बढ़ा है। उदाहरण के लिए जी.डी.पी.में उद्योग का हिस्सा (इनमें विनिर्माण, निर्माण, बिजली, गैस तथा जलपूर्ति शामिल है) जो 1950-51 में 13.3 प्रतिशत था, 1980-81 में 21.6 प्रतिशत तथा 1999-2000 में 24.3 प्रतिशत (1993-94 की कीमतों पर) हो गया। अब केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन ने 1999-2000 को आधार वर्ष मानकर एक नई श्रृंखला तैयार की है। इस नई श्रृंखला के अनुसार, औद्योगिक क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में हिस्सा 1999-2000 में 23.1 प्रतिशत तथा 2005-06 में 24.1 प्रतिशत था। 2009-10 में 28 प्रतिशत था।

3.भारी तथा पूँजीगत वस्तु उद्योगों का निर्माण

क्योंकि आयोजन के आरम्भ से ही पूरा जोर अर्थव्यवस्था की उत्पादक शक्ति को बढ़ाने पर था इसलिए औद्योगिक क्षेत्र में निवेश का एक बड़ा हिस्सा उन उद्योगों में लगाया गया जो भविष्य में और उत्पादन को प्रोत्साहित कर सकने के लिए आवश्यक थे जैसे मशीनों का उत्पादन करने वाली मशीनों का उत्पादन। यही कारण है कि आयोजकों ने भारी व पूंजीगत वस्तु उद्योगों में निवेश पर बहुत ध्यान दिया। इसका परिणाम यह हुआ है कि देश का औद्योगिक आधार 1950-51 की तुलना में कहीं ज्यादा मजबूत हो चुका है। कई प्रकार की इंजीनियरिंग वस्तुओं, लोहा व इस्पात, धातु व धातु आधारित वस्तुओं इत्यादि का अब देश में ही उत्पादन होता है तथा अन्य देशों पर निर्भरता में काफी कमी हुई है।

4.विविधीकृत औद्योगिक ढांचे का निर्माण

प्रथम योजना के आरम्भ में कुल औद्योगिक उत्पादन में केवल चार उद्योगों (खाद्य पदार्थों, कपड़ा उद्योग, लकड़ी व फर्नीचर, तथा मूल धातु) का हिस्सा दो तिहाई था। परन्तु अब उनका हिस्सा काफी कम रह गया है तथा मषीनरी उद्योग (जिसमें विद्युत एवं गैर-विद्युत मशीनरी दोनों शामिल हैं), रसायन उद्योग, परिवहन उपकरण उद्योग आदि का हिस्सा काफी तेजी के साथ बढ़ा है। इस प्रकार अब देश का औद्यागिक ढांचा काफी विविधीकृत हो चुका है।

5.उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं का तेज विकास

हाल के वर्षो में औद्योगिक नीति व आयात नीति को बहुत उदार बनाया गया है। जिसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के उत्पादन में तेज वृद्धि हुई है। 1981-85 के दौरान इन उद्योगों के उत्पादन में 14.4 प्रतिशत प्रति वर्ष तथा 1965.90 में 16.9 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई है। 1991-92 और 1992-93 में इन उद्योगों की संवृद्धि दर को झटका लगा परन्तु उसके बाद 1993-94, 1994-95 तथा 1995-96 में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के उत्पादन में तेज वृद्धि हुई। अगले तीन वर्षों में इनके उत्पादन की संवृद्धि दर काफी गिर गई परन्तु 1999-2000 में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं की संवृद्धि दर बढ़कर 14.2 प्रतिशत तथा 2000-01 में 14.5 प्रतिशत हो गई। 2003-04 में यह 11.6 प्रतिशत 2004-05 में 14.4 प्रतिशत तथा 2005-06 में 15.3 प्रतिशत है।

6.सार्वजनिक क्षेत्र का विकास

स्वतंत्रता से पूर्व सार्वजनिक क्षेत्र का अस्तित्व न के बराबर था। सभी औद्योगिक गतिविधियों पर नियंत्रण निजी क्षेत्र का था। योजनाकाल में सार्वजनिक क्षेत्र का बहुत विस्तार व विकास हुआ है। उदाहरण के लिए पहली योजना के शुरू होने के समय सार्वजनिक क्षेत्र में केवल 5 इकाइयां थीं और इनमें 29 करोड़ रूपनये का निवेश था। 31 मार्च, 2009 को इनकी संख्या 246 हो गई निश्चय ही यह शानदार विस्तार है। सार्वजनिक क्षेत्र ईंधन, आधारभूत उद्योगों, अलौह धातु उद्योगों, उर्वरकों, संचार उपकरणों इत्यादि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

17.9 1990 के बाद औद्‌योगिक संरचना में परिवर्तन

1990 के दशक में औद्योगिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं और इनमें से कुछ परिवर्तन सरकार द्वारा 1991 से अपनाई जा रही उदारीकरण नीति का सीधा परिणाम है। महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित हैं -

01.उपभोक्ता वस्तुओं और मध्यवर्ती वस्तुओं की तरफ झुकाव

भारतीय औद्योगिक अर्थव्यवस्था का 1990 के दशक में झुकाव उपभोक्ता वस्तुओं और मध्यवर्ती वस्तुओं की तरफ रहा है। यह मूल उद्योगों व पूंजीगत उद्योगों के कम होते हुए महत्व को प्रतिलक्षित करता है। जहां औद्योगिक उत्पादन के पुराने सूचकांक (आधार 1980-81 = 100) में मूल उद्योगों एवं पूंजीगत उद्योगों का भार क्रमशः 39.4 तथा 16.4 था, वहाँ नए सूचकांक (आधार 1993-94 = 100) में इनका भार क्रमशः 35.6 तथा 9.3 रह गया। इसके विपरीत मध्यवर्ती वस्तुओं का भार जो पुराने सूचकांक में 20.5 था, नए सूचकांक में 26.5 हो गया। उपभोक्ता वस्तुओं का भार भी पुराने सूचकांक में 23.6 में बढ़कर नए सूचकांक में 28.7 हो गया।

02.मूल उद्योग समूह और पूंजीगत वस्तु उद्योग समूह की भीतरी संरचना में परिवर्तन

जहां तक मूल उद्योगों का संबंध है, नए सूचकांक में मूलभूत धातु और मिश्र धातुओं के महत्व में कमी हुई है। पुराने सूचकांक में इनका भार 9.80 था जो नए सूचकांक में गिरकर 7.45 रह गया। इसके विपरीत, पूंजीगत वस्तु उद्योग समूह में सभी पूंजीगत वस्तुओं के भार में कमोबेश एक जैसी गिरावट आई।

03.मध्यवर्ती वस्तु उद्योग समूह की भीतरी संरचना में परिवर्तन

मध्यवर्ती वस्तु उद्योग समूह के भार में जो वृद्धि दिखाई देती है उसका मुख्य कारण रसायनों व रसायन पदार्थों के महत्व में होने वाली वृद्धि है। पुराने सूचकांक में रसायनों व रसायन पदार्थो का भार 4.00 था जो नए सूचकांक में बढ़कर 14.00 हो गया। दूसरी ओर, रबड़, प्लास्टिक, पेट्रोलियम तथा कोयला उत्पादों का भार जो पुराने सूचकांक में 12.51 था, नए सूचकांक में कम होकर मात्र 5.73 रह गया।

04.उपभोक्ता वस्तु उद्योग समूह में संरचनात्मक परिवर्तन

औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में उपभोक्ता वस्तु उद्योग समूह के भार में वृद्धि के अलावा, इस उद्योग समूह की भीतरी संरचना में भी परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिए, उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के उप समूह का भार दुगुने से अधिक हो गया है। (पुराने सूचकांक में भार 2.6 था जो नए सूचकांक में बढ़कर 5.4 हो गया है) । यह औद्योगिक अर्थव्यवथा में खुलेपन और उदारीकरण का सीधा परिणाम हैं। इस उप-समूह के तेज विकास को वित्तीय कम्पनियों द्वारा आसान शर्तो पर ऋण देने की नीति से बल और प्रोत्साहन मिला है। एक अन्य बात जिसकी ओर ध्यान देना आवष्यक है यह है कि परम्परागत सूती वस्त्र उद्योग के महत्व में कमी हुई है। (इस उद्योग का पुराने सूचकांक में भार 12.31 था, जो नए सूचकांक में गिरकर मात्र 5.52 रह गया है) दूसरी ओर, खाद्य उत्पाद उद्योग तथा

पेय, तम्बाकू व तम्बाकू पदार्थ उद्योग के महत्व में वृद्धि हुई है। खाद्य उत्पाद उद्योग का भार पुराने सूचकांक में 5.33 था जो नए सूचकांक में बढ़कर 9.08 हो गया। पेय, तम्बाकू व तम्बाकू पदार्थ उद्योग का भार पुराने सूचकांक में 1.57 से बढ़कर नए सूचकांक में 2.38 हो गया।

अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न -

1. काल में औद्योगिक ढांचे से होने वाले परिवर्तन बताइये।
2. उदारीकरण के पश्चात आर्थिक सुधार कार्यक्रम का भारत के औद्योगिक विकास और उपलब्धियों पर क्या प्रभाव पड़ा ?
3. योजना औद्योगिक संरचना में हुए परिवर्तन स्पष्ट कीजिये।

वस्तु निष्ठ प्रश्न -

सही विकल्प चुनकर लिखिये

01. 1951 में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग थे -
    क. 2 ख. 3 स. 4 द. 5
02. भारत में औद्योगीकरण किस पंचवर्षीय योजना में प्रारम्भ की गई थी -
    अ. पहली ब. दूसरी स. तीसरी द. चौथी
03. आठवी योजनाकाल में अर्थव्यवस्था को नया रूप देने के लिए प्रयास किया गया इसमें-
    अ. उदारीकण ख. विश्वव्यापीकरण स. आर्थिक सुधारों की श्रृंखला
    द. उपर्युक्त सभी।
04. औद्योगिक चिकास की दर वार्षिक दर बढ़ाने के लिए उपाय अपनाना चाहिए-
    अ. उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग ब. आधुनिक तकनीकी का प्रयोग
    स. मानवीय संबंध सुधार द. उपरोक्त सभी

17.10 सारांश

औद्योगिक संरचना और उपलब्धियां इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान गये हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश की औद्योगिक संरचना अत्यन्त कमजोर थी। औद्योगिक संरचना में परिवर्तन विभिन्न योजनाओं के दौरान हुआ। हम यह भी जान गये हैं कि हमारे देश की औद्योगिक संरचना 1991 के उदारीकरण के दौर से प्रभावित हुई तथा इसका प्रभाव निष्पादन पर भी पड़ा। 1991 से पूर्व औद्योगिक संरचना और निष्पादन में उतार रचढ़ाव होते रहे। 1991 के बाद

औद्योगिक सुधार का चरण प्रारम्भ हुआ। वर्तमान औद्योगिक संरचना प्राचीन संरचना से एकदम अलग है तथा उपलब्धियों के संदर्भ में भी इस क्षेत्र की प्रगति सराहनीय है।

17.11 शब्दावली

क. आर्थिक संवृद्धि विकास - इसका आशय एक ऐसी प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत प्रति व्यक्ति आय से लम्बी अवधि तक वृद्धि होती है । इसमें उत्पादन वृद्धि के साथ साथ तकनीकी व संरचनात्मक परिवर्तनों का होना आवश्यक है।
ख. उपभोक्ता वस्तु उद्योग -वह औद्योगिक इकाईयाँ, जो उन सभी वस्तुओं का उत्पादन करती है जिनसे उपभोक्ताओं की प्रत्यक्ष संतुष्टि होती है।
ग. पूँजीगत वस्तु उद्योग -वे औद्योगिक इकाइयाँ जो ऐसी वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जिनकी सहायता से किसी अन्य वस्तु का उत्पादन किया जा सकता है।
घ. उदारीकरण -उदारीकरण से अभिप्रायः उद्योग तथा व्यापार को अनावष्यक प्रतिबन्धों से मुक्त करके अधिक उपयोगी बनाना है।
ड. आधारभूत उद्योग -ऐसे उद्योगों से हैं जो एक देश के विकास हेतु परम आवष्यक है। जैसे लौह व इस्पात, खान उद्योग, रसायन उद्योग आदि।

17.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग1 17.2 देखिये
भाग 2 17.5 देखिये
लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर
भग 1 17.6 देखिये
भाग 2 17.7 देखिये
भाग 3 17.8 देखिये।

17.13 संदर्भ ग्रन्थ

01. Isher J Ahluwalia, Industrial Growth in India : Staghation since the Mid Six ties 1984.
02. Planning Commission, Tenth Five Year Plan 2002-07.
03. Puseh G : Industrial, Change in India, August 30, 2003.

04. P. Nagaraj "Industrial Policy and Performance since 1980 which Wauy Now ?" Economic and Political Weekly Reserve Bank of India, Annual Report 2006 (Mumbai) 2006

05. Government of India, Economic Survey, 2009-10 (Delhi 2010)

06. Datt Ruddar Sudharvam K.P.M., Indian Economy & Fifty Fourth Edition, S.Chand & Company Ltd., New Delhi.

17.14 निबन्धात्मक प्रश्न

01. औद्योगिक संरचना से आप क्या समझते हैं ? भारत की औद्योगिक संरचना पर प्रकाश डालिए ?

02. योजना काल में भारत के औद्योगिक प्रगति और उपलब्धियों का आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।

इकाई - 18: लघु उद्योग

इकाई संरचना

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 परिभाषा एवं वर्गीकरण
18.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों की भूमिका व निष्पादन
18.4.1 लघु उद्योग का विस्तार व उत्पादन की भागीदारी
18.4.2 रोजगार अवसरों का सृजन
18.4.3 निर्यात में योगदान
18.4.4 लघु उद्योगों का अन्तर्राज्यीय वितरण
18.4.5 राष्ट्रीय आय का समान वितरण
18.5 लघु उद्योगों के लिए सरकारी नीति
18.5.1 1991 से पहले की नीति।
18.5.2 नयी लघु औद्योगिक नीति 1991
18.5.3 व्यापक नीति पैकेज 2000
18.5.4 सूक्ष्म लघु एवं मध्ययम उद्योग विकास अधिनियम 2006
18.6 लघु उद्योग की समस्यायें
18.7 अभ्यास प्रश्न
18.8 सारांश
18.9 शब्दावली
15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
15.12 निबन्धात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह अठ्ठारहवीं इकाई है। इस इकाई से पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप यह जान गये होंगे कि भारतीय अर्थव्यवस्था की औद्योगिक संरचना किस प्रकार की है तथा देश में उद्योगों के विकास के लिए किस तरह की नीतियां बनायी गयीं तथा इनमें समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन भी किये गये।

इस इकाई में इस बात का विस्तार से चर्चा की गयी है कि लघु उद्योग किसे कहते हैं तथा इसका विकास भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कितना महत्वपूर्ण है। इसके विकास के लिए सरकार द्वारा क्या प्रयत्न किये जा रहे हैं तथा लघु उद्योगों की मूलभूत समस्यायें क्या हैं ?

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप लघु उद्योगों के बारे में जान सकेंगें तथा विकास भारतीय अर्थव्यवस्था में किस प्रकार किया जा रहा है यह बता पायेंगे।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- लघु उद्योग के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगें।
- लघु उद्योगों के विकास की आवश्यकता का अध्ययन कर सकेंगें।
- लघु उद्योगों का भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में भूमिका स्पष्ट कर सकेंगें।
- लघु उद्योगों के लिए सरकार द्वारा बनायी गयी नीतियों का अध्ययन कर सकेंगें।
- लघु उद्योगों के समक्ष उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन कर सकेंगें।

18.3 लघु उद्योगों की परिभाषा व वर्गीकरण

औद्योगिक ढाँचे को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है -

- बड़े उद्योग।
- मध्यम उद्योग।
- लघु उद्योग।

छोटे पैमाने पर औद्योगिक क्षेत्र में अनेक प्रकार के उद्योग आते हैं जैसे - ग्रामीण और शहरी कुटीर उद्योग जिन्हें परिवार के लोगों के श्रम से ही चलाया जाता है। शहरी उद्योग जिनमें मजदूरी के बदले में काम करने वाले श्रमिकों को लगाया जाता है लेकिन शक्ति से चलने वाली मशीनों का प्रयोग नहीं किया जाता तथा ऐसे लघु उद्योग जिनमें आधुनिक मशीनों एवं बिजली का प्रयोग किया जाता है। कहने का अर्थ है कि भारत में छोटे स्तर के उत्पादन का क्षेत्र एक सा नहीं है।

लघु उद्योगों को बड़े व मध्यम उद्योगों से अलग करने के लिए अधिक वैज्ञानिक मापदण्ड औद्योगिक इकाई में स्थिर पूँजी के निवेश से सम्बन्धित है। स्थिर पूँजी की सीमा को लगातार ऊपर उठाया गया। 1975 से पहले वे सारी औद्योगिक इकाइयाँ जिनमें प्लांट व मशीनरी में निवेष 7.5 लाख रू. से कम हो लधु क्षेत्र में षामिल की जाती थी। सहायक औद्योगिक इकाईयों के लिए उच्चतम सीमा 10 लाख रूपये थी। 1975 में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत परिभाषा के अनुसार 10 लाख रू. तथा 15 लाख रू. तक कर दिया गया। 23 जुलाई 1980 के औद्योगिक नीति में तीव्र आर्थिक विकास को बढ़ाने की दृष्टि से लघु उद्योगों की परिभाषा में सुधार किया गया और इन्हें 20 लाख तथा सहायक औद्योगिक इकाईयों के लिए 25 लाख रू. कर दिया गया।

अप्रैल 1991 की औद्योगिक नीति में लघु क्षेत्र की इकाई के लिए निवेष सीमा 60 लाख रू. तथा सहायक औद्योगिक इकाईयों के लिए 75 लाख रू. कर दी गई तथा एक अति लघु क्षेत्र भी परिभाषित किया गया जिसमें निवेष सीमा 5 लाख रू. थी।

आबिद हुसैन समिति की सिफारिश पर फरवरी 1997 में लघु उद्योगों के लिए निवेश सीमा बढ़ाकर 3 करोड़ रू. कर दिया गया। निवेश सीमाओं में यह वृद्धि मुद्रास्फीति और अवमूल्यन के कारण रूपये की कीमत में होने वाली कमी को पूरा करने के लिए की गयी। वर्तमान समय में भारत सरकार का सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम विकास अधिनियम (एम.एस.एम.ई.) 2006 लघु उद्योगों को इस प्रकार परिभाषित करता है -

क. विनिर्माण क्षेत्र के लिए लघु उद्योगों निवेष सीमा 25 लाख रू. से 5 करोड़ रू. है।

ख. सेवा क्षेत्र में उपकरणों में निवश सीमा 10 लाख से 2 करोड़ रू. है।

18.4 भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों की भूमिका व निष्पादन

लघु उद्योग बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा के बाद भी विकास की दृष्टि से औद्योगिक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। योजना आयोग के अनुसार - ''लघु एवं कुटीर उद्योग हमारी अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण अंश हैं जिनकी कभी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।''

18.4.1 लघु उद्योग का विस्तार एवं उत्पादन की भागीदारी -

लघु इकाईयों की संख्या 2002-03 में 109.5 लाख थी जिसमें पंजीकृत 93.5 लाख तथा अपंजीकृत 16.03 लाख थी। वह संख्या बढ़कर 2006-07 में 128.44 लाख हो गयी।

इसी प्रकार लघु उद्योग देश की आर्थिक प्रगति में सकारात्मक योगदान दे रहा है। यह अनुमान किया जाता है कि मूल्य के अर्थ में इस क्षेत्र का विनिर्माण की दृष्टि से 45% एवं देश के कुल निर्यात के 40% हिस्सा है । हाल के वर्षों में यह क्षेत्र लगातार सम्पूर्ण औद्योगिक क्षेत्र की तुलना में उच्च विकास दर प्राप्त कर रहा है। सारणी से स्पष्ट है कि उत्पादन 2002-03 में 306.771 करोड़ रू. से बढ़कर 532979 करोड़ रू. हो गया है। स्पष्ट है कि उत्पादन की वृद्धि दर 2005-06, 2006-07 और 2007-08 में 12% रही है। उत्पादन वृद्धि का लक्ष्य 2011-12 में 1398803करोड़ रू.का है।

सारणी - छोटे एवं लघु उद्योग का निष्पादन

वर्ष	इकाईयों की संख्या		कुल	उत्पादन (करोड़ रू(में . (2001-02 के मूल्यों पर	रोजगार (लाख रू में .)	निर्यात (करोड़ टन में)
	पंजीकृत	अपंजीकृत				
2002-03	16.03	93.46	109.49 (4.1)	3,06,771 (8.7)	263.68 (4.5)	86013(20.7)
2003-04	17.12	96.83	113.95 (4.1)	336344 (9.6)	275.30 (4.4)	97644 (13.5)
2004-05	18.24	100.35	118.59 (4.1)	372938 (10.9)	287.55 (4.5)	124417 (27.4)
2005-06	19.32	104.12	123.42 (4.1)	418884 (12.3)	299.85 (4.3)	150242 (20.8)
2006-07	20.32	108.12	128.44 (4.1)	471663 (12.6)	312.52 (4.2)	N.A.

स्रोत - आर्थिक समीक्षा 2007-08

टिप्पणी-कोष्ठकों में आँकड़े पिछले वर्ष की तुलना में प्रतिषत की वृद्धि दर्शाते हैं।

वृहद पैमाने के उद्योगों की तुलना में लघु उद्योगों के उत्पादन में अधिक तेजी से वृद्धि हुई है। स्पष्ट है कि कुल औद्योगिक उत्पादन में मंद गति की तुलना में लघु उद्योगों का निशपादन सराहनीय है। समग्र औद्योगिक क्षेत्र से अधिक वृद्धि बनाये रखने के साथ साथ एम.एस.एम.ई. क्षेत्र जी.डी.पी. में करीब 8% का योगदान कर रहा है।

18.4.2 रोजगार अवसरों का सृजन -

भारत में कृषि के बाद रोजगार प्रदान करने वाला दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र लघु उद्योग व कुटीर उद्योग का है। भारत की गम्भीर बेरोजगारी की समस्या को देखते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास अति आवश्यक है। सन् 1972 से 1987-88 के बीच कुछ औद्योगिक इकाईयों में रोजगार वृद्धि की दर 2.21 प्रतिशत प्रति वर्ष थी वहाँ लघु इकाईयों में रोजगार वृद्धि की दर 5.45 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।

लघु उद्योगों में 1994-95 में 191.5 लाख लोग कार्यरत थे। 2005-06 में इनकी संख्या बढ़कर 294.9 लाख हो गया। 31 मार्च, 2008 की स्थिति के अनुसार यह 128.4 लाख सूक्ष्म और लघु उपक्रमों के द्वारा अनुमानतः 322 लाख व्यक्तियों को रोजगार मिला है और इस क्षेत्र में मजदूरों की तीव्रता वृहद उद्योगों की तुलना में करीब चार गुना ज्यादा अनुमानित की गयी है। शहरी क्षेत्रों में बड़े पैमाने के उद्योगों में अधिक रोजगार की संभावना नजर नहीं आती। परन्तु लघु क्षेत्र में रोजगार की बहुत संभावनाए हैं।

18.4.3 निर्यात में योगदान -

बड़े पैमाने पर लघु उद्योगों की स्थापना के कारण निर्यात आय में इसका योगदान काफी बढ़ा है। सिले-सिलाये कपड़ों, डिब्बा बंद सामान, खेल का सामान, चमड़ा व उससे निर्मित सामान, ऊनी कपड़ों, रसायनों व सहायक पदार्थों तथा इंजीनियरिंग वस्तुओं इत्यादि में लघु उद्योगों के निर्यातों में भारी वृद्धि हुई है। इस प्रकार निर्यात आय में लघु उद्योगों का योगदान 1971-72 में 9.6 प्रतिशत से बढ़कर 2006-07 में 33 प्रतिशत हो गया।

18.4.4 लघु उद्योगों का अन्तःराज्यीय वितरण -

लघु उद्योगों के अन्तःराज्यीय वितरण से पता चलता है कि छः राज्यों अर्थात् महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, पंजाब और गुजरात में लघु क्षेत्र की कुल इकाइयों का 59 प्रतिशत भाग स्थित था, इनके द्वारा कुल रोजगार का 62 प्रतिशत रोजगार उपलब्ध कराया गया, इसमें कुल अचल परिसम्पत्ति का 66 प्रतिशत लगा हुआ था और कुल उत्पादन का 69 प्रतिशत भाग उत्पन्न होता था।

वे राज्य जो लघु-स्तर के उद्योगों को प्रोत्साहित करने में बहुत पिछड़े हुए हैं, उनमें राजस्थान, मध्य प्रदेश और उड़ीसा शामिल हैं।

कुछ जिलों में विशिष्टीकरण के कारण भी लघु-स्तर की इकाईयों में संकेन्द्रण जान पड़ता है ।ऊनी हौजरी की 92 प्रतिशत इकाइयाँ लुधियाना,कलकत्ता और दिल्ली में थी, साइकिलों के पुर्जो की 62 प्रतिशत इकाइयाँ लुधियाना, जालन्धर, हावड़ा, विशाल मुम्बई में थी।

18.4.5 राष्ट्रीय आय का समान वितरण -

लघु एवं कुटीर उद्योगों के समर्थन में एक महत्वपूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि उनकी सहायता से राश्ट्रीय आय का अधिक बेहतर व न्यायोचित वितरण हो सकता है। ऐसा दो कारणों से है एक तो लधु उद्योगों का स्वामित्व बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक विस्तृत व छितरा हुआ है तथा दूसरे, लघु उद्योगों की रोजगार सृजन की सामर्थ्य बड़े उद्योगों की तुलना में अधिक है। घर व लाइडाल के अनुसार यह तर्क गलत है। उनके अनुसार लघु उद्योगों के श्रमिक प्रायः असंगठित होते हैं और अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकते। इसलिए उद्योगपति इन श्रमिकों को कम मजदूरी देते हैं। भारत में लघु उद्योगों में मजदूरी की दर बड़े उद्योगों में मजदूरी की दर से लगभग आधी है । इंग्लैड, अमेरिका, पश्चिमी जर्मनी, जापान तथा भारत सभी देशों में लघु उद्योग आर्थिक शाक्ति के विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं।

परन्तु यह तर्क इस बात को अनदेखा करता है कि लघु उद्योगों में बड़े उद्योगों की तुलना में बहुत ज्यादा रोजगार सामर्थ्य है। इसलिए लघु उद्योग बहुत सारे लोगों को आर्थिक विकास के फल प्राप्त करने में सहायता करते हैं। इनकी अनुपस्थिति में ये लोग या तो बेरोजगार रहते हैं या फिर बहुत कम आय वाले रोजगार में लगे रहते हैं।

18.4.6 उद्योगों का क्षेत्रीय विकेन्द्रीकरण -

औद्योगिक लाईसेंसिंग नीति पर विचार करते हुए हम स्पष्ट कर आए हैं कि भारत में बड़े उद्योगों का केन्द्रीकरण महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, तमिलनाडु तथा गुजरात में बढ़ रहा है । इससे देश में औद्योगिक दृष्टि से क्षेत्रीय असमानताओं में और अधिक वृद्धि की संभावना है । उद्योगों के केन्द्रीयकरण से नगरों में भीड़ तथा आवास की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। लघु उद्योगों की स्थापना प्रायः स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए की जाती है । अतः इन्हें सभी राज्यों में सुविधापूर्वक स्थापित किया जा सकता है। आधुनिक लघु उद्योग क्षेत्र विशेष की अर्थव्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन करने में भी समर्थ होते हैं। इसका प्रमाण पंजाब की अर्थव्यवस्था है, जहाँ औद्योगिक दृष्टि से समृद्ध महाराष्ट्र से भी ज्यादा लघु औद्योगिक इकाइयां हैं।

18.4.7 स्थानीय पूंजी और उद्यम का उपयोग -

देश के विभिन्न भागों में ऐसे बहुत सारे साधन उपलब्ध होते हैं जिनकी मांग बड़े उद्योगों द्वारा नहीं की जाती। इसके अलावा कुछ साधन बड़े उद्योगों की पहुंच में नहीं होते। लघु उद्योग इन साधनों को सहज ही प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, कस्बों के उद्यमियों की क्षमता का उपयोग लघु उद्योगों में ही हो सकता है। इसी प्रकार, बड़े शहरों से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में की जाने वाली बचतों को बड़े उद्योगों के लिए संचित कर पाना संभव नहीं होता, परन्तु उनकी सहायता से घरेलू अथवा उद्योगों की स्थापना की जा सकती है। आजादी के बाद भारी संख्या में लघु उद्योगों की स्थापना इस बात का प्रमाण है कि बिजली, तकनीकी ज्ञान तथा साख आदि की सुविधाएं मिल जाने पर अनेक निष्क्रिय साधनों का उत्पादन कार्यो के लिए उपयोग होने लगता है।

18.5.8 औद्योगिक विवादों का कम होना -

लघु उद्योगों के समर्थकों द्वारा प्रायः यह भी तर्क दिया जाता है कि बड़े उद्योगों में लघु इकाइयों की तुलना में औद्योगिक विवाद अधिक होते हैं। श्रमिकों और मिल मालिकों के बीच सम्बन्ध अच्छे न रहने के कारण उद्योगों में प्रायः हड़ताल व तालाबन्दी की समस्वयां बनी रहती हैं। इसके विपरीत लघु उद्योगों में यह सब अधिक नहीं होता इसलिए उत्पादन की हानि भी अधिक नहीं होती। दरअसल यह मत भ्रमपूर्ण है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में इकाई बड़ी हो अथवा छोटी, कारखाने का मालिक श्रमिकों का शोषण करता है जिसके कारण श्रम विवाद आवष्यक है। बड़े और लघु उद्योगों में अन्तर बस इतना है कि बड़े उद्योगों में श्रम संघों की उपस्थिति के कारण श्रमिक अन्याय और शोषण का विरोध करता है, जबकि लघु क्षेत्र में प्रायः वह ऐसा कर पाने में असमर्थ होता है जिससे श्रम व पूंजी के सम्बन्ध प्रकट रूप में खराब मालूम नहीं है।

18.5 लघु उद्योगों के लिए सरकारी नीति

कुछ अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया है कि लघु उद्यमों को बड़े उद्योगों की तुलना में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए यदि उन्हें बड़े उद्योगों की प्रतिस्पर्धा से बचाना है तो उनके लिए निवेश सहायता नीतियों की आवष्यकता हैं लघु उद्योगों के प्रति भारत सरकार की नीति का यही उद्देश्य रहा है।

01. 1991 से पहले की नीति

02. नयी औद्यानिक नीति 1991

03. व्यापक नीति पैकेज 2000 तथा नवीनतम कदम

04. सूक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्योग विकास अधिनियम 2006

18.5.1 1991 से पहले की नीति

आजादी के तत्काल बाद ही लघु और कुटीर उद्योगों के विकास के लिए विभिन्न कदम उठाए गए जैसे संगठनात्मक ढाचे का निर्माण, लघु और कुटीर उद्योगों के लिए योजना परिव्यय में वृद्धि, उत्पादन में संरक्षण, वित्तीय सहायता, बिक्री में सहायता, रियायतें, छूटें इत्यादि।

संगठनात्मक ढाचा 1947 में भारत सरकार ने कुटीर उद्योग बोर्ड की स्थापना की। पहली पंचवर्षीय योजना में इसे तीन अलग अलग बोर्डो में विभाजित कर दिया गया।

पहली योजना की समाप्ति पर देश में छः बोर्ड काम कर रहे थे और उनके दायरे में सभी लघु और कुटीर उद्योग आते थे। इन सबकों मिलाकर ऐसा संगठनात्मक ढॉचा तैयार हो गया था जिसके माध्यम से सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए विकास व सहायता कार्यक्रमों को कियान्वित किया।

देश के विभिन्न क्षेत्रों में फैली इनकी शाखाओं का काम लघु उद्योगों को तकनीकी सहायता प्रदान करना था।

1954 में लघु उद्योग विकास निगम स्थापित किया गया। लघु उद्योग के सतत व संगठित विकास के लिए नीति बनाने वाली तथा विभिन्न गतिविधियों के बीच तालमेल बिठाने वाली यह शीर्ष संस्था है।

1955 में औद्योगिक बस्तियों का कार्यक्रम शुरू किया गया। इन बस्तियों में कारखानों की स्थापना के लिए बिजली, पानी, यातायात इत्यादि की सुविधायें प्रदान की गई।

मई 1979 में जिला उद्योग केन्द्र का कार्यक्रम शुरू किया गया। इसके पीछे उद्देष्य यह था कि देश के हर जिले में एक ऐसी संस्था बनाई जाये जिसका नाम जिला उद्योग केन्द्र हो और जो साख सुविधा, कच्चे माल, प्रशिक्षण, माल की बिक्री इत्यादि से संबंधित सारी व्यवस्था एक ही स्थान से कर सके तथा जो बेरोजगार पढ़े-लिखे युवा उद्यमियों को हर संभव सहायता प्रदान कर सके।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड -

1955 में अपने अस्तित्व में आने से लेकर अब तक यह सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के लिए प्रोत्साहन सहायता एवं पोषण के अपने मिशन के लिए कार्य कर रहा है। निगम सूक्ष्म एवं लघु उद्योगों के बदलते परिदृष्य को पूरा करने के लिए समय समय पर विभिन्न नई योजनाएं प्रारम्भ करता रहा है

जिनका उद्देश्य लघु उद्योगों के हितों को प्रोत्साहित करना है और उन्हें लाभदायक स्थितियों में रखना है।

18.5.2 नई औद्योगिक नीति 1991 -

सरकार ने लघु, अति लघु तथा ग्रामीण उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए अगस्त 1991 में एक नई नीति की घोषणा की इसके मुख्य तत्व निम्नलिखित थे -

1. अति लघु क्षेत्र में निवेश सीमा को 2 लाख रूपये से बढाकर 5 लाख रूपये कर दिया गया। इसके अतिरिक्त स्थानिक प्रतिबंधों को हटा लिया गया। (पहले यह प्रतिबंध था कि इस प्रकार की इकाइयां 50000 से कम जनसंख्या वाले स्थानों पर ही स्थापित की जा सकती हैं) जहाँ पहले उद्योग का अर्थ मुख्यतया विनिर्माण क्षेत्र माना जाता था वहाँ नई नीति में इसके अंतर्गत उद्योग से जुड़े सेवा व व्यावसायिक उद्योगों को भी शामिल कर लिया गया।
2. 1991 की नीति में अति लघु क्षेत्र की इकाइयों के विकास के लिए एक अलग पैकेज की घोशणा की गई। जहाँ अन्य लघु इकाइयों के लिए केवल एक बार प्राथमिकता के आधार पर सहायता देने की बात की गई (जैसे भूमि प्राप्ति के लिए,बिजली के लिए तथा तकनीकी रूप से आधुनिकीकरण के लिए) वहाँ अति लघु इकाइयों को लगातार इस प्रकार की सहायता का आश्वासन दिया गया। इस व्यवस्था के पीछे तर्क यह था कि अति लघु क्षेत्र की इकाइयों को सहायता देकर तेजी से विकास करने योग्य बनाया जाये ताकि वे जल्द अपने पांव पर खड़ी हो सके और इन्हें भविष्य में कम सहायता की जरूरत पड़े।
3. तीसरा मुख्य परिवर्तन इक्विटी में हिस्सेदारी से संबंधित था। नई नीति में यह व्यवस्था की गई कि अन्य औद्योगिक इकाइयां लघु इकाइयों में 24 प्रतिशत तक की इक्विटी का निवेश कर सकती हैं। इससे बड़ी व छोटी सभी इकाइयों को (खास तौर पर सहायक औद्योगिक इकाइयों को) काफी लाभ मिल सकता है तथा औद्योगिक क्षेत्र के इन दोनों हिस्सों को एक दूसरे के और समीप आने का अवसर मिल सकता है। नई नीति के परिणामस्वरूप लघु इकाइयों को पूरी इक्विटी की व्यवस्था स्वयं नहीं करनी पड़ेगी। इसके अलावा, बड़ी औद्योगिक इकाइयां भी लघु इकाइयों के अस्तित्व व विकास में रूचि लेंगी।
4. चौथी महत्वपूर्ण बात यह है कि 1991 की नीति ने व्यवसाय-संगठन का नया कानूनी दौर प्रारम्भ किया जिसे सीमित साझेदारी की संज्ञा दी गई है। इस व्यवस्था में कम से कम एक साझेदार का दायित्व असीमित है जबकि अन्य साझेदारों का दायित्व उनके द्वारा निवेशित पूंजी तक ही सीमित है। यह परिवर्तन बहुत उपयोगी है। इसके परिणामस्वरूप लघु उद्योगपतियों के रिश्तेदार व मित्र पूंजी देने में हिचकिचाएंगे नहीं क्योंकि उनका अपना दायित्व उनके द्वारा निवेशित पूंजी तक की सीमित रहेगा।

5. नीति की कुछ अन्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:
   (क) नीति में लघु तथा अति लघु इकाइयों की संपूर्ण साख मांग को पूरा करने की कटिबद्धता व्यक्त की गई। अर्थात् 'सस्ती साख ' की अपेक्षा जोर 'साख पर्याप्ता ' पर दिया गया।
   (ख) **राष्ट्रीय इक्विटी फंड** तथा 'एक संस्था से ऋण लेने की योजना ' के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया गया।
   (ग) सरकारी खरीद कार्यक्रमों में अति लघु क्षेत्र को प्राथमिकता देने की व्यवस्था की गई।
   (घ) घरेलू कच्चे माल के आवंटन में लघु तथा अति लघु क्षेत्र को प्राथमिकता देने की व्यवस्था की गई।
   (ङ) लघु व अति लघु क्षेत्र के उत्पादों के लिए बाजार तलाशने में सरकारी संस्थाओं, सार्वजनिक क्षेत्र की संस्थाओं तथा अन्य व्यवसायिक संगठनों की भूमिका पर जोर दिया गया।

नौवीं पंचवर्षीय योजना में अनारक्षण की नीति पर जोर दिया गया। इस नीति के तहत यह सिफारिश की गई कि लघु क्षेत्र के लिए आरक्षण को कम किया जाये। इस नीति के समर्थन में यह बात की गई कि अनारक्षण से बहुत सी लघु औद्योगिक इकाइयों को प्रौद्योगिकी में सुधार लाने की प्रेरणा मिलेगी जिससे उनके उत्पाद की किस्म में सुधार होगा, उत्पादन का दायरा बढ़ेगा और निर्यातों को प्रोत्साहन मिलेगा। परन्तु अनारक्षण इस प्रकार होना चाहिए जिससे अकस्मात विस्थापन न हो तथा कमजोर लघु इकाइयों के लिए समस्याएं न खड़ी हो जाएं। नौवीं योजना में इस बात को स्वीकार किया गया कि लघु क्षेत्र को सबसे बड़ी समस्या साख की समस्या है और इसके निदान के लिए बहुत से सुझाव दिये गये।

18.5.3 व्यापक नीति पैकेज 2000 -

प्रधानमंत्री द्वारा 30 अगस्त 2000 का लघु उद्योग क्षेत्र के लिए एक व्यापक पॉलिसी पैकेज की घोषणा की गई।

30 अगस्त 2000 को प्रधानमंत्री ने लघु उद्योग क्षेत्र तथा अति लघु क्षेत्र के लिए व्यापक नीति पैकेज की घोषणा की जिसके मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं - क. लघु उद्योग क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा में सुधार लाने के लिए उत्पादन शुल्क की 50 लाख रूपये की छूट सीमा को बढ़ाकर एक करोड़ रूपये करना। ख. लघु उद्योगों की तीसरी गणना कराना जिसमें रूग्णता और उसके कारणों को भी षामिल किया जायेगा। ग. उद्योग से संबंधित सेवा तथा व्यवसाय उद्यम में निवेश की मौजूदा 5 लाख रूपये की

सीमा को बढ़ाकर 10 लाख रूपये करना। घ. प्रत्येक लघु उद्योग के उद्यमों के संबंध में दसवीं योजना के अन्त तक आईएसओ 9000 प्रमापन प्राप्त करने के लिए 75000 रूपये प्रदान करने की चालू योजना को जारी रखना। ड. मंत्रीमण्डल के सचिव की अध्यक्षता में एक गुरप का गठन करना जो इस क्षेत्र में लागू कानूनों व नियमों की गहराई से जांच करे तथा जिन कानूनों व नियमों की अब सार्थकता नहीं रह गई है, उन्हें समाप्त करने के लिए आवश्यक सुझाव दे, चालू समेकित आधारभूत किवास योजना को और क्षेत्रों में लागू करना तथा सारे देश में इसका विस्तार इस प्रकार करना कि 50 प्रतिशत आरक्षण ग्रामीण क्षेत्रां के लिए हो तथा 50 प्रतिशत भूखण्ड अति लघु क्षेत्र को उपलब्ध हों तथा प्रधानमंत्री रोजगार योजना (जो माइक्रो उद्यमों की स्थापना के लिए वित्तीय सहायता देती है तथ प्रशिक्षित बेरोजगारों के लिए रोजगार अवसर पैदा करती है) के अधीन परिवार की आय पात्रता सीमा को 24000 रूपये प्रति वर्ष करना।

पहले कहा जा चुका है, लघु उद्योग क्षेत्र. के लिए तीसरी गणना वर्ष 2001-02 में की गई (जिसमें पंजीकृत तथा अपंजीकृत दोनों प्रकार की उत्पादन इकाइयों को शामिल किया गया)। इस गणना से लघु उद्योग क्षेत्र के लिए उपयोगी जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

01.निवेश सीमा में वृद्धि -

हालांकि लघु क्षेत्र की औद्योगिक इकाइयों के लिए वर्तमान में उच्चतम निवेश सीमा 1.5 करोड़ रूपये है तथापि उच्च तकनीक का निर्यात प्रमुख इकाईयों की विशिष्ट सूची तैयार की गई है जिनमें उच्चतम निवेष सीमा को बढ़ाकर 5 करोड़ रूपये कर दिया गया है।

02.उत्पादन शुल्क से छूट की सीमा में वृद्धि -

2005-06 के बजट में 20 सितम्बर 2000 से लघु क्षेत्र के लिए उत्पादन शुल्क से छूट की सीमा को 3 करोड़ रूपये से बढ़ाकर 4 करोड़ रूपये कर दिया गया है।

03.ऋणाधार (या जमानत) संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु योजना

लघु क्षेत्र के उद्योगों को जमानत प्रदान करने में जो कठिनाई होती है उसका समाधान करने के लिए एक साख गारंटी फंट (स्कीम) की शुरूआत की गई है जो इन उद्योगों को वाणिज्यिक बैंकों, चुनिंदा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं द्वारा 25 लाख रूपये तक दिये गये ऋण की गारंटी देगा इस योजना के कार्यान्वयन के लिए एक साख गारंटी ट्रस्ट फण्ड की स्थापना की गई।

04. प्रौद्योगिकी में सुधार के लिए योजना

प्रौद्योगिकी में सुधार को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने प्रौद्योगिकी सुधार के लिए साख संबद्ध पूंजी सहायता योजना की शुरूआत की है। इस योजना के तहत, वाणिज्यिक बैंको, राज्य वित्त निगमों, राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम द्वारा लघु उद्योगों को प्रौद्योगिकी सुधार के लिए एक करोड़ रूपये तक दी जाने वाली ऋण राशि पर 15 प्रतिषत पूंजी सहायता की अनुमति दी गई।

05.समेकित आधारभूत विकास योजना का विस्तार

समेकित आधारभूत विकास योजना का विस्तार करके इसे पूरे देश में लागू किया गया है।

06.बाजार विकास सहायता -

लघु व कुटीर उद्योग के लिए एक बाजार विकास सहायता योजना आरम्भ की गई।

पिछले कुछ वर्षों में सरकार ने लघु क्षेत्र के लिए आरक्षण हटाने की नीति को अपनाया है। इसके पीछे तर्क यह है कि आरक्षण हटाने से लघु उद्योग प्रौद्योगिकी में सुधार लाने के लिए तथा वस्तु की किस्म बेहतर बनाने की दिशा में प्रेरित करेगी। जिससे लघु क्षेत्र में प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति बढ़ेगी। अनारक्षण के फलस्वरूप लघु एवं कुटीर उद्योगों के लिए आरक्षित मदों की संख्या जो जुलाई 1989 में 836 थी वह मार्च 2007 में 114 तथा अक्टूबर 2008 में 21 तथा वर्तमान में 14 रह गई है। लघु उद्योगों के लिए आरक्षित 14 उत्पादों में ब्रेड, अचार, लकड़ी के फर्नीचर, मोमबत्तियाँ, अगरबत्ती, पटाखे, स्टेनलैस स्टील व एल्म्यूनियम के बर्तन तथा अभ्यास पुस्तक-पुस्तिका आदि शमिल हैं।

18.5.4 सूक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्योग विकास अधिनियम 2006 -

वैश्वीकरण की चुनौतियों को पूरा करने के लिए इस क्षेत्र की मदद करने के लिए सरकार ने विभिन्न उपाय किए हैं। इनमें प्रमुख हैं - सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग विकास अधिनियम 2006। जिसका उद्देश्य प्रोत्साहन एवं विकास को सुविधाजनक बनाना है। यह अधिनियम 2 अक्टूबर 2006 से प्रभावी हुआ है। सरकार द्वारा लघु एवं मध्यम दर्जे के उद्योग के लिए साख, चरण दर चरण विकास के लिए योजना पैकेज की घोषणा की गई जिसका उद्देश्य पाँच वर्षों की अवधि के अन्तर्गत साख के प्रवाह को दोगुना करना है।

इस अधिनियम से उद्योगों की उपलब्धता तथा मध्यम स्तर के उद्योगों को परिभाषित करने का प्रयास किया गया उससे यह क्षेत्र और सशक्त होकर उभरा है अब इसकी परिधि में ज्यादा उद्योग आने लगे हैं और इस क्षेत्र में विकास के लिए अवसर और स्थान उपलब्ध हुए हैं।

18.6 लघु उद्योग की समस्यायें -

वित्त तथा साख -पूंजी तथा साख का अभाव लघु उद्योगों की प्रधान समस्या है। कुटीर और ग्राम उद्योगों की स्थिति ओर भी अधिक खराब है। लघु औद्योगिक इकाईयों का पूंजीगत आधार प्रायः काफी कमजोर होता है क्योंकि इनका संगठन साझेदारी अथवा अकेले स्वामित्व के आधार पर किया जाता है। घरेलू उद्योग को चलाने वाले कारीगर या तो अपनी थोड़ी सी पूंजी से काम चलाते हैं या फिर महाजन अथवा व्यापारी से (जो कच्चा माल देता है) ऋण लेते हैं। लघु उद्योगों की स्थिति थोड़ी अच्छी होती है। परन्तु इन उद्योगों के लिए भी लाभ के फिर से निवेश द्वारा पूंजी को बढ़ा पाना सम्भव नहीं होता।

भारत सरकार ने लघु उद्योग क्षेत्र के विकास के लिए ऋण सुविधाओं के प्रसार की आवश्यकता को स्वीकार किया है तथा बैंकों के राष्ट्रीयकरण, राज्य वित्त निगमों, भारती लघु उद्योग विकास बैंक, इत्यादि की स्थापना के पीछे यह एक मुख्य प्रेरणा रही है। बैंकों को यह निर्देश दिये गये हैं कि वे कुल ऋणों का 40 प्रतिशत प्राथमिकता वाले क्षेत्रों को उपलब्ध करायेंगे (प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में कृषि, लघु व कुटीर उद्योग, लघु सड़क व जल परिवहन चालक, लघु व्यवसाय इत्यादि शामिल हैं)। हालांकि बैंकों ने कागजों पर प्राथमिकता वाले क्षेत्रों कों लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया है तथापि लघु उद्योग इकाइयों को ऋण देने की उनकी अनिच्छा बनी हुई है। इस संदर्भ में उनका तर्क है कि लघु उद्यमों से ऋण वसूली में कठिनाई होती है तथा बहुत छोटी छोटी उत्पादन इकाइयों को ऋण देने की लागत बहुत ज्यादा बैठती है। इसके अलावा, जैसाकि सेबेसटी मौथ्रस का कहना है, रिजर्व बैंक के स्पष्ट निर्देशों के बाबजूद बैंक जमानत की मांग करते हैं। जमानत का बाजार मूल्य, कुल उपलब्ध कराये जाने वाली ऋण की मात्रा का पांच गुणा तक हो सकता है।

कच्चे माल की उपलब्धि –अधिकांश कुटीर उद्योग कच्चे माल के लिए स्थानीय स्रोतों पर निर्भर हैं। हथकरघा उद्योग सूत की पूर्ति के लिए स्थानीय व्यापारियों पर निर्भर रहता है। ये व्यापारी बुनकरों को प्रायः इस शर्त पर कच्चा माल बेचते हैं कि बुनकर कपड़ा उन्हीं को बेचेंगे। प्रायः ये व्यापारी बुनकरों को दोहरा शोषण करते हैं। एक ओर तो ये बुनकरों से कच्चे माल की अधिक कीमत लेते हैं और दूसरी ओर उन्हें तैयार माल की कम कीमत देते हैं।

लघु उद्योगों में पहले छोटी मोटी वस्तुओं का ही उत्पादन होता था जिनके लिए कच्चा माल प्राप्त कर पाना कोई समस्या नहीं थी। परन्तु जब से आधुनिक लघु उद्योगों का पर्याप्त विकास हुआ है और ये उद्योग नई वस्तुओं का उत्पादन करने लगे हैं, तब से इनके लिए कच्चे माल की व्यवस्था कर पाना कठिन हो गया है। अनेक लघु उद्योग आयात किए जाने वाले कच्चे पदार्थों का प्रयोग करते हैं। देश

के सामने विदेशी विनिमय के संकट की स्थिति में इस प्रकार के कच्चे माल का आयात न हो पाने पर समय समय पर लघु उद्योगों को भारी नुकसान हुआ है।

अस्वस्थता की समस्या -अस्वस्थ लघु इकाइयों के संदर्भ में दो मुख्य मुद्दे हैं - क. बहुत सी अस्वस्थ इकाइयां ऐसी हैं जिन्हें चला पाना व्यवहार्य नहीं रह गया है । ख. ऐसी अस्वस्थ लघु इकाइयों का पुनर्वास जिन्हें दोबारा चला सकने की संभावना है जहां तक पहले मुद्दे का सवाल है देश में 31 मार्च 2003 तक 1,67,980 अस्वस्थ लघु इकाइंया थी। इनमें बैंकों का 5,706 करोड़ रूपये फंसा हुआ है । इनमें से 1,62,791 लघु इकाइयां ऐसी हैं जिनके बारे में अनुमान है कि उन्हें पुनर्जीवित कर पाना संभव नहीं है। इनमें बैंकों का 4,869 करोड़ रूपया फंसा हुआ है। जहां तक दूसरे मुद्दे का प्रष्न है, बहुत कम लघु इकाइयां ऐसी हैं जिन्हें पुनर्जीवित किया जा सकता है। परन्तु अस्वस्थ इकाइयों का पुनर्वास एक महंगा विकल्प है । इसमें बकाया राशि का पुर्नसूचीकरण, देश ब्याज पर रियायतें, आधुनिकीकरण तथा प्रौद्योगीकरण उन्नयन के लिए अतिरिक्त ऋण प्रदान करना, नए सिरे से कार्यषील पूंजी इत्यादि उपलब्ध कराना शामिल है।

आर्थिक सुधारों तथा वैश्वीकरण के बुरे प्रभाव -1990 के दशक में औद्योगिक अर्थव्यवस्था को खोलने की दिशा में कई प्रयास किए गए जैसे औद्योगिक लाईसेसिंग की समाप्ति, आरक्षण में कमी, देशीय व विदेशी उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन, प्रशुल्कों में कमी, मात्रात्मक प्रतिबंधों को समाप्त करना, इत्यादि। इन सुधारों का लघु उद्योग क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कई औद्योगिक क्षेत्रों (जैसे रसायन, रेशम, वाहनों के पुर्जे, खिलौने, खेल का सामान, जूता उद्योग आदि) में काम कर रही लघु इकाइयों को सस्ती व बेहतर आयातित वस्तुओं से गंभीर खतरा पैदा हो गया है सबसे गंभीर खतरा चीन से आ रहे सस्ते आयातों से हैं जिनकी कीमत इतनी कम है कि लघु उद्योगों के लिए अपना अस्तित्व बचाना मुष्किल हो रहा है । उदाहरण के लिए 1999-2000 से जब से खिलौना उत्पादक अपना काम बंद कर चुके हैं। वस्तुतः भारतीय खिलौना उद्योग बहुत कठिन दौर से गुजर रहा है। आधे से अधिक खिलौना उत्पादक अपना काम बंद कर चुके हैं। वस्तुतः भारतीय खिलौना उद्योग में चीनी उत्पादकों का हिस्सा 3500 करोड़ रूपये तक पहुंच गया है । सीरेमिक टाइल्स उद्योग में चीन से आयातों का हिस्सा 2003-04 में 39 प्रतिषत तक पहुंच चुका था जो 2004-05 में और बढ़कर 81 प्रतिशत हो गया। जहाँ तक सीरेमिक उद्योग में 'उपहार खण्ड' का प्रश्न है चीनी आयातों ने भारतीय घरेलू उपहार सीरेमिक उद्योग के लगभग 80 प्रतिशत का सफाया कर दिया है। इस तरह के और बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं हालांकि इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के कारण चीन में उत्पादन लागतें बहुत कम हैं तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि चीन अन्य देशों के बाजारों में प्रतिस्पर्धी उत्पादकों का सफाया करने के लिए उत्पादन लागतों से कम कीमतों पर अपना माल बेच रहा है।

अभ्यास प्रश्न -

लघु उत्तरीय प्रश्न -

01. नई लघु औद्योगिक नीति 1991 को समझाइये।
02. लघु उद्योगों के विकास के लिए व्यापक नीति पैकेज 2000 क्या है ?
03. लधु उद्योगों की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
04. सूक्ष्म लधु एवं मध्यम उद्योग विकास अधिनियम 2006 क्या है ?

सत्य/असत्य बताइये -

01. कृषि के बाद दूसरा बड़ा रोजगार लघु उद्योग प्रदान करता है।
02. बड़े उद्योगों की अपेक्षा लघु उद्योगों का उत्पादन की वृद्धि दर कम है।
03. भारत में बेरोजगार की समस्या को हल करने में लघु उद्योग का बहुत सहारा है।

18.8 सारांश

इकाई के अध्ययन के पश्चात् जान गये हैं कि भारतीय औद्योगिक संरचना में लघु उद्योगों का विकास बहुत महत्व रखता है। श्रम शक्ति पर आधारित यह क्षेत्र बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर उपलब्ध करता है और अधिक बेहतर ढंग से सम्पत्ति का समान वितरण के साथ साथ संतुलित क्षेत्रीय विकास को संवर्घन में भी समर्थ है। लघु उद्योग विकास को आगे बढ़ाने वाले इंजन है और बाजार की कमियों से उनका विकास प्रभावित होता है। इसलिए इस क्षेत्र के विकास के लिए सरकारी समर्थन अनिवार्य और उचित है। इस क्षेत्र को अधिकाधिक स्पर्धात्मक बनाना और घरेलू एवं विदेशी दोनों बाजारों में इसकी मौजूदगी बढ़ाने पर पूरा जोर दिया जाता रहा है। अपने प्रभावी प्रदर्शन के बाबजूद एम.एस.एम.ई. क्षेत्र को देश में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

18.9 शब्दावली

आर्थिक विकास - इस अभिप्राय अधिक उत्पादन के साथ साथ तकनीकी एवं संस्थानात्मक व्यवस्था में हुए परिवर्तनों से है।

सकल राष्ट्रीय उत्पादन - एक वर्ष में उत्पादित होने वाली सभी वस्तुइओं और सेवाओं के बाजार मूल्य के योग से होता है।

अवमूल्यन - यदि किसी मुद्रा का विनिमय मूल्य अन्य मुद्राओं की तुलना में कम कर दिया जाता है तो इसे अवमूल्यन कहते हैं। यह परिस्थितियों के अनुसार सरकार स्वयं करती है।

औद्योगिक विकास - उद्योगों के नियमित एवं क्रमिक विकास से लगाया जाता है जिनमें उद्योगों में धीरे धीरे नवीनता एवं आधुनिकता का समावेश होता जाता है।

निवेश - पूँजी का वह भाग जो अतिरिक्त पूंजी उत्पादन के लिए प्रयोग किया जाता है।

मुद्रास्फीति - उस अवस्था को कहते हैं जब कीमतें बढ़ती है तथा मुद्रा का मूल्य कम होता है

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

प्रश्न - 1 भाग 18.4 देखिये

2. भाग 18.5 देखिये।

लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर -

01. भाग 18.5.2 देखिये।
02. भाग 18.5.3 देखिये।
03. भाग 18.6 देखिये।
04. भाग 18.5.4 देखिये।

18.10 संदर्भ ग्रन्थ

01. Government of India, Economic Survey 2009-2010 (New Delhi, 2010)
02. Dhar, P.N. and Lydall H.F., The Role oof Small Enterprises in Economic Development (New Delhi, 1961)
03. SIDBI Report on Small Scale Industries Sector, 1999 Opcit PP. 28-92.
04. Government of India, Planning Commission Eleventh Five Year Plan 2007-12 (Delhi 2008) Volume III.
05. Gang Ira N. “Small Film in India, A Discussion of some Issue” in Mookherjee, Dilip India Industry : Poliocies and Performance (New Delhi 1997

18.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उद्योगों का क्या योगदान है ?

2. भारत में लघु उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार द्वारा किये गये कार्यों का वर्णन कीजिये।

इकाई - 19 भारतीय वित्तीय एवं मुद्रा बाजार और लोक वित्त संरचना

इकाई संरचना

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 भारतीय वित्तीय बाजार की संरचना
19.4 भारतीय मुद्रा बाजार
19.5 भारतीय मुद्रा बाजार का स्वरूप
19.5.1 असंगठित मुद्रा बाजार
19.5.2 संगठित मुद्रा बाजार
19.6 भारतीय मुद्रा बाजार के संघटक
19.7 भारतीय मुद्रा बाजार के दोष
19.8 भारतीय मुद्रा बाजार में सुधार के लिए उपाय
19.9 लोक वित्त की संरचना
19.9.1 सार्वजनिक व्यय और व्यय की प्रवृत्तियाँ
19.9.2 सार्वजनिक आय और आय की प्रवृत्तियाँ
19.9.3 सार्वजनिक ऋण और ऋण की स्थिति
19.9.4 घाटे की वित्त व्यवस्था
19.10 सारांश
19.11 शब्दावली
19.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
19.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
19.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
19.15 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह उन्नीसवीं इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों के अध्ययन में आप यह बता सकते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक संरचना किस प्रकार की है तथा इनके विकास के लिए अपनायी गयी नीतियाँ क्या हैं ?

इस इकाई के अध्ययन में इस बात की चर्चा की गई है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के औद्योगिक विकास में वित्तीय बाजार तथा मुद्रा बाजार किस तरह सहायक होते हैं तथा मुद्रा बाजार क्या है ? इसका विकास किस प्रकार होता है ? इसके साथ ही यह इकाई में लोक वित्त की संरचना का भी विस्तार से अध्ययन किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय मुद्रा बाजार तथा वित्तीय बाजार और लोक वित्त के से रचना के महत्व को समझा सकेंगें।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- वित्तीय बाजार तथा मुद्रा बाजार को स्पष्ट कर सकेंगें।
- मुद्रा बाजार के विभिन्न संघटकों का अध्ययन कर सकेंगें।
- मुद्रा बाजार की समस्याओं को स्पष्ट कर सकेंगें।
- लोक वित्त की संरचना का अध्ययन कर सकेंगें।
- लोक वित्त के आय, लोक व्यय तथा लोक ऋण का अध्ययन कर सकेंगें।
- लोक वित्त के विभिन्न विभागों की वर्तमान स्थिति का अध्ययन कर सकेंगें।

19.3 वित्तीय बाजार: मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार

वित्तीय बाजार एक संस्था या व्यवस्था है जो वित्तीय परिसम्पत्तियों जैसे - जमा और ऋण, स्टॉक और बांड, सरकारी प्रतिभूतियों, चैक, बिल आदि के लेनदेन को सुविधाजनक बनाती है। वित्तीय बाजारों को दलाल, बैंक, गैर बैंक, वित्तीय संस्थाएं, मर्चेन्ट बैंक, म्युचुअल फण्ड, बट्टा गृह, केन्द्रीय बैंक आदि अनेक संस्थाये, चलाती हैं।

वित्तीय बाजारों का वर्गीकरण अनेक ढंगों से किया जाता है । एक तरीका परिसम्पत्तियों की सौदेबाजी के प्रकार से है अर्थात् अल्पकालीन व दीर्घकालीन परिसम्पत्तियाँ। जिस बाजार में

अल्पकालीन वित्तीय उपकरणों की सौदेबाजी होती है उसे मुद्रा बाजार तथादीर्घकालीन वित्तीय उपकरणों की सौदेबाजी के बाजार को पूँजीबाद कहते हैं । यहवित्तीय बाजारों का कार्यात्मक वर्गीकरण कहलाता है।

भारतीय पूँजी बाजार

पूँजी बाजार में विभिन्न संस्थायें और प्रक्रियाएं होती हैं जिनके माध्यम से मध्यम अवधि और दीर्घावधि की निधियां एकत्र की जाती हैं और व्यक्तियों, व्यवसायियों तथा सरकार को ऋण दिये जाते हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियाँ षामिल हैं, जिन्हें ऋणियों को निधियां प्रदान करने और निवेषकों की आवष्यकताओं को पूरा करने के लिए खरीदा और बेचा जाता है।

पूँजी बाजार का सम्बन्ध दीर्घकालीन पूँजी अथवा ऋणों (जैसे-सरकारी अथवा गैर-सरकारी ऋण-पत्र बॉण्ड, अंश पत्र तथा प्रतिभूतियों आदि) के लेनदेन से होता है । व्यवहारिक रूप में, अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन ऋणों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना सरल नहीं होता, इसलिए मुद्रा बाजार एवं पूँजी बाजार परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं।

19.4 भारतीय मुद्रा बाजार

मुद्रा बाजार का अभिप्राय समस्त क्रियाओं तथा उन संस्थाओं से है, जो मुद्रा के क्रय-विक्रय अर्थात् ऋणों के लेनदेन से सम्बन्धित होती है । ऋण अल्पकालीन प्रकृति के होते हैं अथवा दीर्घकालीन प्रकृति के। मुद्रा बाजार में अल्पकालीन पूँजी ऋणों का अथवा परिसम्पत्तियों का लेनदेन होता है । रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के एक प्रकाशन के अनुसार, "एक मुद्रा बाजार मुख्यतः अल्पकालीन प्रकृति की मौद्रिक परिसम्पत्तियों के क्रय-विक्रय का केन्द्र होता है । यह ऋण लेने वाले की अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूरा करता है तथा ऋणदाताओं को तरलता या नकदी प्रदान करता है । यह वह स्थान है जहाँ वित्तीय तथा अन्य संस्थाओं और व्यक्तियों को अल्पकालीन विनियोग योग्य अतिरेक पूँजी को ऋण चाहने वाली संस्थाओं, व्यक्तियों तथा सरकार द्वारा प्राप्त किया जाता है।" वास्तव में मुद्रा बाजार से अभिप्राय किसी एक निश्चित स्थान से नहीं होता बल्कि उस क्रिया प्रणाली से होता है जो अल्पकालीन ऋणों के लेनदेन से सम्बन्धित होती है।

19.5 भारतीय मुद्रा बाजार का स्वरूप

भारतीय मुद्रा बाजार संगठित और गैर संगठित दोनों प्रकार के बाजार हैं। संगठित मुद्रा बाजार में भारतीय रिजर्व बैंक, सभी अनुसूचित बैंक, सहकारी बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय

साधारण बीमा निगम और भारतीय यूनिट ट्रस्ट जैसी वित्तीय संस्थाएं तथा विदेशी विनिमय, भारतीय मितीकाएं और वित्त गृह लि. DFHI और भारतीय प्रतिभूमि व्यापार निगम (STCI) शामिल हैं।

19.5.1 असंगठित क्षेत्र

गैर संगठित मुद्रा बाजार में स्वदेशी बैंकर्स, साहूकार, व्यवसायी और गैर-व्यवसायी, व्यापारी, विक्रेता, जमींदार, गिरवीदारी निधियाँ और चिटफण्ड आदि शमिल हैं। कार्य क्षेत्र के आधार पर देशी बैंकर दो प्रकार के होते हैं - ग्रामीण और शहरी। ग्रामीण देशी बैंकर को ही महाजन अथवा साहूकार कहा जाता है।

ग्रामीण तथा शहरी बैंकरों की कार्यप्रणाली में समानता होते हुए भी इन दोनों के कार्य तथा स्वरूप में अनेक अन्तर होते हैं। शहरों में देषी बैंकर हुण्डियों का व्यवसाय करते हैं। अनुमान है कि आन्तरिक व्यापार का लगभग 50 प्रतिशत भाग अपनी वित्तीय आवष्यकताओं के लिए इन्हीं पर निर्भर करता है।

असंगठित क्षेत्र की कार्य-प्रणाली दोषपूर्ण है, क्योंकि इसमें एकरूपता का सर्वथा अभाव है। देश के भिन्न भागों में लिखित हुण्डियों में भी समानता का अभाव है। यह क्षेत्र संगठित बाजार के नियंत्रण में नहीं है। यह मौद्रिक विनिमयों और निवेशों में उनके इस्तेमाल को रोकता है। गैर संगठित क्षेत्र में लेखा विधि के रख-रखाव की विधि भी दोषपूर्ण है। इसके खातों के रख रखाव और ऋण देने की विधियों में अत्यन्त गोपनीयता होती है। साहूकार के खातों की जांच किसी उच्च अधिकारी द्वारा करने का भी प्रावधान नहीं है।

19.5.2 मुद्रा बाजार का संगठित क्षेत्र

मुम्बई, कोलकत्ता, चेन्नई, अहमदाबाद और बंगलौर इस क्षेत्र के मूल केन्द्र हैं, इनमें मुम्बई प्रमुख हैं। यह भारतीय मुद्रा बाजार का पर्याप्य है। वर्तमान समय में मुम्बई मुद्रा बाजार भारत में उसी क्षेत्र में स्थित है जैसे - लंदन मुद्रा बाजार इंग्लैण्ड में तथा न्यूयार्क मुद्रा बाजार यू.एस.ए. में है। भारतीय मुद्रा बाजार का संगठित क्षेत्र बहुत ही विकसित क्षेत्र हैं।

19.6 भारतीय मुद्रा बाजार के संघटक

19.6.1 मांग मुद्रा बाजार (Call money Market)

भारत में मांग मुद्रा बाजार का केन्द्र मुम्बई, कोलकत्ता तथा चेन्नई में है। यह मुद्रा बाजार बहुत ही संवेदनशील है। मांग मुद्रा बाजार या अन्तर-बैंक मांग मुद्रा बाजार संगठित मुद्रा बाजार का एक

महत्वपूर्ण संघटक है तथा यह अल्पावधि निधियों के तत्काल स्रोत के रूप में कार्य करता है। मांग मुद्रा बाजार में निधियों के मुख्य आपत्तिकर्ता BI, LIC, GIC, UTI, IDBI और नाबार्ड हैं तथा मुख्य उधारकर्ता अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक हैं। चूंकि अधिकतर भागीदार बैंक हैं, इसलिए इसे अन्तर बैंक मांग मुद्रा कहा जाता है। वाणिज्यिक बैंक अपनी अनुप्रयोग या अतिरिक्त नकदी को अति अल्पावधि के लिए बिल दलालों को उधार देते हैं। बिल दलाल इसके बदले में उक्त नकदी पर बट्टा काटते हैं अथवा बिल खरीदते हैं।

अल्पावधि निधियों के कुल बाजार में, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक 80 प्रतिशत के लगभग उधार लेते हैं तथा विदेशी गैर निजी क्षेत्र के बैंक बाकी 20 प्रतिशत। कुछ बैंक उधार लेने और देने दोनों कार्य करते हैं जब कुछ केवल या उधार लेने का या उधार देने का काम करते हैं। गैर-बैंक वित्तीय संस्थाएं जैसे LIC, GIC आदि केवल उधार देते हैं जबकि DFHI और TCI उधार लेने और उधार देने के दोनों काम करते हैं। सभी मांग मुद्रा लेनदेन एक दिन से पखवाड़े की परिपक्वता के होते हैं।

मांग मुद्रा दर मुद्रा बाजार में अल्पावधि निधियों की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

19.6.2 वाणिज्यिक बिल अथवा हुण्डी बाजार -

भारतीय रिजर्व बैंक ने 1952 में अनुसूचित कमर्शियल बैंकों को विनिमय बिलों और वचन-पत्रों के बदले 90 दिन का वित्त प्रदान करना प्रारम्भ किया। इससे बिल बाजार विकसित नहीं हुआ। नरसिंहम समिति की सिफारिशों पर नवम्बर, 1970 से रिजर्व बैंक ने बिल पुर्नभुगतान योजना शुरू की। इसके अन्तर्गत सभी लाईसेंस प्राप्त अनुसूचित कमर्शियल बैंक वस्तुओं की बिक्री या प्रेषण से होने वाले वास्तविक व्यापारिक बिलों को रिजर्व बैंक से पुनः भुना सकते हैं। इन बैंकों के अलावा कुछ अन्य वित्तीय संस्थायें जैसे LIC, GIC, UTI, IDBI, ICICI, IFCI, NABARD, EXIM BANK, SBI ,CABANK म्यूचुअल फण्ड आदि तथा कुछ चुने हुए शहरी सहकारी बैंक इस योजना में शामिल हैं। बिलों के पुर्नभुगतान के उद्देश्य से रिजर्व बैंक ने अक्टूबर, 1988 में मियादी वचन-पत्र (USANCE PROMISSORY NOTE) स्कीम चालू की जिसके अन्तर्गत बैकों की शाखाओं पर बट्टा किये हुए वाणिज्यिक या व्यापारिक बिलों के आधार पर 90 दिनों के परिपक्वता वाले उचित राशियों के डेरिवेटिव मियादी वचन-पत्र लिखकर रिजर्व बैंक से पुनर्भुगतान प्राप्त कर सकते हैं। अगस्त, 1989 से सरकार ने ऐसे डेरिवेटिव मियादी बिलों पर स्टाम्प शुल्क समाप्त कर दिया है ताकि बैंक इस सुविधा का बेरोक-टोक लाभ उठा सकें।

19.6.3 टेजरी बिल बाजार -

मुद्रा बाजार का प्रमुख उपकर है जो एक वर्ष से कम की परिवर्तनशील उपलब्धियों के लिए जारी किया जाता है। इंग्लैण्ड में सचिव द्वारा खजाना को जारी किया जाता है।

भारत में खजाना बिल 91 दिन और 365 दिन के बीच बट्टा पर भारत सरकार द्वारा जारी किये जाते हैं। भारत में इस समय तीन तरह के खजाना बिल होते हैं - 14 दिन, 91 दिन और 364 दिन।

रिजर्व बैंक ने विभिन्न प्रकार के टेजरी बिल को जारी करके सरकारी प्रतिभूति बाजार विकसित किया। टेजरी बिल बाजार को और विकसित करने और निवेशकों को विभिन्न अल्पावधि परिपक्वता के वित्तीय और उपलब्ध कराने तथा अर्थव्यवस्था की नगदी प्रबन्ध आवश्यकता को पूरा करने की दृष्टि से अप्रैल 1977 में विभिन्न परिपक्वताओं वाले टेजरी बिल जारी करने का निर्णय लिया गया। तदनुसार 91 दिवसीय टेजरी बिलों के स्थान पर जून 1997 से 14 दिवसीय मध्यवर्ती टेजरी बिलों के स्थान पर जून, 1997 से 14 दिवसीय मध्यवर्ती टेजरी बिलों की साप्ताहिक, नीलामी प्रारम्भ की गई। 1998-99 के प्रारम्भ 182 दिवसीय टेजरी बिलों की पाक्षिक आधार पर नीलामी फिर से लागू की गई और 364 दिवसीय टेजरी बिलों की नीलामी को मासिक आधार पर कर दिया गया।

19.6.4 पुर्नखरीद नीलामी

बैंक तथा प्राथमिक व्यापारी रिपोस के आधार पर भी ऋणों का लेनदेन करते हैं। ये ऐसी प्रतिभूतियों के रूप में है जिनकी पुर्नखरीद की जा सकती है। ऐसी गैर-बैकिंग संस्थाएं जो कि अभियाचना मुद्रा (Call Money)बाजार में ऋण देती है। रिपो के आधार पर भी ऋण दे सकती है रिपो की न्यूनतम अवधि एक दिन है 29 अक्टूबर 2004 के पूर्व रिजर्व बैंक द्वारा तरलता के अवशोशण के लिए रिपो शब्द का प्रयोग किया जाता है और तरलता के भरण (Injection) के लिए रिवर्स रेपों शब्द का प्रयोग किया जाता था। इन शब्दों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग के अनुरूप अब तरलता के नियंत्रण अथवा अवशोशण की क्रिया को **'रिवर्स रेपो'** तथा तरलता की वृद्धि तथा भरण की क्रिया को रेपो कहा जाने लगा रिपोज के लेनदेन रिजर्व बैंक है। SCL खातों द्वारा होते हैं। वर्तमान में 2010-11 में रेपो दर 5.25 तथा रिवर्स रेपों दर 3.75 प्रतिशत है।

19.6.5 जमा प्रमाण पत्र (Certificate of Deposit CD)-

जमा प्रमाण पत्र अनुसूचित वाणिज्य बैंकों द्वारा निर्गमित किये जाते हैं। इनकी अवधि 3 महीने से लेकर एक वर्ष तक की होती है।

सामान्यतः मुद्रा-बाजार में तंगी की स्थिति तथा मांग मुद्रा पर ऊँची ब्याज दरें बैंकों को जमा प्रमाण पत्र के द्वारा संसाधन जुटाने के लिए उत्प्रेरित करते हैं। अनुसूचित वाणिज्य बैंकों द्वारा जारी किये गये जमा प्रमाण पत्रों की बकाया राशि जून 1994 में 5,512 करोड़ रूपये से बढ़कर जून, 1995 में 11,843 करोड़ रू. तथा जून, 1996 में 21,331 करोड़ रूपये हो गयी। 1997-98 में बैकों की चल निधि (Liquidity)की स्थिति ठीक होने के कारण जमा प्रमाण पत्रों के ब्याज दरों में कमी आयी। 7 जून, 1998 तक घटकर 7,287 करोड़ रूपये रह गयी।

वित्तीय संस्थाओं द्वारा जारी किये गये जमा प्रमाण पत्रों की बकाया राशि में भी मुद्रा बाजार की स्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहता है।

इसकी राशि मार्च 2008 में 4,47,792 से बढ़कर जुलाई 2009 तक 2,28,638 करोड़ रू. हो गयी।

19.6.6 वाणिज्यिक-पत्र-

वाणिज्यिक पत्र की सहायता से कम्पनियाँ निवेशकर्त्ताओं से अल्पकालीन ऋण प्राप्त कर सकती हैं। इसका निर्गमन केवल उन कम्पनियों द्वारा किया जा सकता है। जिनकी शुद्ध सम्पत्ति (Net Worth) 4 करोड़ रूपये से अधिक हो तथा जिन्हें 4 करोड़ रूपये से अधिक के बैंक ऋण प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रकार कम्पनी के प्रति छः माह बाद अपनी साख की जांच रिजर्व बैंक द्वारा मान्यता प्राप्त संस्था से करानी होती है। इनको भी बट्टे पर जारी किया जाता है और बट्टे की दर स्वतंत्र रूप से निर्धारित होती है। यह स्वतंत्र रूप से हस्तान्तरणीय है।

वाणिज्यिक पत्र जारी करने का सुझाव श्री एम.वाधुत की अध्यक्षता में भारतीय मुद्रा बाजार पर कार्यकारी दल ने जनवरी 1987 में दिया गया था। जनवरी 1990 में रिजर्व बैंक द्वारा निर्देश जारी किये गये। प्रारम्भ में वाणिज्यिक पत्र केवल बड़ी कम्पनियों द्वारा बड़ी राशि के जारी किये जा सकते है। बाद में वाणिज्यिक पत्र को विनियमित करने वाली शर्तों को उदार किया जाता रहा है। वाणिज्यिक पत्र में निवेश करने का अधिकार बैंकों, व्यक्तियों, भारतीय कम्पनियों तथा अनिवासी भारतीयों को दिया गया है।

वाणिज्यिक पत्रों को बकाया राशि 31 मार्च, 1997 के 646 करोड़ रूपये से बढ़ाकर 15 जनवरी 98 को 5,249 करोड़ रूपये के शीर्श स्तर पर पहुँच गयी। इसका मुख्य कारण बट्टा दरों में तीव्र कमी था जिससे वाणिज्यिक पत्रों के द्वारा संसाधन जुटाना कम्पनियों के लिए सस्ता होगा। बाद में बट्टा दरों में वृद्धि होने पर बकाया राशि 31 मार्च 1998 को 1500 करोड़ रूपये रह गयी। मार्च 2009 में बढ़कर 44,171 करोड़ रूपये हो गयी।

19.6.7 डी.एफ.एच.आई -

भारतीय मितिकाटा और वितगृह को 25 अप्रैल, 1988 को 100 करोड़ रू. के अपने संसाधनों और भारतीय रिजर्व बैंक की वित्तीय सहायता से स्थापित किया गया। इसका उद्देश्य भारतीय मुद्रा बाजार के दायरे में समूची वित्तीय व्यवस्था को लाना था। इस वित्तीय व्यवस्था में अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, विदेशी बैंक, निजी क्षेत्र के बैंक, सहकारी बैंक, राज्य सहकारी बैंक, अनुसूचित शहरी सहकारी बैंक, अखिल भारतीय वित्तीय संस्थाएं और सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र की गैर-बैंकिग संस्थाएं शामिल हैं।

19.6.8 भारतीय प्रतिभूति व्यापार निगम

STCI मई, 1994 को 100 करोड़ रू. की प्रदत पूँजी से स्थापित किया गया था। इसका उद्देश्य सरकारी प्रतिभूतियों और खजाना बिलों में द्वितीयक बाजार को विकसित करना है। यह सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियों और खजाना बिलों में तत्काल वायदा लेन-देन को करता है। DFHI की तरह यह निगम मांग/नोटिस मुद्रा बाजार में उधार लेता और देता है। यह सरकारी प्रतिभूतियों का प्राथमिक व्यापारी हैं। इसे RBI से विपरीत रिपोज सुविधा Reverse Repose Facility के रूप में तरलता समर्थना प्राप्त होता है, जब यह सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियों और 91-दिवसीय खजाना बिलों का लेन-देन करता है।

19.6.9 प्राथमिक व्यापारीः-

प्राथमिक व्यापारी सरकारी प्रतिभूति बाजार तथा मांग मुद्रा बाजार में कार्यरत हैं। मार्च 1999 को 13 संस्थानों को प्राथमिक व्यापारियों के रूप में सरकारी प्रतिभूतियों में लेन-देन करने की मंजूरी प्राप्त थी। इन प्राथमिक व्यापारियों को जारी की गई सभी सरकारी प्रतिभूतियों की हामीदारी राशि का अधिकतम 50% तक प्राप्त होता है। इन्हें रिजर्व बैंक से सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियों और 91/364 दिवसीय खजाना बिल, जो SLR खातों में RBI के पास रखे होते हैं उनकी जमानत पर तरलता समर्थन प्राप्त होता है। मांग मुद्रा बाजार में प्राथमिक व्यापारियों द्वारा किए जाने वाले लेन-देनों के संबंध में उधार देने की न्यूनतम सीमा अक्टूबर, 1997 से 5 करोड़ रू. कर दी गई है।

19.6.10 मुद्रा बाजार पारस्परिक निधियां -

रिजर्व बैंक ने 1995 में निजी क्षेत्र की संस्थाओं को मनी मार्किट म्यूचुअल फंड स्थापित करने की स्वीकृति दी। ये निधियां जुटाए गए संसाधनों को मांग/नोटिस मुद्रा जमा प्रमाण-पत्रों, वाणिज्यिक पत्रों, वास्तविक व्यापार। वाणिज्यिक लेन-दे से होने वाले वाणिज्यिक बिलों और खजाना बिलों, तथा एक वर्ष तक की न समाप्त हुई सरकारी दिनांकित प्रतिभूतियों एवं रेटिड कंपनी बांडो और

डिबेंचरों में निवेश कर सकती हैं। मई, 1998 से इन पारस्परिक निधियों की इकाईयों के लिए न्यूनतम निश्चित अवरूद्धता अवधि lock-in-paid 15 दिन कर दी गई हैं। परन्तु किसी एक कंपनी द्वारा जारी वाणिज्यिक पत्र में MMMF का निवेश उस म्यूचुअल फंड के संसाधनों का 3% से अधिक नहीं हो सकता। इस उच्चतम सीमा में **बांड** और डिबेंचर दोनों शामिल हैं।

भारत में मुद्रा बाजार के संधटकों के पूर्वोक्त विश्लेषण से यह पता चलता है कि हाल के वर्षो में उनके ढांचे और विकास में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिससे मुद्रा बाजार सुदृढ़ हुआ है। DHFI की स्थापना ने मुद्रा बाजार साधनों को अधिक नकदी-निधि प्रदान की है और उनमें एक सक्रिय मंझोला बाजार विकसित करने में सहायता की है।

19.7 भारतीय मुद्रा बाजार के दोष

भारतीय मुद्रा बाजार अर्थव्यवस्था में हुए विकास की तुलना में अच्छी तरह विकसित नहीं हुआ हैं। मुद्रा बाजार का विकास धीमा हुआ है तथा अर्थव्यवस्था में मुद्रा बाजार का प्रभाव बिल्कुल सीमित हैं। भारतीय मुद्रा बाजार की निम्न कमियों से यह बात स्पष्ट होती है।

19.7.1 दोहरा स्वरूप- भारतीय अर्थव्यवस्था का बाजार दो भागों में बँटा है जिसमें एक संगठित क्षेत्र और दूसरी गैर-संगठिल क्षेत्र है। संगठित क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त बैंकिग तथा भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक, वाणिज्यिक बैंक, सहकारी बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम, भारतीय यूनिट ट्रस्ट, भारतीय साधारण बीमा निगम आदि जैसी वित्तीय संस्थाएं हैं जो मुद्रा बाजार में निर्धारित नियमों के अनुसार कार्य करती हैं। दूसरी ओर, गैर-संगठित क्षेत्र में देशी बैंकर, साहूकार, व्यापारी, विक्रेता, जमींदार, दलाल, निधि एवं चिटफंड कंपनियां आदि षामिल हैं जो ऋण आदि देने में किसी नियम का पालन नहीं करते है। उक्त दोनों क्षेत्रों का परस्पर कोई सम्पर्क नहीं होता तथा इनमें समन्वय एवं सहयोग की भी कमी होती है। वास्तव में गैर संगठित क्षेत्र मौद्रिक नीति उपायों की प्रभावशीलता को कम कर देता है क्योंकि यह भारतीय रिजर्व बैंक के क्षेत्राधिकार में नहीं आता है।

01. सीमित आधारः

भारतीय मुद्रा बाजार का आधार सीमित है और सीमित संख्या में उपकरणों से कार्य कर रहा है। इसके मुख्य उपकरण अन्तर-बैंकर मांग मुद्रा, राजकोषीय बिल, वाणिज्यिक बिल, अन्तर-निगमित निधियाँ, जमा प्रमाण पत्र और वाणिज्यिक पत्र हैं। अन्तिम दो उपकरणों को हाल ही में शुरू किया गया है और अन्य का मुद्रा बाजार पर अत्यन्त कम प्रभाव पड़ा है।

02. लघु भौगोलिक क्षेत्र

भारतीय मुद्रा बाजार लधु भौगोलिक क्षेत्र तक ही सीमित होकर रह गया है। इसमें दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता और चेन्नई जैसे भारत के चार राजधानी क्षेत्र शमिल हैं। इससे भारतीय मुद्रा बाजार में अवरोंध होता हैं। भारत के गा्रमीण, अर्धशहरी, शहरी क्षेत्र का एक बड़ा खण्ड मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र से बाहर है।

03. पूंजी की कमी भारतीय मुद्रा बाजार में पूंजी की कमी है और मुद्रा बाजार, व्यापार और उद्योग क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने में असफल रहा है। निधियों की अपर्याप्तता के कारण है: क. आय का स्तर कम होने के कारण लोगों की बचत क्षमता कम है। ख. ग्रामीण क्षेत्रों में बैकिंग सुविधाएं अपर्याप्त हैं। और ग. बचतकर्त्ता वित्तीय बचतों की बजाय भूमि, वास्तविक सम्पदा, स्वर्ण आदि जैसी भौतिक परिसम्पत्तियों में निवेश करना अधिक पसन्द करते हैं।

04. मांग मुद्रा बाजार के दोष-मांग मुद्रा बाजार अत्यन्त विषमपूर्ण है जिसमें कुछ प्रमुख ऋणदाता और काफी संख्या में ऋण लेने वाले हैं। बाजार में भागीदारों के प्रवेश को कड़ाई से विनियमित किया गया है। 1 मई, 1989 से पूर्व, ब्याज दर विनियमित थी - यह 10 प्रतिषत थी परन्तु बैंकों ने इस अधिकतम सीमा से संबंधित मार्ग निर्देशिकाओं का प्रायः उल्लंघन किया। 1 मई, 1989 से ब्याज दर को मुक्त कर दिया गया है और अब यह बाजार-शक्तियों द्वारा निर्धारित की जाती है। इसके परिणामस्वरूप ब्याज दर में पर्याप्त विभिन्नताएं हुई। एक साल के भीतर यह ब्याज दर घटकर 4 प्रतिशत और बढ़कर 72 प्रतिशत तक पहुंच गई। वास्तव में, ब्याज दर में ऐसे बारम्बार और विस्तृत परिवर्तन से बैंकों की लाभप्रदता पर प्रभाव पड़ता है। और स्वस्थ मुद्रा बाजार के विकास में परिस्थिति प्रतिकूल होती है।

19.8 भारतीय मुद्रा बाजार में सुधार के सुझाव

भारतीय मुद्रा बाजार के दोष दूर करने और इसे सुदृढ़ रूप से विकसित करने के लिए भारतीय रिजर्व बैंक ने चक्रवर्ती समिति और वाधुल समिति की नियुक्ति की इन समितियों ने अपनी अपनी रिपोर्ट क्रमशः 1985 और 1987 में प्रस्तुत की। इस समितियों की सिफारिषों के आधार पर भारतीय रिजर्व बैंक ने मुद्रा बाजार को विकसित करने के अनेक उपाय किए। भारतीय मुद्रा बाजार में और सुधार करने के लिए निम्न सुझाव दिए गए हैं।

01.देशी बैंकरों पर नियंत्रण -अधिकांश ग्रामीणों पर अभी भी देशी बैंकों का नियंत्रण हैं बैकिंग आयोग, 1972 द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार देशी बैंकों की गतिविधियों पर वाणिज्यिक बैंकरों के जरिए नियंत्रण किया जाना चाहिए और साथ ही वाणिज्यिक बैंक इन देशी बैंकरों को

निगमित संकायों के रूप में परिवर्तित करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक को वाणिज्यिक बैंकों और देशी बैंकरों के सम्बन्ध में मार्गदर्शिकाएं निर्धारित करना चाहिए।

02.चिटफण्डों पर नियंत्रण -चिटफंड कम्पनियां जो अपने सदस्यों को खून-पसीने की कमाई हुई बचत राषि का दुरूपयोग करती हैं और उन सदस्यों को ठगती हैं ऐसी चिटफंड कम्पनियों की क्रियाओं पर नियंत्रण करने के लिए बैकिंग आयोग ने सुझाव दिया कि सम्पूर्ण देश में ऐसे चिटफण्डों के लिए एक-समान नियम होना चाहिए और न्यूनतम प्रदत्त पूंजी वाली पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों को चिटफण्ड चलाने की अनुमति दी जाये।

03.हुण्डियों का मानक रूप -मुद्रा बाजार के गैर-संगठित क्षेत्र में बड़े पैमाने का लेन देन देशी बैंकरों द्वारा हुण्डियों की पुर्नभुगतान द्वारा किया जाता है। परन्तु वाणिज्यिक बैंक इन हुंडियों को स्वीकार नहीं करते हैं इन हुंडियों को संगठित मुद्रा बाजार के कार्यक्षेत्र में लाने के लिए बैकिंग आयोग ने सिफारिश की कि दर्शनी और मियादी हुण्डियां निर्धारित की जाये और इन हुण्डियों पर भी विनिमय दस्तावेज अधिनियम लागू किया जाये।

04.बिल बाजार का विकास -मुद्रा बाजार के संगठित क्षेत्र में भारत में मुद्रा बाजार के विकास के लिए एक सही रूप से विकसित बिल बाजार आवष्यक है। इस उद्देष्य के लिए सरकार द्वारा विभागीय उपक्रमों और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को यह निर्देश देना चाहिए कि उधार में खरीद के सभी बिलों का भुगतान बिलों में होना चाहिए और देय तिथि को इसका कड़ाई से पालन करना चाहिए। सनदी लेखाकारों की पार्टियों के सम्बन्ध में भी यही कार्याविधि अपनानी चाहिए। बिलों की पुनर्भुनाई की प्रक्रिया को भी सरल बनाना चाहिए। इसके अलावा, संस्थाओं द्वारा पुनर्भुनाई को भी खुली अनुमति देनी चाहिए। हमारे देश में बिल संस्कृति को विकसित करने की आवष्यकता है।

05.अन्य केन्द्रों में मुद्रा बाजार का विकास -भारत में मुद्रा बाजार केवल कुछ बड़े षहरों तक सीमित होकर रह गया है। अन्य शहरों में मुद्रा बाजार बैकिंग और समाशोधन गृह सुविधाएं बड़े पैमाने पर मुहैया कराई जानी चाहिए। भुनाई और स्वीकृत गृहों की स्थापना की जानी चाहिए। निधियों के चलन को बढ़ाने के लिए समूचे देश में प्रेषण सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। ये उपाय अन्य षहरों में मुद्रा बाजार के विकास में दूरगामी साबित होंगे।

19.8 लोक वित्त की संरचना

प्रजातंत्रीय शासन प्रणाली में कल्याणकारी राज्य की स्थापना के बाद राज्य के कार्यों में वृद्धि होने से उसके व्यय के ढाँचे में तथा आय के स्रोतों में भी वृद्धि हो चुकी है। आर्थिक नियोजन एवं नियोजित विकास के फलस्वरूप राज्यों के कार्य का स्वरूप पूर्णतया परिवर्तित हो गया है।

आधुनिक युग में सरकारें विभिन्न कार्यों जैसे - देश की सुरक्षा तथा आंतरिक शांति व कानून व्यवस्था के लिए सेना, पुलिस, जेल एवं न्यायालयों पर आर्थिक और सामाजिक जीवन को उन्नत करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, लोक मनोरंजन, सामाजिक बीमा, पेंशन जैसे सामाजिक कल्याण के कार्यो पर देश के आर्थिक विकास के लिए सरकारी उद्योगों व यातायात तथा संवादवाहन, बिजली पूर्ति, जल पूर्ति जैसी जनोपयोगी सेवाओं पर व्यय करती है । इन कार्यों को करने के लिए सरकारें विभिन्न प्रकार के आवश्यक धन जुटाती है वे अनेकों प्रकार के कर लगाती है जैसे - आयकर, उत्पादन शुल्क, आयात-निर्यात कर, बिक्री कर आदि सार्वजनिक उद्योगों से आय प्राप्त करती है तथा देश-विदेश से ऋण लेकर भी धन प्राप्त करती है । लोक वित्त की हम संरचना में सरकार द्वारा व्यय करने तथा इसके लिए साधन जुटाने से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन करते हैं ।

लोक वित्त की संरचना का अध्ययन हम निम्नलिखित मदों में बांटकर कर सकते हैं -

- सार्वजनिक व्यय
- सार्वजनिक आय
- सार्वजनिक ऋण

19.8.1 सार्वजनिक व्यय

सरकार के बजट में सर्वप्रथम चालू वित्तीय वर्षो में होने वाले व्यय के अनुमान लगाए जाते हैं सरकार द्वारा किये जाने वाले सम्पूर्ण सार्वजनिक व्यय को दो भागों में बांटा जा सकता है -

क. राजस्व व्यय **ख. पूँजीगत व्यय**

राजस्व व्यय की निम्नलिखित प्रमुख मदें हैं, राजस्व व्यय को बजट में गैर विकासात्मक व्यय तथा विकास व्यय के रूप में विभाजित किया जाता है गैर विकासात्मक व्यय की प्रमुख मदें निम्नलिखित हैं -

क. सरकारी सेवाओं पर होने वाला व्यय ख. सरकारी सब्सिडी ग. ब्याज अदायगी

घ. सरकारी अनुदान ।

क. सरकारी सेवाओं पर होने वाला व्यय -सरकार के व्यय का मुख्य कारण समाज कल्याण में वृद्धि लाना है । समाज कल्याण हेतु सरकार कई प्रकार की सेवाएं उपलब्ध कराती है, जैसे - प्रतिरक्षा सेवायें, प्रशासकीय सेवाएं, आर्थिक सेवाएं तथा सामाजिक व सामुदायिक सेवाएं ।

ख. ब्याज अदायगी -चालू खाते में दूसरा महत्वपूर्ण मद ब्याज अदायगियों का है उन ब्याज अदायगियों में सभी प्रकार के ऋणों के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले ब्याज की अदायगियों को शामिल किया जाता है चाहें वह घरेलू हो या विदेशी, निजी या संस्थागत उल्लेखनीय है कि वर्तमान में राजस्व व्यय खाते में ब्याज अदायगी ही सबसे बड़ा व्यय का मद है।

ग. अनुदान -केन्द्र सरकार राज्य सरकारों, सार्वजनिक उद्यम की इकाइयों तथा अन्य संस्थाओं को विभिन्न कारणों से समय-समय पर अनुदान देती हैं अकाल, सूखाराहत, भूकम्प, बाढ़ तथा अन्य असामान्य परिस्थितियों में भी अनुदान दिए जाते हैं कभी कभी सरकार विदेशों को भी अनुदान देती है।

घ. सब्सिडी -केन्द्र सरकार निर्यात प्रोत्साहन, उत्पादन प्रोत्साहन तथा निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए खाद्यान्न की उचित मात्रा, उचित मूल्य पर या निःशुल्क उपलब्ध कराने के लिए विभिन्न मात्रा से सबसिडी प्रदान करती हैं।

जहां तक राजस्व व्यय में विकासात्मक व्यय का प्रश्न है, तो इसमें निम्नलिखित मदों पर किए जाने वाले व्यय को शामिल करते हैं -

सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएं - शिक्षा, कला एवं संस्कृति, वैज्ञानिक सेवाएं एवं अनुसंधान, चिकित्सा-सार्वजनिक स्वास्थ्य-स्वच्छता, जल सम्पूर्ति, परिवार कल्याण, आवास, नगर विकास, प्रसारण, श्रम एवं रोजगार, सूचना एवं प्रचार।

सामान्य आर्थिक सेवाएं -विदेश व्यापार एवं निर्यात संवर्धन, सहकारिता, अन्य।

कृषि एंव सहायक सेवाएं - फसल उत्पादन, पशुपालन, खाद्य भण्डारण एवं भण्डारगार, ग्रामीण विकास, अन्य। उद्योग एवं खनिज। रासायनिक उर्वरक सब्सिडी। विद्युत, सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण। विद्युत परियोजनाएं, मध्यम एवं अल्प सिंचाई, वृहत् सिंचाई परियोजनाएं परिवहन एवं संचार। सड़के एवं पुल, नागरिक उड्डयन, बन्दरगाह, लाइट-हाउस एवं जहाजरानी अन्य। लोक निर्माण। राज्यों एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों को अनुदान। ग्रामीण जलपूर्ति योजनाएं, ग्रामीण सड़के, ग्रामीण रोजगार आयोजनागत अनुदान, पिछड़े वर्गों का कल्याण, अनुसूचित जनजातियों को विशेष केन्द्रीय सहायता विविध अनुदान। राज्यों का संविधिक अनुदान। संविधान के अनुच्छेद 275(1) के तहत् तथा रेलयात्री भाड़े पर कर के बदले।

पूँजी खाता व्यय -पूँजी व्यय खाते में सरकार के उन व्ययों को शामिल किया जाता है जिनमें व्यय तो चालू वर्ष में किया जाए, किन्तु जिनसे सामाजिक कल्याण में वृद्धि चालू वर्ष के साथ-साथ

आगामी वर्षों तक वृद्वि होती रहती है, जैसे यदि सरकार लोगों के स्वास्थ्य कल्याण हेतु किसी जिले में चिकित्यालय की स्थापना करे, तो सरकार को दो प्रकार का व्यय करना होगा -

01.अस्पताल के भवन तथा अन्य स्थायी परिसम्पतियों का निर्माण, 02. डॉक्टर तथा नर्सों की नियुक्ति, दवाईयों का क्रय आदि।

02.दवाईयों तथा वेतन पर होने वाले खर्च से रोगियों को तत्काल लाभ मिलेगा, किन्तु स्थायी परिसम्पतियाँ-भवन आदि से आगामी वर्षों में भी लाभ प्राप्त होता रहेगा, इस कारण इन पर होने वाला व्यय पूँजी खाते में शामिल किया जाएगा।

सार्वजनिक व्यय की प्रवृतियाँ

Combined Public Expenditure of Union and State Government and Union Territories during 1950-51 to 2007-2008

Year	Total Revenue and Capital Expenditure at Current Prices	Ratio of Public expenditure to GDP
1	2	3
1950-51	900	9.1
1960-61	2631	16.3
1970-71	7843	17-2
1980-81	37218	25.6
1990-91	162084	28.5
1995-96	300635	25.2
1999-2000	531625	27.2
2000-2001	640088	28.1
2002-2003	698852	28.5
2003-2004	789485	28.6
2004-2005	861694	27.4
2005-2006	949902	26.5
2006-2007	1095663	26.4
2007-2008	1339099	28.4

Source : Reserve Bank of India, Handbook of Statistics on the Indian Economy, 2008-09

01.सार्वजनिक व्यय में अत्यधिक वृद्धि

सरकार के कोषों में आयोजन काल में गहन और व्यापक विस्तार से लोक व्यय में भारी वृद्धि हुई है। 1950-51 में कुल व्यय (राजस्व खाता त्र पूँजी खाता) में 900 करोड़ रूपये था। यह बढ़कर 1970-71 में 7,843 करोड़ रू. तथा 1990-91 में 162082 हो गया। 2007-08 में सार्वजनिक व्यय की मात्रा 1333099 करोड़ रू. हो गयी। अतः लोक व्यय सकल घरेलू उत्पाद अनुपात कालान्तर में लगभग स्थिर रहा है। 1951-1991 तक लोक व्यय का सकल घरेलू उत्पाद के साथ अनुपात लगातार बढ़ा है लेकिन इसके बाद इसकी प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ है 1991 में 28.5 प्रतिशत था और 2007-08 में भी यह अनुपात 28.4 प्रतिशत रहा है। इस समय भारत में लोक व्यय सकल घरेलू उत्पाद अनुपात विभिन्न अल्प विकसित देशों की तुलना में ऊँचा है।

लोक व्यय की संरचना -

19.8.1.केन्द्र सरकार के लोक व्यय –

आयोजन काल में भारत सरकार के विकास कार्यों का लगातार विस्तार हुआ है। 1950-51 में विकास व्यय कुल व्यय का 36.2 प्रतिशत था। यह 1980-89 में 66.4 प्रतिशत था। अस्सी और नब्बे के दशकों में उदारीकरण की नीति के कारण भारी कमी हुई और 2007-08 में यह व्यय कुल व्यय का 55 प्रतिशत हो गया है।

राजस्व खाते में आर्थिक सहायता राशि के तेजी से वृद्धि की वजह से विकास व्यय में भारी वृद्धि हुई है। 1980-81 में केन्द्र सरकार का आर्थिक सहायता के रूप में सार्वजनिक व्यय सकल घरेलू उत्पाद का 14 प्रतिशत था जो 1990-91 में 1.7 प्रतिशत हो गया। आर्थिक सहायता पर व्यय कम हुआ है और यह 2007-08 में 1.5 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद के था। इस देश में प्रमुख आर्थिक सहायता, खाद्य वस्तुओं और उर्वरकों पर रही है।

19.8.2 सार्वजनिक आय -

अ. राजस्व प्राप्तियां -इस खाते में आय के उन स्रोतों को शामिल किया जाता है जिनके बदले में कोई भुगतान नही करना होता है, जैसे करों द्वारा प्राप्त आय, सार्वजनिक उपक्रमों के द्वारा अर्जित लाभ, सरकारी उधारों पर प्राप्त ब्याज तथा गैर-कर आय, राजस्व प्राप्तियों से सरकार की देयताओं में किसी भी प्रकार से वृद्धि नहीं होती।

क. कर आय -करों द्वारा प्राप्त होने वाली आय दो प्रकार के स्रोतों से प्राप्त होती है - प्रत्यक्ष करों से प्राप्त आय तथा अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त आय।

प्रत्यक्ष कर - केन्द्र सरकार - आय कर, निगम कर, धन कर, एस्टेट डयूटी, उपहार कर, व्यय कर, ब्याज कर।

राज्य सरकारें - होटल प्राप्तियों पर कर, भू-राजस्व, कृषि आय पर कर, व्यवसाय कर, गैर-शहरी अचल सम्पत्तियों पर कर, रोजगारों पर कर।

परोक्ष कर - केन्द्र सरकार - सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, केन्द्रीय बिक्री कर, सेवा-कर

राज्य सरकारें - बिक्री-कर/व्यापार-कर, डीजल/पेट्रोल पर बिक्री कर, स्टाम्प एवं पंजीयन शुल्क, राज्य उत्पाद-शुल्क, वाहनों पर कर, वस्तुओं एवं यात्रियों पर परिवहन कर, विद्युत पर कर एवं शुल्क, गन्ने की खरीद पर शुल्क तथा उपकर, प्रवेश कर, विज्ञापन कर, शिक्षा उपकर, कच्चे जूट पर कर, सट्टेबाजी पर कर।

ख. लाभ एवं लाभांश -भारत सरकार स्वयं कई प्रकार की औद्योगिक तथा वित्तीय संस्थाओं और सेवाओं का संचालन करती है, यथा - तेल तथा प्राकृतिक गैस निगम, स्टील अर्थारिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, राज्य व्यापार निगम, खनिज तथा धातु व्यापार निगम, राष्ट्रीयकृत बैंक, जीवन बीमा निगम आदिर सरकार को इनसे प्रति वर्ष लाभ तथा लाभांश प्राप्त होता है।

ग. ब्याज आय -कई बार केन्द्र भारत सरकार के द्वारा राज्य सरकारों, अन्य संस्थाओं विदेशी सरकारों, अन्य संस्थाओं, विदेशी सरकारों को उधार दिया जाता है जिस पर केन्द्र सरकार को वार्षिक ब्याज के रूप में आय मिलती है।

घ. करेत्तर या गैर कर आय -सरकार द्वारा प्रदत्त सेवाओं, यथा - डाकतार सेवायें, रेडियो तथा टीवी के विज्ञापन आदि पर शुल्क प्राप्त होता है जिसे हम करेत्तर आय कहते हैं।

करेत्तर प्राप्तियां केन्द्र सरकार

01. सार्वजनिक प्रतिष्ठानों से प्राप्त निवल अंशदान -

रेलवे, डाक, भारतीय रिजर्व बैंक का लाभ, वन, समुद्रपारीय संचार सेवाएं, अफीम एवं एल्कलॉयड कारखाने, विद्युत परियोजनाएं, सड़क एवं जल परिवहन योजनाएं, दिल्ली दुग्ध योजना, रक्षा सेवाएं, कैन्टीन स्टोर विभाग, परमाणु ऊर्जा उद्योग परियोजनाएं, कच्चे तेल पर रॉयल्टी, खाद्य तेलों के आयात पर लाभ, गैर-विभागीय उपक्रमों से प्राप्त लाभ तथा लाभांश रेडियो एवं दूरदर्शन वाणिज्यिक सेवाएं, लाइटहाउस तथा लाइटशिप।

02. ब्याज प्राप्तियां: राज्यों एवं केन्द्रशासित क्षेत्रों से, रेलवे से, दूरसंचार से, अन्यों से

03. **राजकोषीय सेवाएं**: करेंसी, सिक्के एवं ढलाई, अन्य राजकोषीय सेवाएं।

04. **सामान्य सेवाएं 05. सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएं 06. आर्थिक सेवाएं** विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों की प्राप्तियां, चीनी-कैस्टर ऑयल, शीरा के निर्यात से लाभ, कच्चे तेल पर प्राप्त रॉयल्टी। **07. बाह्य सहायतायें क.** सामान एवं उपकरणों के रूप में सहायता।

ख.बाह्य नकदी अनुदान सहायता।

राज्य सरकार

01. **विभागीय वाणिज्यिक उपक्रमों से प्राप्त निवल अंशदान**। वन, विद्युत परियोजनाएं, सड़क एवं जल परिवहन सेवाएं, दुग्ध विकास, उद्योग खनन एवं खनिज, सिंचाई परियोजनाएं बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएं। सार्वजनिक उपक्रमों से प्राप्त लाभांश तथा आय। दिए गए उधारों से प्राप्त ब्याज। सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाओं से प्राप्त आय। आर्थिक सेवाओं से प्राप्त आय।

ब. पूँजीगत प्राप्तियाँ -इसके अन्तर्गत आय के उन समस्त स्रोतों को रखा जाता है, जिनका हमें बदले में भुगतान करना आवश्यक होता है लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि यह भुगतान उसी वित्तीय वर्ष में न होकर आगामी किसी वित्तीय वर्ष में किए जाते हैं इसे पूंजी खाता नाम से जानते हैं। इस प्रकार राजस्व प्राप्ति की प्रकृति जहाँ अल्पकालिक किस्म की होती है, वहीं पूँजीगत प्राप्तियों की प्रकृति दीर्घकालिक होती है। पूंजी खाते का प्रमुख स्रोत है - निवल घरेलू ऋण, निवल विदेशी ऋण, ऋण वापसी तथा लोक लेखा प्राप्तियां।

क. निवल घरेलू ऋण -

केन्द्र सरकार की पूँजीगत प्राप्तियों में मुख्य रूप से बाजारी ऋण (निवल प्राप्तियां) अल्प बचतों (निवल), राज्य लोक भविष्य निधियां (निवल), लोक भविष्य निधियां (निवल), गैर सरकारी भविश्य निधियों के विशेष निक्षेप, विशेष प्रतिभूतियां तथा विविध पूँजीगत प्राप्तियों (निक्षेपों एवं अग्रिमों की प्राप्तियाँ, अन्तरण प्रारक्षित कोष, नकदी अधिशेश खाते प्रतिभूतियों की बिक्री, आकस्मिकता निधि से प्राप्तियां) आदि को शामिल किया जाता है।

जहाँ तक राज्य सरकारों की पूँजीगत प्राप्तियों का सम्बन्ध है, तो इसमें निम्नलिखित प्राप्तियों को शामिल करते हैं - बाजारी ऋण (निवल), केन्द्र से प्राप्त ऋण, अन्य ऋण (निवल)। क.राष्ट्रीय कृषि साख निधि (भारतीय रिजर्व बैंक), ख. राष्ट्रीय सहकारी विकास निगम। ग.केन्द्रीय भण्डारागार निगम। घ. जीवन बीमा निगम। अन्य ऋण, राज्य भविष्य निधियाँ (निवल), विविध पूँजीगत प्राप्तियां।

क.अन्तर्राज्यीय निपटान प्राप्तियां । ख. आरक्षित निधियां, ग. निक्षेप एवं अग्रिम, घ. अन्तरण, ड. सस्पेंस एवं विविध खाते । ख. निवल विदेशी ऋण ।

समग्र नए ऋणों में से विगत वर्षों के ऋणों पर इस वर्ष चुकाए जाने वाले ब्याज की मात्रा घटाने पर निवल विदेशी ऋण की मात्रा ज्ञात होती है।

ग. ऋण वापसी -सरकार ने पिछले वित्तीय वर्षों में राज्य सरकारों, सार्वजनिक निगमों, अन्य संस्थाओं, विदेशी सरकारों को यदि कोई ऋण दिया है, तो उसके जिस भाग की वापसी चालू वित्तीय वर्ष में होती है उस धनागम को ऋण वापसी के तहत रखा जाता है।

घ. लोक लेखा प्राप्तियां -सरकार बैकिंग संस्थाओं का नियंत्रक होने के साथ साथ बैंकर के रूप में कार्य करती है। पोस्ट ऑफिसों में समय जमाएं, लघु बचतें तथा भिन्न प्रकार के बचत पत्र, किसान विकास पत्र आदि समय समय पर जारी होते रहते हैं। इन सबसे जो निवल आय प्राप्त होती है उसे लोक लेखा प्राप्तियां के तहत रखते हैं।

केन्द्रीय सरकार की राजस्व आय की प्राप्तियां -केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियों की प्रवृत्तियों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर सकते हैं -

क. राजस्व प्राप्तियों में वृद्धि -1950-51 में केन्द्र सरकार की कुल राजस्व प्राप्ति 406 करोड़ रूपये थी, पर जैसे जैसे राज्य के वित्तीय व्यवहार में वृद्धि हुई है, सार्वजनिक व्ययों को पूरा करने के लिए सरकार के राजस्व में भी वृद्धि हुई है।

सकल घरेलू उत्पाद के रूप में राजस्व प्राप्तियाँ 1990-91 में 9.7% थी, जो 2006-07 में बढ़कर 10.5% हो गयी।

कर आय एवं गैर-कर आय -राजस्व प्राप्तियों के दो प्रमुख स्रोत हैं - कर आय तथा गैर कर आय। केन्द्रीय सरकार की राजस्व प्राप्तियों के विभिन्न स्रोतों में कर स्रोतों का महत्वपूर्ण स्थान है। केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रकार के कर लगाये जाते हैं।

केन्द्रीय सरकार की कर स्रोत से प्राप्त कुल आय के प्रतिशत में क्रमशः कमी होती गई है। वर्तमान में राजस्व प्राप्तियों का लगभग 78% कर आय से और 22% गैर कर आय से प्राप्त होता है।

ग. कर संरचना में प्रत्यक्ष करों का बढ़ता हुआ महत्व -

भारतीय कर प्रणाली में प्रत्यक्ष करों का महत्व बढ़ रहा है। उदाहरण के लिए, सकल कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों का हिस्सा वर्ष 1990-91 के 16.1 प्रतिशत से बढ़कर वर्श 2008-09 में 54.7 प्रतिशत

हो गया इसके विपरीत, अप्रत्यक्ष करों के हिस्से में काफी गिरावट आयी और यह वर्ष 1990-91 के 78.4 प्रतिशत से गिरकर वर्ष 2006-07 में 48.8 प्रतिशत हो गया।

राज्य सरकार की आय की मुख्य प्रवृत्तियां:

राज्यों का कर राजस्व 1951-52 में 281 करोड़ रूपये था। 2007-08 तक कर राजस्व में 1100 गुना वृद्धि हुई राज्यों की कर आय में उन करों की आय को शामिल किया जाता है जो केन्द्र द्वारा वसूल किये जाते हैं और पूर्णतः या अंशत राज्यों में वितरित कर दिये जाते हैं बिक्री कर राज्यों के कर राजस्व में महत्वपूर्ण स्थान रखता है कुल कर राजस्व का 59 प्रतिशत बिक्रीकर से प्राप्त होता है। सहायता अनुदान से प्रादेशिक सरकारें योजना कार्यक्रमों को पूरा करती है। राज्यों को प्राप्त सहायता अनुदान की राशि 1951-52 में 25 करोड़ थी जो 2006-07 में बढ़कर 120377 करोड़ रूपये हो गयी। गैर कर आय भी राज्यों की आय का महत्वपूर्ण स्रोत है। गैर कर आय 2006-07 में बढकर 158.162 करोड़ रूपये हो गयी। केन्द्रीय करों में राज्यों का हिस्सा लगातार बढ़ता जा रहा है।

भारत की आयकर प्रणाली प्रगतिशील है। 1974-75 से पहले इस देश में आयकर की सीमान्त दर 97.75 प्रतिशत थी जो संसार से सबसे अधिक थी। लेकिन प्रत्यक्ष कर जांच समिति की सिफारिश के आधार पर इसके कमी की गयी और 1997-98 के बजट में 30 प्रतिशत कर दिया गया। चेलैया समिति ने भी आपके सभी स्तरों पर आयकर दरों को नीचा करने की सिफारिष की थी। भारत में व्यक्तिगत आयकर 1991 में कुल प्रत्यक्ष कर का 22.3 प्रतिशत थी लेकिन यह बढ़कर 2008-09 में कुल प्रत्यक्ष कर का 35.4 प्रतिशत हो गयी। (254.903 - 90118 करोड़ रूपये)।

कुल प्रत्यक्ष कर में निगम कर का हिस्सा 1970-71 में 72.6 प्रतिशत था जो 2008-09 में 64.5 प्रतिशत हो गया।

कुल अप्रत्यक्ष कर में उत्पाद शुल्क का हिस्सा 1991 में कम हुआ था लेकिन 2000-01 में बढ़कर 57.2 प्रतिशत तथा 2003-04 में 63.6 प्रतिशत हो गया। लेकिन 2008-09 में यह गिरकर 41.3 प्रतिशत हो गया। कस्टम डयूटी का हिस्सा 1990-91 में कुल अप्रत्यक्ष कर का 57.2 प्रतिशत था जो गिरकर 2008-09 में कुल अप्रत्यक्ष कर का 36.5 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार सीमा शुल्क में निरन्तर गिरावट हुई है। 1990-91 में व्यक्तिगत आयकर, निगम कर, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क का भाग क्रमशः 2.9 प्रतिशत 12.4 प्रतिशत, 32.8 प्रतिशत तथा 48.0 प्रतिशत था। इससे ज्ञात होता है कि 1990-91 में सीमा शुल्क राजस्व आय का प्रमुख स्रोत था। यह कुल कर आय का लगभग आधा था। 2008-09 में इन सम्बन्धित करों की दरें क्रमशः व्यक्तिगत आयकर 19.3 प्रतिशत निगम कर 35.3 प्रतिशत, उत्पाद षुल्क 18.9 प्रतिशत तथा सीमा शुल्क 16.7 प्रतिशत हो

गयी है। इस समय सबसे महत्वपूर्ण कर का कर आय में योगदान निगम कर का हूँ। इस कर के बढ़ने का मुख्य कारण आर्थिक उदारीकरण है। सेवा कर का आरोपण व संग्रहण वर्तमान में केन्द्र सरकार द्वारा ही किया जा रहा है। लेकिन भविष्य में राज्य सरकारें भी इस कर का आरोपण कर सकेगी। इसके लिए 95 वां संविधान संषोधन विघेयक-2003, मई 2003 में संसद ने पारित कर दिया था। 2009-10 में सेवाकर से प्राप्त राशि का अनुमान 58,000 करोड़ रूपये का है। 2008-09 में सेवाकर से 60, 702 करोड़ रूपये की राशि प्राप्त हुई।

Direct and Indirect Taxes of the Central Government

Year	Tax receive (Net)	Direct Tax	of which		indirect Tax (Net)	of which	
			Personal Income Tax	Corporation Tax		Exicse Duties (Net)	Customs Duties
1970-71	2451	511	114	731	1940	1369	524
1980-81	9358	1893	438	1311	7465	3723	3409
1990-91	42978	6903	1250	5335	36075	14100	20644
2000-01	136658	49651	23766	25177	87007	49758	34163
2001-02	133532	47703	22106	25133	85828	54469	28340
2002-03	158544	61612	27779	33893	96932	62388	31898
2003-04	186982	76590	30765	45706	110392	70245	34586
2004-05	224798	95944	35443	60289	128854	77241	41811
2005-06	270264	120692	45538	75185	149572	86642	46645
2006-07	351182	169738	62707	106701	181444	92651	62819
2007-08	439547	231509	86518	144660	209615	95992	75382
2008-09	465970	254903	90118	164451	212867	87924	77668

Revised Estimates

Source : Reserve Bank of India, Handbook of Statistic on the Indian Economy, 2008-09

19.8.3 सार्वजनिक ऋण -

सार्वजनिक व्ययों की पूर्ति के लिए जब सरकार को करों एवं गैर करों से प्राप्त आय के साधन कम पड़ते हैं तो सरकार देशवासियों, विदेशी संस्थाओं, सरकारों एवं व्यक्तियों से ऋण लेती है। इस कारण सार्वजनिक वित्त व्यवस्था में ऋण का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। सार्वजनिक ऋण की विशेषतायें निम्न हैं -

1. जो धन ऋणदाता देता है उसकी वापसी एक निश्चित अवधि के बाद की जाती है।

2. ऋण देना ऋणदाता के लिए ऐच्छिक होता है।
3. ऋण पर ब्याज चुकाना होता है। लेकिन सार्वजनिक ऋण ब्याजरहित भी हो सकता है, अनिवार्य भी और सार्वजनिक ऋण की वापसी यदि सरकार चाहे तो नियत तिथि से पहले भी कर सकती है।

सार्वजनिक ऋण के उद्देश्य

सार्वजनिक ऋण सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति के कार्यों जैसे - जल, विद्युत, सड़कें, नहरें, बांध, पुल, रेलें इत्यादि को पूरा करती हैं। प्राकृतिक संकटों का सामना आदि के लिए सुरक्षा के लिए भारी मात्रा में ऋण लिये जाते हैं। अल्पविकसित देश आर्थिक विकास करने के लिए आवष्यक पूँजी प्राप्त कर सकती है। कल्याणकारी राज्य की स्थापना हेतु सरकार शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं आवास जैसी सुविधाओं पर भारी मात्रा में व्यय करती है। इसके लिए ऋण का सहारा लेना पड़ता है। राष्ट्रीयकरण व राजकीय उद्योगों की स्थापना के लिए ऋण लिया जाता है।

Combined Liabilities of the Centre and States

End-March	Outstanding Liabilites(Rupees Crore)			Debt GDP Ratio (Percent		
	Centre	States	Combined	Centre	States	Combined
1990-91	314558	128155	368824	55.2	22.5	64.7
1995-96	606232	249535	726854	50-9	20.9	61.0
2000-01	1160541	594147	1484106	55.6	28.3	70.6
2005-06	2260145	1167866	2879705	63.0	32.6	80.3
2006-07	2538596	1250819	3190698	61.5	30.3	77.3
2007-08	2837425	1314355	3547790	60.1	27.8	75.1
2008-RE	3136075	1444165	3973203	58.9	27.1	74.7
2099-10RE	3495452	1612377	44955	59.7	27.5	76.6

RE : Revised Estimates BE : Budget Estimate

Source : Reserve Bank of India , Annual Report 2008-09

सार्वजनिक ऋण की स्थिति -

सार्वजनिक ऋण में देश के अन्दर लिए गए ऋण जैसे बाजार-ऋण, मुआवजे और अन्य बॉड, राज्य सरकारों, वित्त मंत्रालय को जारी किए गऐ टेजरी बिल, अन्तर्राष्टीय वित्तीय संस्थाओं को जारी की गई अविनिमेय बिना ब्याज वाली रूपया प्रतिभूतियाँ तथा देश के बाहर से लिए गए ऋण शामिल हैं।

केन्द्र सरकार का सार्वजनिक ऋण सकल घरेलू उत्पाद का 61.5 प्रतिशत 2005-06 में था। ऋण भार में यह वृद्धि बाजार उधारियों में तीव्र वृद्धि के चलते हुई है। वित्त मंत्रालय के अनुसार मार्च 2006 के अन्त में प्रति व्यक्ति सार्वजनिक ऋण की राषि 25723 रूपये हो गयी थी। जिसमें से 5041 रूपये (113 डालर) की राशि बाह्य ऋण की थी। रिजर्व बैंक के आकलन में राज्यों का ऋण 2001-02 में GDP का 25.7 प्रतिशत था जो 2002-03 में GDP का 28.1 प्रतिशत रहा था। हिमाचल प्रदेश व उड़ीसा के मामले में यह GDP का 60 प्रतिशत से अधिक है ; वहीं महाराष्ट्र व तमिलनाडु में यह GDP का क्रमशः 17.3 प्रतिशत व 20.9 प्रतिशत है।

सितम्बर 2009 के अन्त में भारत पर कुल विदेशी ऋण 242.2 अरब डॉलर था। इनमें 242.82 अरब डॉलर के ऋण में 200.45 अरब डालर दीर्घकालिक तथा 42.38 अरब डालर अल्पकालिक ऋण आर्थिक समीक्षा में बताया गया है। समीक्षा में बताया गया है कि देश के विदेशी ऋण में अधिकांश वृद्धि प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राओं के सापेक्ष अमेरिकी डालर के अवमूल्यन के कारण मूल्यांकन प्रभाव के कारण हुई।

19.9.4 घाटे की वित्त व्यवस्था -

साधारणतया जब कभी सरकार का व्यय आय प्राप्ति से अधिक हो जाता है तो सरकार उस घाटे को पूरा करने के लिए जिस व्यवस्था का सहारा लेती है उसे घाटे की वित्त व्यवस्था कहते हैं इस व्यवस्था के अनतर्गत सरकार घाटे को पूरा करने के लिए निम्न उपाय कर सकती है -

केन्द्रीय बैंक से ऋण, जनता से ऋण, विदेषों से ऋण प्राप्त करना, नयी मुद्रा जारी करना।

घाटे की वित्त व्यवस्था की परिभाषा करते हुए योजना आयोग ने लिखा है कि "घाटे की वित्त व्यवस्था शब्द का उपयोग बजट के घाटे द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्रीय व्यय में प्रत्यक्ष वृद्धि से किया जाता है चाहे यह कमी आयगत हो या पूँजीगत खाते से हो।"

घाटे की वित्त व्यवस्था की अवधारणाएं -

01. बजटीय घाटा = कुल प्राप्तियाँ - कुल व्यय।

02. राजस्व घाटा = राजस्व प्राप्तियां - राजस्व व्यय।

03. राजकोषीय घाटा = बजटीय घाटा + ऋण और अन्य देयताएं

(राजस्व प्राप्तियां +ऋणों की वसूली +अन्य प्राप्तियां) - (कुल व्यय)

राजकोषीय घाटा बजट घाटे की वृहतम संकल्पना है। राजकोषीय घाटा केन्द्रीय सरकार की ऋणग्रस्तता पर राजकोषीय क्रियाओं के प्रभाव को प्रतिबिम्बित करता है।

04. प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा - ब्याज की अदायगियाँ।

05. मौद्रिक घाटा = यह घाटा केन्द्रीय सरकार को दिये गये शुद्ध भारतीय रिजर्व बैंक के साख में वृद्धि बताता है।

भारत में सभी पंचवर्षीय योजनाओं में घाटे के बजट बनाये जाते रहे हैं। भारत सरकार के बजटों की दृष्टि से 1951-2008 तक की अवधि को दो भागों में बांटा जा सकता है।

01.1951 से 1980 तक की अवधि -

इस अवधि की विशेषताएं थी राजस्व अतिरेक तथा राजकोषीय घाटा इस अवधि में घाटे की वित्त व्यवस्था विकास के अनुकूल थी क्योंकि कुल बजटीय घाटे के साथ राजस्व खाते में अतिरेक रहता था अर्थात् राजस्व प्राप्तियों का एक भाग पूँजी व्यय के लिए उपलब्ध रहता था।

02.1980-2008 तक की अवधि -

इस अवधि में घाटे की वित्त व्यवस्था आर्थिक विकास के अनुकूल नहीं रही है क्योंकि सरकार राजस्व घाटे में भी घाटा दर्शाने लगी जिसका अर्थ यह है कि सरकार को अपने सामान्य व्यय के लिए भी उधार लेने की आवश्यकता पड़ती रही है। फलतः सरकार पर ऋणों का भार बढ़ता जा रहा है लेकिन इन ऋणों के लौटाने का आधार का निर्माण नहीं बन पा रहा है।

1980-81 में राजस्व घाटा कुल सकल घरेलू उत्पाद का 1.4 प्रतिशत था जो 1990-91 तक 3.3 प्रतिशत हो गया तथा 2002-03 तक बढ़कर 4.4 प्रतिशत हो गया इससे स्पष्ट होता है कि इस अवधि में राजकोषीय स्थिति पर भारी दबाब था इस अवधि में राजकोषीय घाटे में असंतुलन रहा और इसके बाद की अवधि में राजकोषीय घाटे में कमी आयी। 2008-09 में राजकोषीय घाटे का लक्ष्य 2.5 प्रतिशत था लेकिन यह बढ़कर 6.0 हो गया। 1990-91 में केन्द्रीय सरकार की कुल

केन्द्रीय सरकार का बजट घाटा (प्रचलित बाजार मूल्य पर)

(GDP का प्रतिशत)

वर्ष	राजस्व घाटा	राजकोषीय घाटा	प्राथमिक घाटा
1980-1981	1.4	5.7	3.9
1990-91	3.3	7.8	4.1
2000-01	4.1	5.7	0.7
2001-02	4.4	6.2	0.9
2002-03	4.4	5.9	1.5
2003-2004	3.6	4.5	1.1
2004-05	2.5	4.0	-.03
2005-06	2.6	4.1	-0.04
2006-07	1.9	3.5	-0.2
2007-08	1.1	2.7	-0.9
2008-09	4.5	6.0	2.5
2009-2010आर.ई.	5.3	6.7	3.2

आर.ई. - संशेधित अनुमान।

राजस्व प्राप्तियों का 39.2 प्रतिशत ब्याज के भुगतान में निकल गया था। 2008-09 में केन्द्रीय सरकार का ब्याज भुगतान 2008-09 में 1,92,694 करोड़ रू. था।

अभ्यास प्रश्न

01.संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये -

क.मांग मुद्रा बाजार, ख. पुर्नखरीद नीलामी ग. जमा प्रमाण पत्र।

I. भारत सरकार की सार्वजनिक व्यय की मुख्य प्रवृत्तियां क्या हैं ?

II. बजटीय घाटा और राजकोषीय घाटे में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

01.आय तथा व्यय की समस्त मदों को केन्द्रीय, राज्य और स्थानीय सरकारों के बीच बांट दिया जाता है।

अ. संघीय वित्त में ब. एकात्मक वित्त में स. उपर्युक्त दोनों में

02.केन्द्रीय सरकार का सबसे बडा राजस्व का स्रोत है -

अ. आयकर ब. उत्पाद कर स. सीमा शुल्क द. सम्पदा शुल्क

03. राजस्व व्यय के अन्तर्गत योजना व्यय में कौन सी मद सम्मिलित नहीं होती -

अ.केन्द्रीय योजना व्यय ब. राज्यों के लिए केन्द्रीय सहायता।

स. ब्याज का भुगतान द. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

19.10 सारांश

इस इकाई 'भारतीय वित्त बाजार एवं मुद्रा बाजार और लोक वित्त की संरचना' के अध्ययन के पश्चात् आप यह जान गये होंगे कि भारतीय वित्तीय बाजार में मुद्रा बाजार बहुत महत्व रखता है और यह अल्पकालीन मौद्रिक ऋण उपलब्ध कराता है। किसी भी देश के उद्योग, व्यापार तथा कृषि के विकास के लिए मुद्रा बाजार का विकसित होना आवश्यक है। लोक वित्त की विचारधारा अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन एक तंत्र शासन प्रणाली में राज्य के कार्य सीमित होने के कारण आय व व्यय का ब्यौरा रखा जाता है उसका प्रारूप भी छोटा था। परन्तु वर्तमान समय में लोक वित्त की संरचना धन एकत्र करना मात्र नहीं हे बल्कि आर्थिक स्थात्वि प्राप्त करने, आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने, सामाजिक न्याय प्राप्त करने और पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने का एक शक्तिशाली साधन है।

19.11 शब्दावली

संचित निधि - इसके लिये प्रावधान संविधान के अनु0 266 के अनुसार किया जाता है इसके अन्तर्गत सरकार की सभी कर तथा गैरकर प्राप्तियाँ, ऋण आदि आते है तथा भारित व्यय के प्रावधान जैसे राज्यपाल, उच्च न्यायालय के न्यायधीशों के वेतन सम्बन्धी प्रावधान भी आते है, इस प्रकार के व्यय पर मतदान की आवश्यकता नहीं होती है तथा अन्य प्रकार के व्यय सदन द्वारा अनुमति के बाद ही किये जा सकते है।

आकस्मिक निधि - राज्य सरकार को अनुच्छेद 267 के तहत् आकस्मिक व्ययो की पूर्ति के लिये इसका प्रावधान किया गया हैं तथा इस निधि से व्यय हेतु विधान सभा से अनुमति नहीं लेनी होती है।

लोक निधि - इस निधि पर सदन में मतदान की आवश्यकता नही होती है। इस प्रकार की निधि में अल्पबचत, भविष्य निधि आदि समाहित होते है तथा इस प्रकार की निधि में सरकार की भूमिका ट्रस्टी के रूप में रहती है।

कर भार - जब भी कोई कर किसी व्यक्ति पर अरोपित किया जाता है तो कर दाता को सर्वप्रथम मौद्रिक रूप में कर का भुगतान करना पड़ता है यह कर का मौद्रिक भार कहलाता है परन्तु इसके कारण व्यक्ति को वास्तविक रूप में उपयोग एवं कल्याण में जो त्याग करना पड़ता है वह कर का वास्तविक भार कहलाता है।

कराधात - करा धात कर का प्रथम या तात्कालिक परिणाम होता है कर जब भी किसी व्यक्ति पर आरोपित होता है तो वह कर का तुरन्त भुगतान करता है मौद्रिक रूप में कर के प्रथम भार को वहन करने की प्रक्रिया को कराधात कहते है।

कर विवर्तन -कर का विवर्तन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई कर के भार को दूसरे व्यक्ति पर स्थानान्तरित कर देता है, यह कर का विवर्तन अग्रगामी तथा पच्छगामी दोनों रूप में हो सकता है।

करा पात- कर के अंतिम भार को करापात कहते है क्योंकि कर के विवर्तन के पश्चात् कर का अंतिम भार दूसरे व्याक्ति को ही वहन करना पड़ता हैं। कर के अंतिम भार वहन करने की प्रक्रि्रया को ही करापात कहतें है।

कर वचंना- कर की सीधे-सीधे चोरी को कर वंचना कहतें है कर वचंना से सरकार को न सिर्फ भारी हानि होती है अपितु काला धन की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है कर की वंचना कानून का उल्लधन है।

19.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

भाग 1 क. 19.6.1 देखिये ख. 19.6.3 देखिये ग. 19.6.4 देखिये।

भाग 2 19.9.1 में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियाँ देखिये।

भाग 3 घाटे की वित्त व्यवस्था देखिये। ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर - 1. अ 2. ब 3. स

19.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

01. Mishra, S.K. and Puri, V.k. (2010), Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.
02. Economic Survey, 2009-10
03. Dr. T.T. Sethi, Monetary Economics, 2005, Lakhmi Narayan Agarwal.
04. Jhigan M.L. Montary Economics, 2007, Vrinda Publication Pvt. Ltd.
05. Reserve Bank of India, Annual Report 2008-09 (Mumbai, 2009)

19.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय मुद्रा बाजार के विभिन्न संघटकों का वर्णन कीजिये।
2. भारतीय मुद्रा बाजार के दोषों का वर्णन कीजिये इसके सुधार के बारे में आपके पास क्या सुझाव हैं ?
3. केन्द्र सरकार के महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष करों का वर्णन कीजिये।

इकाई 20: भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि

इकाई संरचना

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 भूमण्डलीकरण
20.4 भूमण्डलीकरण और भारतीय कृषि
    20.4.1 भूमण्डलीकरण और हरित क्रान्ति का प्रभाव
    20.4.2 कृषि आयात एवं निर्यात
20.5 बहुराष्ट्रीय निगम तथा भारतीय कृषि
20.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन तथा भारतीय कृषि
20.7 अभ्यास प्रश्न
20.8 सारांश
20.9 शब्दावली
20.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
20.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
20.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
20.13 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह बीसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि मुद्रा बाजार किसे कहते है तथा लोकवित्त संरचना क्या है ?

प्रस्तुत इकाई मे भूमण्डलीकरण नीति एवं कृषि पर इसके प्रभाव के बारे में विस्तार से लिखा गया है। अन्तराष्ट्रीय संगठन भारतीय कृषि को किस तरह से प्रभावित कर रहे है। इसका विश्लेषण किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भूमण्डलीकरण को समझा सकेंगें तथा भूमण्डलीकरण का भारतीय कृषि पर क्या प्रभाव पड़ा इसका सम्यक् विश्लेषण कर सकेंगें।

20.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि:

- भूमण्डलीकरण क्या है ?
- भूमण्डलीकरण नीति कृषि को किस तरह से प्रभावित कर रही है ?
- बहुराष्ट्रीय निगम किस क्षेत्र में निवेश करना चाहती है और क्यों ?
- विश्व व्यापार संगठन में गतिरोध का क्या कारण है ?

20.3 भूमण्डलीकरण

भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि का अध्ययन करने से पहले यह जानना जरुरी है कि भूमण्डलीकरण क्या है? आप को मालूम होगा की विश्व व्यापीकरण और वैश्वीकरण, भूमण्डलीकरण के अन्य नाम है।

भारत 1991 में आर्थिक संकट से जूझ रहा था। देश को आर्थिक संकट से निकालने तथा विकास की गति को तीव्र करने के जो विभिन्न नीतिगत आर्थिक सुधारों की श्रृंखला अपनाई गई उसमें तीन बिन्दु सम्मिलित थे –

1. उदारीकरण

2. निजीकरण

3. भूमण्डलीकरण

उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण नीति को ही नयी आर्थिक नीति अथवा यू-टर्न नीति (U-Turn Policy) कहा गया है । भूमण्डलीकरण से तात्पर्य देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने से है। अर्थात् भूमण्डलीकरण के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं का राष्ट्रीय सीमा से आगे विस्तार किया जाता है । भूमण्डलीकरण के अन्तर्गत विभिन्न देशों में वस्तुओं, सेवाओं, पूँजी, तकनीकी तथा श्रम का निर्बाध प्रवाह होता है तथा सरकार की राष्ट्रीय मैक्रो आर्थिक नीतियों का हस्तक्षेप कम हो जाता है । संक्षेप में भूमण्डलीकरण अन्य राष्ट्रों के साथ आर्थिक लेन-देन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है।

भूमण्डलीकरण के लाभ का वितरण सभी को एक समान नहीं मिला है। इसने उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है। राष्ट्र के स्तर पर देखा जाये तो भूमण्डलीकरण ने आर्थिक अवसर प्रदान की है लेकिन कुछ ही देश को जैसे- चीन, वियतनाम और ब्राजील।भूमण्डलीकरण ने इन देशों की गरीबी को कम करने में बहुत हद तक मदद की है। लेकिन अर्द्ध-विकसित देश के अधिकांश गरीब इस भूमण्डलीकरण के लाभ से वंचित है। भूमण्डलीकरण ने विश्व असमानता को बढ़ावा दिया है। इस भूमण्डलीकरण का मुख्य उद्देश्य परिचमी देशों के पूँजीपतियों, एवं उद्योगों के लिए बाजार का विस्तार करना है । जिसके लिए विश्व की अर्थव्यवस्था को एकीकृत किया गया। विश्व की अर्थव्यवस्था का एकीकरण ही भूमण्डलीकरण की शक्ति है जिस पर वह चल रही है।

यू. एस. के राष्ट्रपति रीगन (Reagon) और यूनाईटेड किंगडम के प्रधानमंत्री थैचर (Thacher) ने एक ऐसी उभरती हुई आर्थिक प्रबंधन के विचार का सृजन किया जिसके अन्तर्गत सरकार की भूमिका को सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण करके कम किया गया और विदेशी व्यापार, विनिवेश एवं पूँजी गहन उद्योगों पर सरकार द्वारा लगाये गये व्यापार अवरोध को कम किया गया। अर्थशास्त्र में इस खुली बाजार (open market) या "नव उदारीकरण" (Neo-liberal) के सिद्धान्त को वाशिंगटन सहमति (Washington Consensus) कहा है।

वाशिंगटन सहमति (Washington Consensus) का इतना प्रभाव था कि विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की आर्थिक विकास नीति को समर्थन करने के लिए वाशिंगटन सहमति की नीति को शर्त के रुप में अर्द्ध-विकसित देशों पर थोपा गया। इस सहमति का परिणाम बहुत ही बुरा रहा। स्वास्थ्य एवं शिक्षा पर सरकारी व्यय में कमी कर दी गयी। संस्थानों के द्वारा कृषि एवं नये उद्योगों को दिये जाने वाले समर्थन में कमी आ गयी और गरीब ग्राहकों की आवश्यकता जाने बगैर

ही उपयोगिता का निजीकरण कर दिया गया। फलस्वरुप विकसित देशों ने अन्तराष्ट्रीय व्यापार, विनिवेश में खुब लाभ कमाया परन्तु विश्व गरीबी समानान्तर विस्तार कर रहे विश्व में फँस गयी। विश्व विभाजन से घबड़ाकर विश्व नेताओं ने सहस्त्राब्दी विकास सम्बन्धी उद्देश्य (Millennium Development Goals) पर हस्ताक्षर किए जो गरीबी दर करने के नीतियों पर आधारित था। हालाँकि नव-उदारीकरण वाशिंगटन सहमति को गरीब देशों के लिए मना कर दिया गया परन्तु इसके जगह कोई आर्थिक विकास का प्रारुप नहीं तैयार किया गया।

भूमण्डलीकरण अपने आप में कोई खतरा का संकेत नहीं देता है। अगर अर्द्ध-विकसित देश आर्थिक विकास का कोई वैकल्पिक सतत् विकास प्रारुप तैयार कर ले तो भूमण्डलीकरण से ये लाभ अर्जित कर सकते है।

20.4 भूमण्डलीकरण और भारतीय कृषि

प्राचीन काल से ही भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कृषि को भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी कहा जाता है क्योंकि कृषि सभी क्षेत्रों के विकास का आधार है। भारत में आर्थिक नीति कृषि को ध्यान में रखकर ही बनायी जाती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्व इस बात से लगाया जा सकता है कि राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पादन में इसका योगदान 25 प्रतिशत है तथा भारतीय कृषि 52 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या का प्रत्यक्ष रुप से रोजगार प्रदान करने का स्रोत है। भारतीय कृषि देश के लोगों के लिए जीवन-निर्वाह का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश में जहाँ कार्यशील जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत भाग कृषि से आजीविका प्राप्त करता है और जनसंख्या का 70 प्रतिशत भाग गाँवों में रहता है। जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि है। ऐसी स्थिति में कृषि का विकास नितान्त आवश्यक हो जाता है। कृषि विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी देश की आर्थिक व्यवस्था में तकनीकी परिवर्तन या 'यंत्रीकरण ' के द्वारा ऐसे आधारभूत परिवर्तन किये जाते है, जिनके द्वारा देश के विभिन्न उद्योग जैसे कृषि एवं कृषि से संबन्धित उद्योग, निर्माण उद्योग, विनिर्माण उद्योग, सेवा उद्योग, परिवहन उद्योग का विकास होता है। इसके अतिरिक्त कृषि के विकास से देश में उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम उपयोग होता है तथा संतुलित एवं समावेशी विकास में मदद करता है। संबद्ध कार्यकलापों सहित कृषि का हिस्सा 2004-05 की कीमतों पर 2010-11 में 14.5 प्रतिशत की तुलना में 2011-12 में संकल घरेलू उत्पाद का 13.9 प्रतिशत था। संघटन के अर्थ में, 2010-11 में सकल घरेलू उत्पाद में 14.5 प्रतिशत के कुल हिस्से में से, अकेले कृषि का हिस्सा 12.3 प्रतिशत था, जिसके बाद 1.4 प्रतिशत पर वानिकी और लॉगिंग और 0.7 प्रतिशत मात्स्यिकी का हिस्सा था। सकल घरेलू उत्पाद में कृषि के हिस्से ह्रासित होती हुई प्रवृत्ति के बावजूद, अर्थव्यवस्था में इस क्षेत्र के महत्व को रोजगार

में इसके हिस्से के सन्दर्भ में और वृहत आर्थिक स्थायित्व के लिए इसकी महत्ता के अर्थों में बेहतर समझा जा सकता है। जबकि रोजगार में इस क्षेत्र के हिस्से की जानकारी पहले ही थी, वृहत आर्थिक स्थायित्व के लिए इसकी महत्ता 2000 के दशक के मध्य से आय में बढ़ोत्तरी होने से सुस्पष्ट हो गई। कृषि का विकास कृषि को मजबूत करता है और भूमण्डलीकरण के द्वारा उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने में मदद करता है। कृषि यंत्रीकरण से मात्र कृषि को ही लाभ नहीं प्राप्त होता बल्कि इससे उत्पन्न बेरोजगारी, अदृश्य बेरोजगारी दीर्घकालीन अवधि में समाप्त हो जाती है। अब आप सोच रहे होंगे कि कृषि यंत्रीकरण से उत्पन्न बेरोजगारी कैसे दूर हो जाती है। कृषि यंत्रीकरण से व्यावसायिक कृषि का विस्तार होता है। व्यावसायिक कृषि से तात्पर्य व्यावसायिक फसलें-तिलहन, कपास, गन्ना आदि के उत्पादन में वृद्धि से है। इन फसलों की पूर्ति में वृद्धि से किसान को धन तो मिलता ही है इसके साथ देश के उत्पादन में भी वृद्धि होती है। किसानों की आय में वृद्धि पूँजी निर्माण में सहयोग देती है जिससे नये व्यवसायों का जन्म होता है जो रोजगार का सृजन करते है।

भूमण्डलीकरण के दौरान अब कृषि मानसून पर निर्भर नहीं है, उसे सिंचाई के लिए नहर, ट्यूबवेल, कुएँ आदि की अच्छी सुविधाएँ उपलब्ध है। अधिक उत्पादन के लिए किसान देशी खाद पर निर्भर नहीं है बल्कि अब वह रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने लगा है। उसके वस्तु के लिए विश्व के सभी बाजार खुले हुए है। वह कहीं भी अपनी वस्तु को बेच सकता है।

उदारीकृत बाजार नीतियों के अंश के रुप में विभिन्न राज्यों में परस्पर अनाज के व्यापार को अनुमति देने से खाद्यान्न व्यापार को लाभ हुआ है। स्थानीय रुप से जब बाजार की मांग के मुताबिक उत्पादन नहीं होता तो इस तरह के प्रयासों से खाद्य आपूर्ति आसानी से बढ़ाई जा सकती है।

हाल के दिनों में सुपर बाजारों की बढ़ती संख्या ने शहरी क्षेत्रों के पास रहने वाले किसानों के लिये नये तरह के बाजार मुहैया कराने में वास्तव में बड़ी मदद की है। सब्जियों, फलों और पशुधन उत्पादों की बढ़ती मांगों ने भी चुनिंदा क्षेत्रों में फसलों में विविधता लाने में काफी मदद की है। ये क्षेत्र बाजारों के आस-पास खासतौर पर विकसित किए जाते हैं। इस तरह की संविदा कृषि प्रणाली ने किसानो को आवश्यक कृषि सामग्री समय पर उपलब्ध कराने और अपनी उपज को बाजार मूल्य से अधिक मूल्य पर बेचने में बड़ी मदद की है।

कुछ राज्यों ने शहरी और अर्द्धशहरी क्षेत्रों में सीधे अपनी उपज बेचने के लिये 'किसान बाजार ' के नाम से किसानों के लिये विशेष बाजार बनाए हैं। इस तरह की व्यवस्था ने बिचौलियों की भूमिका समाप्त कर दी है और इससे किसानों की आय में भी वृद्धि हुई है। तमिलनाडु

और आंध्र प्रदेश जैसे प्रगतिशील राज्यों ने किसान समुदायों के लिये इस तरह के बाजार विकसित कर किसानों के लिये उत्पादन का लाभ बढ़ा दिया है।

भूमण्डलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण का देश की अर्थव्यवस्था के कुछ क्षेत्रों पर तो सकारात्मक प्रभाव पड़ा है , परन्तु जहाँ तक कृषि क्षेत्र का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि आर्थिक सुधार कार्यक्रमों में कृषि क्षेत्र की प्रायः उपेक्षा की गयी है। 1990 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में कृषि विकास दर 4.7 प्रतिशत से घटकर दशक के अन्त तक 2.1 प्रतिशत रह गयी और वर्तमान में यह दर 1.5 प्रतिशत से 2 प्रतिशत के बीच बनी हुई है। वर्ष 2011-12 में अर्थव्यवस्था द्वारा 6.9 प्रतिशत की वृद्धि दर दर्ज करने की आशा है। क्षेत्रक स्तर पर, संवृद्धि के कृषि तथा संबद्ध क्षेत्रों के लिए 2.5 प्रतिशत होने का अनुमान है। कृषि वानिकी एवं मात्सियकी का सकल घरेलू उत्पादन में वर्ष 2005-06 में 5.1 प्रतिशत (2004-05 की कीमतों पर घटक लागत पर सकल घरेलू उत्पादन) की वृद्धि की गई थी जबकि वर्ष 2009-10 में अंतिम अनुमान के अनुसार यह घटकर 1.0 प्रतिशत हो गयी। त्वरित अनुमान के अनुसार वर्ष 2010-11 में 7.0 प्रतिशत थी। अग्रीम अनुमान के अनुसार यह वृद्धि घटकर 2011-12 में 2.5 प्रतिशत हो गयी है। इससे न केवल ग्रामीण क्षेत्र पर, बल्कि पूरे देश पर बहुत बड़ा बोझ आ पड़ा है। इसका एक सकारात्मक पहलू यह है कि भूमण्डलीकरण कृषि विकास को पुनर्जिवित कर देश के त्वरित और दीर्घकालिक आर्थिक विकास के लिए एक अच्छा अवसर प्रदान करता है।

20.4.1 भूमण्डलीकरण और हरित क्रान्ति का प्रभाव

भारत में हरित क्रान्ति का प्रभाव 1968 से हुआ डॉ0 एम. एस.स्वामीनाथन व नोरमोन ई. बोरलाग को हरित क्रान्ति का जनक माना जाता है, लेकिन इसका सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1968 में विलियम गाड द्वारा किया गया था। इसे आगत क्रान्ति (अर्थात् बीज, उर्वरक, सिंचाई) भी कहा जाता है। हरित क्रान्ति का अर्थ कृषि उत्पादन तकनीक सुधारने एवं कृषि उत्पादन मं वृद्धि करने से है। हरित क्रान्ति के फलस्वरुप गेहूँ और चावल की उत्पादकता और उत्पादन में जबरदस्त वृद्धि हुई। फलस्वरुप साठ और सत्तर के दशकों में खाद्यान्न के मामले में राष्ट्रीय स्तर पर आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सफलता मिली। इसके बाद भी पिछले दो दशकों से कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में कमी आई है। आंशिक रुप से यह नवाचार और अत्याधुनिक प्रौद्योगिकीय विकास को ठीक तरह से नहीं अपनाने और आंशिक रुप से श्रम की उत्पादकता में आए धीमेपन के कारण हुआ है। नब्बे के दशक में कृषि का विकास पिछड़ गया। अर्थव्यवस्था में ग्रामीण-शहरी हिस्से के रुप में संरचनात्मक परिवर्तन धीमा हो गया और ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में असमानता बढ़ गयी। आप को आश्चर्य हो रहा होगा कि जिस हरित क्रान्ति ने खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता दी उसी ने असमानता भी फैलायी क्योंकि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि रासायनिक खादों का अधिक उपयोग करने से हुई

थी जो आगे चलकर जैव विविधता को नुकसान पहुँचाई। इसके अलावा, विषैले कीट नाशकों के ज्यादा उपयोग के कारण पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर भी विपारीत प्रभाव पड़ रहा है। हरित क्रान्ति की प्रौद्योगिकीयों के कारण उत्पादकता में हुई वृद्धि से भूमि के मूल्यों में पर्याप्त वृद्धि हो गई, जिससे छोटी जोत वाले किसानों के लिए अपनी खेती में विस्तार हेतु जमीन खरीदना दुःसाध्य हो गया।

1980 के दशक के शुरु से ही सिंचाई पर सार्वजनिक निवेश कम होता गया। आर्थिक सुधारों के बाद से शुरु के दशक से कृषि जनित मुनाफें में 14.2 प्रतिशत की गिरावट आई। नब्बे के दशक का पूर्वाद्ध कृषि व्यवसाय के विस्फोटक विकास का युग था। निर्यात की तुलना में आयात में अधिक वृद्धि हुई। उत्तरार्द्ध में आयात में वृद्धि तो बनी रहीं, निर्यात चरमरा गया।

भारतीय अर्थव्यवस्था के भूमण्डलीकरण के उपरान्त कृषि सकल घरेलू उत्पादन का वृद्धि दर 1981-82 और 1996-97 में 3.5 प्रतिशत था जो 1997-98 एवं 2004-05 में गिरकर मात्र 2 प्रतिशत रह गया जिसे तालिका 1 में दिखाया गया है।

तालिका 1 कृषि एवं संबन्धित क्षेत्र की वृद्धि दर (प्रतिशत प्रति वर्ष 1999-2000 की कीमत पर)

अवधि	कुल अर्थव्यवस्था	कृषि तथा संबन्धित क्षेत्र	फसल और पशुधन
1.हरित क्रान्ति)1951-52 से 1967-68)	3.69	2.54	2.65
2.हरित क्रान्ति)1968-69 से 1980-81)	3.52	2.44	2.72
3.आर्थिक सुधार अवधि)1991-92 से 1996-97)	5.69	3.66	3.68
4.नौवीं पंचवर्षीय योजना)1997-98 से 2001-02)	5.52	2.50	2.49
5.दसवीं पंचवर्षीय योजना)2002-03 से 2006-07)	7.77	2.47	2.51
(जिसका 2002-03 से 2004-05)	6.60	0.89	0.89
(2005-06 से 2006-07)	9.51	4.84	4.96

स्रोतः 11वीं पंचवर्षीय योजना 2007-12, vol. III,भारत सरकार

सकल घरेलू उत्पादन एवं संबंधित क्षेत्रों का वृद्धि दर नौवी एवं दसवीं पंचवर्षीय योजना के 4 प्रतिशत लक्ष्य से कम हैं। वास्तव में दसवीं पंचवर्षीय योजना के पहले तीन वर्ष में औसत कृषि वृद्धि दर 1 प्रतिशत से भी कम हुई। हालाँकि अगले दो साल में (2005-06 से 2006-07) में कृषि का

औसत वृद्धि दर 4 प्रतिशत हो गई। 11वीं पंचवर्षीय योजना में कृषि का औसत वार्षिक दर 4 प्रतिशत रखा गया है।

स्पष्टतया आर्थिक सुधार एवं भूमण्डलीकरण के लाभ में कृषि क्षेत्र के विकास पर ध्यान नहीं दिया गया तथा यह क्षेत्र प्रायः उपेक्षित रहा। हाँलाकि बजट 2012-13 में वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी जी ने पहली बार कृषि क्षेत्र पर समुचित ध्यान दिया है। इस बजट में कृषि कर्ज वितरण के लक्ष्य को एक लाख करोड़ रुपये बढ़ाकर पौने छः लाख करोड़ रुपये और नाबार्ड के लिए दस हजार करोड़ रुपये देने की घोषणा विशेष रुप से महत्वपूर्ण है। पूर्वोत्तर क्षेत्र में कृषि की दशा सुधारने के लिए दूसरी हरित क्रान्ति योजना के तहत आवंटन चार सौ करोड़ रुपये बढ़ाकर एक हजार करोड़ रुपये किया जा रहा है। इसके क्रियान्यवन से कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ गुणवत्ता में भी वृद्धि होगी।

20.4.2 कृषि आयात एवं निर्यात

भारत के कृषिगत आयात में प्राथमिक एवं प्रसंस्कृत वस्तृएँ सम्मिलित है। निर्यात के समस्त वस्तुओं को 6 वर्गों में विभक्त किया जाता है।

1. व्यापारिक फसलें- जिनमें प्याज, लहसुन, तम्बाकू, आलू, चावल, मूँगफली, कपास, ताजी सब्जियाँ और मसाले मुख्य है।
2. बगानी फसलें- इस फसल में मुख्य रुप से चाय, रबर, काफी और छोटी इलाइची को सम्मिलित किया जाता है।
3. पशुजन्य उत्पाद- इसमें पशुओं के मांस मुख्यतः भेड़ और बकरियों के मांस, अण्डे, दुग्ध इत्यादि शामिल किये जाते है।
4. मछली एवं समुद्री उत्पाद।
5. बनोपज में चंदन, लाख इमारती लकड़ी, रेलवे स्लीपर, बीड़ी की पत्तियाँ, गोंद एवं रेजिन इत्यादि सम्मिलित है।
6. संसाधित या प्रसंस्कृत कृषि वस्तुएँ- इस वर्ग में मुख्य रुप से मक्खन, घी, आम का रस, चीनी चिकने तेल, सिगरेट, मूँगफली का तेल बिस्कुट आदि को सम्मिलित किया जाता है। देश के निर्यात संरचना में कृषि और हस्तशिल्प आधारित वस्तुओं का प्रमुख योगदान है।

नियोजन की अवधि में भारत की आयात की मात्रा बढ़ी है और व्यापार की संरचना में परिवर्तन आया है हरित क्रान्ति के पूर्व मुख्य जोर खाद्यानों जैसे - गेहूँ और चावल पर था परन्तु हरित क्रान्ति के बाद प्रसंस्कृत खाद्य वस्तुओं और अन्य माध्यमिक वस्तुओं का आयात अधिक हुआ। हरित क्रान्ति के पश्चात प्राविधिक परिवर्तनों के कारण कृषि उत्पादकता में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

परिणामतः भारत अनाज, फल, सब्जियाँ और समुद्री उत्पादक के निर्यात के रुप में उभरा है। परन्तु मशीनरी और उर्वरकों का भारी मात्रा में आयात किया जाने लगा है।

भूमण्डलीकरण के दौरान भारत के विदेशी व्यापार में काफी तेजी से वृद्धि हुआ है। भारत का कुल व्यापार 1991-93 में $46 बिलियन था जो 2009-10 में $465 बिलियन हो गया इस अवधि में निर्यात और आयात में ($में) 13 प्रतिशत और 14 प्रतिशत प्रति वर्ष क्रमशः की वृद्धि दर्ज की गयी। परिणामतः 2009-10 में निर्यात $179 बिलियन पहुँच गया और आयात $287 बिलियन पहुँच गया।

भारतीय कृषि व्यापार में भी तीव्र गति से वृद्धि दर्ज हुई। 1990-2009 की अवधि में आयात में प्रतिवर्ष 16 प्रतिशत ($में) की वृद्धि हुई तथा निर्यात में 12 प्रतिशत प्रति वर्ष की वृद्धि हुई। कुल कृषि आयात एवं निर्यात 2009-10 में $11.0 बिलियन एवं $15.9 बिलियन क्रमशः पहुँच गया। भारत विश्व में कृषि उत्पादों के 15 अग्रणी निर्यातकों में से है। विश्व व्यापार संगठन द्वारा प्रकाशित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सांख्यिकी 2011 के अनुसार भारत के कृषि निर्यात 23.2 बिलियन अमरिकी डालर है और यह 2010 में कृषि में विश्व व्यापार का 1.7 प्रतिशत है। दूसरी ओर भारत का कृषि आयात 17.5 बिलियन अमरिकी डालर है जो 2010 में विश्व व्यापार का 1.2 प्रतिशत हिस्सा है।

20.5 बहुराष्ट्रीय निगम तथा भारतीय कृषि-

भूमण्डलीकरण भारत की आर्थिक नीति का एक मुख्य अंग है। इस नीति के दो प्रमुख उद्देश्य है-

1. भारतीय अर्थव्यवस्था के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विदेशी पूँजी का निवेश, तथा
2. भारत के विदेशी व्यापार को अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (World Trade Organisation)के नियमों के अनुसार नियमित करना।

कृषि में विदेशी पूँजी के निवेश को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है-

1. कृषि उत्पादन की प्रक्रिया से पहले का चरण
2. फसलों के उत्पादन का चरण
3. फसलों की कटाई के पश्चात् का चरण

1.कृषि उत्पादन की प्रक्रिया से पहले का चरण

इस चरण में कृषि के आगतों का निर्माण तथा आधारिक संरचना (infrastructure) के घटक (बिजली तथा सड़क निर्माण) एवं विकास की प्रक्रिया शामिल है। यहाँ पर आप को बताते चले कि

कृषि आगत किसे कहते है। कृषि आगत का तात्पर्य कृषि के उत्पादन में सम्मिलित पदार्थ एवं उपकरणों से है। 1960-70 के दशक के मध्य के पश्चात् भारत में पारम्परिक कृषि व्यवहारों का प्रतिस्थापन आधुनिक तकनीक एवं फार्म व्यवहारों से किया जा रहा है। पारम्परिक कृषि देशी आगतों पर निर्भर करती है। इसमें कार्बनिक खादों, साधारण हलों एवं अन्य पुराने कृषि औजारें एवं बैलों का प्रयोग होता है। इसके विपरीत आधुनिक कृषि तकनीक में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक दवाईयों, उन्नतशील बीजों, कृषि मशीनरी, विस्तृत सिंचाई, डीजल एवं विद्युत शक्ति आदि का प्रयोग सम्मिलित है। कृषि उत्पादन की प्रक्रिया से पहले के चरण में बहुराष्ट्रीय निगम के पूँजी निवेश की संभावना बहुत ही सीमित होती है। इसके कारण निम्नलिखित है ।

i. बहुराष्ट्रीय निगम लाभ कमाने के उद्देश्य से काम करते है। बीज अनुसंधान क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ लाभ की कोई निश्चितता नहीं होती।
ii. विदेशी कम्पनियाँ सड़कों तथा बिजली के निर्माण में दो प्रकार से योगदान दे सकती है। या तो वे सड़कों को तथा बिजली के कारखानों को अपने ही साधनो से बना दे तथा उन्हें एक निश्चित अवधि के लिए, सड़क का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों तथा वाहनों से Toll tax जंग इकट्ठा करने की अनुमति प्रदान कर दी जाय। इस प्रकार से वह बिजली एवं सड़क को एक निश्चित अवधि के समाप्त होने पर कम्पनी सड़क या बिजली के कारखानों को सरकार के हवाले कर देगी तथा सरकार, कम्पनी को करार में लिखे गये शर्त के अनुसार, सड़क के निर्माण या बिजली के कारखानों की स्थापना पर आने वाली लागत का मुआवजा दे देगी। इस तरीके के निवेश को बनाओ, चलाओं तथा जाओ (Build, Operate & Transfer- BOT) तरीका कहते है। यह विदेशी पूँजी का वास्तविक निवेश नहीं है। अन्त में इसे सरकार द्वारा या फिर किसी अन्य भारतीय संस्था द्वारा ही निवेश माना जायेगा।

2.फसलों के उत्पादन का चरण

विदेशी पूँजी के निवेश की दृष्टि से फसलों के उत्पादन के लिए, विदेशी कम्पनियों की कोई भूमिका नहीं है, क्योंकि

i. कृषि योग्य भूमि कृषि के अधीन आ चुकी है। ऐसी स्थिति में कृषि योग्य भूमि का बड़ा टुकड़ा खरीदना बहुत ही कठिन होगा।
ii. विदेशी कम्पनियों को भारत में भूमि खरीदने की आज्ञा नहीं है।

आप सभी को मालूम होगा कि फसलों के उत्पादन के पश्चात् फसलों की कटाई होती है तथा उत्पादन को बाजार में बेचा जाता है। तो अब हम आप को बताते है कि क्या विदेशी कम्पनी को फसलों की कटाई के पश्चात् पूँजी निवेश करने की कोई सम्भावना बन पाएगी? इसी को हम तीसरे और अन्तिम चरण में देखेंगे।

3. **फसलों की कटाई के पश्चात् का चरण**

इस चरण में मुख्यतया कृषि उत्पादन को मण्डी में ले जाकर बेचना फसलों तथा सब्जियों के संसाधित (Processing) प्रक्रिया शामिल है । जिसे कृषि प्रसंस्करण (Agricultural Processing) कहते हैं। कृषि नीति के अन्तर्गत कृषि प्रसंस्करण उद्योग की विकसित करने का उद्देश्य रखा गया है। बहुराष्ट्रीय निगम कृषि प्रसंस्करण उद्योग (Agri- Processing Industry) में अपनी पूँजी का निवेश कर सकती है क्योंकि भारत सरकार, फलों तथा सब्जियों के संसाधित (Processing) उद्योगों के विकास को महत्व दे रही है। इसी वजह से इस उद्योग के विकास के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों की पूँजी को आकर्षित कर रही है। इसके निम्नलिखित कारण है।

i. कृषि प्रसंस्करण उद्योग रोजगार का सृजन करता है। भूमण्डलीकरण के दौरान भारत की जनता के खान-पान के सम्मिश्रण (consumption pattern) में विविधीकरण (diversification) हो रहा है। उसके खाने-पीने में दूध, मांस, सब्जियाँ तथा फसलों से बने उत्पादों का अनुपात बढ़ता जा रहा है। शहरों में महिलाओं की नौकरी करने की बढ़ती प्रवृत्ति तथा सरकार की वैश्वीकरण की नीति भी लोगों के खान-पान में विविधता ला रही है।
ii. फलों एवं सब्जियों के प्रसंस्करण से किसान एवं व्यापारियों को इन पदार्थों के गले-सड़े से निजात मिली है।
iii. इससे नयी टैक्नीलाजी (प्रविधी) का विकास होगा।
iv. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादन को बेचकर विदेशी मुद्रा की प्राप्यता में वृद्धि होगी।
v. विदेशी कम्पनियों के काम करने से कृषि सम्बन्धी उद्योगों का विकास होगा, जिससे आय में वृद्धि होगी। इसके अतिरिक्त उत्पादों की गुणवत्ता (quality) तथा प्रवीणता (efficieiency) में सुधार होगा।

20.6 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन तथा भारतीय कृषि

इससे पहले आपने देखा कि भूमण्डलीकरण के नीति का पालन करते हुए भारत सरकार ने बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अपने देश में पूँजी निवेश की छूट कृषि सहित सभी क्षेत्रों में दे रखी है। भूमण्डलीकरण का एक दूसरा पहलू भी है, क्या आप बता सकते है ? इसका दूसरा पहलू है- अन्य देशों की भिन्न-भिन्न उत्पादों को, देश में बिकने की खुली छूट देना ताकि भूमण्डलीकरण की नीतियों का सभी देश सामान रुप से लाभ उठा सकें। इसके अतिरिक्त आयात एवं निर्यात के बारे में न्याय संगत नियमों को बनाने तथा इन्हें कार्यरुप प्रदान करने के लिए अन्तराष्ट्रीय व्यापार संगठन (World Trade Organisation) को अस्तित्व में लाया गया।

विश्व में मुक्त व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए सबसे पहला प्रत्यक्ष कदम 1947 में उठाया गया था, जब ब्रेटन वुड समझौते के फलस्वरुप 1947 में प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी सामान्य करार गैट (General Agreement on Tariffs and Trade-GATT) की स्थापना की गयी। गैट को 1995 में समाप्त कर विश्व व्यापार संगठन में शामिल कर दिया गया और इसी वर्ष में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना को मंजूरी दे दी गई। उरुगवे दौर (Uruguay Round) के गैट विचार विमर्श 15 अप्रैल, 1994 को माराकेश (Marrakech) (मोरक्को) में समाप्त हो गये। यूरोपीय संघ देशों के अतिरिक्त भारत तथा 123 देशों के मंत्रियों ने अन्तिम विधि पर हस्ताक्षर किए जिसमें बहुपक्षीय व्यापार विमर्शों का आठवां दौर शामिल था। अंतिम एक्ट में निम्नलिखित विचार-विमर्श और नियम बनाये गये।

1. विश्व व्यापार संगठन समझौता, जिसमें इस संस्था की स्थापना और उसकी कार्य प्रणाली के नियम।
2. मंत्री स्तरीय निर्णय और घोषणाएँ- जिसमें महत्वपूर्ण समझौते, वस्तुओं, सेवाओं और बौद्धिक सम्पत्ति में व्यापार तथा बहुपार्शिवक (plurilateral) व्यापार सम्मिलित है।
3. इस नई व्यवस्था में 'गैट' में पहले से शामिल मुद्दों में पेटेंट, कृषि, निवेश, सेवाएँ आदि विषय भी जोड़ दिये गये। इसी व्यवस्था को विश्व व्यापार संगठन का नाम दिया गया। कहा गया कि यह नियम आधारित अन्तराष्ट्रीय व्यापार की व्यवस्था है।
4. इसमें झगड़ा निपटान संबंधी नियम और व्यापारिक नीति का पुनरावलोकन तंत्र भी शामिल है। वास्तव में विश्व व्यापार संगठन समझौता उरुगवे समझौता ही है।

इन समझौतों का उद्देश्य कृषि व्यापार में मात्रात्मक प्रतिबंधों को प्रशुल्कों से प्रतिस्थापित करना, प्रशुल्कों में कमी करना और घरेलू कृषि व्यापार को अन्य देशों के कृषि निर्यातों के लिए खोलना है। विश्व व्यापार संगठन का कृषि पर समझौता प्रावधान लागू होने से कृषि व्यापार नीति में उदारीकरण की एक नवीन व्यवस्था का सुत्रपात हुआ।

हर दो साल बाद डब्ल्यू टी ओ (WTO) में मंत्री स्तरीय सम्मेलन का प्रावधान है। अभी तक विश्व व्यापार संगठन में छः मंत्रीस्तरीय सम्मेलन हो चुके है। सिएटल के तीसरे मंत्रीस्तरीय सम्मेलन के शुरु होते ही विरोध प्रदर्शनों ने हिंसक रुप ले लिया और अंततः सिएटल सम्मेलन को रद्द करना पड़ा। उसके बाद दोहा में मंत्रीस्तरीय सम्मेलन में भारत सहित विभिन्न विकासशील देशों ने विश्व व्यापार संगठन के पूर्व में हुए समझौते के दुष्प्रभावों पर खुलकर चर्चा करनी शुरु की। विकसित देशों की यह माँग थी कि व्यापार समझौतों में श्रम एवं पर्यावरण सरीखे मुद्दों को शामिल किया जाए। विकासशील देशों ने इन माँगों को स्वीकार तो नहीं किया, उन्होंने माँग भी की कि विकसित देश अपनी कृषि को दी जाने वाली परिदान (subsidy) कम करें, ताकि विकासशील देशों को अपने कृषि उत्पादों की विकसित देशों में बेचने का अवसर मिले और प्रतिस्पर्द्धा न्याय संगत हो। 2005 के हांगकांग सम्मेलन के बाद कोई मंत्रीस्तरीय सम्मेलन नहीं हो सका। इस बीच छोटे सम्मेलन अवश्य हुए परन्तु गतिरोध बना रहा, क्या आप बता पायेंगे कि क्यों गतिरोध बना हुआ है। आखिर क्या है गतिरोध का कारण? दरअसल विकसित देशों के दबाव के कारण विकासशील देशों के पेटेंट कानूनों को बदल दिया गया। लेकिन विकसित देशों ने अपना वायदा नहीं निभाया। विकसित देशों अपनी कृषि परिदान (subsidy) घटाने के बजाय चार गुना बढ़ा दिया। इसके अलावा इन देशों ने अपनी तीन-चौथाई से भी अधिक परिदान (subsidy) को ग्रीन बाक्स में डाल दिया, जिसे कम करने की उन्हें कोई बाध्यता नहीं होगी। भारत समेत सभी विकासशील देशों में कृषि की बदहाली का मुख्य कारण विश्व व्यापार संगठन ही है। भारी सबसिडी के चलते सरसों, कपास के आयात उपज का सही मूल्य प्राप्त नहीं कर पाता। इसी प्रकार, दालों और तिलहन का उत्पादन भी कम होता जा रहा है, क्योंकि सस्ते खाद्य तेल आयात हो रहे है। इन सबके चलते देश की खाद्य सुरक्षा खतरे में है। इन सबके अलावा विकसित देश अपनी कृषि सबसिडी घटाना तो दूर उल्टे यह मांग कर रहे है कि भारत सरीखे विकासशील देश कृषि वस्तुओं पर आयात शुल्क शुन्य कर दे, ताकि विकसित देश के कृषि उत्पादों को विकासशील देशों का बाजार मिल जाए।

विश्व व्यापार संगठन अपने नियमों का पालन एवं निष्पक्ष होकर काम करे तो विकसित देशों के साथ-साथ विकासशील देशों का भी विकास होता है। W.T.O. के स्थापित हो जाने के परिणामस्वरुप जहाँ एक ओर भारत के कृषि उत्पादों को अन्तराष्ट्रीय बाजार में बिकने का अवसर

मिला है वहीं इनकी गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है। अर्थशास्त्रीयों का मानना है कि विश्व व्यापार संगठन की देख-रेख में किए जान वाले अन्तराष्ट्रीय व्यापार से भारत को लाभ पहुँचाने की संभावना है।

20.7 अभ्यास प्रश्न-

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) भूमण्डलीकरण नीति के प्रमुख उद्देश्य बताइए।

(ख) भूमण्डलीकरण से क्या तात्पर्य है?

(ग) यू-टर्न नीति क्या है?

(घ) बहुराष्ट्रीय निगम से आप क्या समझते है?

(ङ) पिछले दो दशकों में कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में कमी के मुख्य

कारण बताइए।2. सत्य/असत्य बताइये-

(क) भारत W.T.O. का संस्थापक देशों में से नहीं है।

(ख) भारत में नई आर्थिक नीति 1991 से लागू की गई।

(ग) भारत में हरित क्रान्ति का प्रारम्भ 1968 में हुआ।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न-

I. नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत शामिल है।

(अ) निजीकरण (ब) उदारीकरण

(स) वैश्वीकरण (द) उपर्युक्त सभी।

II. उदारीकरण से आशय है-

(अ) देश की आर्थिक नीतियों को लचीला बनाना।

(ब) आयात एवं निर्यात से।

(स) विश्व व्यापार को बढ़ावा देना।

(द) लोक उपक्रम के क्षेत्रों के योगदान को कम करना।

III. भूमण्डलीकरण से तात्पर्य-

(अ) विश्व व्यापार को बढ़ावा देना।

(ब) देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण से।

(स) निजीकरण से। (द) उपर्युक्त सभी।

IV. कृषि आगत में सम्मिलित है-

(अ) पदार्थ एवं उपकरण (ब) बीज एवं उर्वरक

(स) सिंचाई (द) उपर्युक्त सभी।

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न -

(क) हरित क्रान्ति का सर्वप्रथम किसने प्रयोग किया था ?

(ख) नई आर्थिक नीति किसे कहते है ?

(ग) विश्व व्यापार संगठन की स्थापना कब हुई थी ?

(घ) खाद्य सुरक्षा से आप क्या समझते है ?

5. रिक्त स्थान भरिए-

(क) .... और................ को हरित क्रान्ति का जनक माना जाता है।

(ख) विश्व व्यापार संगठन का उद्देश्य .... को प्रोत्साहित करना है।

(ग) राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का योगदान ....प्रतिशत है।

20.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि भूमण्डलीकरण को ही विश्वव्यापीकरण कहते हैं। भारत को 1992 की आर्थिक संकट से उबारने के लिए उदारीकरण निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण की नीति अपनाई गयी। भूमण्डलीकरण के दौर में कृषि अब मानसून पर निर्भर नहीं है। कृषि में आधुनिक तकनीकी, उन्नतशील बीज का प्रयोग किया जा रहा है। आज सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है। इसके बावजूद भी कृषि क्षेत्र को भूमण्डलीकरण को उतना लाभ नहीं मिला है जितना कि औद्योगिक क्षेत्र को प्राप्त हुआ है। विश्व व्यापार संगठन में कृषि पर दी जाने वाली परिदान को लेकर अभी भी गतिरोध बना हुआ है। विकसित देशों ने परिदान घटाने के बजाय बढ़ा दिये तथा इसका तीन-चौथाई भाग ग्रीन बाक्स में डाल दिए है।

20.9 शब्दावली

- उदारीकरण: अर्थव्यवस्था को अनावश्यक प्रतिबन्धों से मुक्त करके अधिक प्रतियोगी बनाना है। आर्थिक उदारीकरण का अर्थ है- उद्योग एवं व्यापार संबन्धी आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता।

- निजीकरण: निजीकरण एक ऐसी सामान्य प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सरकारी व सार्वजनिक उद्यमों के संचालन, स्वामित्व और नियंत्रण में निजी क्षेत्र की भूमिका में उत्तरोत्तर वृद्धि करने से है।
- भूमण्डलीकरण: भूमण्डलीकरण से तात्पर्य देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अन्य अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किए जाने से है।
- यू-टर्न (**U-Turn**): यू-टर्न से आशय अपनाई गई नीतियों का पहले से अपनाई गई नीतियों से बिल्कुल विपरीत होना है।
- तकनीकी परिवर्तन: हल व बैल के स्थान पर ट्रैक्टर तथा अन्य आधुनिक उपकरणों का प्रयोग ही तकनीकी परिवर्तन है।
- समावेशी विकास: समाज के सभी वर्गों का विकास या आर्थिक विकास व लाभ में समाज के सभी वर्गों की सहभागिता की समावेशी विकास कहते है।
- कृषि प्रसंस्करण: फसलों तथा सब्जियों के संसाधित प्रक्रिया को कृषि प्रसंस्करण कहते हैं।
- ग्रीन बाक्स: कृषि पर दी जाने वाली परिदान (subsidy) को ग्रीन बाक्स कहते हैं।

20.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1- (क) भूमण्डलीकरण का प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है-

1.विश्व की अर्थव्यवस्था का एकीकरण करना।

2.वस्तुएँ, सेवाएँ, पूँजी, टेक्नोलॉजी का विभिन्न देशों में बेरोकटोक स्वतंत्र रुप से प्रवाह हो सके।

3.ऐसा वातावरण कायम करना जिसमें विश्व के विभिन्न देशों में श्रम का निर्बाध प्रवाह हो सके।

(ख) भूमण्डलीकरण से तात्पर्य देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने से है। अर्थात् भूमण्डलीकरण के अन्तर्गत आर्थिक क्रियाओं का राष्ट्रीय सीमा से आगे विस्तार किया जाता है।

(ग) उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण नीति को ही नयी आर्थिक नीति अथवा यू-टर्न नीति (U-Turn Policy) कहा गया है।

(घ) बहुराष्ट्रीय निगम ऐसे विशाल फर्में होती हैं जिनका प्रधान कार्यालय तो एक देश में स्थित होता है, परन्तु इनका व्यवसाय एवं कारोबार अपने जन्म स्थान के अतिरिक्त अन्य देशों में भी फैला होता है। इन्हें राष्ट्र-पारीय निगम (Transnational Corporation)भी कहा जाता है।

(ङ) पिछले दो दशकों से कृषि क्षेत्र की उत्पादकता में कमी का मुख्य कारण निम्नलिखित है-

- आंशिक रुप से नवाचार और अत्याधुनिक प्रौद्योगिकीय विकास को ठीक तरह से नहीं अपनाना।
- आंशिक रुप से श्रम की उत्पादकता में कमी।
- ग्रामीण व शहरी हिस्सों में संरचनात्मक परिवर्तन का धीमा होना तथा असमानता में वृद्धि।

2- (क) असत्य।(ख) सत्य। (ग) सत्य।

3- (क) द। (ख) अ। (ग) ब।(घ) द।

4-(क) हरित क्रान्ति का सर्वप्रथम प्रयोग सन् 1968 में विलियम गाड द्वारा किया गया था। जबकि डॉ0 एम. एस. स्वामीनाथन व नोरमोन ई. बोरलाग को हरित क्रान्ति का जनक माना जाता है।

(ख) नई आर्थिक नीति से अभिप्राय अर्थव्यवस्था को उदारीकरण की परिधि में लाकर उसे प्रतियोगी बनाना तथा उत्पादकता और कुशलता में वृद्धि करना है।

(ग) विश्व व्यापार संगठन की स्थापना 1995 में हुई थी।

(घ) खाद्य सुरक्षा से तात्पर्य सभी व्यक्तियों के लिए खाद्य की भौतिक उपलब्धि एवं पहुँच (food availability and accessibility) तथा खाद्य को खरीदने के लिए पर्याप्त क्रय शक्ति से है। इस परिभाषा के अन्तर्गत भौतिक उपलब्धि के साथ-साथ खाद्य गुणवत्ता भी शामिल किया जाता है।

5- (क) डॉ0 एम. एस. स्वामीनाथन और नोरमोन ई. बोरलाग।(ख) मुक्त व्यापार।

(ग) 25 प्रतिशत।

20.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिन्हा, डॉ0 वी.सी. डॉ0 पुष्पा (2011-12), ‘‘अर्थशास्त्र ’’, एस.बी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा, पृ0 339
2. पन्त, डॉ0 जे.सी.यमिश्रा, डॉ0 जे.पी., (2010), ‘‘भारतीय आर्थिक समस्याएँ ’’, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 266
3. मिश्र, डॉ0 जे.पी., (2009), ‘‘कृषि अर्थशास्त्र ’’, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 518
4. सोनी, आर.एन. (2008-09), ‘‘कृषि अर्थशास्त्र के मुख्य विषय ’’, विशाल पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, पृ0 548
5. त्रिपाठी, बद्री विशाल, ‘‘आर्थिक सुधार एवं कृषि व्यापार नीति ’’, योजना वर्ष 50 अंक 5, अगस्त 2006, पृ0 35
6. सुरेश चन्द्रर बाबू ,‘‘आर्थिक सुधारों के दौर में कृषि ’’,योजना वर्ष 50 अंक 5, अगस्त 2006, पृ050
7. आर्थिक समीक्षा (2011-12), भारत सरकार, पृ0 4,9,186

8. शर्मा, देविदार (2012), ‘‘पहली बार कृषि क्षेत्र पर समुचित ध्यान ’’, दैनिक जागरण, वाराणसी, मार्च 17, पृ013

20.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- भारतीय अर्थव्यवस्था (2009-10), एस.एस. पब्लिकेशन्स (समसामयिक घटनासार), इलाहाबाद
- शर्मा, ओ.पी. (1999), ‘‘भारत में नियोजित विकास और आर्थिक उदारीकरण ’’, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर
- पाल, राजेश (2009), ‘‘इण्डियन बैंकिंग एण्ड ग्लोबलाइजेशन ’’, अध्ययन पब्लिशर्स, नयी दिल्ली

20.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भूमण्डलीकरण के दौरान कृषि को प्रभावित करने वाले कारकों को समझाएँ ?
2. हरित क्रान्ति से क्या आशय है? भूमण्डलीकरण के दौरान इसके प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
3. बहुराष्ट्रीय निगम के उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए तथा ये किस क्षेत्र में निवेश करना चाहते है और क्यों? इसकी व्याख्या कीजिए।
4. विश्व व्यापार संगठन में गतिरोध का क्या कारण है? इसकी व्याख्या कीजिए।
5. भूमण्डलीकरण कृषि विकास को पुनिर्जिवित कर देश के त्वरित और दीर्घकालिक आर्थिक विकास के लिए अवसर प्रदान करता है। इसकी चर्चा कीजिए।

इकाई 21: विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन

इकाई संरचना

21.1 प्रस्तावना
21.2 उद्देश्य
21.3 विदेशी व्यापार का महत्त्व
21.4 स्वतंत्रता के उपरान्त भारत का विदेशी व्यापार
21.5 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना या स्वरूप
21.6 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा
21.7 भुगतान संतुलन
21.8 व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में अन्तर
21.9 क्या भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है?
21.10 भुगतान संतुलन में असाम्य के प्रकार एवं कारण
21.11 प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के उपाय
21.12 अभ्यास प्रश्न
21.13 सारांश
21.14 शब्दावली
21.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
21.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
21.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री?
21.18 निबन्धात्मक प्रश्न

21.1 प्रस्तावना

भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्थ से सम्बन्धित यह इक्कीसवीं ईकाई है। इससे पहले की इकाई में आप भूमण्डलीकरण एवं भारतीय कृषि के बारे में ज्ञान प्राप्त किया।

प्रस्तुत इकाई में विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन एवं व्यापार संतुलन के बारे मे विस्तार से चर्चा किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद भारत के विदेशी व्यापार की संरचना और दिशा को समझा सकेंगें। इसके अतिरिक्त भुगतान संतुलन और व्यापार संतुलन में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगें तथा प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के उपाय बता सकेंगें।

21.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेगे कि:

- विदेशी व्यापार से क्या तात्पर्य है ?
- आयात एवं निर्यात की संरचना क्या होती है ?
- चालू खाता एवं पूँजी खाता में क्या अन्तर है ?
- भुगतान संतुलन में असाम्य के क्या कारण है ?

21.3 विदेशी व्यापार का महत्व

विदेशी व्यापार का अर्थ विश्व के अन्य देशों के साथ व्यापार करने से है। किसी देश की अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार का महत्वपूर्ण स्थान होता है। विदेशी व्यापार का महत्व निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट है।

1. प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग होता है।
2. आधिक्य या अधिशेष का निर्यात कर सकता है।
3. आधुनिक प्रविधि का आयात-निर्यात कर सकता है।
4. निर्मित व कच्चे माल का आयात व निर्यात कर सकता है।

5. निर्यात से भारत को विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है।

6. विश्व के अन्य देशों के साथ आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धों में सुधार होता है।

21.4 स्वतंत्रता के उपरान्त भारत का विदेशी व्यापार

स्वतंत्रता के पश्चात् नियोजित आर्थिक विकास हेतु किए गए प्रयासों के तारतम्य में देश के विदेशी व्यापार की मात्रा, निर्यात की जाने वाली वस्तुओं की संख्या तथा उनकी गुणवत्ता में सुधार कर निर्यात को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया गया तथा आयात को नियंत्रित किया गया। भारत के विदेशी व्यापार एवं उसके बदलते स्वरूप को प्रतिबिम्बित करने वाले आयात एवं निर्यात को निम्न सारिणी में प्रदर्शित किया जा सकता है:

सारणी 21.1: भारत का विदेशी व्यापार (रूपया करोड़ में)

योजना वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार संतुलन	परिवर्तत की दर (प्रतिशत में)	
				निर्यात	आयात
1950-51	606	608	−2	24.9	−1.5
1960-61	642	1122	−480	0.3	16.8
1970-71	1535	1634	−99	8.6	3.3
1972-73	1971	1867	104	22.6	2.3
1976-77	5142	5074	68	27.4	−3.6
1980-81	6711	12549	−5838	4.6	37.3
1990-91	32553	43198	−10645	17.7	22.3
2000-2001	203571	230873	-27302	27.6	7.3
2008-09	840755	1374436	-533680	28.2	35.8
2009-10	845534	1363736	-518202	0.6	-0.8

Source: Economic Survey (2010-11), Government of India

सारणी 21.1 से स्पष्ट है कि विदेशी व्यापार में पर्याप्त वृद्धि होने के साथ-साथ इसके व्यापार संतुलन में घाटा भी निरन्तर बढ़ता गया है। भारत का व्यापार शेष (संतुलन) वर्ष 1972-73 और 1976-77 में इसके अनुकूल रहा है, शेष वर्षों में इसके प्रतिकूल रहा है। खाद्यान्न संकट और विकास की

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए देश में आयात बढ़ता गया और साथ में निर्यात में भी वृद्धि का प्रयास होता रहा। परन्तु निर्यात की तुलना में आयात में ज्यादा वृद्धि हुई। 1960-61 में निर्यात में 0.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी जबकि आयात में 16.8 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गयी। अगर आप जानना चाहते है कि 1972-73 एवं 1976-77 में व्यापार शेष अनुकूल कैसे हो गया। इसका उत्तर सारणी 21.1 से स्पष्ट है। सारणी 21.1 को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि 1972-73 में जहाँ निर्यात में 22.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई है वहीं आयात की मात्रा में 2.3 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई जबकि 1976-77 में पिछले वर्ष की तुलना में आयात में नकारात्मक वृद्धि हुई है। 1972-73 और 1976-77 में निर्यात की मात्रा आयात से ज्यादा होने के कारण भारत का व्यापार शेष अनुकूल रहा है। वर्ष 2009-10 में भारत का निर्यात रू0 845534 करोड़ है, जबकि आयात रू0 1363736 करोड़ है। आयात अधिक होने से व्यापार संतुलन इसके प्रतिकूल है। निष्कर्ष के रूप में आप कह सकते है कि विश्व व्यापार निर्यात में भारत के निर्यात के प्रतिशत में वृद्धि हुई है। विश्व में भारत के निर्यात का प्रतिशत वर्ष 2007 में 0.1 प्रतिशत था जो बढ़कर वर्ष 2009 में 1.3 प्रतिशत हो गया और जनवरी से जून 2010 में 1.4 प्रतिशत हो गया।

21.5 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना या स्वरूप

विदेशी व्यापार की संरचना से आशय वस्तुओं के आयात एवं निर्यात से है। वस्तुतः विदेशी व्यापार की संरचना का अर्थ है कि किस मात्रा में और किन-किन वस्तुओं का आयात अथवा निर्यात होता है। जिन वस्तुओं की पूर्ति हम विदेशों से करते हैं उसे आयात कहते है तथा जिन वस्तुओं की पूर्ति हम विदेशों को करते है उसे निर्यात कहते है। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत के विदेशी व्यापार का स्वरूप औपनिवेशिक था। इस अवधि में भारत के विदेशी व्यापार संरचना की निम्नलिखित दो प्रमुख विशेषताएँ थी -

1. भारत के कच्चे माल का निर्यात होता था।
2. भारत निर्मित माल का आयात करता था।

नियोजन काल में भारत के विदेशी व्यापार की संरचना और दिशा में परिवर्तन आया है, जिसे सारणी 21.2 से स्पष्ट किया जा सकता है।

सारणी 21.2: भारत के विदेशी व्यापार की संरचना(मूल्यः रू0 करोड़ में)

निर्यात की प्रमुख वस्तुओं की संरचना			आयात की प्रमुख वस्तुओं की संरचना		
वस्तु समूह	2009 (अप्रैल-सितम्बर)	2010 (अप्रैल-सितम्बर)	वस्तु समूह	2009 (अप्रैल-सितम्बर)	2010 (अप्रैल-सितम्बर)
1. कृषि एवं सम्बद्ध	36529	41706	1. खाद्य पदार्थ और सम्बन्धित उत्पाद	106	339
2. अयस्क एवं खनिज कोयला सम्मिलित नही) (है	16095	20365	2. कच्चा पदार्थ और मध्यवर्ती विनिर्मित वस्तुएँ	382157	486304
3. विनिर्मित वस्तुएँ	279605	334219	3. पूँजीगत वस्तुएँ	98784	97501
4. खनिज, ईंधन और स्नेहक(कोयला सहित)	53624	83864			
कुल निर्यात	393262	485207	कुल आयात	622295	743338

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, 2010-11, भारत सरकार।

सारणी 21.3: भारत के विदेशी व्यापार की संरचना(मूल्यः रू0 करोड़ में)

वस्तु समूह	2009 (अप्रैल-सितम्बर)	2010 (अप्रैल-सितम्बर)	वस्तु समूह	2009 (अप्रैल-सितम्बर)	2010 (अप्रैल-सितम्बर)
1. कृषि एवं सम्बद्ध	9.3	8.5	1. खाद्य पदार्थ और सम्बन्धित उत्पाद	3.5	3.2
2. अयस्क एवं खनिज (कोयला सम्मिलित नही है)	4.1	4.2	2. ईंधन	32.5	33.2
3. विनिर्मित वस्तुएँ	71.1	68.9	3. उर्वरक	2.6	2.4
4. अपरिष्कृत पेट्रोलियम उत्पाद (कोयला सहित)	13.6	17.3	4. गन्ना, विनिर्माण और अखबारी कागज	0.5	0.6
			5. पूँजीगत वस्तुएँ	15.9	13.1
			6. अन्य	42.5	43.2
कुल निर्यात	100	100	कुल आयात	100	100

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण, 2010-11, भारत सरकार।

उपर्युक्त सारणी 21.2 से स्पष्ट है कि नयी आर्थिक नीति के बाद विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन हुआ है। स्वतंत्रता से पूर्व भारत कच्चे माल का निर्यात करता था जबकि सारणी से स्पष्ट है कि भारत अब विनिर्मित वस्तुओं का निर्यात कर रहा है वर्ष 2010 (अप्रैल-सितम्बर) से विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात का मूल्य रू0 334219 करोड़ था जबकि यह पिछले वर्ष में उसी महीने में 279605 करोड़ था। सारणी 21.3 से स्पष्ट है कि भारत के विदेशी निर्यात में विनिर्मित वस्तुओं का हिस्सा बढ़ा है, अपरिष्कृत पेट्रोलिय उत्पाद (कोयला सहित) का निर्यात 2010-11 में बढ़कर 17.3 प्रतिशत हो गया जबकि 2009-10 में 13.6 प्रतिशत था। 2010-11 में निर्यात की तुलना में आयात में कमी आयी है।

भारत के निर्यात एवं आयात की संरचना को निम्नलिखित चित्र के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

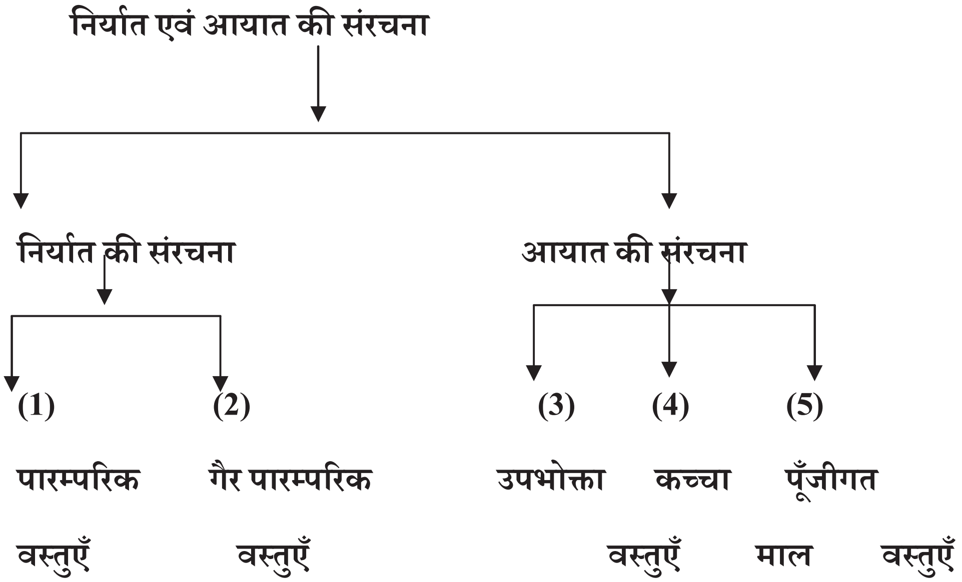

1. **पारम्परिक वस्तुएँ:** पटसन तथा पटसन से निर्मित वस्तुएँ, कपास तथा कपास से निर्मित वस्तुएँ, चाय, तिलहन, चमड़े आदि पारम्परिक वस्तुएँ कहलाती है।
2. **गैर-पारम्परिक वस्तुएँ:** इंजीनियरिंग वस्तुएँ, हस्तकला की वस्तुएँ, मोती, बहुमूल्य पत्थर, जेवर एवं जवाहरात, लोहा एवं इस्पात, रसायन, बने-बनाए पोशाक, चीनी, मछली, काजू, काफी आदि को गैर-पारम्परिक वस्तुएँ कहते हैं।

3. **उपभोक्ता वस्तुएँ:** वे वस्तुएँ जिनका प्रत्यक्ष रूप से उपभोक्ता एवं सरकार के द्वारा उपभोग किया जाता है जैसे कागज, भोजन सामग्री, बिजली का सामान एवं औषधियाँ आदि।
4. **कच्चा माल एवं मध्यवर्ती वस्तुएँ:** वे वस्तुएँ जिसका उपयोग उत्पादक एवं सरकार के द्वारा अन्य वस्तुओं के उत्पादन में लगाया जाता है या बेचने के लिए खरीदा जाता है। उदाहरण के लिए खनिज तेल, कच्चा माल, रंग और रसायन, पटसन, गेहूँ, इत्यादि।
5. **पूँजीगत वस्तुएँ:** उत्पादन के उत्पाद साधन के संचय (stock of produced menas of production) को पूँजीगत वस्तु कहते है जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन एवं मूल्य वृद्धि (value) में योगदान देते है। इन वस्तुओं के अन्तर्गत लेखांकन या वित्तीय वर्ष के अन्त में शेष वस्तुएं तथा इनके उत्पादन में वृद्धि करने वाले उत्पादन के साधनों को सम्मिलित किया जाता है। ये वस्तुएँ है प्लाण्ट और यंत्र, कच्चे माल का संचय, परिवहन आदि।

ध्यान देने योग्य बातें - आप को बता दें कि यदि चीनी उत्पादक के पास है तो यह पूँजीगत वस्तु मानी जायगी क्योंकि इस चीनी के उत्पादक वर्ग अन्तिम वस्तु के उत्पादन के साधन के रूप में प्रयोग कर सकता है। परन्तु यही चीनी यदि उपभोक्ता के पास है तो इसी वस्तु को अन्तिम उपभोग में शामिल करेंगे।

21.6 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों को सारणी 21.4 में दर्शाया गया है –

भारत एशियन और आसियान देश से 2010 में 61.5 प्रतिशत आयात और 53.5 प्रतिशत निर्यात किया था जबकि अमरीका से उसी वर्ष में 10.2 प्रतिशत और 16.5 प्रतिशत आयात और निर्यात क्रमशः था। यू0एस0 और यूरोपीय देश में आर्थिक एवं वित्तीय संकट के फलस्वरूप् वर्ष 2012 में विगत तीन महीनों में भारत के निर्यात में 4.2 प्रतिशत की कमी आयी जो फरवरी में कुल निर्यात $ 24.6 बिलियन हो गया जबकि भारत के आयात में 20.6 प्रतिशत की वृद्धि होकर फरवरी, 2012 में $ 39.7 बिलियन पहुँच गया, जिससे भारत का व्यापार घाटा वर्तमान में $ 15.1 बिलियन हो गया।

सारणी 21.4: भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

देश क्षेत्र /	वर्ष 2010 (अप्रैल(सितम्बर-			
			हिस्सा (प्रतिशत)	
	निर्यात रूकरोड़.	आयात रूकरोड़.	निर्यात (प्रतिशत)	आयात प्रतिशत)
I— यूरोप	97998	128943	17.3	20.2
A— यूरोपीयन देश)27)	90403	87919	11.8	18.6
B— पश्चिम यूरोप के शेष भाग	7309	40914	5.5	1.5
C— पूर्वी यूरोप	286	111	0.0	0.1
II— अफ्रीका	32272	53917	7.3	6.6
A— दक्षिणी अफ्रीका	13111	23767	3.2	2.7
B— पश्चिमी अफ्रीका	8408	29168	3.9	1.7
C— केन्द्रीय अफ्रीका	944	74	0.0	0.2
D— पूर्वी अफ्रीका	9808	891	0.1	2.0
III— अमेरिका	79885	75890	10.2	16.5
A—उत्तरी अमरीका	56653	44045	5.9	11.7
B— लैटिन अमरीका	23232	31845	4.3	4.8
IV— एशिया और आसियान	259503	457000	61.5	53.5
A— पूर्वी एशिया	4132	27622	3.7	0.9
B— आसियान	53450	64732	8.7	11.0
C— वाना (WANA) West Asia & North Africa	108254	208458	28.0	22.3
D— उत्तरी पूर्वी एशिया	71617	152012	20.4	14.8
E— दक्षिणी एशिया	22050	4176	0.6	4.5

V—CIS और बाल्टिक (Common Wealth of Independent State)	5433	14227	1.9	1.1
A— CARs देश Central African Republic	597	506	0.1	0.1
B— Other CIS देश	4836	13720	1.9	1.0
VI— अनिर्दिष्ट क्षेत्र (Unspecified Region)	10116	13362	1.8	2.1
कुल निर्यातआयात/	485207	743338	100	100

स्रोतः आर्थिक सर्वेक्षण 2011-12, भारत सरकार

21.7 भुगतान संतुलन

भुगतान संतुलन (शेष) से अभिप्राय किसी दी हुई अवधि में (सामान्यतया एक वर्ष) बाहर के देशों से किए गये अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहारों के व्यवस्थित लेखा-जोखा से है। इसमें वस्तुओं के आयात एवं निर्यात के अतिरिक्त पूँजी का आदान-प्रदान, ब्याज का भुगतान या प्राप्ति, जहाजरानी सेवाएँ, पर्यटक सेवाएं तथा विशेषज्ञों का आवागमन आदि सम्मिलित की जाती है।

भुगतान संतुलन में केवल आर्थिक सौदे और एक तरफा हस्तान्तरण को शामिल किया जाता है। यह सब विस्तार से समझने के लिए हमें भुगतान-संतुलन लेखाविधि का ज्ञान होना चाहिए, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यवहार या लेन-देन को दो स्थानों (जमा और देय) पर दिखाया जाता है, इसलिए भुगतान संतुलन आवश्यक रूप से संतुलित या बराबर होता है अर्थात जमा योग (Credit) देय योग (Debit) योग के बराबर होता है। किसी भी देश का भुगतान संतुलन इस बात पर प्रकाश डालता है कि इस देश की विदेशी विनिमय की क्या स्थिति है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी देश का विदेशी विनिमय क्यों कम या अधिक हो रहा है। भुगतान संतुलन से देश के आयात एवं निर्यात की स्थिति का ज्ञान हो जाता है। भुगतान संतुलन के मुख्य रूप से चार घटक होते है। वे है चालू खाता (Current Account) पूँजी खाता (Capital Account), सरकारी भुगतान खाता अथवा सरकारी रिजर्व परिसम्पत्ति खाता (Official Settlement Account) तथा अशुद्धियां एवं भूल-चूक (Error & Ommission)।

1. **चालू खाता:** वास्तविक या आय सृजित करने वाले व्यवहारों को भुगतान संतुलन के चालू खाते में दिखाया जाता है। चालू खाता अल्पकालीन वास्तविक लेन-देन का लेखांकन होता है। चालू

खाते के लेन-देन को वास्तविक लेन-देन का खाता कहा जाता है क्योंकि इसमें सम्मिलित की जाने वाली समस्त मदों का वास्तविक रूप में लेन-देन किया जाता है। इन मदों का अर्थव्यवस्था के आय, उत्पादन व रोजगार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। मुख्य रूप से चालू खातों में प्रविष्ट मदें तीन प्रकार की होती है:

- वस्तुओं का आयात एवं निर्यातः इसमें दृश्यों मदों को सम्मिलित किया जाता है।
- सेवाएँ: इसके अन्तर्गत अदृश्य मदें आती है।
- उपहार या भेंट: इसे हस्तान्तरण भुगतान भी कहते हैं।

चालू खाता को हम दो खातों में विभक्त कर सकते है -

I. **व्यापार खाता या वस्तु खाता**: इस खाते में दृश्य मदों के आयात और निर्यात को सम्मिलित किया जाता है।
II. **अदृश्य खाता**: इस खाते को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं (अ) सेवा खाता तथा (ब) एक पक्षीय हस्तांन्तरण खाता (Unilateral transfer payment)।

2. पूँजी खाता: पूँजी खाते में वित्तीय व्यवहारों को दिखाया जाता है। इस प्रकार यह ऋणों और दायित्वों के भुगतान को प्रदर्शित करता है। इसमे वे सभी मदें दिखायी जाती है जो आयात तथा निर्यात की वित्तीय व्यवस्था से सम्बन्धित होती है। पूँजी लेखा या खाता ऋणों और निवेशों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह को दर्शाता है और देश की परिसम्पत्तियों (assets) और देयताओं (liabilities) मे हुए परिवर्तन को व्यक्त करता है। पूँजी खाते मे सभी लेन-देन मात्र वित्तीय अन्तरणों (Financial Transfer) से सम्बन्धित होते है। इसलिए देश के उत्पादन, आय व रोजगार पर कोई प्रभाव नही पड़ता। पूँजी खाते के अन्तर्गत विदेशों मे विनियोजित तथा विदेशों की स्वयं के देश में विनियोजित पूँजी खाते के दीर्घकालीन व अल्पकालीन विनियोग को अलग-अलग दिखाया जाता है।

पूँजी खातों में चार प्रकार की प्रविष्टियाँ की जाती है -

I. निजी खातों का शेष भुगतान
II. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बद्ध भुगतान एवं प्राप्तियां
III. स्वर्ण का हस्तान्तरण, एवं
IV. सरकारी खातों का शेष भुगतान

पूँजी खाते का प्रमुख घटक निम्नलिखित है -

(1) **विदेशी विनियोग:** इसमें विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग (Foreign Direct Investment) तथा पोर्टफोलियो विनियोग को सम्मिलित किया जाता है।

(2) **ऋण:** ऋण के अन्तर्गत वाणिज्यिक ऋण, वाह्य सहयोग के रूप में ऋण (borrowing as external assistance), तथा बैंकिग पूँजी व्यवहार (Banking capital transactions) इत्यादि सम्मिलित किए जाते है।

3.सरकारी व्यवस्थापन लेखा (Official Settlement Account): यह लेखा सामान्यतः वर्ष के दौरान देश की विदेशी सरकारी धारकों के पास तरल तथा अतरल देयताओं में परिवर्तन को और राष्ट्र की सरकारी विदेशी विनिमय परिसम्पत्तियों मे परिवर्तन को मापता है। सरकारी व्यवस्थापन लेखा का प्रयोग भुगतान संतुलन के घाटा एवं अधिक्य को मापने के प्रयोग में लाया जाता है। भुगतान संतुलन के सरकारी व्यवस्थापन लेखा में स्वर्ण निर्यात एवं आयात, परिवर्तनीय विदेशी मुद्रा का भुगतान एवं प्राप्तियाँ, एस.डी.आर. (विशेष आहरण अधिकार) का भुगतान एवं धारण और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में उसकी निवल स्थिति शामिल है।

4.अशुद्धियाँ और भूल-चूक (Error & Ommission): अशुद्धियां और भूलचूक संतुलन मद (Balancing item) है। यह रिजर्व और सम्बन्धित मदों के अन्तर के बराबर होती है तथा चालू खाता, पूँजी खाता और वित्तीय लेखा का योग है।

21.8 व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में अन्तर

प्रायः व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन को एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है। परन्तु व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में में अन्तर को निम्नलिखित सारणी 21.5 में स्पष्ट किया गया है -

सारणी 21.5: व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में अन्तर

क्र. सं.	अन्तर का आधार	व्यापार संतुलन) शेष(	भुगतान संतुलन) शेष(
1.	अर्थ	व्यापार संतुलन से अभिप्राय किसी एक निश्चित समयावधि में, अन्य देशों को किये गये निर्यातों तथा अन्य देशों से किए गये आयातों के व्यवस्थित विवरण से है।	किसी देश का भुगतान संतुलन उसके किसी एक वर्ष में किए गए सभी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सौदों के लेखे-जोखे के व्यवस्थित विवरण से है।
2.	विस्तार	व्यापार शेष, भुगतान शेष का ही एक अंग होता है, व्यापार शेष में हम एक देश के	भुगतान संतुलन, व्यापार संतुलन की तुलना में अधिक विस्तृत स्वभाव का

		अन्य देशों के साथ मात्र वस्तुओं के आयात एवं निर्यात को सम्मिलित करते है।	होता है।
3.	मदें	व्यापार शेष प्रत्यक्ष व्यापार से सम्बन्धित है, इसलिए इसमे केवल दृश्य मदें ही शामिल की जाती है।	भुगतान संतुलन में परोक्ष व्यापार या इसमें दृश्य एवं अदृश्य मदें, दोनों शामिल होती है।
4.	संतुलन	व्यापार संतुलन का सदैव संतुलित होना आवश्यक नही है।	चूँकि भुगतान संतुलन में दृश्य एवं अदृश्य मदों को सम्मिलित किया जाता है, इसलिए यह सदैव संतुलित होता है।
5.	अनुकूल /प्रतिकूल	जब हम अनुकूल या प्रतिकूल भुगतान संतुलन की बात करते हैं तो हमारा आशय व्यापार संतुलन से होता है।	भुगतान संतुलन अनुकूल या प्रतिकूल नहीं होता है । यह हमेशा संतुलित रहता है । क्योंकि यह लेखांकन की दोहरी प्रविष्ट प्रणाली पर आधारित होता है।
6.	विश्लेषण	यह केवल भुगतान स्थिति का आर्थिक विश्लेषण है।	यह किसी देश की भुगतान स्थिति का एक सम्पूर्ण विश्लेषण है। इसमें विदेशी विनिमय की सम्पूर्ण माँग व पूर्ति का विश्लेषण किया जाता है।
7.	उपयोग	आर्थिक विश्लेषणों एवं निर्णय में इसका उपयोग कम होता है	इसका उपयोग अर्थिक विश्लेषण व निर्णय के लिए किया जाता है।
8.	अर्थव्यवस्था की स्थिति	अनुकूल व्यापार संतुलन सुदृढ़ अर्थव्यवस्था का परिचायक है। यह जरूरी नहीं है।	अनुकूल भुगतान संतुलन सुदृढ़ अर्थव्यवस्था का परिचायक है।
9.	विनिमय दर निर्धारण	यह विनिमय दर को प्रभावित कर सकता है परन्तु विनिमय दर का निर्धारण नहीं करता है।	यह विनिमय दर का निर्धारण करता है क्योंकि यह विदेशी मांग एवं पूर्ति का सम्पूर्ण ब्यौरा है।

21.9 क्या भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है?

अभी तक आप भुगतान संतुलन और व्यापर संतुलन में अन्तर स्पष्ट कर चुके है। आप अच्छी तरह से जान चुके है कि भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है क्योंकि भुगतान संतुलन दोहरा लेखा प्रणाली (Double entry book keeping) पर आधारित होता है। जिसके अनुसार प्रत्येक सौदे या व्यवहार (transactions) को जमा (credit) एवं देय (debit) दोनो ओर लिखा जाता है। उदाहरण के लिए, एक भारतीय 10,000 डालर का सामान किसी अमरीकी फर्म को बेचता है तो दोनो ही देशों के भुगतान संतुलन लेखों में इस सौदे की प्रविष्टि निम्नलिखित तरह से लिखा जाएगा:

भारत का भुगतान संतुलन लेखा-लेखा

	जमा	देय
निर्यात	$ 10,000	—
पूँजी का बर्हिगमन	—	$ 10,000
	$ 10,000	$10,000

अमरीका का भुगतान संतुलन लेखा-लेखा

	जमा	देय
आयात	—	**$ 10,000**
पूँजी का प्राप्ति	$ 10,000	
	$ 10,000	$10,000

भारत 10,000 डालर का सामान अमरीका को बेचता है अर्थात 10000 डालर का निर्यात करता है। वस्तुओं के निर्यात के इस राशि को भारत में जमा के रूप में तथा अमरीका में देय के रूप में लिया जाएगा क्योंकि भारत को निर्यात के बदले राशि प्राप्त करनी है। जबकि अमरीका को आयात के बदले उतनी ही राशि चुकानी है। इसके साथ ही दोनों देशों में इस सौदे की दो प्रविष्टियां होंगी। वस्तु का निर्यात भारत के पँजी का बर्हिगमन माना जाएगा इसलिए इसे भारत के भुगतान संतुलन में देय के रूप मे लिया जाएगा। इसके विपरीत, चूँकि इसका भुगतान अमरीका से प्राप्त होना है उस सीमा तक भारत की जमा राशि में भी वृद्धि हो जाएगी। इसी प्रकार अमरीका भारत से 10000 डालर का सामान प्राप्त कर रहा है। इसलिए यह राशि अमरिका के भुगतान संतुलन में देय के रूप में लिया जाएगा। परन्तु यह सौदा अमरीका के लिए पूँजी की प्राप्ति के रूप में भी है, इस सीमा तक पूँजी के रूप में इसे अमरीका के भुगतान संतुलन में जमा के रूप में लिखा जाएगा। इस प्रकार प्रत्येक सौदे से उत्पन्न जमा और देय की राशियाँ समान होने के कारण और दोहरे लेखा प्रणाली पर आधारित होने के कारण भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है।

"भुगतान संतुलन सदैव संतुलित रहता है " यह अर्थ है कि चालू खाता, पूँजीगत खाता और सरकारी व्यवस्थापन खाता का निवल जमा और देय शेषों का बीजगणितीय जोड़ अवश्य शून्य होना चाहिए। भुगतान संतुलन को आप सूत्र के द्वारा भी व्यक्त कर सकते है -

BOP = Rf – Pf

जिसमें **BOP** भुगतान संतुलन है, Rf =विदेशों से प्राप्ति, व Pf =विदेशों को किया गया भुगतान प्रदर्शित करता है। जब BOP = Rf – Pf = 0 तो भुगतान संतुलन के संतुलित माना जाता है। जब BOP = Rf > Pf, अर्थात् यहाँ Rf, Pf से अधिक है। इसका मतलब यह है कि BOP अनुकूल है या BOP में अधिक्य है।

जब (Rf < Pf) यहाँ पर Rf, Pf से कम है, अर्थात् ऐसी स्थिति में BOP में घाटा जायेगा। इसे प्रतिकूल भुगतान संतुलन कहा जाएगा।

21.10 भुगतान संतुलन में असाम्य के प्रकार एवं कारण

भुगतान संतुलन में असाम्य (असंतुलन) के प्रकार एवं कारणों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है।

1. चक्रीय असंतुलन (Cyclical Equilibrium)
2. दीर्घकालिक असंतुलन (Secular Equilibrium)
3. संरचनात्मक असंतुलन (Structural Equilibrium)
4. अस्थायी असंतुलन (Temporary Equilibrium)
5. मौलिक असंतुलन (Fundamental Equilibrium)
6. विनिमय दर में परिवर्तन (Change in Exchange Rate)
7. राष्ट्रीय आय में परिवर्तन (Change in National Income)
8. तीव्र प्रदर्शन प्रभाव (Demonstration Effect)
9. राजनीतिक स्थितियाँ (Political Condition)
10. आयात व निर्यात की माँग लोच (Elasticity of Export & Import)

1. **चक्रीय असंतुलन**: व्यापार चक्रीय उच्चावचनों के फलस्वरूप भुगतान संतुलन में असंतुलन देखे जाते है । जब देश में मंदी होती है तो दूसरे देशों के साथ आयातों और निर्यातों की मात्रा में तीव्र गिरावट आती है। परन्तु घरेलु उत्पादनों में कमी से आयात की तुलना में निर्यात में बहुत ज्यादा कमी आ जाती है। इससे भुगतान संतुलन प्रतिकूल हो जाता है। भुगतान संतुलन में इस प्रकार के आने वाले असंतुलन को चक्रीय असंतुलन कहते हैं।
2. **दीर्घकालिक असंतुलन**: दीर्घकालिक असंतुलन या चिरकालिक असंतुलन उस समय उत्पन्न होती है जब अर्थव्यवस्था विकास के एक चरण से दूसरे चरण में प्रविष्ट हो रही हो। दीर्घकालिक असाम्यता बहुत से घटकों के कारण उत्पन्न होती है जैसे पूँजी निर्माण, जनसंख्या में वृद्धि, उत्पादन प्रणाली में सुधार, बाजार का विस्तार, औद्योगिक परिवर्तन, व्यावसायिक संगठन में सुधार और साधनों की उपलब्ध मात्रा में परिवर्तन आदि। दीर्घकालिक भुगतान असंतुलन की उत्पत्ति देश में बचत एवं विनियोग में अन्तर के कारण होती है।
3. **संरचनात्मक असंतुलन:** संचनात्मक असंतुलन की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब किसी देश के भीतर या बाहरी किसी देश के कुछ क्षेत्रों में ऐसे परिवर्तन आ जाएं जो आयात और निर्यात की माँग एवं पूर्ति में मूलभूत परिवर्तन ला दे। आयात एवं निर्यात की माँग एवं पूर्ति में मूलभूत परिवर्तनों के कारण उत्पन्न असंतुलन को संचनात्मक परिवर्तन कहते है।
4. **अस्थायी असंतुलन:** अल्पकालिक कारणों से उत्पन्न असंतुलन को अस्थायी या अल्पकालीन भुगतान असंतुलन कहते है । व्यापार के आकस्मिक परिवर्तन, मौसमी उतार-चढ़ाव, सूखे, बाढ़ या युद्ध की स्थिति लगातार रहने की अपेक्षा नहीं की जाती। यही कारण है कि इस प्रकार की स्थिति से उत्पन्न भुगतान असंतुलन को अस्थायी असंतुलन की संज्ञा दी जाती है।
5. **मौलिक असंतुलन:** मौलिक असंतुलन को आधारभूत या स्थायी असंतुलन भी कहते है। जब भुगतान संतुलन में असंतुलन दीर्घकालीन और निरन्तर चलता रहता है तो इसे हम मौलिक चिरकालिक आधारभूत या स्थायी असंतुलन के नाम से पुकारते है । अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष के अनुसार, भुगतान संतुलन में मौलिक असंतुलन के कारण निम्नलिखित है:
    - i. देश एवं विश्व के अन्य देशों में उपभोक्ता रूची में परिवर्तन,
    - ii. विदेशी मुद्राकोष में निरन्तर कमी,
    - iii. अत्याधिक पूँजी का बहिर्गमन या पूँजी वाह्य प्रवाह,

iv. स्फीतिकारी दबाव तथा विश्व बाजार में प्रतियोगिता में कमी के कारण निर्यात में कमी।

आप ध्यान दें कि उपर्युक्त सभी बिन्दु भुगतान असंतुलन के प्रकार है तथा इसे आप भुगतान असंतुलन के कारणों में भी लिख सकते है।

6. **विनिमय दर में परिवर्तन**: घरेलू मुद्रा के अधिमूल्यन से विदेशी (overvaluation) से विदेशी वस्तुएँ सस्ती हो जाने के कारण आयात की मात्रा निर्यात की तुलना में अधिक हो जाती है, फलस्वरूप भुगतान संतुलन में घाटा उत्पन्न होता है।
7. **राष्ट्रीय आय में परिवर्तन:** पूर्ण रोजगार की स्थिति में देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने पर आयात में वृद्धि होगी। परिणामस्वरूप भुगतान संतुलन में घाटा उत्पन्न होगा।
8. **तीव्र प्रदर्शन प्रभाव**: तीव्र प्रदर्शन प्रभाव के कारण देश के लोग विदेशी वस्तुओं की मांग अधिक करते है, जिसके कारण इन देशों में आयात की सीमान्त प्रवृत्ति बलवती होती है।
9. **आर्थिक विकास की अवस्था:** जब कोई देश विकास की प्रक्रिया से गुजर रहा हो तो उसे अधिक पूँजी, प्रविधि (Technology) इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है, फलस्वरूप आयात में वृद्धि होती है जो भुगतान संतुलन में असंतुलन उत्पन्न करता है।
10. **जनसंख्या वृद्धि:** अल्पविकसित देशों में जनसंख्या वृद्धि भुगतान संतुलन को प्रतिकूल बनाती है क्योंकि इसके कारण इन देशों में वस्तुओं की माँग में आपूर्ति की अपेक्षा अधिक वृद्धि हो जाती है। इस बढ़े हुए मांग की आपूर्ति आयातित वस्तुओं से की जाती है।
11. **राजनीतिक स्थितियाँ:** राजनीतिक अस्थिरता भी भुगतान संतुलन को असंतुलित कर सकती है क्योंकि राजनीतिक अस्थिरता विदेशी निवेशकों में अनिश्चितता उत्पन्न करती है परिणामस्वरूप पूँजी का वाह्य प्रवाह होता है और अर्न्तप्रवाह रूक जाता है।
12. **आयात और निर्यात की माँग लोच**: विकासशील देशों में सीमान्त आयात प्रवृत्ति विकसित देशों की अपेक्षा अधिक पायी जाती है । इसके अतिरिक्त इन देशों में आयातित वस्तुओं की मूल्य माँग लोच भी कम होती है और विकसित देश इनके मूल्यों में वृद्धि कर दे तब भी आयात की मात्रा में आनुपातिक कमी नहीं हो पाती। इन्हीं सब कारणों से विकासशील देशों को प्रतिकूल भुगतान संतुलन का सामना करना पड़ता है। इन सब के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर विकास कार्यक्रम, विकसित देशों द्वारा लगाये गये आयात नियंत्रण, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अवसाद या मन्दी भी भुगतान संतुलन की असंतुलित या प्रतिकूल बनाते है।

21.11 प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के उपाय

प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के सम्बन्ध में सरकार अनेक प्रकार के प्रयास करती है। ये प्रयास मुख्यतः निर्यात की वृद्धि तथा आयात के प्रतिस्थापन या उसकी कटौती से सम्बन्धित होते हैं। प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के लिए गैर-मौद्रिक एवं मौद्रिक उपाय किए जाते है। गैर मौद्रिक उपाय के अन्तर्गत (क) तटकर या आयात प्रशुल्क (Tarrif), (ख) आयात अभ्यंश (Import Quota), (ग) आयात प्रतिस्थापन के उपाय तथा (घ) निर्यात संवर्धन के कार्यक्रम तथा नीतियाँ आती है। आयातित वस्तुओं पर तटकर या आयात शुल्क लगाकर उनके मूल्य को ऊँचा कर दिया जाता है जिससे आयातित वस्तुएँ मंहगी हो जाती है फलस्वरूप आयात में कमी आती है। इसके अतिरिक्त आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं का निर्माण किया जाता है।

आयात अभ्यंश के अन्तर्गत प्रायः एक वर्ष के समय के दौरान मूल्य अथवा परिमाण में एक वस्तु को स्थिर मात्रा में देश के अन्दर आयात करने की आज्ञा दी जाती है जिससे आयात को नियंत्रित किया जा सके। आयात नियंत्रित करने के साथ-साथ सरकार निर्यात संवर्धन के लिए औद्योगिक मेले, व्यापारिक समझौते, निर्यात से सम्बन्धित छूटें, एवं निर्यात बीमा आदि की व्यवस्था करती है।

प्रतिकूल भुगतान संतुलन दूर करने के लिए सरकार गैर-मौद्रिक के अतिरिक्त मौद्रिक उपाय का भी प्रयोग करती है । मौद्रिक उपाय के अन्तर्गत अवमूल्यन, मौद्रिक संकुचन या अवस्फीति (Reflation) और विनिमय नियंत्रण आदि उपाय अपनाती है। अवमूल्यन तथा मूल्य ह्रास का सम्बन्ध मुद्रा के वाह्य मूल्य में कमी से होता है। इसके विपरीत, मुद्रा संकुचन की नीति का उद्देश्य आन्तरिक कीमत स्तर में कमी अर्थात् मुद्रा के आन्तरिक मूल्य में वृद्धि करना होता है, वस्तुओं की कीमतें कम हो जाने पर निर्यात को प्रोत्साहन मिलता है तथा आयात हतोत्साहित है। इस प्रकार मुद्रा संकुचन व अवस्फीति द्वारा प्रतिकूल भुगतान संतुलन ठीक किया जा सकता है।

21.12 अभ्यास प्रश्न

1. लघुउत्तरीय प्रश्न-

क. भुगतान संतुलन से क्या अभिप्राय हैं?
ख. व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में क्या अन्तर है?
ग. चालू खाता से आप क्या समझते है?
घ. पूँजीगत वस्तु किसे कहते है?
ङ. हस्तान्तरण भुगतान किसे कहते है?

च. भुगतान संतुलन के मुख्य चार घटकों के नाम बताइये।

2. सत्य/असत्य बताईये-

क. विदेशी व्यापार का अर्थ देश के किसी अन्य राज्य के साथ व्यापार से है।

ख. भारत का व्यापार शेष 1972-73 एवं 1976-77 में अनुकूल था।

ग. निर्यात की तुलना में आयात अधिक होने पर भुगतान शेष प्रतिकूल हो जाता है।

घ. व्यापार शेष में दृश्य और अदृश्य मदें सम्मिलित होती है।

ङ. व्यापार संतुलन विनिमय दर को प्रभावित कर सकता है परन्तु विनिमय दर का निर्धारण नहीं करता।

च. अनुकूल भुगतान संतुलन किसी देश का सुदृढ़ आर्थिक स्थिति का आवश्यक रूप से परिचायक है।

छ. दीर्घकालीन आर्थिक परिदृश्य का मूल्यांकन करने के लिए भुगतान संतुलन का प्रयोग नहीं कर सकते।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न-

क. भुगतान शेष में सम्मिलित होता है-

(अ) वस्तुओं का आयात निर्यात (ब) पूँजी का आदान-प्रदान

(स) ब्याज का भुगतान या प्राप्ति (द) उपर्युक्त सभी

ख. व्यापार संतुलन में सम्मिलित मदें हैं -

(अ) दृश्य (ब) अदृश्य

(स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

ग. गैर मौद्रिक उपाय के अन्तर्गत नीतियाँ सम्मिलित होती है -

(अ) तटकर या आयात प्रशुल्क (ब) आयात अभ्यंश

(स) आयात प्रतिस्थापन के उपाय (द) उपर्युक्त सभी

घ. अधिमूल्यन का अर्थ -

(अ) देश की मुद्रा के वाह्य मुल्य को अधिक करने से है।

(ब) मुद्रा की आन्तरिक क्रय शक्ति में कोई परिवर्तन नही से है।

(स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न-

क. दीर्घकालीन असंतुलन किसे कहते है?

ख. मौलिक असंतुलन के अन्य नाम बताइये।

ग. प्रतिकूल भुगतान संतुलन को दूर करने के लिए किस उपाय का प्रयोग किया जाता

है?

घ. आयातित वस्तु पर कौन सा प्रशुल्क लगाया जाता है।

5. **रिक्त स्थान भरिए -**

क. आयात और निर्यात की माँग तथा पूर्ती में परिवर्तन .... की स्थिति उत्पन्न करता है।

ख. भुगतान संतुलन में .... एवं .... मदें शामिल होती है।

ग. अवमूल्यन तथा मूल्य ह्रास का सम्बन्ध मुद्रा के .... मूल्य में कमी से है।

घ. मुद्रा संकुचन नीति का उद्देश्य .... कीमत स्तर में कमी से है।

21.13 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप जान चुके है कि किसी देश का विश्व के अन्य देशों के साथ किए गये व्यापार को विदेशी व्यापार कहते है। व्यापार अनुकूल है या प्रतिकूल, इसकी जानकारी के लिए ही आप भुगतान संतुलन बनाते है जिसमें चालू खाता, पूँजी खाता, सरकारी व्यवस्थापन खाता का अध्ययन करते है। भुगतान संतुलन में साम्य स्थापित रहता है क्यांेकि यह दोहरे लेखा प्रणाली पर आधारित होती है। चक्रीय परिवर्तन, दीर्घकालिक परिवर्तन, आधारभूत परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि एवं राष्ट्रीय आय में परिवर्तन भुगतान संतुलन को प्रतिकूल बनाता है। प्रतिकूल भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाने के लिए विदेशी व्यापार की संरचना में परिवर्तन किया जाता है इसके लिए सरकार मौद्रिक एवं गैर मौद्रिक नीतियाँ अपनाती हैं।

21.14 शब्दावली

भुगतान संतुलन लेखाविधि: भुगतान संतुलन लेखाविधि दोहरे खाता प्रणाली (Double entry system) पर आधारित होती है। जिसके अनुसार प्रत्येक सौदे को जमा (Credit) एवं देय या नाम (debit) दोनों ओर लिखा जाता है। देय एवं जमा की प्रत्येक राशि समान होनी चाहिए।

आर्थिक सौदे: आर्थिक सौदे वे सौदे होते है जिनमें मूल्य का हस्तान्तरण होता है। जिसके अन्तर्गत एक देश को दूसरे देश से या तो भुगतान प्राप्त करना होता है अथवा दूसरे देश को भुगतान चुकाने की बात होती है।

हस्तान्तरण भुगतान: हस्तान्तरण भुगतान एकतरफा हस्तान्तरण भुगतान होते है जो बिना किसी प्रतिफल के होते है तथा उनके पुनर्भुगतान का दायित्व नहीं होता है। उदाहरणार्थ, भारत के एक नागरिक का विदेश में रहने वाले किसी सम्बन्धी को उपहार में कुछ राशि या (डालर) भेजना है।

इसके अतिरिक्त, पेन्सन, निजी प्रेषण (remittances) दान आदि भी हस्तान्तरण भुगतान के उदाहरण है।

दृश्य मदें: भौतिक वस्तुओं के आयात एवं निर्यात दृश्य मदें (visible items) कहलाती है।

अदृश्य मदें: सेवाओं तथा हस्तान्तरण भुगतान में सम्मिलित मदें अदृश्य मदें कहलाती है जैसे- स्वदेशी एवं विदेशी कम्पनियों द्वारा दी गई सेवाएँ- बीमा, जहाजरानी, बैंकिंग और भाड़ा आदि इसके अतिरिक्त स्कालरशिप, ब्याज, लाभ, रायल्टी राजनयिकों, मिलेट्री कर्मचारियों और दूतावासों एवं वैज्ञानिकों पर व्यय इत्यादि। अदृश्य मदों को बन्दरगाह पर रिकार्ड नहीं किया जाता है।

प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग: प्रत्यक्ष विदेशी विनियोग से अभिप्राय किसी विदेशी नागरिक या संगठन द्वारा दूसरे देश में अपनी पूँजी द्वारा उत्पादन इकाई की स्थापना करने या खरीदने से है। ऐसे विनियोजन पर विनियोजक का स्वामित्व प्रबन्ध में नियंत्रण रहता है।

पोर्टफोलियो विनियोग: इसके अन्तर्गत विदेशी कम्पनियाँ भारतीय कम्पनियों के ऋण पत्र (बाण्ड) या अंश (शेयर) खरीदकर विनियोग करती है। इस प्रकार के विनियोग में विदेशी कम्पनियों का स्वामित्तव, प्रबन्ध व नियन्त्रण पर नहीं होता है। इनका स्वामित्व मात्र लाभांश व ब्याज प्राप्त करने तक सीमित होता है।

विशेष आहरण अधिकार (Special Drawing Right, SDRs): SDRs को कागजी सोना भी कहते है। SDR लेखा की अन्तर्राष्ट्रीय इकाई है जो 'अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विशेष आहरण में' विदेशी विनिमय रिजर्व परिसम्पत्ति के पूरक के रूप में रखी जाती है। कोष सामान्य लेखा मे सभी मुद्राओं के कोटों का मूल्य-निर्धारण SDR में किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय तरलता में वृद्धि करने के लिए 'कोष' द्वारा SDR का निर्माण 1969 में किया गया था।

व्यापार चक्र: ऐसे अर्थिक उतार-चढ़ाव जिनकी प्रवृत्ति नियमित रूप से बार-बार (recurrent) उत्पन्न होने की होती है, 'व्यापार चक्र' (Trade Cycle या Business Cycle) कहलाते है। अमेरिकी अर्थशास्त्री बर्न्स तथा मिचेल के अनुसार प्रत्येक व्यापार चक्र में गर्त (Trough) तथा शिखर (Peak) की दो अवस्थाओं के अतिरिक्त दो अन्य अवस्थाएँ इन दोनों के बीच की होती है। ये अवस्थाएँ है (1) मंदी या संकुचन (Depression or Contraction) (2) पुनरूत्थान (Recovery or Revival) (3) समृद्धि, तेजी अथवा विस्तार (Prosperity, Boom or Expansion) तथा सुस्ती या प्रतिसार (Recession)।

अधिमूल्यनः अधिमूल्यन का अर्थ देश की मुद्रा के वाह्य मूल्य को अधिक करना है। इसके अन्तर्गत मुद्रा की आन्तरिक क्रय शक्ति में परिवर्तन नहीं किया जाता है।

विनिमय नियंत्रण: विनिमय नियंत्रण से अभिप्राय विनिमय दर के स्तर को प्रभावित करने वाले सरकारी हस्तक्षेप से है।

21.15 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1 (क) भुगतान संतुलन (या शेष) से अभिप्राय किसी दी हुई अवधि में (सामान्यतया एक वर्ष) बाहर के देशों से किए गये अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवहारों के व्यवस्थित लेखा-जोखा से है। इसमें वस्तुओं के आयात एवं निर्यात के अतिरिक्त पूँजी का आदान-प्रदान, ब्याज का भुगतान या प्राप्ति, जहाजरानी सेवाएँ, पर्यटक सेवाएं तथा विशेषज्ञों का आवागमन आदि सम्मिलित की जाती है।

(ख) (1) व्यापार संतुलन, भुगतान संतुलन का ही एक अंग होता है, व्यापार संतुलन में हम एक देश के अन्य देशों के साथ मात्र वस्तुओं के आयात एवं निर्यात को सम्मिलित करते है। जबकि भुगतान संतुलन, व्यापार संतुलन की तुलना में अधिक विस्तृत स्वभाव का होता है।

(2) व्यापार संतुलन में केवल दृश्य मदें ही शामिल की जाती है। जबकि भुगतान संतुलन में दृश्य एवं अदृश्य मदें दोंनो शामिल होती है।

(ग) चालू खाता अल्पकालीन वास्तविक लेन-देन का लेखांकन होता है। चालू खाते के लेन-देन को वास्तविक लेन-देन का खाता कहा जाता है क्योंकि इसमें सम्मिलित की जाने वाली समस्त मदों का वास्तविक रूप में लेन-देन किया जाता है।

(घ) उत्पादन के उत्पाद साधन के संचय (stocks of produced means of production) को पूँजीगत वस्तु कहते है जो अन्य वस्तुओं के उत्पादन एवं मूल्य वृद्धि में योगदान देते है। इन वस्तुओं के अन्तर्गत लेखांकन या वित्तीय वर्ष के अन्त में शेष वस्तुएं तथा इनके उत्पादन में वृद्धि करने वाले उत्पादन के साधनों को सम्मिलित किया जाता है। ये वस्तुएँ है प्लाण्ट और यंत्र, कच्चे माल का संचय, परिवहन आदि।

(ङ) हस्तान्तरण भुगतान एकतरफा हस्तान्तरण भुगतान होते है जो बिना किसी प्रतिफल के होते है तथा उनके पुनर्भुगतान का दायित्व नहीं होता है। उदाहरणार्थ, भारत के एक नागरिक का विदेश में रहने वाले किसी सम्बन्धी को उपहार में कुछ राशि या (डालर) भेजना। इसके अतिरिक्त, पेन्सन, निजी प्रेषण (remittances) दान आदि भी हस्तान्तरण भुगतान के उदाहरण है।

(च) भुगतान संतुलन के मुख्य रूप से चार घटक होते है। वे है चालू खाता , पूँजी खाता , सरकारी भुगतान खाता अथवा सरकारी रिजर्व परिसम्पत्ति खाता तथा अशुद्धियां एवं भूल-चूक

2(क) असत्य , (ख)सत्य , (ग)सत्य , (घ)असत्य , (ङ)सत्य , (च)सत्य ,(छ) सत्य

3(क) द (ख) अ (ग) द (घ) स

4(क) जब अर्थव्यवस्था विकास के एक चरण से दूसरे चरण में प्रविष्ट होती है तो उसे दीर्घकालिक असंतुलन कहते है।

(ख) मौलिक असंतुलन को आधारभूत या स्थायी असंतुलन भी कहते है।

(ग) मौद्रिक और गैर-मौद्रिक उपाय। , (घ)तटकर या आयात प्रशुल्क

5(क) संरचनात्मक असंतुलन , (ख)दृश्य एवं अदृश्य , (ग)वाह्य,(घ)आन्तरिक

21.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. झिंगन, एम0एल0 (2005), "अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, दिल्ली, पृ0 324-334.
2. लाल, डॉ0 एस0 एन0 (2003), "अर्थशास्त्र मुद्रा, बैंकिग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोकवित्त", शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, पृ0 200-207.
3. लाल, डॉ0 एस0 एन0 (2010), "अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र", शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, पृ0 58-66.
4. अग्रवाल, एस0 एस0; बरला, सी0एस0 (1998), "अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र" , लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृ0 147-168.
5. मिश्र, डॉ0 जय प्रकाश (2009), "कृषि अर्थशास्त्र " साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ0 446.
6. सिन्हा, डॉ0 वी0सी0; डॉ0 पुष्पा (2011-12), "अर्थशास्त्र", एस0बी0डी0 पब्लिशिंग हाऊस, आगरा, पृ0 396, 405, 425.
7. सेठी, डॉ0 टी0टी0 (2009-10), "अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र", लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ0 159.
8. द टाइम्स आफ इण्डिया, 3 अप्रैल, 2012.

सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- पन्त, डॉ0 जे0 सी0; मिश्रा, डॉ0 जे0 पी0 (2011), ''भारतीय आर्थिक समस्याएँ'' , साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा.
- समसामयिक घटनासार (2009-10), ‘‘भारतीय अर्थव्यवस्था'' , एस0 एस0 पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद.

21.18 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) भुगतान संतुलन की संरचना की व्याख्या कीजिए।

(संकेत- चालू खाता, पूँजी खाता, सरकारी भुगतान खाता एवं भूल-चूक तथा अशुद्धियाँ के बारे में लिखे)

(ख) स्वतंत्रता के उपरान्त भारत के विदेशी व्यापार की चर्चा कीजिए।

(ग) क्या भुगतान संतुलन हमेशा संतुलित रहता है? इसकी व्याख्या कीजिए।

(घ) भुगतान संतुलन में असाम्य के प्रकार एवं कारणों की व्याख्या कीजिए।

इकाई 22: उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र

इकाई संरचना

22.1 प्रस्तावना
22.2 उद्देश्य
22.3 उदारीकरण नीति: एक परिचय
22.4 आर्थिक सुधार या नयी आर्थिक नीति की विशेषता
22.5 सार्वजनिक क्षेत्र: आशय, उद्देश्य एवं विशेषताएँ
22.6 उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान और महत्तव
22.7 सार्वजनिक क्षेत्र का विकास एवं उपलब्धियाँ
22.8 अभ्यास प्रश्न
22.9 सारांश
22.10 शब्दावली
22.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
22.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
22.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
22.14 निबंधात्मक प्रश्न

22.1 प्रस्तावना

भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह बाइसवीं इकाई है । इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि विदेशी व्यापार एवं भुगतान संतुलन किसे कहते हैं। आप भुगतान संतुलन में असंतुलन के कारणों की व्याख्या कर सकते हैं।

प्रस्तुत इकाई में उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान, निष्पादन एवं उसके उपलब्धियों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है। सार्वजनिक उपक्रम के उद्देश्य निजी क्षेत्र के उद्देश्य से भिन्न होते हैं, इसके बारे में विस्तार से चर्चा किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि उदारीकरण की नीति क्यों और किस परिस्थितियों में अपनायी गयी। सार्वजनिक क्षेत्र के विकास एवं उदारीकरण के दौर में इसकी सार्थकता को स्पष्ट कर सकेंगें।

22.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि-

- उदारीकरण क्या है ?
- नई आर्थिक नीति के क्या उद्देश्य है ?
- अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक उपक्रम किस तरह से कार्य करते हैं ?
- मिश्रित अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं ?
- सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रम में क्या अन्तर है ?

22.3 उदारीकरण नीति एक परिचय

ब्रिटिश साम्राज्य के लगभग 200 साल बाद भारत को 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली। भारत के आर्थिक विकास को जानने के लिए आपको यह समझना होगा कि उत्तराधिकार में किस तरह की अर्थव्यवस्था प्राप्त हुई। क्या यह पिछड़ी या विकासशील अर्थव्यवस्था थी? क्या यह कृषि अर्थव्यवस्था थी? या औद्योगिक अर्थव्यवस्था। अर्थशास्त्र् के विद्यार्थी होने के नाते आपको यह जानना होगा कि भारत सरकार उदारीकरण की नीति क्यों अपनायी। उदारीकरण की नीति अपनाने से पहलें भारत सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की अवधारणा को अपनाया । उत्तराधिकार में प्राप्त

अति पिछड़ी अर्थव्यवस्था का विकास करने के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाना नितान्त आवश्यक था।

मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसमें निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र् दोनों एक साथ आर्थिक विकास एवं समाज के सभी वर्गों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। इस व्यवस्था में स्वतंत्र् व्यापार के साथ-साथ राज्य द्वारा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप एवं परोक्ष नियंत्रण रहता है। इसके अतिरिक्त देश के सभी क्षेत्रों के विकास एवं धन की असमानता को कम करने के लिए देश के महत्वपूर्ण उद्योगों को सरकार अपने प्रबंधन एवं नियंत्रण में रखती है जिसे सार्वजनिक क्षेत्रों कहते हैं। निजी क्षेत्र को उद्योग एवं व्यवसाय स्थापित करने का अवसर दिया गया परन्तु निजी क्षेत्र के कार्य संचालन पर अनेक कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए थे। यहाँ पर आपको बता दें कि निजी क्षेत्रों के कार्य संचालन पर कड़े प्रतिबन्ध क्यों लगे हुए थे ? सरकार को हमेशा डर लगा रहता था कि निजी क्षेत्रों के विकास से कहीं संसाधनों एवं धन का असमान वितरण न हो जाए। देश के संसाधनों एवं धन का वितरण कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में सीमित न हो जाए। इसलिए सरकार निजी क्षेत्रों के कार्य संचालन पर प्रतिबंध व नियमन के साथ-साथ कुछ ही उद्योगों में प्रवेश दिया गया था।

सरकार आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्रों पर बहुत भारी मात्रा में व्यय किया। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में सार्वजनिक क्षेत्रों पर किया गया कुल व्यय रुपया 81.1 करोड़ था जो बढ़कर ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) में रुपया 3644718 करोड़ (2006-07 की कीमत पर) हो गया। सरकार सार्वजनिक क्षेत्रों के विकास में निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहती थी:

- गरीबी दूर करना
- आय और धन के वितरण में असमानता को कम करना
- सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक विकास, संवृद्धि
- रोजगार का सृजन करना।

सरकार की यह कठोर नीति अर्थव्यवस्था को औद्योगिक आधार दिया तथा इस दौरान औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर्ज भी हुई परन्तु अर्थव्यवस्था की दो समस्याएँ गरीबी और बेरोजगारी को पूरी तरह से कम नहीं कर पायी। इस नीति के दौरान ही हरित क्रान्ति का जन्म हुआ जिसके फलस्वरूप खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल की। शिक्षण संस्थानों ने वैज्ञानिकों एवं कुशल कारीगरों को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप औद्यागीकरण को मजबूत आधार मिला एवं प्रौद्योगिकी का विकास हुआ। यह तो इस कठोर नीति का सकारात्मक पहलू था। अब आप इसका नकारात्मक

पहलू देखों जो उदारीकरण की नीति को जन्म दिया। 1965-1980 के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था पूर्ण नियंत्रित अर्थव्यवस्था थी फलस्वरूप औद्योगिक उत्पादन के विकास दर में काफी गिरावट आयी। औद्योगिक उत्पादन का विकास दर इस अविध में मात्र 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहा जबकि 1950-65 में औद्योगिक उत्पादन का विकास दर 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष था। भारतीय अर्थव्यवस्था में औद्योगिक उत्पादन के विकास दर में गिरावट के निम्नलिखित कारण थे -

- निजी क्षेत्र के कार्य संचालन पर कड़े प्रतिबन्ध,
- लाइसेन्स व्यवस्था,
- सरकार द्वारा बनाये गये नियम आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण को कम करने में असफल हो गये,
- सार्वजनिक क्षेत्र में लाल-फीताशाही (red-tapism) भ्रष्टाचार, अकुशल प्रबन्धन एवं दक्षता की कमी,
- अधिकतर सार्वजनिक क्षेत्र हानि में जाने लगे उदाहरणार्थ 1980-81 में सरकार ने केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्रों में रुपया 18,207 करोड़ का निवेश किया था। ये लोक उपक्रम लाभ कमाना तो दूर ये रु.203 करोड़ की हानि दिखाने लगे,
- जो संस्थाएं इनके नियमन के लिए बनायी गयी थी वे अब इनके विकास के लिए रूकावट बनने लगी।
- इन्हीं सब कारणों से आर्थिक व्यवस्था चरमरा गयी। आर्थिक सुधार महसूस किया जाने लगा। परन्तु आप यहाँ पर ध्यान दें कि उदारीकरण नीति मात्रा सार्वजनिक क्षेत्र के नकारात्मक प्रभाव के कारण नही बनायी गयी थी। इसके अतिरिक्त उदारीकरण नीति अपनाने के कारण निम्नलिखित थे-

1. 1990-91 में राजकोषीय घाटे में जबरदस्त वृद्धि हुई। राजकोषीय घाटा 1981-82 में सकल घरेलू उत्पादन का 5.4 प्रतिशत था जो 1990-91 में बढ़कर सकल घरेलू उत्पादन का 8.4 प्रतिशत हो गया।
2. 1980-81 के बाद लगातार प्रतिकूल भुगतान संतुलन की स्थिति ने अर्थव्यवस्था को कमजोर बना दिया। उदाहरणार्थ 1980-81 में भुगतान शेष के चालू खाता में रु. 2214 करोड़ का घाटा दर्ज हुआ जो 1990-91 में बढ़कर रु.17367 करोड़ हो गया। इस घाटे को पूरा करने के लिए विदेशों से ऋण लेना पड़ा। 1980-81 में यह विदेशी ऋण सकल घरेलू

उत्पादन का 12 प्रतिशत था जो बढ़कर 23 प्रतिशत हो गया। भारत सरकार को अरेबियन देश जैसे ईराक, इजराइल आदि से भारी मात्रा में विदेशी विनिमय प्राप्त होता था। 1990-91 में ईराक युद्ध के पश्चात् पेट्रोल की कीमत में तीव्र वृद्धि के कारण अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुँची।

3. मुद्रा स्फीति में वृद्धि 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 16.7 प्रतिशत हो गयी।
4. सार्वजनिक क्षेत्रों के निष्पादन में भारी मात्रा में हानि हुई।
5. उदारीकरण नीति अपनाने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण विदेशी विनिमय मुद्रा कोष में जबरदस्त गिरावट थी। भारत के विदेशी विनिमय मुद्रा कोष में इतनी गिरावट आ गयी कि यह कोष 10 दिन के आयात बिल को भुगतान नहीं कर सकता था। 1990-91 मे विदेशी विनिमय कोष मात्रा रु. 6252 करोड़ रहा गया था जो कि 1986-87 में रु. 8159 करोड़ था। भारत की आर्थिक स्थिति इतनी खराब हो गयी कि तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर को विदेशी ऋणों से मुक्ति पाने के लिए देश का सोना गिरवी रखना पड़ा। ऐसी स्थिति में सरकार को विवश होकर अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थानों द्वारा बनायी गयी उदारीकरण नीति को अपनाना पड़ा। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से डालर 1.8 बिलियन का जमानत ऋण मांगा जिसके बदले में कोष ने भारत से आर्थिक सुधार की माँग की। इसके जबाब में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिंहा राव अपने वित्त मंत्री मनमोहन सिंह के निर्देशन में 1991 की आर्थिक उदारीकरण नीति की शुरूआत की।

22.4 आर्थिक सुधार या नयी आर्थिक नीति की विशेषता

आर्थिक सुधार इस मान्यता पर आधारित था कि बाजार की शक्तियाँ सरकार के विनियमन एवं कठोर नियंत्रण नीति की तुलना में अर्थव्यवस्था को अधिक गति प्रदान करेगी तथा प्रभावपूर्ण तरीके से मार्ग प्रशस्त करेगी। उदाहरणार्थ अल्पविकसित देश जैसे थाइलैण्ड, सिंगापुर, कोरिया इत्यादि उदारीकरण नीति के द्वारा ही तीव्र आर्थिक विकास हासिल किए। उदारीकरण नीति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1. **विनियमन एवं नियंत्रण नीति को ढीला करना:** नीति की सबसे प्रमुख विशेषताएँ निजी क्षेत्र के विनियमन और नियंत्रण नीति में ढील देने से सम्बन्धित है। पुरानी नीति के अन्तर्गत

निजी क्षेत्र के कार्य संचालन पर अनेक कड़े प्रतिबन्ध लगे हुए थे। नई नीति के अन्तर्गत प्रतिबन्ध को हटाकर निजी क्षेत्रों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता दे दी गयी।

2. **औद्योगिक लाइसेंसिंग एवं पंजीकरण का उन्मूलन**: 1991 की नई आर्थिक नीति में 6 प्रमुख उद्योगों को छोड़कर सभी उद्योगों को कुछ सीमा तक लाइसेन्स से मुक्त कर दिया गया। वे छः उद्योग जिस पर लाइसेन्स अभी भी जरूरी है वे हैं- (1) शराब, (2) सिगरेट, (3) रक्षा से सम्बन्धित उपस्करों, (4) औद्योगिक विस्फोटक, (5) खतरनाक रासायनिक पदार्थ, और (6) दवाईयाँ आदि।

   उपर्युक्त 6 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों से लाइसेन्स व्यवस्था उठा ली गयी है। इस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में नये उद्यमियों का प्रवेश आसान बन गया है।

3. **औद्योगिक उत्पादन क्षमता सीमा**: नई आर्थिक नीति के अन्तर्गत औद्योगिक उत्पादन क्षमता की अधिकतम सीमा को हटा दिया गया है। पुरानी नीति के अन्तर्गत लाइसेन्स देते समय सरकार की ओर से क्षमता सृजन की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी जाती थी जिसके ऊपर औद्योगिक इकाई अपना विस्तार नहीं कर सकती थी। क्षमता सृजन की उच्चतम सीमा को हटा देने से बड़े पैमाने के उत्पादन के विभिन्न लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं।

4. **छोटे उद्यमों की निवेश सीमा बढ़ा दी गयी**: नयी आर्थिक नीति के अन्तर्गत छोटे उद्यमों की सीमा को बढ़ाकर रुपया 1 करोड़ कर दी गयी। देश में सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रमों के सुदृढ़ विकास के लिए संसद द्वारा पारित सूक्ष्म लघु एवं मझोले उद्यम विकास अधिनियम 2005 को राष्ट्रपति के मंजूरी के पश्चात 2 अक्टूबर, 2006 से प्रभावी बना दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत उद्योगों को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है:

क. विनिर्माण उद्योग (ख) सेवा उद्योग

   a. **विनिर्माण उद्योग**: विनिर्माण उद्योग के अन्तर्गत सूक्ष्म उद्योग में निवेश सीमा 25 लाख रुपये तक रखा गया है जबकि लघु उपक्रम में निवेश सीमा रु. 25 लाख से रुपया 5 करोड़ तक तथा मध्यम उपक्रम में निवेश सीमा रु. 5 करोड़ से अधिक एवं रु. 10 करोड़ तक का निवेश सीमा रखा गया है।
   b. **सेवा उद्योग**: सेवा उद्योग के अन्तर्गत सूक्ष्म उपक्रम में रुपया 10 लाख तक का निवेश, लघु उपक्रम में निवेश सीमा रुपया 10 लाख से लेकर रुपया 2 करोड़ तक तथा मध्यम उपक्रम में रुपया 2 करोड़ से लेकर रुपया 5 करोड़ तक का निवेश सीमा रखा गया है।

5. **उत्पादकों को उत्पादन चयन के सम्बन्ध में छूट**: लाइसेन्स राज में केवल उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन होता था जिनके लिए लाइसेन्स प्राप्त था। उदारीकरण के दौर में अब उत्पादक बाजार में माँग के आधार पर वस्तु का उत्पादन करने के लिए स्वतंत्र है।
6. **पूँजीगत वस्तुओं एवं तकनीक का आयात करने की स्वतंत्रता**: उदारीकरण नीति के अन्तर्गत भारतीय उद्योग अपने उद्योगों को आधुनिक एवं विस्तार करने के लिए विदेश से कच्चा माल एवं आधुनिक तकनीक का आयात कर सकते हैं।
7. **ब्याज दर निर्धारण करने की स्वतंत्रता**: ब्याज दर निर्धारण के लिए बैंकों को अब केन्द्रीय बैंक भारतीय रिजर्व बैंक पर निर्भर नहीं है। अब सभी बैंक ब्याज दर निर्धारण करने के लिए स्वतंत्रता है।
8. **अर्थव्यवस्था को खुला रूप प्रदान किया गया**: अर्थव्यवस्था में आयात एवं निर्यात को अधिक सरल एवं सुविधाजनक बनाया गया है । अधिकांश आयातों पर से मात्रागत प्रतिबन्ध हटा लिया गया है जैसे कि आयात कोटा आदि। अब आयात विनियमन के लिए प्रशुल्क और वित्तीय उपकरणों का अधिक सहारा लिया जाता है। विदेशी उद्यमियों को निवेश, व्यापार और तकनीक के क्षेत्रों में आकर्षित करने के लिए अनेक उदारपूर्ण सुविधाओं की व्यवस्था की गयी है।
9. **निजी क्षेत्र का विस्तार:** पहली बार सातवीं पंचवर्षीय योजना (अप्रैल 1, 1985 - मार्च, 31, 1990) में निजी क्षेत्र के औद्योगिक निवेश में जहाँ 100 प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि की गयी, वहाँ यह वृद्धि सार्वजनिक क्षेत्र के लिए केवल 50 प्रतिशत ही थी। अनेक आर्थिक गतिविधियाँ या कार्यकलाप जो सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित थे , अब वे निजी क्षेत्र के लिए खोल दिए गए हैं। यही नहीं बल्कि अनेक सार्वजनिक उद्यम, विशेष रूप से ऐसे उद्यम जो कुशल ढंग से नहीं चल पा रहे हैं, निजी क्षेत्र को सौंपे जाने लगे हैं। विदेशी कम्पनियों के साथ किए जाने वाले सहयोग समझौतों के सम्बन्ध में नियमों को काफी ढीला और उदार बना दिया गया है।
10. अधिक बाजार-अभिमुखीकरण: जैसा कि आपको पहले ही बता दिया गया है कि उदारीकरण नीति बाजार तंत्र की कुशलता की मान्यता पर आधारित है। नयी आर्थिक नीति के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को लाइसेन्स-व्यवस्था, कोटा प्रणाली एवं परमिट से मुक्त करने एवं वित्तीय उपकरणों जैसे प्रशुल्क आदि की अधिक प्रमुखता से बाजार तंत्र अधिक प्रभावपूर्ण बन गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उदारीकरण नीति के अन्तर्गत मिश्रित अर्थव्यवस्था को कड़े नियंत्रणों एवं प्रतिबंधों की पुरानी व्यवस्था से हटाकर निजी क्षेत्र एवं सार्वजनिक क्षेत्र के विकास पर केन्द्रित

कर दिया गया है। निर्यात संवर्धन एवं निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान कर यह नीति देश की मिश्रित अर्थव्यवस्था को एक नयी दिशा की ओर मोड़ने का प्रयास है।

22.5 सार्वजनिक क्षेत्र - आशय, उद्देश्य एवं विशेषताएँ

सार्वजनिक उपक्रम, राजकीय उपक्रम, लोक उपक्रम या सार्वजनिक क्षेत्र जैसे शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में किया जाता है। अतः इन शब्दों को हम एक ही अर्थ में ग्रहण करेंगे। सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र का आधारभूत अन्तर यही है कि इनमें से पहले पर सार्वजनिक स्वामित्व होता है अर्थात इस क्षेत्र के उद्यमों पर सरकार का स्वामित्व होता है जबकि निजी क्षेत्र के उद्यमों पर लोगों का अर्थात व्यक्ति विशेष का निजी स्वामित्व रहता है। आपको यह जानना बहुत जरूरी है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम पर सरकार के अंशतः स्वामित्व एवं निजी क्षेत्र के अंशतः स्वामित्व को संयुक्त उद्यम कहते हैं। ऐसे मामलों में उद्यम को ‘सार्वजनिक उद्यम कहने का कारण यह है कि उस पर सार्वजनिक स्वामित्व का अंश अधिक होता है। सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के कार्यकलाप के बीच विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं है फिर भी उद्देश्य एवं विशेषताओं के आधार पर इन दोनों क्षेत्रों में अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है। (1) सार्वजनिक क्षेत्रों के उद्यमों पर सरकार का स्वामित्व होता है, जबकि निजी क्षेत्र के उद्यमों पर निजी साहसियों के हाथ में होता है। (2) सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना निजी उपक्रमों की तरह मात्र लाभ कमाने के लिए नहीं की जाती है बल्कि इनका लक्ष्य विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना भी होता है। (3) निजी क्षेत्र के उपक्रम कुछ लोगों और विशेष रूप से अपने स्वामियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं, जबकि सार्वजनिक उपक्रम न केवल सरकार बल्कि जनता ओर संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं। (4) सार्वजनिक उपक्रम की आवश्यक पूँजी मुख्यतः सरकार द्वारा बजट में व्यवस्था करके प्रदान की जाती है जबकि निजी क्षेत्र अपनी आवश्यक पूँजी शेयर, पूँजी बाजार एवं ऋण से प्राप्त करता है। (5) सार्वजनिक उपक्रम के प्रशासन एवं प्रबंध के सम्बन्ध में सरकारी प्रशासन की पद्धतियों एवं नियमों का पालन किया जाता है जबकि निजी क्षेत्र में प्रबंधन के विशेषज्ञों को रखा जाता है तथा ये सरकार के द्वारा मात्रा विनियमित किए जाते हैं।

22.6 उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान और महत्व

भारत में वृहत पैमाने के उद्योगों की शुरूआत सार्वजनिक क्षेत्र के माध्यम से हुई। आधारभूत उद्योग जैसे बिजली, गैस, जल की आपूर्ति, बैंक, बीमा व्यवसाय, खनन और विनिर्माण, परिवहन, भण्डारण और संचार व्यवस्था आदि के माध्यम से अर्थव्यवस्था को गति प्रदान की गयी। इस समय विश्व के

प्रायः सभी देशों में सार्वजनिक क्षेत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। विशुद्ध समाजवादी देशों में तो उत्पादन के सभी साधनों पर पूर्णतः सार्वजनिक क्षेत्र का ही बोलबाला होता है। मिश्रित आर्थिक प्रणाली में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विकासशील देशों के आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र को प्रधान स्थान प्राप्त है क्योंकि विकासशील देशों विशेषकर भारत का उद्देश्य हैः न्याय के साथ संवृद्धि। यह उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। सार्वजनिक क्षेत्र को अनेक प्रकार की भूमिका सौंपी गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र की विभिन्न भूमिकाओं का निरूपण इस प्रकार किया जा सकता है-

1. आधारिक संरचना की व्यवस्था- विकसित देशों में रेल, सड़क, बन्दरगाह, बिजली, जल, स्वास्थ्य, शिक्षा-प्रशिक्षण एवं संचार आदि की आवश्यक सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में उद्योगपतियों को स्वतः प्राप्त होती है। अल्पविकसित देशों में ऐसी स्थित नहीं है। यहाँ पर इनका अभाव पाया जाता है। तीव्र औद्योगीकरण के लिए आधारभूत संरचना का निर्माण आवश्यक होता है। आधारभूत संरचना के निर्माण में खर्च एवं जोखिम बहुत होता है। इसलिए ऐसे उद्योग में निजी उद्योगपति निवेश नहीं करना चाहता है।

2. विकासोन्मुखता: आजादी के बाद से ही सार्वजनिक क्षेत्र का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक एवं सामाजिक विकास रहा है। भारत जैसे विकासशील देश में इस उपकरण का प्रयोग ऐसी रणनीति को अमल में लाने के लिए कया गया है जो पूंजीगत वस्तु क्षेत्र पर आधारित संवृद्धि प्रक्रिया से सम्बन्धित है। सार्वजनिक क्षेत्रों के विकास के पीछे तर्क यह था कि उत्पादन क्षमता अविलम्ब प्राप्त करके अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाया जा सकता है और फिर कुछ समय बाद देश अधिक बड़े पैमाने पर उपभोग वस्तुएँ तैयार कर सकेगा। बीसवीं सदी में सोवियत रूस ने भी यही मार्ग अपनाया जबकि उन्नीसवीं सदी में इंग्लैण्ड द्वारा अपनाया गया मार्ग इससे भिन्न था क्योंकि वहाँ पहले उपभोक्ताओं की मांग को प्राथमिकता दी गयी थी , और इसके बाद पूँजीगत माल की मांग को स्थान दिया गया था।

देश की आर्थिक प्रगति में आधुनिकीकरण बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि नवीनतम तकनीक का विकास किया जाय। अणुशक्ति, इलेक्ट्रॉनिक्स आदि जैसे क्षेत्रों के विकास के लिए अणुशक्ति निगम, इलेक्ट्रानिक्स निगम आदि की स्थापना की गयी है।

3. उचित मूल्य: अनिवार्य वस्तुओं की पूर्ति करने के उद्देश्य से भी सार्वजनिक क्षेत्र का अपना महत्व है। उदाहरण के लिए भारत में जनता को अनिवार्य वस्तुओं को उचित मूल्य पर सुनिश्चित करने के लिए भारतीय खाद्य निगम, राज्य व्यापार निगम, खनीज एवं लौह वस्तु निगम आदि की स्थापना की गयी है।

4. आर्थिक विकास के लिए संसाधनों की व्यवस्था: आधारभूत ढॉचे के निर्माण एवं भारी इंजिनियंरिग उद्योग के विकास के लिए बहुत बड़े पैमाने पर संसाधन की आवश्यकता होती है। ऐसी परिस्थितियों में निजी क्षेत्र बड़े पैमाने पर संसाधन जुटाने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं इसलिए इन परिस्थितियों में सरकार जनता से ऋण ले सकती है, कर वसूल कर सकती है या अन्य देशों से भी ऋण प्राप्त कर सकती है। विश्व के मौद्रिक संस्थाएँ सरकारों के साथ ही लेनदेन पसन्द करते हैं। इन सबके अतिरिक्त सरकार के पास घाटे की वित्त व्यवस्था जैसी भी सुविधा उपलब्ध है जिसे हीनार्थ प्रबन्धन भी कहते हैं। घाटे की वित्त व्यवस्था की पूर्ति विदेशों से ऋण लेकर, आन्तरिक ऋण लेकर तथा अतिरिक्त मुद्रा निर्गमन करके की जाती है।

5. नियमिन तथा नियंत्रण- देश की अर्थव्यवस्था का नियमन तथा नियंत्रण करना राज्य का कार्य है। देश में सामान्य मूल्य स्तर में होने वाले उच्चावचन, मुद्रास्फीति एवं संकुचन, तेजी-मंदी आदि ऐसी घटनाएं है जिससे उपभोक्ता के साथ उत्पादक वर्ग भी प्रभावित होता है। सरकार अपने राजकोषीय नीति एवं रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की मौद्रिक नीति के द्वारा अर्थव्यवस्था को नियंत्रण करती है। भारतीय प्रतिभूति विनिमयन बोर्ड तथा बिमा नियामक प्राधिकरण के द्वारा अर्थव्यवस्था का नियमन व नियंत्रण करती है।

6. रक्षात्मक कार्य- सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत रक्षात्मक कार्य भी शामिल होते हैं जैसे देश की आन्तरिक एवं वाह्य सुरक्षा प्रदान करना आदि।

7. समाजवादी समाज की स्थापना एवं सामाजिक परिवर्तन- भारत सरकार ने समाजवादी समाज की स्थापना का व्रत लिया है। समाज के समाजवादी स्वरूप के लिए आवश्यक है कि औद्योगिक विकास का दायित्व पूर्णतया सरकार के हाथ में रहे। सार्वजनिक क्षेत्र सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में भी प्रयोग किए जाते हैं। इटालियन इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डस्ट्रीयल रिकन्स्ट्रक्शन के **प्रोफेसर पासकाले सारासेनी** ने सार्वजनिक क्षेत्र की इस भूमिका का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है- '**हमारा उद्देश्य इस्पात या मोटर कार बनाना नहीं है, हमारा लक्ष्य है इस्पात या कार निर्माण को सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक प्रगति का साधना बनाना**' उपर्युक्त वाक्य से आप समझ गये होंगे कि सार्वजनिक क्षेत्र का उद्देश्य क्या है? और यह किस प्रकार से निजी क्षेत्र से भिन्न है।

इन सबके अतिरिक्त सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम सार्वजनिक उपक्रमों में होने वाले लाभों का उपयोग जन-सामान्य के हित के लिए करते हैं, आर्थिक शक्ति के केन्द्रीयकरण पर नियंत्रण रखते हैं। रोजगार में वृद्धि को सुनिश्चित करते हैं। गरीबी को कम करने, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण रखने एवं देश की संतुलित आर्थिक विकास के लिए नीति निर्धारण करते हैं।

22.7 सार्वजनिक क्षेत्र का विकास एवं उपलब्धियाँ

स्वतंत्रता से पहले भारत में किसी प्रकार का सार्वजनिक क्षेत्र मैजूद नहीं था। रेल, डाकघर, बन्दरगाह आदि पर ब्रिटिश सरकार का स्वामित्व था। इनका उद्देश्य देश के प्रशासन को सुगम बनाना एवं ब्रिटिश उद्योगों तथा उनमें काम कर रहे मजदूरों के लिए भारत से कच्चा माल और खाद्य पदार्थ खरीदने तथा ब्रिटेन में बना माल इस देश में बेच कर ब्रिटिश व्यापारियों को मदद करना था। वास्तव में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1948 तथा औद्योगिक अधिनियम, 1951 के क्रियान्वयन के बाद हुआ। भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र की भूमिका को औद्योगिक नीति 1956 में स्पष्ट किया गया। इस क्षेत्र के स्पष्ट विभाजन के बाद से ही सार्वजनिक क्षेत्र का द्रुत गति से विकास सम्भव हो सका है। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास दो प्रकार से हुआ है- (1) विद्यमान उपक्रमों के राष्ट्रीयकरण द्वारा, (2) नये उपक्रमों की स्थापना के द्वारा। सार्वजनिक उपक्रमों को आप तीन भागों में बाँट सकते हैं-

1. **विभागीय प्रतिष्ठान (Departmental Undertaking)**: विभागीय प्रतिष्ठान के अन्तर्गत डाक और तार, रेलवे, आल इण्डिया रेडियो, दूरदर्शन, युद्ध सामग्री फैक्ट्री आदि शामिल है।
2. **विधि या कानून निगम (Statutory Corporation):** इसके अन्तर्गत भारतीय खाद्य निगम, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम , भारतीय जीवन बीमा , यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया, राज्य व्यापार निगम आदि आते हैं।
3. **सरकारी कम्पनी**: सरकारी कम्पनी के अन्तर्गत हिन्दुस्तान मशीन टूल्स, भारतीय इस्पात प्राधिकरण लि. (SAIL), भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स लि. (BHEL) आदि आते हैं।

देश की आर्थिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्र के योगदान का प्रमाण इस क्षेत्र द्वारा सृजित रोजगार करने की शक्ति से मिलता है। संगठित क्षेत्र में रोजगार का विवरण तालिका 22.1 में दिया गया है।

2. एनआईसी 1993 के अनुसार आंकड़े उपलब्ध नहीं होने के कारण जम्मू तथा कश्मीर, मणिपुर, मिजोरम, दमन और दीव से सम्बन्धित सूचना इस जोड़ में शामिल नहीं है।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि निजी क्षेत्र की तुलना में सार्वजनिक क्षेत्र अधिक रोजगार का सृजन करता है। सार्वजनिक क्षेत्र में नई आर्थिक नीति 1991 के दौरान 190.57 लाख व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्र में लगे हुए थे जबकि उसी अवधि में निजी क्षेत्र में मात्र 76.76 लाख व्यक्ति रोजगार में थे। सार्वजनिक क्षेत्र में 1991 की अवधि में 190.57 लाख व्यक्ति रोजगार में थे जिनकी संख्या घटकर वर्ष 2010 में 178.62 लाख व्यक्ति हो गये जबकि निजी क्षेत्र में रोजगार सृजन करने की क्षमता में

तालिका 22.1 संगठित क्षेत्र में रोजगार सार्वजनिक और निजी क्षेत्र
(31 मार्च की स्थिति के अनुसार लाख व्यक्ति)

	1991	1995	2000	2005	2009	2010
सार्वजनिक क्षेत्र	190.58	194.66	193.14	180.07	177.95	178.62
निजी क्षेत्र	76.77	80.59	86.46	84.52	102.91	107.87
लिंग के अनुसार						
सरकारी क्षेत्रः						
पुरूष	167.10	168.66	164.57	150.86	147.04	146.66
महिला	23.47	26.00	28.57	29.21	30.91	31.96
जोड़	190.57	194.66	193.14	180.07	177.95	178.62
निजी क्षेत्रः						
पुरूष	62.42	64.31	65.80	63.57	78.88	81.83
महिला	14.34	16.28	20.66	20.95	24.98	26.63
जोड़	76.76	80.59	86.46	84.52	103.77	108.46
सरकारी तथा निजी क्षेत्रः						
पुरूष	229.52	232.97	230.37	214.42	225.92	228.49
महिला	37.81	42.28	49.23	50.16	58.80	58.59
जोड़	267.38	275.25	279.60	264.58	281.72	287.08

स्रोतः सांख्यिकीय, आर्थिक समीक्षा, 2011-12, भारत सरकार

टिप्पणी- 1. सिक्किम, अरूणांचल प्रदेश, दादरा और नगर हवेली तथा लक्षद्वीप शामिल नहीं है क्योंकि इन्हें अभी तक इस कार्यक्रम में शामिल नहीं किया गया है।

वृद्धि देखने को मिली है, 1991 में 76.76 लाख व्यक्ति कार्यरत थे , इनकी संख्या बढ़कर 2010 में 108.46 लाख व्यक्ति हो गयी है, परन्तु निजी क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों की यह संख्या बढ़ने के बावजूद भी सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या से कम है। सरकारी और निजी क्षेत्र में कार्यरत पुरूष की तुलना में, दोनों ही क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है । सार्वजनिक क्षेत्र में 1991 में कार्यरत महिलाओं की संख्या 23.47 लाख थी जो बढ़कर 2010 में 31.96 लाख हो गयी अर्थात 1991 में यह 12.31 प्रतिशत थी जो 2010 में 17.80 प्रतिशत हो गयी। इसी तरह निजी क्षेत्र में भी कार्यरत महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई है । 1991 में 18.68 प्रतिशत महिलाएँ निजी क्षेत्र में कार्यरत थी जबकि 2010 में यह 24.55 प्रतिशत हो गयी।

सार्वजनिक क्षेत्र की निष्पादनता का उल्लेख तालिका 22.2 में स्पष्ट किया जा रहा है।

तालिका 22.2: भारी उद्योग के अन्तर्गत केन्द्रीय सार्वजनिक क्षेत्रों की उत्पादन निष्पादनता

(रु. करोड़ में)

	2007.08	2008.09	2009.10	2010.11
	वास्तविक	वास्तविक	अनुमानित	लक्ष्य
भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लि0	21401.00	28033.00	32000.00	35000.00
भारत पेट्रोलियम कार्पोरेशन लि0	191.77	239.99	285.00	385.00
हिन्दुस्तान पेपर कार्पोरेशन	774.06	677.31	735.92	825.80
स्कूटरर्स इण्डिया लि0	151.72	126.48	145.64	208.11
नेपा लि0	102.96	104.38	97.00	87.75
हिन्दुस्तान साल्ट्स लि0	12.56	27.29	25.42	29.08
हिन्दुस्तान मशीन्स टूल्स	233.69	118.18	225.00	402.48
कुल जोड़	27164.86	33878.03	38627.91	43377.59

स्रोत:Annual Report, 2009-10, Ministry of Industries & Public Enterprises, Governemnt of India.

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि कुल 32 सार्वजनिक क्षेत्र का वास्तविक उत्पादन 2007-08 में 27164.86 करोड़ रुपया था और यह उत्पादन निरंतर बढ़ता जा रहा है। अनुमानित है कि 2009-10 में 38627.91 करोड़ रुपया होने की संभावना है। भारत सरकार ने 2010-11 में 43377.59 करोड़ का लक्ष्य रखा है। भारत के सार्वजनिक उपक्रमों में सबसे ज्यादा उत्पादन नवरत्न कम्पनी, भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स लि. का है। वर्ष 2008-09 में 28033 करोड़ रुपया था। अनुमानित है कि यह उत्पादन बढ़कर 2009-10 में 32000 करोड़ होने की संभावना है। इस कम्पनी का उत्पादन 2010-11 में 35000 करोड़ रुपये का लक्ष्य रखा गया है। वर्ष 2008-09 में सार्वजनिक उपक्रमों का निष्पादनता का विवरण तालिका 22.3 में दिखाया गया है। उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र के निष्पादनता में वृद्वि (तालिका 22.3) के साथ-साथ सामाजिक हितों के संरक्षण का भी ध्यान रखा है। रोजगार और कार्य की दशाओं में सुधार हुआ है।

तालिका 22.3 सार्वजनिक उपक्रमों का निष्पादनता 2008-09 (रु. करोड़ में)

	2008-09	2007-08	पिछले साल में हुए परिवर्तन (प्रतिशत में)
निवेश (दीर्घकालीन+इक्विटी)	528951	455367	16.16
पूँजी (शुद्ध स्थिर पूँजी+कार्यशील पूँजी)	793096	723719	9.62
कुल टर्नओवर	1263405	1094484	15.43
लाभ अर्जित करने वाली सार्वजनिक उपक्रमों का लाभ	98652	91571	7.73
हानि सहने वाली सार्वजनिक उपक्रमों की हानि	14424	10257	40.63
शुद्ध मूल्य (Net worth)	584072	518530	12.64
घोषित लाभांश (dividend declared)	25493	28081	-9.21
कॉरपोरेट कर	151728	165994	-8.59
ब्याज भुगतान	40338	32200	25.25
केन्द्रीय खजाने में योगदान	151728	165994	-8.59
विदेशी विनिमय अर्जित	74184	67678	9.61
विदेशी विनिमय का वाह्य प्रवाह	428821	368228	16.46

स्रोत: Annual Report, 2009-10, Ministry of Industries & Public Enterprises, Governemnt of India.

22.8 अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) मिश्रित अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं ?

(ख) सूक्ष्म, लघु एवं मध्य उपक्रम किसे कहते हैं ?

(ग) सोवियत रूस और इंग्लैण्ड द्वारा आर्थिक विकास के लिए अपनायी गयी आर्थिक नीति की भिन्नता को स्पष्ट कीजिए।

(घ) हीनार्थ प्रबन्धन क्या है ?

2. सत्य/असत्य बताइये।

(क) निजी क्षेत्र के उद्यम अपने स्वामियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(ख) सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना केवल लाभ के उद्देश्य से की गयी।

(ग) सार्वजनिक क्षेत्र की कार्यशैली का नियंत्रण एवं नियमन शीर्ष स्तर पर बैठे राजनीतिज्ञों द्वारा किया जाता है।

(घ) सार्वजनिक उपक्रम सरकार, जनता और संसद के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(ङ) सार्वजनिक क्षेत्र के निर्यण प्रक्रिया में सार्वजनिक हित निहित होता है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

(क) सार्वजनिक उपक्रम की मुख्य उद्देश्य:

(अ) आधारिक संरचना की व्यवस्था (ब) विकासोन्मुखता

(स) न्याय के साथ संवृद्धि (द) उपर्युक्त सभी

(ख) सार्वजनिक क्षेत्र का अन्य नाम है:

(अ) लोक उपक्रम (ब) राजकीय उपक्रम

(स) इनमें से दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

(ग) भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास किया गया:

(अ) विद्यमान उपक्रमों के राष्ट्रीयकरण द्वारा

(ब) नये उपक्रमों की स्थापना द्वारा

(स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द में उत्तर वाले प्रश्न:

(क) सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि को क्या कहते हैं ?

(ख) नई आर्थिक नीति के मुख्य घटक बताइये।

(ग) संयुक्त उद्यम किसे कहते हैं ?

(घ) सार्वजनिक उपक्रम की पूँजी मुख्यतः किस स्रोत से आती है।

5. रिक्त स्थानों भरिए:

(क) उदारीकरण नीति ... की मान्यता पर आधारित है।

(ख) भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र की भूमिका को ... में स्पष्ट किया गया है।

(ग) मिश्रित आर्थिक प्रणाली में ... और ... दोनों ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

22.9 सारांश

मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र स्वतंत्र रूप से आर्थिक विकास के लिए कार्य करते हैं। सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना इस उद्देश्य के साथ की गयी कि ये उपक्रम संवृद्धि के साथ आर्थिक विकास सुनिश्चित करेंगे, धन एवं आय की असमानता को दूर करने में मदद करेंगे तथा गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करेंगे परन्तु लाल फीताशाही (red-tapism), कठोर नियंत्रण नीति एवं अकुशल प्रबंधन के कारण अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये फलस्वरूप आर्थिक व्यवस्था चरमरा गयी, जिसके कारण उदारीकरण की नीति अपनाई गयी। परन्तु उदारीकरण की नीति मात्र सार्वजनिक क्षेत्र में नकारात्मक प्रभाव के कारण ही नहीं बल्कि 1990-91 में राजकोषीय घाटे में जबरदस्त वृद्धि, मुद्रा स्फीति में वृद्धि एवं प्रतिकूल भुगतान संतुलन आदि के कारण अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थानों के दबाव में उदारीकरण की नीति अपनायी गयी। उदारीकरण के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के कार्य कुशलता में सुधार एवं उत्पादन के साथ-साथ निष्पादनता में वृद्धि हुई।

22.10 शब्दावली

क. सार्वजनिक क्षेत्र- सार्वजनिक क्षेत्र को लोक उपक्रम भी कहते हैं। लोक उपक्रम से आशय किसी ऐसे वाणिज्यिक और व्यापारिक उपक्रम से है जिसका स्वामित्व, प्रबन्ध और संचालन केन्द्र राज्य या स्थानीय सरकार अथवा किसी अन्य लोक संस्था के आधीन हो, जिनके निर्णय प्रक्रिया में सार्वजनिक हित निहित होता है।

इसकी उत्तरदेयता संसद के माध्यम से जनता के अधीन होते हुए भी ये उपक्रम अपने प्रबंधकीय व्यवस्था में काफी हद तक स्वायत्तशासी होते हैं । इनकी कार्यशैली का नियंत्रण एवं नियमन भी शीर्ष स्तर पर बैठे राजनीतिज्ञों द्वारा ही किया जाता है। इनका कार्य क्षेत्र बहुत ही विस्तृत होता है। ये उपक्रम मात्र लाभ के लिए ही कार्य नहीं करती है बल्कि देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए भी कार्य करती है।

ख. आर्थिक संवृद्धि: प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि को संवृद्धि कहते हैं।

ग. आर्थिक विकास: सामाजिक न्याय के साथ संवृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं।

घ. उदारीकरण: उदारीकरण से अभिप्राय उद्योग तथा व्यापार की अनावश्यक प्रतिबन्धों से मुक्त करके निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान करना तथा उद्योगों को अधिक प्रतियोगी बनाना।

ङ. राजकोषीय घाटा: कुल प्राप्ति (राजस्व प्राप्ति +पूँजी प्राप्ति) और कुल व्यय (योजना व्यय + गैर योजना व्यय) का अन्तर राजकोषीय घाटा कहलाता है। पूँजी प्राप्ति के अन्तर्गत ऋण का पुनर्भुगतान एवं अन्य प्राप्तियाँ आती है । दूसरे शब्दों में बजट घाटे में उधार एवं अन्य देयता को जोड़ देने पर भी राजकोषीय घाटा प्राप्त किया जा सकता है।

च. घाटे की वित्त व्यवस्था का हीनार्थ प्रबन्ध: साधारणतया जब सरकार का व्यय आय से अधिक हो जाता है और इस घाटे की पूर्ति के लिए जो व्यवस्था अपनायी जाती है उसे घाटे की वित्त व्यवस्था कहते हैं। घाटे की वित्त व्यवस्था को हीनार्थ प्रबन्धन भी कहते हैं।

छ. संकुचन - संकुचन को अवस्फीति भी कहते हैं। अवस्फीति वह स्थिति है जिसमें मुद्रा का मूल्य बढ़ता है अर्थात् कीमतें गिरती हैं। परन्तु स्फीति के पश्चात् कीमतों में गिरावट अवस्फीति नहीं बल्कि विस्फीति ;कपेपदसिंजपवदद्ध कहलाती है।

ज. भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड: इसकी स्थापना 12 अप्रैल, 1988 को की गयी। यह एक स्वायत्त संस्था है। इसका प्रमुख उद्देश्य स्टॉक निवेशकों को संरक्षण प्रदान करना तथा प्रतिभूति बाजार को विकसित एवं नियमित करना है।

22.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था है जिसमें निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र दोनों एक साथ आर्थिक विकास एवं समाज के सभी वर्गों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं । इस व्यवस्था में स्वतंत्र व्यापार के साथ-साथ राज्य द्वारा प्रत्यक्ष हस्तक्षेप एवं परोक्ष नियंत्रण रहता है।

(ख) नई आर्थिक नीति के अंतर्गत सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रमों की परिभाषा निम्नलिखित है- सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उपक्रम को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया हैः (1) विनिर्माण उद्योग, (2) सेवा उद्योग।

(1) विनिर्माण उद्योग: विनिर्माण उद्योग के अन्तर्गत सूक्ष्म उद्योग में निवेश सीमा 25 लाख रुपये तक रखा गया है जबकि लघु उपक्रम में निवेश सीमा रु. 25 लाख से रुपया 5 करोड़ तक तथा मध्यम उपक्रम में निवेश सीमा रु. 5 करोड़ से अधिक एवं रु. 10 करोड़ तक का निवेश सीमा रखा गया है।

(2) सेवा उद्योग: सेवा उद्योग के अन्तर्गत सूक्ष्म उपक्रम में रुपया 10 लाख तक का निवेश, लघु उपक्रम में निवेश सीमा रुपया 10 लाख से लेकर रुपया 2 करोड़ तक तथा मध्यम उपक्रम में रुपया 2 करोड़ से लेकर रुपया 5 करोड़ तक का निवेश सीमा रखा गया है।

(ग) सोवियत रूस द्वारा अपनायी गयी आर्थिक नीति पूँजीगत वस्तु क्षेत्र पर आधारित संवृद्धि प्रक्रिया से सम्बन्धित है। जबकि इंग्लैण्ड द्वारा अपनायी गयी आर्थिक नीति उपभोक्ताओं की माँग को प्राथमिकता देती है। और उसके बाद पूँजीगत माल का उत्पादन करती है।

(घ) साधारणतया जब सरकार का व्यय आय से अधिक हो जाता है और इस घाटे की पूर्ति के लिए जो व्यवस्था अपनायी जाती है उसे घाटे की वित्त व्यवस्था या हीनार्थ प्रबन्धन कहते हैं।

2. (क) सत्य (ख) असत्य (ग) सत्य (घ) सत्य (ङ) सत्य

3. (क) द, (ख) स, (ग) स

4. (क) आर्थिक विकास

(ख) उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण

(ग) सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम पर सरकार के अंशतः स्वामित्व एवं निजी क्षेत्र के अंशतः स्वामित्व को संयुक्त उद्यम कहते हैं।

(घ) सार्वजनिक उपक्रम की पूँजी मुख्यतः सरकार द्वारा बजट में व्यवस्था करके प्रदान की जाती है।

5. (क) बाजार तंत्र की कुशलता

(ख) औद्योगिक नीति 1956

(ग) सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र

22.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मिश्र, डॉ. जय प्रकाश; पंत डॉ. जे.सी. (2009), ''भारतीय आर्थिक समस्याएँ'', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ. 234-240
2. सिन्हा, डॉ. वी.सी.; डॉ.पुष्पा (2011-12), 'अर्थशास्त्र', एस.बी.डी. पब्लिशिंग हाऊस, आगरा, पृ. 248
3. अग्रवाल, ए.एन. (2007), 'भारतीय अर्थव्यवस्था विकास एवं योजना', न्यू एज इण्टरनेशनल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 229, 554-599

23.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- भारतीय अर्थव्यवस्था (2009-10) एस.एस. पब्लिकेशन्स (समसामयिक घटनासार), इलाहाबाद
- सिन्हा, डॉ. वी.सी.; डॉ. पुष्पा (2011-12), 'अर्थशास्त्र', एस.बी.डी. पब्लिशिंग हाउस, आगरा
- आर्थिक समीक्षा (2011-12), भारत सरकार

22.14 निबंधात्मक प्रश्न

(क) आर्थिक सुधार नीति की विस्तृत चर्चा कीजिए।

(ख) उदारीकरण के दौर में सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान एवं महत्व पर एक निबंध लिखिये।

(ग) सार्वजनिक क्षेत्र के विकास एवं उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

इकाई 23: विश्व व्यापार संगठन एवं भारत

इकाई संरचना

23.1 प्रस्तावना
23.2 उद्देश्य
23.3 प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी समझौता (गैट) और विश्व व्यापार संगठन
23.4 विश्व व्यापार संगठन
23.5 विश्व व्यापार संगठन का उद्देश्य
23.6 विश्व व्यापार संगठन का कार्य
23.7 विश्व व्यापार संगठन का संरचना
23.8 विश्व व्यापार संगठन: मंत्री -स्तरीय सम्मेलन तथा भारत पर समझौतों का प्रभाव
23.9 अभ्यास प्रश्न
23.10 सारांश
23.11 शब्दावली
23.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
23.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
23.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
23.15 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भूमण्डलीकरण एवं भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित यह तेईसवीं इकाई है। इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि सार्वजनिक क्षेत्र किसे कहते हैं तथा देश की अर्थव्यवस्था के विकास में इनकी भूमिका का व्याख्या कर सकते हैं।

प्रस्तुत इकाई में विश्व व्यापार संगठन और भारत के बारे में विस्तार से चर्चा किया गया है। विश्व व्यापार संगठन क्या है? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई तथा किन उद्देश्यों को लेकर बनाया गया आदि का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप विश्व व्यापार संगठन के महत्व को समझा सकेंगें तथा इस संगठन के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उदारीकरण एवं परिवीक्षण की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगें।

23.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगें कि-

- विश्व व्यापार संगठन क्या है?
- विश्व व्यापार संगठन में भारत की क्या स्थिति है?
- प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी सामान्य समझौता क्या है?
- ब्रेटन-वुड्ज संस्था किसे कहते हैं?
- विश्व व्यापार संगठन के सिद्धान्त क्या है?

23.3 प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी सामान्य समझौता (गैट) और विश्व व्यापार संगठन

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के व्यापारिक सम्बन्धों में पारस्परिक द्वेष एवं भेदभावपूर्ण प्रवृत्ति विकसित हुई। परिणामतः विश्व व्यापार की मात्रा में अभूतपूर्व गिरावट आयी। युद्धोत्तर काल में विश्व व्यापार में अमरीकी प्रभुत्व निरन्तर बढ़ता गया और अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में डालर की स्थिति निरन्तर सुदृढ़ होती गयी। विश्व व्यापार से विकसित राष्ट्र ही लाभान्वित होते रहे तथा अल्पविकसित देशों के आर्थिक एवं व्यापारिक हितों की पूर्ण उपेक्षा होती रही। अल्प विकसित देश विश्व व्यापार से लाभ नहीं उठा पा रहे थे। परिणामतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को समानता एवं

न्याय के सिद्धान्त के आधार पर संचालन एवं विकास हेतु द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास प्रारम्भ हुए। इस विषय पर ब्रेटनवुड्स अधिवेशन में काफी विचार विमर्श के बाद विश्व अर्थव्यवस्था के संचालन एवं नियमन हेतु तीन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं (1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, 2. अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक जिसे अब विश्व बैंक कहते हैं तथा 3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन) की स्थापना का विचार इसी अधिवेशन के प्रस्तावों की परिणति है किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना इस ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में नहीं हो पाया। ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में दो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना हो पायी। वे संस्था थी- अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष और विश्व बैंक। दोनों संस्थाओं की स्थापना 27 दिसम्बर 1945 को हुई। अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष की स्थापना वाशिंगटन में हुई। मुद्रा कोष ने वास्तविक रूप में 1 मार्च 1947 से कार्य प्रारम्भ किया जबकि विश्व बैंक 25 जून 1946 से अपना कार्य आरम्भ कर दिया। विश्व बैंक को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सह संस्था या पूरक संस्था के रूप में स्थापित किया गया था। विश्व बैंक के सहायक संस्था के रूप में चार अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना की गयी जिसे '**विश्व बैंक समूह**' कहा जाता है। ये संस्था थी अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम, बहुपक्षीय निवेश गारण्टी एजेन्सी तथा निवेश विवादों के निबटारे का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र। विश्व बैंक एवं मुद्रा कोष को ब्रेटन वुड्ज संस्था भी कहा जाता है क्योंकि ये दोनों संस्था ब्रेटन वुड्ज सम्मेलन की परिणति है।

ब्रेटन वुड्ज सम्मेलन में तीन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में से दो ही संस्था की स्थापना हो पायी परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की उदारता की नीति को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सन 1947 में जेनेवा में 'प्रशुल्क करों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता ' (गैट) की स्थापना की गयी। इस समझौते में 23 राष्ट्र सम्मिलित थे , 1948 से इसे व्यवहार में लाया गया। सन 1948 से लेकर 1994 तक 'गैट' विश्व व्यापार के विकास, सहयोग एवं उदारीकरण के लिए कार्य करती रही। यह एक अस्थायी संस्था एवं समझौता था। 1 जनवरी, 1995 को गैट को विश्व व्यापार संगठन से प्रतिस्थापित कर दिया था। इन तीनों संस्थाओं की स्थापना के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये थे -

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय तरलता की अल्पकालीन समस्याओं का निराकरण। संक्षप में राजकोषीय एवं मौद्रिक मुद्दों से सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण करना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं विकास बैंक (विश्व बैंक) की स्थापना निवेश बैंक की धारणा के आधार पर हुई है। इसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी विनियोग को प्रोत्साहन देना, सदस्य राष्ट्रों के विकास प्रक्रिया को त्वरित करने हेतु दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराना जिससे कि सदस्य देश अपनी

अर्थव्यवस्थाओं का सभी प्रकार का पुनर्निर्माण और विकास कर सके। संक्षेप में विश्व बैंक का उद्देश्य वित्तीय एवं संरचनात्मक विकास करना है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन का उद्देश्य विश्व व्यापार को नियमित करने के लिए उदार व्यापारिक व्यवस्था को विकसित करना। इससे अपेक्षा की गयी कि दीर्घकाल में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन विश्व व्यापार को एक स्वतंत्रता एवं उदार व्यापार व्यवस्था की स्थापना की ओर प्रेरित करेगा। दुर्भाग्यवश उपर्युक्त संस्थाओं में से अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक की स्थापना ही सम्भव हो सकी तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संघ की स्थापना के विचार को मूर्तरूप नहीं दिया जा सका।

प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी समझौता 1948 से 1994 तक विश्व व्यापार के लिए नियम बनाता रहा और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य को ऊँचाईयॉं दी। लगभग 47 वर्ष तक यह अस्थायी संस्था के रूप में कार्य किया।

ब्रेटन-वुड्ज संस्था- मुद्रा कोष और विश्व बैंक के साथ-साथ एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन के निर्माण के लिए एक समझौता हुआ जिसमें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन से अपेक्षा किया गया कि यह संस्था ब्रेटन वुड्स संस्था के साथ अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के व्यापार पक्ष को नियंत्रण करेगी। इस समझौते में 50 देशों ने भाग लिया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन का मसौदा बहुत ही महत्वाकांक्षी था। इसके अन्तर्गत विश्व व्यापार अनुशासन को विस्तृत कर महत्वपूर्ण मंत्रीस्तरीय निर्णय एवं घोषणाएं शामिल की गयी जिसमें महत्त्वपूर्ण समझौते वस्तुओं, सेवाओं, रोजगार सम्बन्धी नियम, अन्तर्राष्ट्रीय निवेश और बौद्धिक सम्पत्ति तथा बहुपार्श्विक व्यापार सम्मिलित है। 1947 में व्यापार एवं रोजगार विषय पर यूनाईटेड नेशन्स सम्मेलन, हवाना (क्यूबा) में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन के निर्माण का उद्देश्य रखा गया था। परन्तु अमरीकी कांग्रेस ने हवाना चार्टर का कभी समर्थन नहीं किया जबकि अमरीका भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन के प्रस्तावक देशों में से एक था। जिसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन गठित नहीं किया जा सका। इसके साथ-साथ 23 देशों ने जेनेवा में व्यापार रियायतों के लिए व्यापक प्रशुल्क बातचीत जारी रखने के लिए सहमत हो गये जिन्हें प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी समझौता (गैट) में शामिल किया गया। इस समझौते पर 30 अक्टूबर 1947 को हस्ताक्षर किये गए। इस समझौते पर अन्य देशों के हस्ताक्षर के बाद इसे 1 जनवरी, 1948 से गैट के रूप में लागू कर दिया गया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की स्थापना न होने के कारण गैट ही 1948 से लेकर 1994 तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के बहुपक्षीय संधि के रूप में कार्य करता रहा। आपको बता दें कि गैट न तो कोई संगठन था और न ही न्यायालय। यह सामान्यतः एक बहुपक्षीय संधि थी जो विश्व व्यापार का 80 प्रतिशत पूरा करती थी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के आचार

नियमों की एक संहिता वाली और व्यापार उदारीकरण की कार्यप्रणाली युक्त यह एक निर्णय लेने वाली संस्था थी। जिसके प्रतिनिधियों की स्थायी परिषद् का मुख्यालय जेनेवा मे था। इसका कार्य बहुपक्षीय आधार पर व्यापार उदारीकरण के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित करना था।

मुख्य रूप से यह समझौता (गैट) चार महत्वपूर्ण सिद्धांतों पर आधारित था-

(1) विभिन्न देशों के बीच बिना भेद-भाव के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाय।

(2) विदेशी व्यापार को प्रभावित करने हेतु केवल प्रशुल्क-दरों का आश्रय लिया जाय।

(3) एक देश दूसरे देश के लिए क्षतिप्रद नीति अपनाने से पूर्व उस (दूसरे) देश से विचार-विमर्श करे, तथा

(4) ऐसे कदम उठाये जायें जिनसे प्रशुल्क दरों में परस्पर विचार-विमर्श के माध्यम से कमी की जा सके।

अपने मौलिक रूप में यह समझौता सभी राष्ट्रों के साथ समान व्यवहार करने के सिद्धांत पर आधारित था इसलिये यह व्यवस्था की गयी थी प्रशुल्क दरों में की जाने वाली कटौती एक पक्षीय न होकर पारस्परिक लाभ के आधार पर हो।

गैट का '**समझौता** ' चार भागों में विभाजित किया गया थाः

1. प्रथम भाग में समझौते से अनुबन्धित देशों के प्रमुख कर्तव्यों का उल्लेख था,

2. द्वितीय भाग में उचित व्यापार हेतु आचरण-संहिता की व्याख्या थी,

3. तृतीय भाग में सदस्यता प्राप्त करने तथा परित्याग करने से सम्बद्ध नियमावली थी,

4. चतुर्थ भाग विकासशील देशों के व्यापार के विस्तार से सम्बद्ध था। इस भाग में विकासशील देशों को दी जाने वाली विशेष रियायतों का विवरण प्रस्तुत किया गया था। यह भाग 1965 में जोड़ा गया था।

गैट का आठवां राउण्ड अन्तिम राउण्ड था। इसी राउण्ड में विश्व व्यापार संगठन का निर्माण किया गया था। गैट व्यापार राउण्ड को निम्नलिखित सारणी में दिखाया गया है-

सारणी 23.1 - गैट व्यापार दौर

वर्ष	स्थान का नाम	विषय जिस पर चर्चा किया गया	देश
1947	जेनेवा	प्रशुल्क	23
1949	अनेसी	प्रशुल्क	13
1951	तोरके	प्रशुल्क	38
1956	जेनेवा	प्रशुल्क	26
1960—61	जेनेवा (डिल्लन दौर)	प्रशुल्क	26
1964—67	जेनेवा (केनेडी दौर)	प्रति-राशिपातन उपाय और प्रशुल्क (Anti-dumping measures and tariff)	62
1973—79	जेनेवा (टोक्या दौर)	प्रशुल्क, गैर-प्रशुल्क उपाय	102
1986—94	जेनेवा (उरूग्वे दौर)	प्रशुल्क, गैर प्रशुल्क उपाय, सेवा, बौद्धिक सम्पत्ति, विवाद समझौता, टेक्सटाइल्स, कृषि, विश्व व्यापार संगठन का निर्माण आदि	123

23.4 विश्व व्यापार संगठन (World Trade Orgazation)

विश्व व्यापार संगठन उरूग्वे दौर की वार्ताओं के बाद हुए समझौतों को कार्य रूप देने एवं उनके अनुपालन की देख-रेख करने के लिए स्थापित एक व्यापारिक संगठन है। विश्व व्यापार संगठन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उदारीकरण एवं परिवीक्षण से अभिप्रेरित है। उरूग्वे दौर के गैट विचार विमर्श 15 अप्रैल, 1994 को माराकेश (मोरक्को) के अन्तर्गत प्रशुल्क दरों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता को विश्व व्यापार संगठन के नाम से 1 जनवरी, 1995 को प्रतिस्थापित किया गया। इसलिए विश्व व्यापार संगठन कोई नई संस्था नहीं है बल्कि WTO समझौता उरूग्वे समझौता ही है, जिसके द्वारा प्रारम्भिक प्रशुल्क दरों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट), अब WTO समझौते का ही एक भग बन गया है जो 1 जनवरी, 1995 से काम करना आरम्भ कर दिया है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जनवरी 1, 1995 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सम्बन्ध में सबसे बड़ा सुधार था। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना, 1948 में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की परिकल्पना का एक साकार रूप है। 1948 से 1994 तक का इतिहास का अधिकांश हिस्सा जेनेवा में लिखा गया। यह एक लम्बी यात्रा है जो 1948 में हवाना (क्यूबा) में शुरू हुई जो अनेसी (फ्रांस), तोरके (यू.के.), टोक्यो (जापान), पुन्टा डेल इस्ट (उरूग्वे), मान्ट्रील (कैनेडा), बुजैलस (बेल्जियम) और अन्तिम में 1994 में माराकेश, मोरोक्को तक चली। संक्षेप में

हवाना से लेकर माराकेस तक की यात्रा ने उरूग्वे दौर को जन्म दिया। इसी उरूग्वे दौर में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का निर्णय लिया गया।

अभी तक के गैट और विश्व व्यापार संगठन के डायरेक्टर जनरल के नाम निम्नलिखित सारणी में दी गयी है-

सारणी 23.2 गैट एवं विश्व व्यापार संगठन के डायरेक्टर जनरल के नाम

क्रम	नाम	कार्यभार ग्रहण तिथि	सेवा निवृत्ति तिथि	देश
1	Sir Eric Wyndham White	1948	1968	U.K.
2	Olivier Long	1968	1980	Switzerland
3	Arthur Dunkel	1980	1993	Switzerland
4	Peter Southerland	1-7-1993	1-5-1995	Ireland
5	Renato Ruggiero	1-05-1995	1-8-1999	Italy
6	Mike Moore	1-08-1999	1-08-2002	New Zealand
7	Supachai Panitchpakdi	1-08-2002	1-08-2005	Thailand
8	Pascal Lamy	1-08-2005	--	France

विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय जेनेवा (स्वीटजरलैण्ड) में है । इसे उरूग्वे दौर समझौते (1986-94) के द्वारा जनवरी 1,1995 में स्थापित किया था। 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन के 77 देश सदस्य थे , जिनकी संख्या वर्ष 2011 में बढ़कर 157 हो गयी है । भारत संस्थापक देशों में से एक है ।

23.5 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य

विश्व व्यापार संगठन के मुख्य उद्देश्यों का वर्णन निम्नलिखित है-

1. विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा उत्पादन में वृद्धि करना,
2. जीवन स्तर में वृद्धि करना,
3. विश्व में उपलब्ध साधनों का उपयोग करना,

4. पूर्ण रोजगार की दिशा में अर्थव्यवस्था को प्रवृत्त करना तथा वास्तविक आय एवं प्रभावपूर्ण माँग में वृहत स्तरीय ठोस वृद्धि करना,
5. दो देशों की अपेक्षा अनेक देशों के व्यापार की संवृद्धि हेतु वार्ताएँ आयोजित करना ताकि विभिन्न देशों के बीच व्यापार में सरकारी हस्तक्षेप एवं बाधाओं को न्यूनतम किया जा सके।

उपर्युक्त उद्देश्य प्रशुल्क एवं व्यापार सम्बन्धी समझौता के भी थे । इनके अतिरिक्त डब्लू.टी.ओ. के अन्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. वस्तुओं के साथ सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना,
2. अविरल विकास की अवधारणा को स्वीकार करना,
3. पर्यावरण का संरक्षण एवं सुरक्षा करना,
4. सदस्य देशों के अधिकार और कर्तव्य सम्बन्धित अधिकारों के लिए झगड़ा निपटान प्रणाली के अन्तर्गत समस्याओं का समाधान करना।
5. बौद्धिक संपत्ति अधिकारों के व्यापार सम्बन्धी पहलुओं एवं नियमों का पालन करना।

23.6 विश्व व्यापार संगठन का कार्य

विश्व व्यापार संगठन का कुछ महत्वपूर्ण कार्य निम्नलिखित है-

1. विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुपार्श्विक समझौते के कार्यान्वयन, प्रशासन एवं परिचालन हेतु सुविधाएँ प्रदान करना,
2. यह समझौते के झगड़ा-निपटान नियमों तथा प्रक्रियाओं की व्याख्या का प्रबंध-संचालन करता है,
3. व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित नियमों व प्रावधानों को लागू करना,
4. वैश्विक आर्थिक नीति निर्माण में अधिक सामंजस्य भाव लाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा विश्व बैंक से सहयोग करना,
5. अल्पविकसित देश एवं विकासशील देश विश्व व्यापार संगठन के नियमों व अनुशासन का पालन एवं सामंजस्य कर सके इसके लिए प्रविधि एवं प्रशिक्षण सहयोग प्रदान करना।

23.7 विश्व व्यापार संगठन का संरचना

विश्व व्यापार संगठन का संरचना अथवा प्रशासन एक मंत्रीय सम्मेलन द्वारा संचालित होता है। इसकी संरचना को चार्ट द्वारा दर्शाया गया है-

विश्व व्यापार संगठन का संरचना

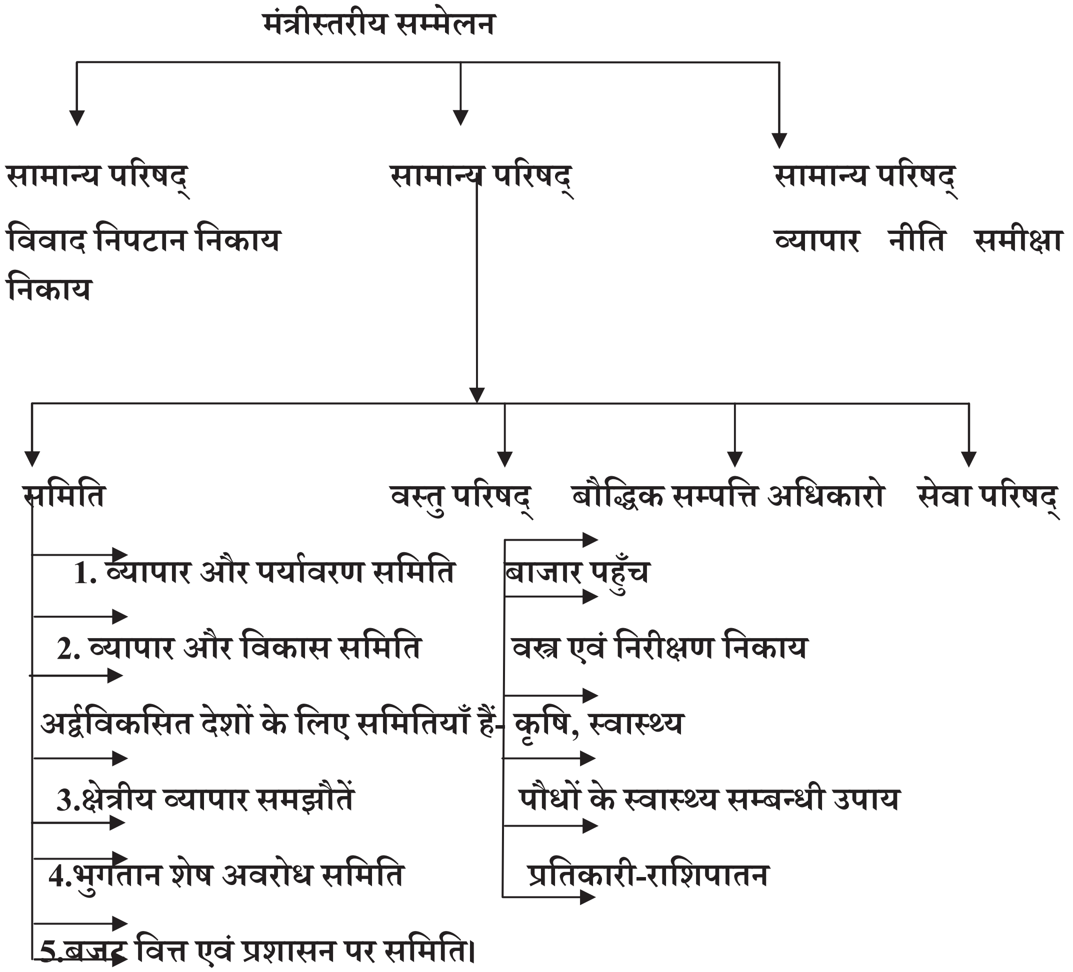

सर्वोच्च प्राधिकार

उपर्युक्त चार्ट में डब्लू.टी.ओ. का संरचना दिखाया गया है। मंत्रीस्तरीय सम्मेलन सर्वोच्च संस्था है। डब्लू.टी.ओ. की संरचना के मंत्रीय सम्मेलन में सब सदस्यों के प्रतिनिधि होते हैं जो कम से कम दो

वर्ष में एक बार मिलते हैं या सदस्य देश के राजदूत नियमित रूप से जेनेवा में मिलते रहते हैं। सामान्यतः निर्णय सभी सदस्यों की सहमति के द्वारा लिया जाता है। इस संदर्भ में डब्लू.टी.ओ., ब्रेटन-वुड्ज संस्था, मुद्रा कोष और विश्व बैंक संस्था से अलग है, जहाँ संस्था के मुखिया या बोर्ड आफ डायरेक्टर्स निर्णय लेते हैं। यह डब्लू.टी.ओ. की संपूर्ण कार्यप्रणाली को चलाता है और तदनुरूप आवश्यक कदम उठाता है। मंत्रीय सम्मेलन डब्लू.टी.ओ. की प्रशासक समिति है जो इसके कार्यों को अंजाम देने के लिए उत्तरदायी है। यह सम्बद्ध बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के अन्तर्गत किसी भी विषय पर निर्णय लेने का अधिकार रखती है। मंत्रीय सम्मेलन बहुपक्षीय व्यापार समझौतों सम्बन्धी कार्यो के निर्वाह हेतु पाँच क्रियात्मक समतियाँ है। ये हैं- (1) व्यापार और पर्यावरण समिति, (2) व्यापार और विकास समिति, अर्द्धविकसित देशों के लिए समितियाँ हैं- (3) क्षेत्रीय व्यापार समझौते, (4) भुगतान शेष अवरोध समिति और (5) बजट, वित्त एवं प्रशासन पर समिति।

द्वितीय स्तर: सामान्य परिषद

मंत्री सम्मेलन के नियमित कार्य निम्नलिखित निकायों के द्वारा किया जाता है-

(1) सामान्य परिषद, (2) विवाद निपटान निकाय, और (3) व्यापार नीति समीक्षा निकाय।

वास्तव में उपर्युक्त तीनों निकाय एक ही है। विश्व व्यापार संगठन के अनुसार ये तीनों सामान्य परिषद है। सामान्य परिषद होने के बावजूद भी ये तीनों भिन्न-भिन्न सन्दर्भों के रूप में कार्य करती है। इन तीनों सामान्य परिषदों में डब्लू.टी.ओ. के सदस्य होते हैं जो मंत्री सम्मेलन को परिषद् के कार्यों की सूचना देते रहते हैं।

तृतीय स्तर: व्यापार व अन्य हेतु परिषद्

सामान्य परिषद् के अतिरिक्त तीन अन्य परिषदें हैं जो व्यापार के विभिन्न व्यापाक क्षेत्रों के कार्य करती है तथा इसकी सूचना सामान्य परिषद् को देती है। यह तीन अतिरिक्त परिषद् हैं-

(1) वस्तुओं के व्यापार हेतु परिषद् (वस्तु परिषद्);

(2) सेवाओं के व्यापार हेतु परिषद् (सेवा परिषद्);

(3) बौद्धिक सम्पत्ति अधिकारों के व्यापार सम्बन्धी पहलुओं के लिए परिषद् ट्रीप्स परिषद्।

उपयुक्त परिषद् अपने-अपने कार्य करती हैं तथा सामान्य परिषद् को कार्यों से अवगत कराती है। इन परिषदों के अन्य सहायक संस्थाएँ है जिसे चार्ट में दिखाया गया है।

चतुर्थ स्तर: महत्त्वपूर्ण कार्य

प्रत्येक उच्च परिषद् की अनेक सहायक समितियाँ होती है जो अपने-अपने कार्य करती है तथा अपने परिषद् को कार्यों से अवगत कराती है। व्यापार परिषद् की 11 समितियाँ है। ये हैं- बाजार पहुँच, वस्त्र् एवं निरीक्षण निकाय, कृषि, स्वास्थ्य एवं पौधों के स्वास्थ्य सम्बन्धी उपाय, प्रतिकारी-राशिपातन आदि जिसे चार्ट में दिखाया गया है।

विश्व व्यापार संगठन के सभी सदस्य, सभी समितियाँ एवं परिषद् में भाग ले सकते हैं सिवाय अपील निकाय, विवाद निपटान पैनल, वस्त्र निरीक्षण निकाय और बहुपार्श्विक समिति के सेवा परिषद्द्व बहुपार्श्विक समिति के कार्यों को चार्ट में दिखाया गया है। सामान्य परिषद् स्तर पर विवाद निपटान निकाय के दो सहायक संस्था होती है- (1) अपील संबंधी निकाय, एवं (2) विवाद निपटान पैनल, जो विवादों को सुलझाती है।

23.8 विश्व व्यापार संगठन: मंत्री-स्तरीय सम्मेलन तथा भारत पर समझौते का प्रभाव

विश्व व्यापार संगठन का प्रारम्भ से सदस्य होने के कारण भारत को इसके सदस्य देशों को निर्यात करने में अधिकतम अनुग्रहित राष्ट्र के व्यवहार का लाभ प्राप्त होता है। अभी तक विश्व व्यापार संगठन में छह मंत्री -स्तरीय सम्मेलन हो चुके हैं। जैसा कि आप पहले से ही जानते हैं कि मंत्री -स्तरीय सम्मेलन विश्व व्यापार संगठन की सर्वोच्च प्राधिकार है, यह वास्तव में शिर्ष निर्णय लेने की व्यवस्था है। मंत्री -स्तरीय सम्मेलन में संगठन के मुख्य कार्यकारी, महानिदेशक के चयन के अलावा सामान्य परिषद् के कामकाज की समीक्षा होती है। इसके अतिरिक्त विश्व व्यापार समझौतों पर बातचती भी होती है, जिसका उद्देश्य मुक्त व्यापार के मार्ग में खड़ी बाधाओं को हटाना होता है। अभी तक अग्रांकित छह सम्मेलन हुए हैं जिसे सारणी 23.3 में दिखाया गया है।

शुरू के पहले दो सम्मेलनों सिंगापुर (1996) और जिनेवा (1998) में बड़ी आसानी से निर्णय हो गये। सिंगापुर सम्मेलन में अमेरिका के नेतृत्व में विकसित देश श्रम मानकों को व्यापार के साथ जोड़ना चाहते थे। विकासशील देशों ने इसका विरोध किया। उनका तर्क था कि यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का विषय है और इसे डब्लू.टी.ओ. से अलग रखा जाय। विकसित देशों ने इसे मान लिया। सियेटल सम्मेलन में अमेरिका का प्रयास था कि बायोटेक्नालॉजी को वार्ता में शामिल किया जाय। परन्तु उपभोक्ता समूह, श्रम संघों, पर्यावरणवादियों द्वारा इसका विरोध किया गया। चौथे सम्मेलन की मुख्य विशेषता यह थी कि इसमें विकासशील देशों के लक्ष्यों और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए दोहा डेवलपमेंट एजेण्डा स्वीकार किया गया। पॉचचॉ मंत्री -स्तरीय सम्मेलन में ,

सारणी 23.3 विश्व व्यापार संगठन के मंत्री स्तरीय सम्मेलन

क्रम संख्या	स्थान एवं वर्ष	विषय
आरम्भिक मंत्री–स्तरीय सम्मेलन	सिंगापुर दिसम्बर 9–13, 1996	मुद्दों (विदेशी निवेश, प्रतिस्पर्द्धा, व्यापार सुविधा तथा सरकारी खरीद में पारदर्शिता) को लेकर विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में उत्पन्न असहमति को सिंगापुर मुद्दे के नाम से जाना गया।
दूसरा मंत्री–स्तरीय सम्मेलन	जिनेवा (स्वीट्जरलैण्ड), मई 18–20, 1998	भारत ने क्षेत्रीय व्यापारिक मुद्दों के विस्तार एवं विकसित देशों के भेदभावपूर्ण नीति का विरोध किया।
तृतीय मंत्री–स्तरीय सम्मेलन	सिएटल (वाशिंगटन) नवम्बर 30, दिसम्बर 3, 1999	इस सम्मेलन में कुछ नये विषयों पर विचार किया गया। ये विषय थे– बाजार पहुँच, कृषि सेवाओं के व्यापार सम्बन्धी समझौते आदि पूरे विश्व को आकर्षित किया। बिना घोषणा पत्र जारी किये स्थगित कर दिया गया।
चतुर्थ मंत्री–स्तरीय सम्मेलन	दोहा (कतार) नवम्बर 9–14, 2001	इसमें कृषि सेवाओं व औद्योगिक उत्पादों के व्यापार विस्तार तथा पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों पर नये सिरे से विचार करने के प्रस्ताव थे। भारत की मुख्य आपत्ति चार सिंगापुर मुद्दों को लेकर थी। इस सम्मेलन में चाइना तथा ताईवान को सदस्य बनाया गया।
पंचम मंत्री स्तरीय सम्मेलन	कानकुन (मैक्सिको) सितम्बर 10–14,	यह सम्मेलन मुख्य रूप से कृषि पर केन्द्रित रहा। विकासशील देशों ने

सारणी 23.3 विश्व व्यापार संगठन के मंत्री स्तरीय सम्मेलन

क्रम संख्या	स्थान एवं वर्ष	विषय
आरम्भिक मंत्री–स्तरीय सम्मेलन	सिंगापुर दिसम्बर 9–13, 1996	मुद्दों (विदेशी निवेश, प्रतिस्पर्द्धा, व्यापार सुविधा तथा सरकारी खरीद में पारदर्शिता) को लेकर विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में उत्पन्न असहमति को सिंगापुर मुद्दे के नाम से जाना गया।
दूसरा मंत्री–स्तरीय सम्मेलन	जिनेवा (स्वीट्जरलैण्ड), मई 18–20, 1998	भारत ने क्षेत्रीय व्यापारिक मुद्दों के विस्तार एवं विकसित देशों के भेदभावपूर्ण नीति का विरोध किया।
तृतीय मंत्री–स्तरीय सम्मेलन	सिएटल (वाशिंगटन) नवम्बर 30, दिसम्बर 3, 1999	इस सम्मेलन में कुछ नये विषयों पर विचार किया गया। ये विषय थे– बाजार पहुँच, कृषि सेवाओं के व्यापार सम्बन्धी समझौते आदि पूरे विश्व को आकर्षित किया। बिना घोषणा पत्र जारी किये स्थगित कर दिया गया।
चतुर्थ मंत्री–स्तरीय सम्मेलन	दोहा (कतार) नवम्बर 9–14, 2001	इसमें कृषि सेवाओं व औद्योगिक उत्पादों के व्यापार विस्तार तथा पर्यावरण सम्बन्धी मुद्दों पर नये सिरे से विचार करने के प्रस्ताव थे। भारत की मुख्य आपत्ति चार सिंगापुर मुद्दों को लेकर थी। इस सम्मेलन में चाइना तथा ताईवान को सदस्य बनाया गया।
पंचम मंत्री स्तरीय सम्मेलन	कानकुन (मैक्सिको) सितम्बर 10–14,	यह सम्मेलन मुख्य रूप से कृषि पर केन्द्रित रहा। विकासशील देशों ने

विकासशील देशों ने दावा किया कि कृषि सब्सिडी में कटौती करने के लिए ही अमेरिका ने **'ग्रीन बॉक्स'** व **'ब्लू बॉक्स'** जैसे प्रावधान कर रखे हैं। कृषि सब्सिडी के मामलें में अमेरिका व यूरोपीय संघ के कठोर रवैये तथा सिंगापुर मुद्दों पर वार्ता के मामलो में विकासशील देशों के कड़े प्रतिरोध के कारण यह सम्मेलन विफल हो गया। छठा मंत्री -स्तरीय सम्मेलन हांगकांग में विकसित देशों ने 2013 तक कृषि में निर्यात सब्सिडी हटाने की बात मान ली तथा विकासशील देशों के किसानों की जिविका बनाये रखने के लिए सब्सिडी देने पर अपनी सहमति दे दिए। इतना ही नहीं भारत और ब्राजील के नेतृत्व में 110 देशों के दबाव के फलस्वरूप विकासशील देशों को यह अधिकार मिल गया है कि वे अपने कुछ उत्पादों को विशेष उत्पाद की श्रेणी में रख सकते हैं जिन पर

सीमा शुल्क में कटौती नहीं करनी होगी। विशेष सुरक्षा प्रावधान के तहत आयात बढ़ने की स्थिति में देश तटकर लगाकर उसे महँगा कर सकते हैं। सेवाओं जैसे बैंकिंग, बीमा, शिक्षा, विधि, अंकेक्षण, प्रबन्ध परामर्श सेवा, फुटकर व्यापार, मनोरंजन आदि के आयात पर प्रतिबन्ध कम करने के लिए भी कहा गया। हांगकांग सम्मेलन में कृषि तथा गैर कृषि बाजार पहुँच के लिए प्रतिमान 30 अप्रैल 2006 तक तैयार कर लिए जायेंगे और 2006 के अन्त तक इन पर सहमति प्राप्त कर ली जायेगी परन्तु यह सम्भव न हो सका। वर्ष 2006, 2007, 2008 में वार्ताएँ शुरू हुई परन्तु विकसित देशों तथा विकासशील देशों के बीच सहमति नहीं बन पायी।

आखिर क्या है गतिरोध का कारण? दरअसल विकसित देशों के दबाव के चलते विकासशील देशों के पेटेंट कानूनों को बदल दिया गया। लेकिन विकसित देशों ने कृषि पर दी जाने वाली अपनी परिदान को घटाने का वायदा नहीं निभाया। व्यापार संबंधित बौद्धिक संपदा समझौते (ट्रिप्स) का कार्यान्वयन गरीब लोगों के जनस्वास्थ्य के कीमत पर हो रहा है। डब्लू.टी.ओ. ने दवा निर्माता कंपनियों के लाभों को तो संरक्षित किया है पर साथ ही सरकारों से अपने-अपने देश में जनस्वास्थ्य की रक्षा का अधिकार छिन लिया है, परिणामस्वरूप, लाखों लोग बिना दवाई के दम तोड़ने को विवश है। ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि अब विकासशील देशों की दवा कंपनियां नियम आधारित अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था के कारण सस्ती जेनेटिक दवाएं नहीं बना सकती। दूसरी ओर विकसित देश कृषि पर दी जाने वाली परिदान को घटाने के बजाय चार गुना बढ़ा दिया। इन देशों ने अपनी तीन चोथाई से भी अधिक परिदान को ग्रीन बाक्स में डाल दिया है, जिसे कम करने की उन्हें कोई बाध्यता नहीं होगी। भारत समेत सभी विकासशील देशों में कृषि का बदहाली का मुख्य कारण विश्व व्यापार संगठन ही है। भारी परिदान के चलते सस्ते कपास के आयात के कारण हमारा कपास उगाने वाला किसान अपनी उपज का सही मूल्य प्राप्त नहीं कर पाता और आत्महत्या करने को विवश है। इसी प्रकार, दालों और तिलहनों का उत्पादन भी कम होता जा रहा है, क्योंकि सस्ते खाद्य तेल आयात हो रहे हैं। उत्पादन कम होने के कारण वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि हो रही है। फलस्वरूप देश की खाद्य सुरक्षा खतरे में है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन के अनुसार दुनिया में 100 करोड़ लोग भूखमरी के शिकार हैं और उनमें से 22 करोड़ लोग भारत में है।

विश्व पण्य निर्यातों में भारत का हिस्सा जो वर्ष 2004 से तेजी से बढ़ना शुरू हुआ था, 2009 में 1.3 प्रतिशत और 2010 में 1.5 प्रतिशत हो गया। यह हिस्सा बढ़कर वर्ष 2011 के पूर्वार्द्ध में 1.9 प्रतिशत हो गया जो विश्व की 23.1 प्रतिशत की निर्यात वृद्धि की तुलना में मुख्यतः 55 प्रतिशत के स्तर पर भारत के निर्यातों में हुई अपेक्षाकृत उच्च वृद्धि के कारण सम्भव हुआ। वर्ष 2000 और 2010 के बीच विश्व निर्यातों में चीन के हिस्से में 6.5 प्रतिशतांक के स्तर पर हुई कुल वृद्धि का 48 प्रतिशत बैठती है, जबकि भारत के हिस्से में 0.8 प्रतिशतांक के स्तर पर हुई वृद्धि इस कुल बढ़ोत्तरी

का केवल 6 प्रतिशत बैठती है तथापि, वर्ष 2010 में 31.3 प्रतिशत पर और 2011 के पूर्वार्द्ध में 24 प्रतिशत पर चीन की निर्यात वृद्धि दर भारत की निर्यात वृद्धि दर से अपेक्षाकृत कम थी। भारत के कुछ मुख्य व्यापार भागीदारों की निर्यात और आयात की अद्यतन मासिक वृद्धि दरों की सूचना बहुत उत्साहवर्धक नहीं है क्योंकि यूरोपीय संघ और हांगकांग की आयात एवं निर्यात वृद्धि दरें कम हो रही है तथा चीन एवं सिंगापुर की आयात वृद्धि दरें कम हो चुकी हैं।

विश्व व्यापार संगठन के साथ भारत के विवाद का मुख्य विषय आयातों पर परिमाणात्मक प्रतिबन्धों को लेकर रहा है। डब्लू.टी.ओ. की सफलता से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विस्तार तथा अनुशासन पर अनुकूल प्रभाव पड़ सकते हैं। परन्तु विफलता से उदारवाद एवं बहुपक्षीय व्यापार के लाभ के बजाय संरक्षणवादी नीतियाँ, विवाद एवं द्विपक्षीय व्यापार को प्रोत्साहन मिलेगा।

23.9 अभ्यास प्रश्न

1. लघु उत्तरीय प्रश्नः

(क) गैट का समझौता किन सिद्धान्तों पर आधारित था?

(ख) डब्ल्यू.टी.ओ. में मन्त्री -स्तरीय सम्मलेन क्या है?

(ग) गैट की स्थापना क्यों की गयी है?

(घ) गैट के आठवें दौर के मुख्य विषय का उल्लेख कीजिए।

2. सत्य/असत्य बताइये:

(क) विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का विचार गैट के आठवें उरूग्वे दौर में किया गया था।

(ख) कृषि परिदान में कटौती करने के लिए अमेरिका ने ग्रीन बाक्स और ब्ल्यू बाक्स जैसे प्रावधान कर रखें हैं।

(ग) डब्ल्यू.टी.ओ. का आरम्भिक मंत्री -स्तरीय सम्मेलन जिनेवा में हुआ था।

(घ) विश्व व्यापार संगठन के सभी सदस्य सभी परिषद एवं सभी समितियों में भाग ल्ो सकते हैं।

3. बहुविकल्पीय प्रश्नः

(क) विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का आधार है-

(अ) अंक्टाड (ब) संयुक्त राष्ट्र संघ

(स) विश्व बैंक (द) गैट

(ख) डब्ल्यू.टी.ओ. की स्थापना कब हुई थी?

(अ) 1995 (ब) 1947

(स) 1955 (द) 1994

(ग) डब्ल्यू.टी.ओ. प्रशासन की सर्वोच्च संस्था है-

(अ) मंत्री -स्तरीय सम्मेलन (ब) सामान्य परिषद्

(ब) विवाद निपटान संस्था (द) गैट

(घ) डब्ल्यू. टी.ओ. के निम्न सम्मेलनों में कौन सा सम्मेलन दोहा सम्मेलन है-

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) चतुर्थ

(ङ) डब्ल्यू.टी.ओ. के किस सम्मेलन में चाईना और ताइवान को डब्ल्यू.टी.ओ. का सदस्य बनाया गया-

(अ) सिएटल (ब) दोहा

(स) कानकुन (द) हांगकांग

4. एक पंक्ति अथवा एक शब्द वाले प्रश्नः

(क) विश्व व्यापार संगठन के मंत्री -स्तरीय सम्मेलन में सिंगापुर मुद्दा में क्या शामिल है।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम, बहुपक्षीय निवेश गारण्टी एजेन्सी तथा निवेश विवादों के निबटारे का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र। उपर्युक्त चार संस्थाओं को क्या कहा जाता है?

(ग) विश्व व्यापार संगठन किससे अभिप्रेरित है?

(घ) विश्व व्यापार संगठन का मुख्यालय कहाँ पर स्थित है ?

5. रिक्त स्थान भरिएः

(क) ब्रेटन-वुड्ज सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और ... की स्थापना की गयी।

(ख) विश्व बैंक 25 जून 1946 से कार्य प्रारम्भ कर दिया जबकि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ... से कार्य प्रारम्भ किया।

(ग) विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष दोनों संस्थाओं की स्थापना ... को हुई।

(घ) मंत्री स्तरीय सम्मेलन विश्व व्यापार संगठन की ... प्राधिकार है।

23.10 सारांश

प्रशुल्क एवं व्यापार संबंधी समझौता (गैट) 1948 से 1994 तक विश्व व्यापार के लिए नियम बनाता रहा और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य को ऊँचाईयाँ दी। लगभग 47 वर्षों तक यह एक अस्थायी संस्था के रूप में कार्य करता रहा। गैट का आठवां दौर जिनेवा (उरूग्वे) में हुआ, जो उरूग्वे दौर के नाम से जाना जाता है। यह आठवां दौर गैट का अन्तिम दौर था। इसी दौर में जनवरी 1, 1995 में विश्व व्यापार संगठन का जन्म हुआ, जिसमें होने वाले समझौते सदस्य देशों के लिए बाध्यकारी बन गये और उन समझौतों को पालन न होने की स्थिति में सदस्य देशों पर कानूनी तौर पर कार्रवाई करने की

व्यवस्था की गयी है । इस नयी संस्था डब्ल्यू. टी. ओ. में गैट में पहले से शामिल मुद्दों में पेटेन्ट, कृषि, निवेश, सेवाओं का उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार, विश्व के संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग, अविरल विकास की अवधारणा, पर्यावरण का संरक्षण एवं इसको सुरक्षा तथा व्यापार सम्बन्धी बौद्धिक संपत्ति अधिकार आदि विषय को शामिल कर लिया गया। अभी तक विश्व व्यापार संगठन के कुल छः मंत्री -सम्मेलन हुए है । छठवां मंत्री -सम्मेलन हांगकांग में हुआ। इस सम्मेलन के बाद मंत्री स्तरीय सम्मेलन में गतिरोध बना हुआ है । गतिरोध का कारण विकसित देशों द्वारा कृषि निर्यात पर दी जाने वाली परिदान को घटाने के बजाय बढ़ा देना है तथा तीन चौथाई से भी अधिक परिदान को ग्रीन बाक्स में डाल देना आदि है ।

23.11 **शब्दावली**

- **पेटेंटः-** पेटेंट किसी आविष्कार, डिजाईन आदि को प्रोत्साहित एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक निश्चित समयावधि के लिए प्रदान किया जाने वाला कानूनी अधिकार है । पेटेन्ट दो प्रकार के होते हैं- प्रक्रिया पेटेन्ट और उत्पाद पेटनेट। प्रक्रिया पेटेन्ट में वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया के लिए पेटेन्ट प्रदान किया जाता है तथा उत्पाद पेटनेन्ट में उत्पाद के मूलभूत अन्वेषक को पेटेन्ट प्रदान किया जाता है । अर्थात् कोई अन्य निर्माता उसी उत्पाद को निर्मित नहीं कर सकता।
- **सबसे अधिक प्रिय देश** - सबसे अधिक प्रिय देश को अनुग्रहीत राष्ट्र का व्यवहार भी कहते हैं । अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में भेदभावपूर्ण व्यवहार की समाप्ति हेतु 'सबसे अधिक प्रिय देश' सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है । इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक सदस्य देश के साथ अन्य देशों के भाँति ही व्यवहार किया जाता है तथा किसी एक सदस्य देश को दी गयी रियायत स्वतः ही अन्य सदस्य देशों के लिए भी उपलब्ध हो जाती है ।
- **प्रशुल्कः-** जब कोई वस्तु राष्ट्रीय सीमा में प्रवेश करती है या राष्ट्रीय सीमा को छोड़ती है तो इन वस्तुओं पर लगाया गया कर या शुल्क को प्रशुल्क कहते हैं । प्रशुल्क आयात शुल्क या सीमा शुल्क का पर्यायवाची है ।
- **राशिपातन** - राशिपातन दो बाजारों के बीच कीमत विभेद है । जिसमें निर्यातक फर्म विदेशी बाजार में अपनी उत्पादित वस्तु का एक भाग कम कीमत पर तथा अन्य भाग घरेलू बाजार में अधिक कीमत पर बेचता है ।

- **प्रति-राशिपातन** - राशिपातन को रोकने के लिए आयातित वस्तु पर लगाया गया शुल्क, आयात कोटा आदि को प्रति-राशिपातन कहते हैं।
- **विपरीत राशिपातन** - घरेलू बाजार की तुलना में विदेशी बाजार में वस्तु की कीमत अधिक होती है। ऐसा घरेलू बाजार से विदेशी प्रतियोगिता को बाहर करने के लिए किया जाता है।

23.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (क) गैट का समझौता चार महत्वपूर्ण सिद्धांतों पर आधारित था-

(1) विभिन्न देशों के बीच बिना भेद-भाव के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाय।

(2) विदेशी व्यापार को प्रभावित करने हेतु केवल प्रशुल्क-दरों का आश्रय लिया जाय।

(3) एक देश दूसरे देश के लिए क्षतिप्रद नीति अपनाने से पूर्व उस (दूसरे) देश से विचार-विमर्श करे, तथा

(4) ऐसे कदम उठाये जायें जिनसे प्रशुल्क दरों में परस्पर विचार-विमर्श के माध्यम से कमी की जा सके।

(ख) डब्ल्यू.टी.ओ. में मंत्री -स्तरीय सम्मेलन सर्वोच्च संस्था होती है जहाँ पर सदस्य देशों के प्रतिनिधि आर्थिक विकास के बारे में निर्णय लेते हैं। मंत्री -स्तरीय सम्मेलन डब्ल्यू.टी.ओ. की प्रशासक समिति होती है।

(ग) गैट की स्थापना अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की उदारता की नीति को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से सन् 1947 में जेनेवा में प्रशुल्क करों एवं व्यापार पर सामान्य समझौता (गैट) के नाम से की गयी।

(घ) गैट का आठवाँ दौर अन्तिम दौर था इसी दौर में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना का निर्णय लिया गया। इसके अतिरिक्त बौद्धिक सम्पत्ति, विवाद समझौता, प्रशुल्क, गैर प्रशुल्क, उपाय, टैक्सटाइल्स, कृषि आदि से सम्बन्धित निर्णय लिये हैं।

2. (क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

3. (क) द, (ख) अ, (ग) अ, (घ) द, (ङ) ब

4. (क) विश्व व्यापार संगठन के मंत्री -स्तरीय सम्मेलन में सिंगापुर मुद्दा में चार मुद्दे शामिल थे, ये हैं- विदेशी निवेश, प्रतिस्पर्द्धा, व्यापार सुविधा तथा सरकारी खरीद में पारदर्शिता। इन्हीं चार मुद्दों को सिंगापुर मुद्दे के नाम से जाना जाता है।

(ख) विश्व बैंक समूह

(ग) विश्व व्यापार संगठन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के उदारीकरण एवं परिवीक्षण से अभिप्रेरित है।

(घ) जेनेवा

5. (क) विश्वबैंक

(ख) 1 मार्च, 1947
(ग) 27 दिसम्बर, 1945
(घ) सर्वोच्च

23.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेठी, डॉ. टी.टी. (2009-10), 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र्' , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 245-261
2. झिंगन, एम.एल. (2005), 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र्' , वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., दिल्ली, पृ. 575, 588
3. अग्रवाल, एच.एस.; बरला, सी.एस. (1998), 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र्' , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 289-305
4. डब्लू.टी.ओ. (2001), "Understanding the WTO.", WTO Information and External Relation Division, Switzerland, पृ. 18,19,108,109
5. आर्थिक समीक्षा (2012), भारत सरकार, पृ. 154
6. महाजन, अश्विनी, (2011), 'ज्वलंत मुद्दा' , दैनिक जागरण

23.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. समसामयिक घटना सार (2009-10), भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.एस. पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद
2. लाल, डॉ. एस.एन. (2003), ''अर्थशास्त्र् मुद्रा, बैंकिंग, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तथा लोकवित्त' , शिव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद
3. झिंगन, एम.एल. (2005) ''अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र्' , वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., दिल्ली

23.15 निबन्धात्मक प्रश्न

(क) विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य तथा कार्यों की विस्तृत चर्चा कीजिए।
(ख) डब्ल्यू.टी.ओ. के विभिन्न वार्ता दौरों का वर्णन कीजिए।